रसायन विज्ञान

भाग 2

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

रसायन विज्ञान

भाग 2

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

मार्च 2006 चैत्र 1927

PD 3T RA

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021

Rs. 70.00

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	पी.राजाकुमार
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार अधिकारी	:	*गौतम गांगुली*
सहायक संपादक	:	*रेखा अग्रवाल*
उत्पादन सहायक	:	*मुकेश गौड़*

आवरण

श्वेता राव

चित्रांकन

निधि वाधवा

अतिल नयाल

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा द्वारा मुद्रित। पुष्पक प्रेस प्रा0 लि0, 119, डी.एस.आई.डी.सी. कॉम्प्लैक्स, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-I, नई दिल्ली 110 020

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है, जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने तथा सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए, तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फ़ेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस तथा हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक विकास समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् विज्ञान एवं गणित की पाठ्यपुस्तक के सलाहकार समूह के अध्यक्ष जे.वी. नार्लीकर और इस पाठ्यपुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर बी.एल. खंडेलवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी, जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
20 दिसंबर 2005

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्‌द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

पाठ्यपुस्तक विकास समिति

अध्यक्ष, विज्ञान और गणित पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

जयंत विष्णु नार्लीकर, *प्रोफ़ेसर,* अंतर-विश्वविद्यालय केंद्र, खगोलविज्ञान और खगोलभौतिकी, पूना विश्वविद्यालय, पूना

मुख्य सलाहकार

बी.एल. खंडेलवाल, *प्रोफ़ेसर (अवकाशप्राप्त),* इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, नई दिल्ली

सदस्य

अलका मेहरोत्रा, *रीडर,* (समन्वयक, अंग्रेज़ी संस्करण), डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

अंजनी कौल, *प्रवक्ता,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

आई.पी. अग्रवाल, *प्रोफ़ेसर,* क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., भोपाल

ए.एस. बरार, *प्रोफ़ेसर,* इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, नई दिल्ली

एच.ओ. गुप्ता, *प्रोफ़ेसर,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

एस.के. डोगरा, *प्रोफ़ेसर,* डॉ. बी.आर. अंबेडकर सेंटर फॉर बायोमेडिकल रिसर्च, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

जयश्री शर्मा, *प्रोफ़ेसर,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

पूनम साहनी, *पी.जी.टी.* (रसायन विज्ञान), केन्द्रीय विद्यालय, विकासपुरी, नई दिल्ली

मैत्रेयी चंद्रा, *प्रोफ़ेसर,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

वी.के. वर्मा, *प्रोफ़ेसर* (अवकाशप्राप्त), इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वी.पी. गुप्ता, *रीडर,* क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., भोपाल

शुभा केशवन, *प्रधानाध्यापिका,* डेमोंसट्रेशन स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., मैसूर

साधना भार्गव, *पी.जी.टी.* (रसायन विज्ञान), सरदार पटेल विद्यालय, लोदी इस्टेट, नई दिल्ली

सुखवीर सिंह, *रीडर,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

सुनीता मल्होत्रा, *प्रोफ़ेसर,* स्कूल ऑफ साइंसेज़, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सदस्य-समन्वयक

आर.के. पाराशर, *प्रवक्ता,* (समन्वयक, हिंदी संस्करण), डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

हिंदी रूपांतर

आर.आर. गोयल, *रीडर,* रसायन विज्ञान विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आर.के. उपाध्याय, *वरिष्ठ प्रवक्ता,* रसायन विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

आलोक चतुर्वेदी, *वरिष्ठ प्रवक्ता,* रसायन विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

एस.पी. माथुर, *विभागाध्यक्ष,* विशुद्ध एवं अनुप्रयुक्त रसायन विभाग, म.द.स. विश्वविद्यालय, अजमेर

डी.के. शर्मा, *रीडर,* रसायन विज्ञान विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

के.जी. ओझा, *एसोशिएट प्रोफ़ेसर,* विशुद्ध एवं अनुप्रयुक्त रसायन विभाग, म.द.स. विश्वविद्यालय, अजमेर

ललिता एस. कुमार, *रीडर,* स्कूल ऑफ साइन्सेज, इंदिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

संजीव कुमार, *रीडर,* रसायन विज्ञान विभाग, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुनीता मल्होत्रा, *प्रोफ़ेसर,* स्कूल ऑफ साइंसेज, इंदिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सुरेंद्र अरोड़ा, वरिष्ठ प्रवक्ता, रसायन विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् उन सभी संस्थाओं तथा व्यक्तियों के प्रति आभार प्रकट करती है, जिन्होंने रसायन विज्ञान की कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक के विकास में अमूल्य योगदान दिया। परिषद् निम्नलिखित विद्वानों का भी आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने हिंदी पांडुलिपि के पुनरावलोकन तथा सुधार में अमूल्य योगदान दिया –

वी.एन. पाठक, *प्रोफ़ेसर,* राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर; बिजेंद्र सिंह, *रीडर,* हंसराज कॉलेज, दिल्ली; दिनेश गुप्ता, *रीडर,* राजकीय महाविद्यालय, अजमेर; जे.एल. शर्मा, *रीडर,* किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली; लक्ष्मण सिंह, *रीडर,* एल.आर. कॉलेज, साहिबाबाद; विनोद कुमार, *रीडर,* हंसराज कॉलेज, दिल्ली; विजय सारदा, *रीडर,* जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली; अरुण पारीक, *प्रवक्ता,* राजकीय महाविद्यालय, अजमेर; अतुल कुमार शर्मा, *प्रवक्ता,* राजकीय महाविद्यालय, नागौर; किशोर ए. सोर्ते, *प्रधानाचार्य,* राजकीय बालक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, निठारी, नांगलोई, नई दिल्ली; सुषमा सेतिया, *प्रधानाचार्य,* सर्वोदय कन्या विद्यालय, हरिनगर, दिल्ली; समीर व्यास, *अनुसंधान सहायक,* केंद्रीय मृदा एवं सामग्री अनुसंधानशाला, नई दिल्ली; अनिल कुमार शर्मा, *पी.जी.टी.,* केंद्रीय विद्यालय, आई.एन.ए. कॉलोनी, नई दिल्ली; राजेश धामा, *पी.जी.टी.,* केंद्रीय विद्यालय, विज्ञान विहार, दिल्ली; उपमा सिंह, विवेकानंद स्कूल, आनंद विहार, दिल्ली; भाषायी दृष्टि से पांडुलिपि के सुधार के लिए श्री राजीव रंजन, प्रति संपादक का सहयोग प्रशंसनीय रहा।

परिषद् शैक्षिक तथा प्रशासनिक सहयोग हेतु मैत्रेयी चंद्रा, *अध्यक्ष,* डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी. की भी आभारी है।

परिषद् दीपक कपूर, *प्रभारी,* कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज, तथा उनके सहयोगी सुरेंद्र कुमार, *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* गीता कुमारी, *प्रूफ़-रीडर,* सहायक कार्यक्रम समन्वयक कार्यालय (डी.ई.एस.एम.), एन.सी.ई.आर.टी. के प्रशासन और प्रकाशन विभाग के सहयोग हेतु हार्दिक आभार ज्ञापित करती है।

विषय सूची

रसायन विज्ञान भाग 1

विषय सूची

अपचयोपचय अभिक्रियाएँ
REDOX REACTIONS

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप–

- अपचयन तथा ऑक्सीकरण द्वारा होने वाली अपचयोपचय अभिक्रियाओं के वर्ग की पहचान कर सकेंगे;
- ऑक्सीकरण, अपचयन (ऑक्सीडेंट), ऑक्सीकारक तथा अपचायक (रिडक्टेंट) को परिभाषित कर सकेंगे;
- इलेक्ट्रॉन-स्थानांतरण द्वारा अपचयोपचय अभिक्रियाओं की क्रियाविधि की व्याख्या कर सकेंगे;
- यौगिकों में तत्त्वों की ऑक्सीकरण-संख्या के आधार पर ऑक्सीकारक या अपचायक की पहचान कर सकेंगे;
- अपचयोपचय अभिक्रियाओं का वर्गीकरण, योग, अपघटन, विस्थापन एवं असमानुपातन अभिक्रियाओं के रूप में कर सकेंगे;
- विभिन्न अपचायकों तथा ऑक्सीकारकों के तुलनात्मक क्रम का निर्धारण कर सकेंगे;
- रासायनिक समीकरणों को (i) ऑक्सीकरण-संख्या तथा (ii) अर्द्ध-अभिक्रिया या आयन-इलेक्ट्रॉन विधियों द्वारा संतुलित कर सकेंगे;
- इलेक्ट्रोड विधि (प्रक्रम) की सहायता से अपचयोपचय अभिक्रियाओं की अवधारणा को सीख सकेंगे।

जहाँ ऑक्सीकरण है, वहाँ सदैव अपचयन होता है। रसायन विज्ञान अपचयोपचन प्रक्रमों के अध्ययन का विज्ञान है।

विभिन्न पदार्थों का तथा दूसरे पदार्थों में उनके परिवर्तन का अध्ययन **रसायन शास्त्र** कहलाता है। ये परिवर्तन विभिन्न अभिक्रियाओं द्वारा होते हैं। अपचयोपचय अभिक्रियाएँ इनका एक महत्त्वपूर्ण समूह है। अनेक भौतिक तथा जैविक परिघटनाएँ अपचयोपचय अभिक्रियायों से संबंधित हैं। इनका उपयोग औषधि विज्ञान, जीव विज्ञान, औद्योगिक क्षेत्र, धातुनिर्माण क्षेत्र तथा कृषि विज्ञान क्षेत्र में होता है। इनका महत्त्व इस बात से स्पष्ट है कि इनका प्रयोग निम्नलिखित क्षेत्रों में अपचयोपचय अभिक्रियाओं में, जैसे–घरेलू, यातायात तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में अनेक प्रकार के ईंधन के ज्वलन से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए; विद्युत् रासायनिक प्रक्रमों आदि में; अति क्रियाशील धातुओं तथा अधातुओं के निष्कर्षण, धातु-संक्षारण, रासायनिक यौगिकों (जैसे–क्लोरीन तथा कास्टिक सोडा) के निर्माण में तथा शुष्क एवं गीली बैटरियों के चालन में होता है। आजकल **हाइड्रोजन मितव्ययिता** (द्रव हाइड्रोजन का उपयोग ईंधन के रूप में) तथा **ओज़ोन छिद्र** जैसे वातावरणी विषयों में भी अपचयोपचय अभिक्रियाएँ दिखती हैं।

8.1 अपचयोपचय अभिक्रियाएँ

मूल रूप से **ऑक्सीकरण** शब्द का प्रयोग तत्त्वों तथा यौगिकों के ऑक्सीजन से संयोग के लिए होता था। वायुमंडल में लगभग 20 प्रतिशत डाइऑक्सीजन की उपस्थिति के कारण बहुत से तत्त्व इससे संयोग कर लेते हैं। यही कारण है कि पृथ्वी पर तत्त्व सामान्य रूप से ऑक्साइड रूप में ही पाए जाते हैं। ऑक्सीकरण की इस सीमित परिभाषा के अंतर्गत निम्नलिखित अभिक्रियाओं को दर्शाया जा सकता है–

$$2\,Mg\,(s) + O_2\,(g) \rightarrow 2\,MgO\,(s) \qquad (8.1)$$

$$S\,(s) + O_2\,(g) \rightarrow SO_2\,(g) \qquad (8.2)$$
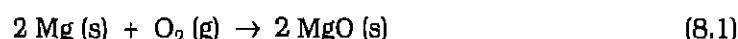
अभिक्रिया 8.1 तथा 8.2 में मैग्नीशियम और सल्फर तत्त्वों का ऑक्सीजन से मिलकर ऑक्सीकरण हो जाता है। समान रूप से ऑक्सीजन से संयोग के कारण मेथैन का ऑक्सीकरण हो जाता है।

$$CH_4 (g) + 2O_2 (g) \rightarrow CO_2 (g) + 2H_2O (l) \quad (8.3)$$
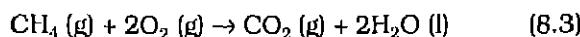
यदि ध्यान से देखें, तो अभिक्रिया 8.3 में मेथैन में हाइड्रोजन के स्थान पर ऑक्सीजन आ गया है। इससे रसायनशास्त्रियों को प्रेरणा मिली कि हाइड्रोजन के निष्कासन को 'ऑक्सीकरण' कहा जाए। इस प्रकार ऑक्सीकरण पद को विस्तृत करके पदार्थ से हाइड्रोजन के निष्कासन को भी 'ऑक्सीकरण' कहते हैं। निम्नलिखित अभिक्रिया में भी हाइड्रोजन का निष्कासन ऑक्सीकरण का उदाहरण है–

$$2\,H_2S(g) + O_2 (g) \rightarrow 2\,S (s) + 2\,H_2O (l) \quad (8.4)$$
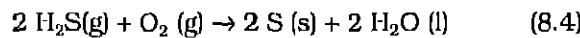
रसायनशास्त्रियों के ज्ञान में जैसे-जैसे वृद्धि हुई, वैसे-वैसे उन अभिक्रियाओं, जिनमें 8.1 से 8.4 की भाँति ऑक्सीजन के अलावा अन्य ऋणविद्युती तत्त्वों का समावेश होता है, को वे 'ऑक्सीकरण' कहने लगे। मैग्नीशियम का ऑक्सीकरण फ्लुओरीन, क्लोरीन तथा सल्फर द्वारा निम्नलिखित अभिक्रियाओं में दर्शाया गया है–

$$Mg (s) + F_2 (g) \rightarrow MgF_2 (s) \quad (8.5)$$

$$Mg (s) + Cl_2 (g) \rightarrow MgCl_2 (s) \quad (8.6)$$

$$Mg (s) + S (s) \rightarrow MgS (s) \quad (8.7)$$
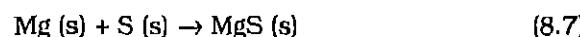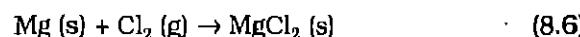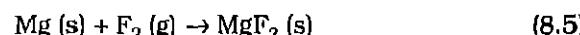
8.5 से 8.7 तक की अभिक्रियाएँ ऑक्सीकरण अभिक्रिया समूह में शामिल करने पर रसायनशास्त्रियों को प्रेरित किया कि वे हाइड्रोजन जैसे अन्य धनविद्युती तत्त्वों के निष्कासन को भी 'ऑक्सीकरण' कहने लगे। इस प्रकार अभिक्रिया–

$$2K_4[Fe(CN)_6](aq) + H_2O_2 (aq) \rightarrow 2K_3 [Fe(CN)_6](aq) + 2\,KOH (aq)$$
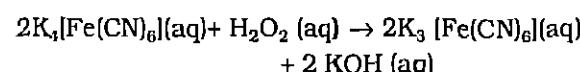
को धनविद्युती तत्त्व K के निष्कासन के कारण 'पोटैशियम फैरोसाइनाइड का ऑक्सीकरण' कह सकते हैं। सारांश में ऑक्सीकरण पद की परिभाषा इस प्रकार है– **किसी पदार्थ में ऑक्सीजन/ऋणविद्युती तत्त्व का समावेश या हाइड्रोजन/धनविद्युती तत्त्व का निष्कासन ऑक्सीकरण कहलाता है।**

पहले किसी यौगिक से ऑक्सीजन का निष्कासन अपचयन माना जाता था, लेकिन आजकल अपचयन पद को विस्तृत करके पदार्थ से ऑक्सीजन/ऋणविद्युती तत्त्व के निष्कासन को या हाइड्रोजन/धनविद्युती तत्त्व के समावेश को अपचयन कहते हैं।

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार निम्नलिखित अभिक्रिया अपचयन प्रक्रम का उदाहरण है–

$$2\,HgO (s) \xrightarrow{\Delta} 2\,Hg (l) + O_2 (g) \quad (8.8)$$
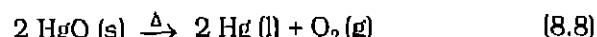
(मरक्यूरिक ऑक्साइड से ऑक्सीजन का निष्कासन)

$$2\,FeCl_3 (aq) + H_2 (g) \rightarrow 2\,FeCl_2 (aq) + 2\,HCl(aq) \quad (8.9)$$
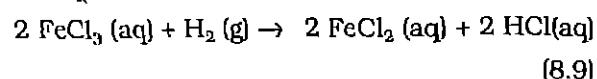
(विद्युत्ऋणी तत्त्व क्लोरीन का फेरिक क्लोराइड से निष्काषन)

$$CH_2 = CH_2 (g) + H_2 (g) \rightarrow H_3C - CH_3 (g) \quad (8.10)$$

(हाइड्रोजन का योग)

$$2HgCl_2 (aq) + SnCl_2 (aq) \rightarrow Hg_2Cl_2 (s) + SnCl_4 (aq) \quad (8.11)$$
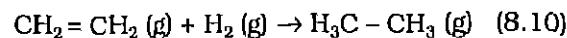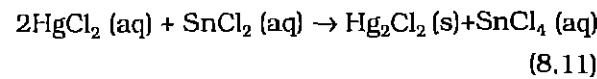
(मरक्युरिक क्लोराइड से योग)

क्योंकि अभिक्रिया 8.11 में स्टैनसक्लोराइड में वैद्युत ऋणी तत्त्व क्लोरीन का योग हो रहा है, इसलिए साथ-साथ स्टैनिक क्लोराइड के रूप में इसका ऑक्सीकरण भी हो रहा है। उपरोक्त सभी अभिक्रियाओं को ध्यान से देखने पर शीघ्र ही इस बात का आभास हो जाता है कि ऑक्सीकरण तथा अपचयन हमेशा साथ-साथ घटित होते हैं। इसीलिए इनके लिए **अपचयोपचय** शब्द दिया गया।

उदाहरण 8.1

नीचे दी गई अभिक्रियाओं में पहचानिए कि किसका ऑक्सीकरण हो रहा है और किसका अपचयन–

(i) $H_2S (g) + Cl_2 (g) \rightarrow 2\,HCl (g) + S (s)$

(ii) $3Fe_3O_4 (s) + (s)\ 8\,Al (s) \rightarrow 9\,Fe (s) + 4Al_2O_3 (s)$

(iii) $2\,Na (s) + H_2 (g) \rightarrow 2\,NaH (s)$
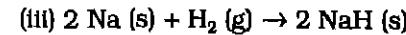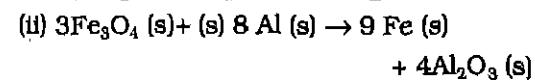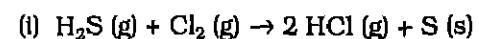
हल

(i) H_2S का ऑक्सीकरण हो रहा है, क्योंकि हाइड्रोजन से ऋणविद्युती तत्त्व क्लोरीन का संयोग हो रहा है या धनविद्युती तत्त्व हाइड्रोजन का सल्फर से निष्कासन हो रहा है। हाइड्रोजन के संयोग के कारण क्लोरीन का अपचयन हो रहा है।

(ii) ऑक्सीजन के संयोग के कारण ऐलुमीनियम का ऑक्सीकरण हो रहा है। ऑक्सीजन के निष्कासन के कारण फैरस फैरिक ऑक्साइड (Fe_3O_4) का अपचयन हो रहा है।

(iii) विद्युत्ऋणता की अवधारणा के सावधानीपूर्वक अनुप्रयोग से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सोडियम ऑक्सीकृत तथा हाइड्रोजन अपचयित होता है।

अभिक्रिया (iii) का चयन यहाँ इसलिए किया गया है, ताकि हम अपचयोपचय अभिक्रियाओं को अलग तरह से परिभाषित कर सकें।

8.2 इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण अभिक्रियाओं के रूप में अपचयोपचय अभिक्रियाएँ

हम यह जान चुके हैं कि निम्नलिखित सभी अभिक्रियाओं में या तो ऑक्सीजन या अधिक ऋणविद्युती तत्त्व के संयोग के कारण सोडियम का ऑक्सीकरण हो रहा है; साथ-साथ क्लोरीन, ऑक्सीजन तथा सल्फर का अपचयन भी हो रहा है, क्योंकि इन तत्त्वों से धनविद्युती तत्त्व सोडियम का संयोग हो रहा है–

$2Na(s) + Cl_2(g) \rightarrow 2NaCl\ (s)$ (8.12)

$2Na(s) + O_2(g) \rightarrow Na_2O(s)$ (8.13)

$2Na(s) + S(s) \rightarrow Na_2S(s)$ (8.14)

रासायनिक आबंध के नियमों के आधार पर सोडियम क्लोराइड, सोडियम ऑक्साइड तथा सोडियम सल्फाइड हमें आयनिक यौगिकों के रूप में विदित हैं। इन्हें Na^+Cl^- (s), $(Na^+)_2O^{2-}$(s) तथा $(Na^+)_2\ S^{2-}$ (s) के रूप में लिखना ज्यादा उचित होगा। विद्युत् आवेश उत्पन्न होने के कारण 8.12 से 8.14 तक की अभिक्रियाओं को हम यों लिख सकते हैं–

सुविधा के लिए उपरोक्त अभिक्रियाओं को दो चरणों में लिखा जा सकता है। एक में इलेक्ट्रॉनों का निष्कासन तथा दूसरे में इलेक्ट्रॉनों की प्राप्ति होती है। दृष्टांत रूप में सोडियम क्लोराइड के संभवन को अधिक परिष्कृत रूप में इस प्रकार भी लिख सकते हैं–

$2\ Na(s) \rightarrow 2\ Na^+(g) + 2e^-$

$Cl_2(g) + 2e^- \rightarrow 2\ Cl^-(g)$
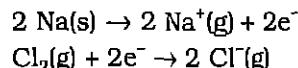
उपरोक्त दोनों चरणों को 'अर्द्ध अभिक्रिया' कहते हैं, जिनमें इलेक्ट्रॉनों की अभिलिप्तता साफ-साफ दिखाई देती है। दो अर्द्धक्रियाओं को जोड़ने से एक पूर्ण अभिक्रिया प्राप्त होती है–

$2\ Na(s) + Cl_2\ (g) \rightarrow 2\ Na^+\ Cl^-\ (s)$ या $2\ NaCl\ (s)$
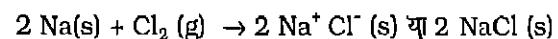
8.12 से 8.14 तक की **अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉन निष्कासन वाली अर्द्धअभिक्रियाओं को 'ऑक्सीकरण अभिक्रिया' तथा इलेक्ट्रॉन ग्रहण करनेवाली अर्द्धअभिक्रिया को 'अपचयन अभिक्रिया' कहते हैं।** यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि स्पीशीज़ के आपसी व्यवहार की पारंपरिक अवधारणा तथा इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण के परस्पर मिलाने से ही ऑक्सीकरण और अपचयन की नई परिभाषा प्राप्त हुई है। 8.12 से 8.14 तक की अभिक्रियाओं में सोडियम, जिसका ऑक्सीकरण होता है, **अपचायक** के रूप में कार्य करता है, क्योंकि यह क्रिया करनेवाले प्रत्येक तत्त्व को इलेक्ट्रॉन देकर अपचयन में सहायता देता है। क्लोरीन, ऑक्सीजन तथा सल्फर अपचयित हो रहे हैं और **ऑक्सीकारक** का कार्य करते हैं, क्योंकि ये सोडियम द्वारा दिए गए इलेक्ट्रॉन स्वीकार करते हैं। सारांश रूप में हम यह कह सकते हैं–

ऑक्सीकरण : किसी स्पीशीज़ द्वारा इलेक्ट्रॉन का निष्कासन
अपचयन : किसी स्पीशीज़ द्वारा इलेक्ट्रॉन की प्राप्ति
ऑक्सीकारक: इलेक्ट्रॉनग्राही अभिकारक
अपचायक : इलेक्ट्रॉनदाता अभिकारक

उदाहरण 8.2

निम्नलिखित अभिक्रिया एक अपचयोपचय अभिक्रिया है, औचित्य बताइए–

$2\ Na(s) + H_2(g) \rightarrow 2\ NaH\ (s)$
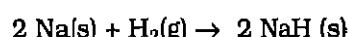
हल

क्योंकि उपरोक्त अभिक्रिया में बननेवाला यौगिक एक आयनिक पदार्थ है, जिसे Na^+H^- से प्रदर्शित किया जा सकता है, अतः इसकी अर्द्धअभिक्रिया इस प्रकार होगी–

$2\ Na\ (s) \rightarrow 2\ Na^+\ (g) + 2e^-$
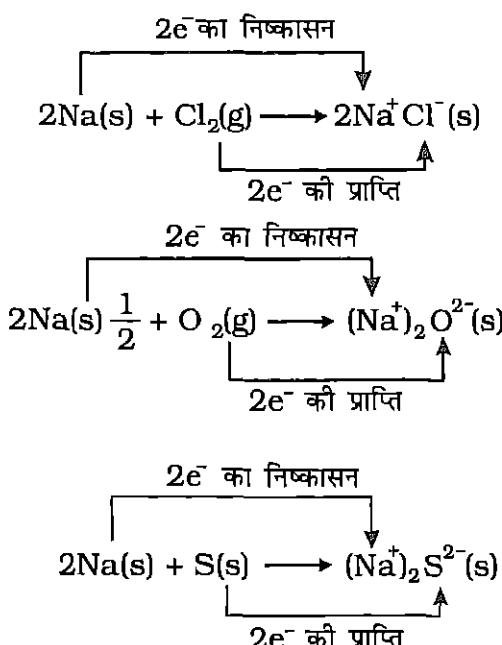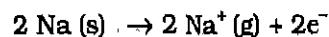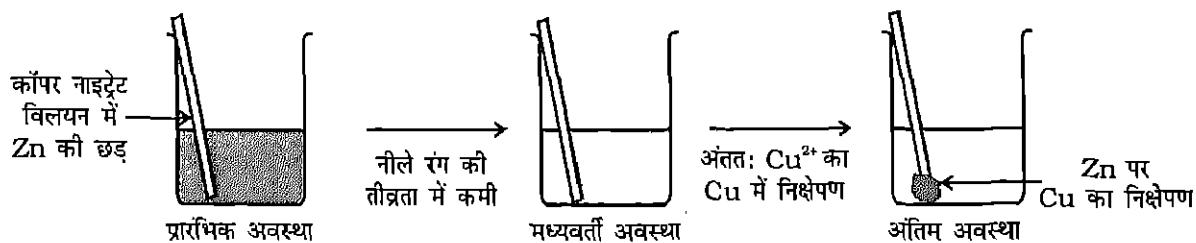
चित्र 8.1 बीकर में रखे कॉपर नाइट्रेट तथा ज़िंक के बीच होनेवाली अपचयोपचय अभिक्रिया

तथा दूसरी

$H_2 (g) + 2e^- \rightarrow 2 H^- (g)$
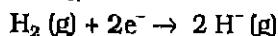
इस अभिक्रिया का दो अर्द्धअभिक्रियाओं में विभाजन, सोडियम के ऑक्सीकरण तथा हाइड्रोजन के अपचयन का प्रदर्शन करता है। इस पूरी अभिक्रिया को अपचयोपचय अभिक्रिया कहते हैं।

8.2.1 प्रतियोगी इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण अभिक्रियाएँ

जैसा चित्र 8.1 में दर्शाया गया है, ज़िंक धातु की एक पट्टी को एक घंटे के लिए कॉपर नाइट्रेट के जलीय विलयन में रखा गया है। आप देखेंगे कि धातु की पट्टी पर कॉपर धातु की लाल रंग की परत जम जाती है तथा विलयन का नीला रंग गायब हो जाता है। ज़िंक आयन Zn^{2+} का उत्पाद के रूप में बनना Cu^{2+} के रंग के विलुप्त होने से लिया जा सकता है। यदि Zn^{2+} वाले रंगहीन घोल में हाइड्रोजन सल्फाइड गैस गुजारें, तो ज़िंक सल्फाइड ZnS अवक्षेप का सफेद रंग अमोनिया द्वारा विलयन को क्षारीय करके देखा जा सकता है।

ज़िंक धातु तथा कॉपर नाइट्रेट के जलीय घोल के बीच होनेवाली अभिक्रिया निम्नलिखित है–

$$Zn(s) + Cu^{2+} (aq) \rightarrow Zn^{2+} (aq) + Cu(s) \quad (8.15)$$
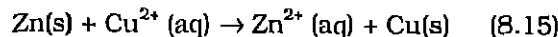
अभिक्रिया 8.15 में ज़िंक से इलेक्ट्रॉनों के निष्कासन से Zn^{2+} बनता है। इसलिए ज़िंक का ऑक्सीकरण होता है। स्पष्ट है कि इलेक्ट्रॉनों के निष्कासन से ज़िंक का ऑक्सीकरण हो रहा है, तो किसी वस्तु का इलेक्ट्रॉनों को ग्रहण करने से अपचयन भी हो रहा है। ज़िंक द्वारा दिए गए इलेक्ट्रॉनों की प्राप्ति से कॉपर आयन अपचयित हो रहा है। अभिक्रिया 8.15 को हम इस प्रकार दुबारा लिख सकते हैं–

$2e^-$ का निष्कासन

$$Zn(s) + Cu^{2+}(aq) \longrightarrow Zn^{2+}(aq) + Cu(s)$$

$2e^-$ की प्राप्ति
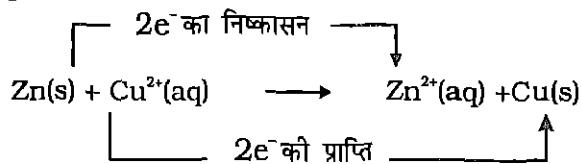
अब हम समीकरण 8.15 द्वारा दर्शाई गई अभिक्रिया की साम्यावस्था का अध्ययन करेंगे। इसके लिए हम कॉपर धातु की पट्टी को ज़िंक सल्फेट के घोल में डुबोकर रखते हैं। कोई भी प्रतिक्रिया दिखलाई नहीं देती और न ही Cu^{2+} का वह परीक्षण सफल होता है, जिसमें विलयन में H_2S गैस प्रवाहित करने पर क्युपरिक सल्फाइड CuS अवक्षेप का काला रंग मिलता है। यह परीक्षण बहुत संवेदनशील है, परंतु फिर भी Cu^{2+} आयन का बनना नहीं देखा जा सकता है। इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि अभिक्रिया 8.15 की साम्यावस्था की अनुकूलता उत्पादों की ओर है। आइए, अब हम कॉपर धातु तथा सिल्वर नाइट्रेट के जलीय विलयन के बीच होनेवाली अभिक्रिया को चित्र 8.2 में दर्शाई गई व्यवस्था के अनुसार घटित करें।

आयन बनने के कारण घोल का रंग नीला हो जाता है, जो निम्नलिखित अभिक्रिया के कारण है–
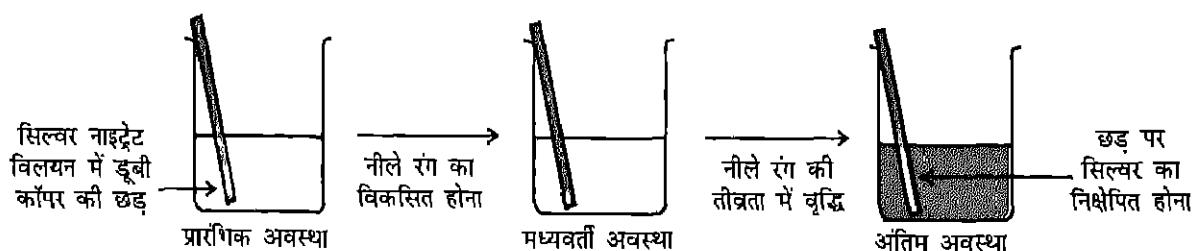
चित्र 8.2 एक बीकर में कॉपर धातु व सिल्वर नाइट्रेट के जलीय विलयन के बीच होने वाली अपचयोपचय अभिक्रिया

$$\underbrace{Cu(s) + 2Ag^+(aq) \longrightarrow Cu^{2+}(aq) + 2Ag(s)}$$

(2e⁻ का निष्कासन: Cu → Cu²⁺; 2e⁻ की प्राप्ति: Ag⁺ → Ag)

(8.16)
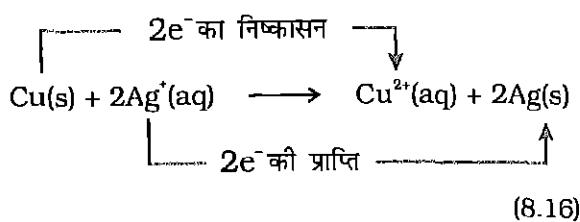
यहाँ $Cu(s)$ का Cu^{2+} में ऑक्सीकरण होता है तथा Ag^+ का $Ag(s)$ में अपचयन हो रहा है। साम्यावस्था $Cu^{2+}(aq)$ तथा $Ag(s)$ उत्पादों की दिशा में बहुत अनुकूल है। विषमता के तौर पर निकैल सल्फेट के घोल में रखी गई कोबाल्ट धातु के बीच अभिक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करें। यहाँ निम्नलिखित अभिक्रिया घटित हो रही है–

$$Co(s) + Ni^{2+}(aq) \longrightarrow Co^{2+}(aq) + Ni(s)$$

(2e⁻ का निष्कासन: Co → Co²⁺; 2e⁻ की प्राप्ति: Ni²⁺ → Ni)

(8.17)
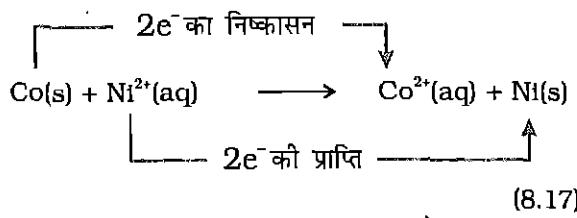
रासायनिक परीक्षणों से यह विदित होता है कि साम्यावस्था की स्थिति में $Ni^{2+}(aq)$ व $Co^{2+}(aq)$ दोनों की सांद्रता मध्यम होती है। यह परिस्थिति न तो अभिकारकों ($Co(s)$, न $Ni^{2+}(aq)$), न ही उत्पादों ($Co^{2+}(aq)$ और न $Ni(s)$) के पक्ष में है।

इलेक्ट्रॉन ग्रहण करने के लिए यह प्रतियोगिता प्रसंगवश हमें अम्लों के बीच होनेवाली प्रोटॉन निष्कासन की प्रतियोगिता की याद दिलाती है। इस समरूपता के अनुसार इलेक्ट्रॉन निष्कासन की प्रवृत्ति पर आधारित धातुओं तथा उनके आयनों की एक सूची उसी प्रकार तैयार कर सकते हैं, जिस प्रकार अम्लों की प्रबलता की सूची तैयार की जाती है। वास्तव में हमने कुछ तुलनाएँ भी की हैं। हम यह जान गए हैं कि जिंक कॉपर को तथा कॉपर सिल्वर को इलेक्ट्रॉन देता है। इसलिए इलेक्ट्रॉन निष्कासन-क्षमता का क्रम $Zn > Cu > Ag$ हुआ। हम इस क्रम को विस्तृत करना चाहेंगे, ताकि **धातु सक्रियता सीरीज़ अथवा विद्युत् रासायनिक सीरीज़** बना सकें। विभिन्न धातुओं के बीच इलेक्ट्रॉनों की प्रतियोगिता की सहायता से हम ऐसे सेल बना सकते हैं, जो विद्युत् ऊर्जा का स्रोत हों। इन सेलों को 'गैलवेनिक सेल' कहते हैं। इनके बारे में हम अगली कक्षा में विस्तार से पढ़ेंगे।

8.3 ऑक्सीकरण-संख्या

निम्नलिखित अभिक्रिया, जिसमें हाइड्रोजन ऑक्सीजन से संयोजन करके जल बनाता है, इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण का एक अल्पविदित उदाहरण है–

$$2H_2(g) + O_2(g) \rightarrow 2H_2O(l) \quad (8.18)$$
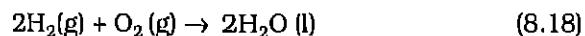
यद्यपि यह एक सरल तरीका तो नहीं है, फिर भी हम यह सोच सकते हैं कि H_2 अणु में H परमाणु उदासीन (शून्य) स्थिति से H_2O में धन् स्थिति प्राप्त करता है। ऑक्सीजन परमाणु O_2 में शून्य स्थिति से द्विऋणी स्थिति प्राप्त करते हैं। यह माना गया है कि H से O की ओर इलेक्ट्रॉन स्थानांतरित हो गया है। परिणामस्वरूप H_2 का ऑक्सीकरण तथा O_2 का अपचयन हो गया है। बाद में हम यह पाएँगे कि यह आवेश स्थानांतरण आंशिक रूप से ही होता है। यह बेहतर होगा कि इसे इलेक्ट्रॉन विस्थापन (शिफ्ट) से दर्शाया जाए, न कि H द्वारा इलेक्ट्रॉन निष्कासन तथा O द्वारा इलेक्ट्रॉन की प्राप्ति। यहाँ समीकरण 8.18 के बारे में जो कुछ कहा गया है, वही अन्य सहसंयोजक यौगिकों वाली अन्य अभिक्रियाओं के बारे में कहा जा सकता है। इनके दो उदाहरण हैं–

$$H_2(s) + Cl_2(g) \rightarrow 2HCl(g) \quad (8.19)$$

और

$$CH_4(g) + 4Cl_2(g) \rightarrow CCl_4(l) + 4HCl(g) \quad (8.20)$$
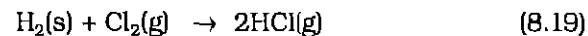
सहसंयोजक यौगिकों के उत्पाद की अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉन विस्थापन को ध्यान में रखकर ऑक्सीकरण-संख्या विधि का विकास किया गया है, ताकि अपचयोपचय अभिक्रियाओं का रिकॉर्ड रखा जा सके। इस विधि में यह माना गया है कि कम ऋणविद्युत् परमाणु से अधिक ऋणविद्युत् तथा इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण पूरी तरह से हो जाता है। उदाहरणार्थ–8.18 से 8.20 तक के समीकरणों को हम दोबारा इस प्रकार लिखते हैं। यहाँ के सभी परमाणुओं पर आवेश भी दर्शाया गया है–

$$\overset{0}{2H_2}(g) + \overset{0}{O_2}(g) \rightarrow 2\overset{+1}{H_2}\overset{-2}{O}(l) \quad (8.21)$$

$$\overset{0}{H_2}(s) + \overset{0}{Cl_2}(g) \rightarrow 2\overset{+1}{H}\overset{-1}{Cl}(g) \quad (8.22)$$

$$\overset{-4}{C}\overset{+1}{H_4}(g) + 4\overset{0}{Cl_2}(g) \rightarrow 4\overset{+4}{C}\overset{-1}{Cl_4}(l) + 4\overset{+1}{H}\overset{-1}{Cl}(g) \quad (8.23)$$
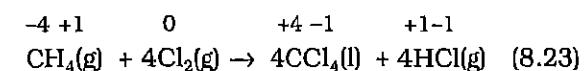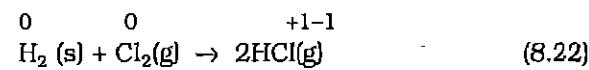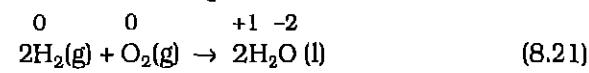
इसपर बल दिया जाए कि इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण की कल्पना केवल लेखा-जोखा रखने के लिए की गई है। इस एकक में आगे चलने पर स्पष्ट हो जाएगा कि यह अपचयोपचय अभिक्रियाओं को सरलता से दर्शाती है।

किसी यौगिक में तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या उसकी ऑक्सीकरण स्थिति को दर्शाती है, जिसे इस नियम के आधार पर किया जाता है कि सहसंयोजक आबंधन में इलेक्ट्रॉन केवल अधिक वैद्युत-ऋणी तत्त्व से संबद्ध होता है।

इसे हमेशा याद रखना या जान लेना संभव नहीं है कि

यौगिक में कौन सा तत्त्व अधिक वैद्युत-ऋणी है। इसलिए यौगिक/आयन के किसी तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या का मान जानने के लिए कुछ नियम बनाए गए हैं। यदि किसी अणु/आयन में किसी तत्त्व के दो अथवा दो से अधिक परमाणु उपस्थित हों, (जैसे $Na_2S_2O_3$ / $Cr_2O_7^{2-}$) तो उस तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या उसके सभी परमाणुओं की ऑक्सीकरण-संख्या की औसत होगी। अब हम ऑक्सीकरण-संख्या की गणना के निम्नलिखित नियमों को बताएँगे-

1. तत्त्वों में स्वतंत्र या असंयुक्त दशा में प्रत्येक परमाणु की ऑक्सीकरण-संख्या शून्य होती है। प्रत्यक्षतः H_2, O_2, Cl_2, O_3, P_4, S_8, Na, Mg तथा Al में सभी परमाणुओं की ऑक्सीकरण-संख्या समान रूप से शून्य है।
2. केवल एक परमाणु वाले आयनों में परमाणु की ऑक्सीकरण-संख्या उस आयन में स्थित आवेश का मान है। इस प्रकार Na^+ आयन की ऑक्सीकरण-संख्या +1, Mg^{2+} आयन की +2, Fe^{3+}आयन की +3, Cl^- आयन की –1 तथा O^{2-} आयन की –2 है। सभी क्षार धातुओं की उनके यौगिकों में ऑक्सीकरण-संख्या +1 होती है तथा सभी क्षारीय मृदा धातुओं की ऑक्सीकरण-संख्या +2 होती है। ऐलुमीनियम की उसके यौगिकों में ऑक्सीकरण-संख्या सामान्यतः +3 मानी जाती है।
3. अधिकांश यौगिकों में ऑक्सीजन की ऑक्सीकरण-संख्या –2 होती है। हमें दो प्रकार के अपवाद मिलते हैं। पहला–परॉक्साइडों तथा सुपर ऑक्साइडों में और उन यौगिकों में, जहाँ ऑक्सीजन के परमाणु एक-दूसरे से सीधे-सीधे जुड़े रहते हैं। परॉक्साइडों (जैसे–H_2O_2, NO_2O_2) में प्रत्येक ऑक्सीजन परमाणु ऑक्सीकरण-संख्या –1 है। सुपर ऑक्साइड (जैसे–KO_2 RbO_2 में प्रत्येक ऑक्सीजन परमाणु के लिए ऑक्सीकरण-संख्या –½ निर्धारित की गई है। दूसरा अपवाद बहुत दुर्लभ है, जिसमें ऑक्सीजन डाइफ्लुओराइड (OF_2)तथा डाइऑक्सीजन डाइफ्लुओराइड (O_2F_2) जैसे यौगिकों में ऑक्सीजन की ऑक्सीकरण-संख्या क्रमशः +2 तथा +1 है। यह संख्या ऑक्सीजन की आबंधन स्थिति पर निर्भर है, लेकिन यह सदैव धनात्मक ही होगी।
4. हाइड्रोजन की ऑक्सीकरण-संख्या +1 होती है। केवल उस दशा को छोड़कर, जहाँ धातुएँ इससे द्विअंगी यौगिक बनाती हैं (केवल दो तत्त्वों वाले यौगिक)। उदाहरण के लिए LiH, NaH तथा CaH_2 में हाइड्रोजन की ऑक्सीकरण-संख्या 1 है।
5. सभी यौगिकों में फ्लुओरीन की ऑक्सीकरण-संख्या 1 होती है। यौगिकों में हैलाइड आयनों के अन्य हैलोजनों (Cl, Br, तथा I) की ऑक्सीकरण-संख्या भी –1 है। क्लोरीन, ब्रोमीन तथा आयोडीन जब ऑक्सीजन से संयोजित होते हैं, तो इनकी ऑक्सीकरण-संख्या धनात्मक होती है। उदाहरणार्थ–ऑक्सीअम्लों तथा ऑक्सीएनायनों में।
6. यौगिक में सभी परमाणुओं की ऑक्सीकारक-संख्याओं का बीजीय योग शून्य ही होता है। बहुपरमाणुक आयनों में इसके सभी परमाणुओं की ऑक्सीकरण-संख्या का बीजीय योग उस आयन के आवेश के बराबर होता है। इस तरह $(CO_3)^{2-}$ में तीनों ऑक्सीजन तथा एक कार्बन परमाणु की ऑक्सीकरण-संख्याओं का योग –2 ही होगा।

इन नियमों के अनुपालन से अणु या आयन में उपस्थित अपेक्षित इच्छित तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या हम ज्ञात कर सकते हैं। यह स्पष्ट है कि धात्विक तत्त्वों की ऑक्सीकरण-संख्या धनात्मक होती है तथा अधात्विक तत्त्वों की ऑक्सीकरण-संख्या धनात्मक या ऋणात्मक होती है। संक्रमण धातु तत्त्व अनेक धनात्मक ऑक्सीकरण-संख्या दर्शाते हैं। पहले दो वर्गों के परमाणुओं के लिए उनकी वर्ग-संख्या ही उनकी उच्चतम ऑक्सीकरण-संख्या होगी तथा अन्य वर्गों में यह वर्ग-संख्या में से 10 घटाकर होगी। इसका अर्थ यह है कि किसी तत्त्व के परमाणु की उच्चतम ऑक्सीकरण-संख्या आवर्तसारणी में आवर्त में सामान्यतः बढ़ती जाती है। तीसरे आवर्त में ऑक्सीकरण-संख्या 1 से 7 तक बढ़ती है, जैसा निम्नलिखित यौगिकों के तत्त्वों द्वारा इंगित किया गया है।

ऑक्सीकरण-संख्या के स्थान पर ऑक्सीकरण-अवस्था पद का प्रयोग भी कई बार किया जाता है। अतः CO_2 में कार्बन की ऑक्सीकरण-अवस्था +4 है, जो इसकी ऑक्सीकरण-संख्या भी है। इसी प्रकार ऑक्सीजन की ऑक्सीकरण अवस्था –2 है। इसका तात्पर्य यह है कि तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या

वर्ग	1	2	13	14	15	16	17
तत्त्व	Na	Mg	Al	Si	P	S	Cl
यौगिक	NaCl	$MgSO_4$	AlF_3	$SiCl_4$	P_4O_{10}	SF_6	$HClO_4$
तत्त्व की अधिकतम समूह ऑक्सीकरण-संख्या/अवस्था	+1	+2	+3	+4	+5	+6	+7

उसकी ऑक्सीकरण-अवस्था को दर्शाती है। जर्मन रसायनज्ञ अल्फ्रेड स्टॉक के अनुसार यौगिकों में धातु की ऑक्सीकरण-अवस्था को रोमन संख्यांक में कोष्ठक में लिखा जाता है। इसे **स्टॉक संकेतन** कहा जाता है। इस प्रकार ऑरस क्लोराइड तथा ऑरिक क्लोराइड को Au(I)Cl और Au(III)Cl_3 लिखा जाता है। इसी प्रकार स्टेनस क्लोराइड तथा स्टेनिक क्लोराइड को Sn(II)Cl_2 और Sn(IV)Cl_4 लिखा जाता है। ऑक्सीकरण-संख्या में परिवर्तन को ऑक्सीकरण अवस्था में परिवर्तन के रूप में माना जाता है, जो यह पहचानने में भी सहायता देता है कि स्पीशीज़ ऑक्सीकृत अवस्था में है या अपचित अवस्था में इस प्रकार Hg(II)Cl_2 की अपचित अवस्था Hg_2(I)Cl_2 है।

उदाहरण 8.3

स्टॉक संकेतन का उपयोग करते हुए निम्नलिखित यौगिकों को निरूपित कीजिए–

$HAuCl_4$, Tl_2O, FeO, Fe_2O_3, CuI, CuO, MnO तथा MnO_2

हल

ऑक्सीकरण-संख्या की गणना के विभिन्न नियमों के अनुसार प्रत्येक धातु की ऑक्सीकरण-संख्या इस प्रकार है–

$HAuCl_4$	→	Au की 3
Tl_2O	→	Tl की 1
FeO	→	Fe की 2
Fe_2O_3	→	Fe की 3
CuI	→	Cu की 1
CuO	→	Cu की 2
MnO	→	Mn की 2
MnO_2	→	Mn की 4

इसलिए इन यौगिकों का निरूपण इस प्रकार है–

HAu(III)Cl_4, Tl_2(I)O, Fe(II)O, Fe_2(III)O_3, Cu(I)I, Cu(II)O, Mn(II)O, Mn(IV)O_2

ऑक्सीकरण-संख्या के विचार का प्रयोग ऑक्सीकरण, अपचयन, ऑक्सीकारक, अपचायक तथा अपचयोपचय अभिक्रिया को परिभाषित करने के लिए होता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं–

ऑक्सीकरण : दिए गए पदार्थ में तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या में वृद्धि।

अपचयन : दिए गए पदार्थ में तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या में ह्रास।

ऑक्सीकारक : वह अभिकारक, जो दिए गए पदार्थ में तत्त्व की ऑक्सीकरण-संरख्या में वृद्धि करे। ऑक्सीकारकों को 'ऑक्सीडेंट' भी कहते हैं।

अपचायक : वह अभिकारक, जो दिए गए पदार्थ में तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या में कमी करे। इन्हें **रिडक्टेंट** भी कहते हैं।

उदाहरण 8.4

सिद्ध कीजिए कि निम्नलिखित अभिक्रिया अपचयोपचय अभिक्रिया है–

$$2Cu_2O(s) + Cu_2S(s) \rightarrow 6Cu(s) + SO_2(g)$$
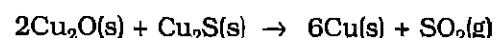
उन स्पीशीज़ की पहचान कीजिए, जो ऑक्सीकृत तथा अपचयित हो रही हैं, जो ऑक्सीडेंट और रिडक्टेंट की तरह कार्य कर रही हैं।

हल

आइए, इस अभिक्रिया के सभी अभिकारकों की ऑक्सीकरण-संख्या लिखें, जिसके परिणामस्वरूप हम पाते हैं–

$$2\overset{+1}{Cu_2}\overset{-2}{O}(s) + \overset{+1}{Cu_2}\overset{-2}{S}(s) \rightarrow 6\overset{0}{Cu}(s) + \overset{+4}{S}\overset{-2}{O_2}$$
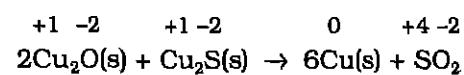
इससे हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस अभिक्रिया में कॉपर का +1 अवस्था से शून्य ऑक्सीकरण अवस्था तक अपचयन तथा सल्फर का –2 से +4 तक ऑक्सीकरण हो रहा है। इसलिए उपरोक्त अभिक्रिया अपचयोपचय अभिक्रिया है। इसके अतिरिक्त Cu_2S में सल्फर की ऑक्सीकरण-संख्या की वृद्धि में Cu_2O सहायक है। अतः Cu(I) ऑक्सीडेंट हुआ तथा Cu_2S का सल्फर स्वयं Cu_2S और Cu_2O में कॉपर की ऑक्सीकरण-संख्या की कमी में सहायक है। अतः Cu_2S रिडक्टेंट हुआ।

8.3.1 अपचयोपचय अभिक्रियाओं के प्रारूप

1. योग अभिक्रियाएँ

योग अभिक्रिया को इस प्रकार लिखा जाता है– A + B → C। ऐसी अभिक्रियाओं की अपचयोपचय अभिक्रिया होने के लिए A या B में से एक को या दोनों को तत्त्व रूप में ही होना चाहिए। ऐसी सभी दहन अभिक्रियाएँ, जिनमें तत्त्व रूप में ऑक्सीजन या अन्य अभिक्रियाएँ संपन्न होती है तथा ऐसी

अभिक्रियाएँ, जिनमें डाइऑक्सीजन से अतिरिक्त दूसरे तत्त्वों का उपयोग हो रहा है, 'अपचयोपचय अभिक्रियाएँ' कहलाती हैं। इस श्रेणी के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं–

$$\overset{0}{C}(s) + \overset{0}{O_2}(g) \rightarrow \overset{+4\ -2}{CO_2}(g) \quad (8.24)$$

$$3\overset{0}{Mg}(s) + \overset{0}{N_2}(g) \rightarrow \overset{+2\ -3}{Mg_3N_2}(s) \quad (8.25)$$

$$\overset{-4+1}{CH_4}(g) + 2\overset{0}{O_2}(g) \rightarrow \overset{+4-2}{CO_2}(g) + 2\overset{+1\ -2}{H_2O}(l)$$
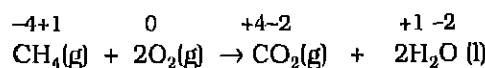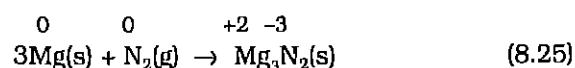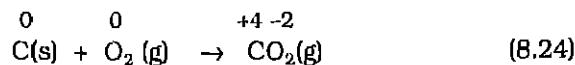
2. अपघटन अभिक्रियाएँ

अपघटन अभिक्रियाएँ संयोजन अभिक्रियाओं के विपरीत होती हैं। विशुद्ध रूप से अपघटन अभिक्रियाओं के अंतर्गत यौगिक दो या अधिक भागों में विखंडित होता है, जिसमें कम से कम एक तत्त्व रूप में होता है। इस श्रेणी की अभिक्रियाओं के उदाहरण हैं–

$$2\overset{+1\ -2}{H_2O}(l) \xrightarrow{\Delta} 2\overset{0}{H_2}(g) + \overset{0}{O_2}(g) \quad (8.26)$$

$$2\overset{+1\ -1}{NaH}(s) \xrightarrow{\Delta} 2\overset{0}{Na}(s) + \overset{0}{H_2}(g) \quad (8.27)$$

$$2\overset{+1\ +5\ -2}{KClO_3}(s) \xrightarrow{\Delta} 2\overset{+1\ -1}{KCl}(s) + 3\overset{0}{O_2}(g) \quad (8.28)$$
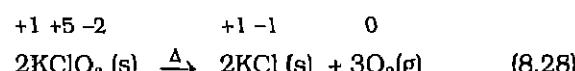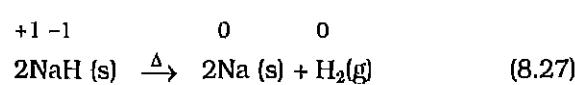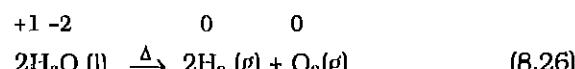
ध्यान से देखने पर हम पाते हैं कि योग अभिक्रियाओं में मेथैन के हाइड्रोजन की तथा अभिक्रिया (8.28) में पोटैशियम क्लोरेट के पोटैशियम की ऑक्सीकरण-संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता। यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सभी अपघटन अभिक्रियाएँ अपचयोपचय नहीं होती हैं, जैसे–

$$\overset{+2\ +4\ -2}{CaCO_3}(s) \xrightarrow{\Delta} \overset{+2\ -2}{CaO}(s) + \overset{+4-2}{CO_2}(g)$$
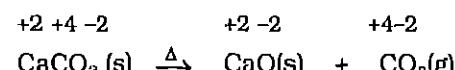
3. विस्थापन अभिक्रियाएँ

विस्थापन अभिक्रियाओं में यौगिक के आयन (या परमाणु) दूसरे तत्त्व के आयन (या परमाणु) द्वारा विस्थापित हो जाते हैं। इसे इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है–

$$X + YZ \rightarrow XZ + Y$$
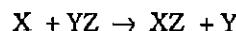
विस्थापन अभिक्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं– धातु विस्थापन तथा अधातु विस्थापन।

(अ) धातु विस्थापन : यौगिक में एक धातु दूसरी धातु को मुक्त अवस्था में विस्थापित कर सकती है। खंड 8.2.1 के अंतर्गत हम इस प्रकार की अभिक्रियाओं का अध्ययन कर चुके हैं। धातु विस्थापन अभिक्रियाओं का उपयोग धातुकर्मीय प्रक्रमों में, अयस्कों में यौगिकों से शुद्ध धातु प्राप्त करने के लिए होता है। इनके कुछ उदाहरण हैं–

$$\overset{+2+4-2}{CuSO_4}(aq) + \overset{0}{Zn}(s) \rightarrow \overset{0}{Cu}(s) + \overset{+2+4-2}{ZnSO_4}(aq) \quad (8.29)$$

$$\overset{+5-2}{V_2O_5}(s) + 5\overset{0}{Ca}(s) \xrightarrow{\Delta} 2\overset{0}{V}(s) + 5\overset{+2-2}{CaO}(s) \quad (8.30)$$

$$\overset{+4\ -1}{TiCl_4}(l) + 2\overset{0}{Mg}(s) \xrightarrow{\Delta} \overset{0}{Ti}(s) + 2\overset{+2\ -1}{MgCl_2}(s) \quad (8.31)$$

$$\overset{+3\ -2}{Cr_2O_3}(s) + 2\overset{0}{Al}(s) \xrightarrow{\Delta} \overset{+3\ -2}{Al_2O_3}(s) + 2\overset{0}{Cr}(s) \quad (8.32)$$
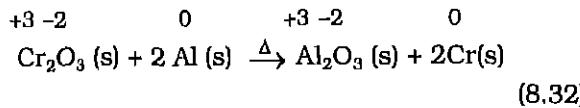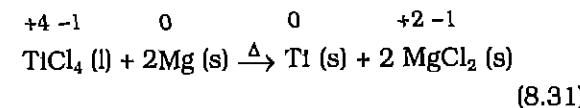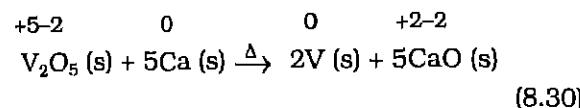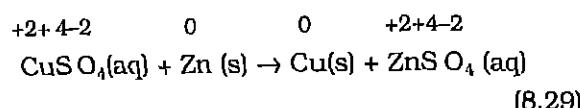
इन सभी में अपचायक धातु अपचित धातु की अपेक्षा श्रेष्ठ अपचायक है, जिनकी इलेक्ट्रॉन निष्कासन-क्षमता अपचित धातु की तुलना में अधिक है।

(ब) अधातु विस्थापन : अधातु विस्थापन अपचयोपचय अभिक्रियाओं में हाइड्रोजन विस्थापन, ऑक्सीजन विस्थापन आदि दुर्लभ अभिक्रियाएँ शामिल हैं।

सभी क्षार धातुएँ तथा कुछ क्षार मृदा धातुएँ (Ca, Sr या Ba) श्रेष्ठ रिडक्टेंट हैं, जो शीतल जल से हाइड्रोजन का विस्थापन कर देती हैं।

$$2\overset{0}{Na}(s) + 2\overset{+1\ -2}{H_2O}(l) \rightarrow 2\overset{+1-2+1}{NaOH}(aq) + \overset{0}{H_2}(g) \quad (8.33)$$

$$\overset{0}{Ca}(s) + 2\overset{+1\ -2}{H_2O}(l) \rightarrow \overset{+2-2+1}{Ca(OH)_2}(aq) + \overset{0}{H_2}(g) \quad (8.34)$$
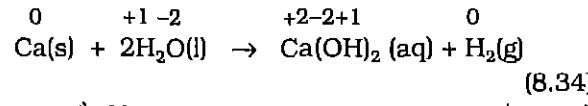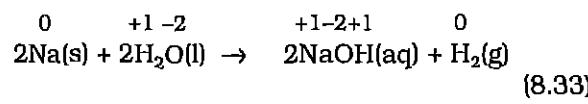
मैग्नीशियम, आयरन आदि कम सक्रिय धातुएँ भाप से डाइहाइड्रोजन गैस का उत्पादन करती हैं।

$$\overset{0}{Mg}(s) + 2\overset{+1-2}{H_2O}(l) \xrightarrow{\Delta} \overset{+2\ -2+1}{Mg(OH)_2}(s) + \overset{0}{H_2}(g) \quad (8.35)$$

$$2\overset{0}{Fe}(s) + 3\overset{+1-2}{H_2O}(l) \xrightarrow{\Delta} \overset{+3\ -2}{Fe_2O_3}(s) + 3\overset{0}{H_2}(g) \quad (8.36)$$
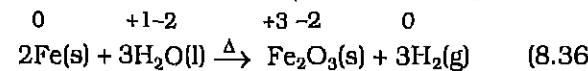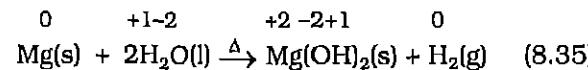
बहुत सी धातुएँ, जो शीतल जल से क्रिया नहीं करतीं, अम्लों से हाइड्रोजन को विस्थापित कर सकती हैं। अम्लों से डाइहाइड्रोजन उन धातुओं द्वारा भी उत्पादित होती हैं, जो भाप से क्रिया नहीं करतीं। केडमियम तथा टिन इसी प्रकार की धातुओं के उदाहरण हैं। अम्लों से हाइड्रोजन के विस्थापन के कुछ उदाहरण हैं–

$$\overset{0}{Zn(s)} + 2\overset{+1-1}{HCl(aq)} \rightarrow \overset{+2\ -1}{ZnCl_2(aq)} + \overset{0}{H_2(g)} \quad (8.37)$$

$$\overset{0}{Mg(s)} + 2\overset{+1-1}{HCl(aq)} \rightarrow \overset{+2\ -1}{MgCl_2(aq)} + \overset{0}{H_2(g)} \quad (8.38)$$

$$\overset{0}{Fe(s)} + 2\overset{+1\ -1}{HCl(aq)} \rightarrow \overset{+2\ -1}{FeCl_2(aq)} + \overset{0}{H_2(g)} \quad (8.39)$$
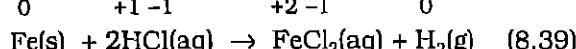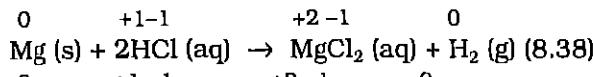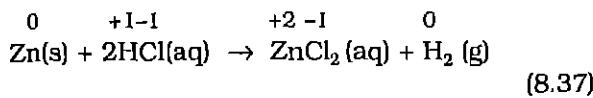
8.37 से 8.39 तक की अभिक्रियाएँ प्रयोगशाला में डाइहाइड्रोजन गैस तैयार करने में उपयोगी हैं। हाइड्रोजन गैस की निकास की गति धातुओं की सक्रियता की परिचायक है, जो Fe जैसी कम सक्रिय धातुओं में न्यूनतम तथा Mg जैसी अत्यंत सक्रिय धातुओं के लिए उच्चतम होती है। सिल्वर (Ag), गोल्ड (Au) आदि धातुएँ, जो प्रकृति में प्राकृत अवस्था में पाई जाती हैं, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से भी क्रिया नहीं करती हैं।

खंड 8.2.1 में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि ज़िंक (Zn), कॉपर (Cu) तथा सिल्वर (Ag) धातुओं की इलेक्ट्रॉन त्यागने की प्रवृत्ति उनका अपचायक क्रियाशीलता-क्रम Zn > Cu > Ag दर्शाती है। धातुओं के समान हैलोजनों की सक्रियता श्रेणी का अस्तित्त्व है। आवर्त सारणी के 17वें वर्ग में फ्लुओरीन से आयोडीन तक नीचे जाने पर इन तत्त्वों की ऑक्सीकारक क्रियाशीलता शिथिल होती जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि फ्लुओरीन इतनी सक्रिय है कि यह विलयन से क्लोराइड, ब्रोमाइड या आयोडाइड आयन विस्थापित कर सकती है। वास्तव में फ्लुओरीन की सक्रियता इतनी अधिक है कि यह जल से क्रिया करके उससे ऑक्सीजन विस्थापित कर देती है।

$$2\overset{+1-2}{H_2O(l)} + 2\overset{0}{F_2(g)} \rightarrow 4\overset{+1-1}{HF(aq)} + \overset{0}{O_2(g)} \quad (8.40)$$
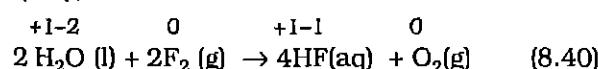
यही कारण है कि क्लोरीन, ब्रोमीन तथा आयोडीन की फ्लुओरीन द्वारा विस्थापन अभिक्रियाएँ सामान्यत: जलीय विलयन में घटित नहीं करते हैं। दूसरी ओर ब्रोमाइड तथा आयोडाइड आयनों को उनके जलीय विलयनों से क्लोरीन इस प्रकार विस्थापित कर सकती है–

$$\overset{0}{Cl_2(g)} + 2\overset{+1\ -1}{KBr(aq)} \rightarrow 2\overset{+1-1}{KCl(aq)} + \overset{0}{Br_2(l)} \quad (8.41)$$

$$\overset{0}{Cl_2(g)} + 2\overset{+1-1}{KI(aq)} \rightarrow 2\overset{+1-1}{KCl(aq)} + \overset{0}{I_2(s)} \quad (8.42)$$
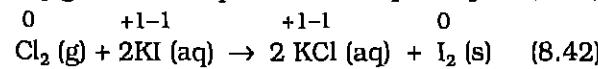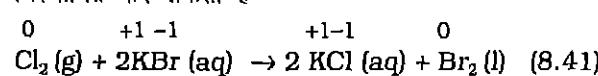
Br_2 तथा I_2 के रंगीन तथा CCl_4 में विलेय होने के कारण इनको विलयन के रंग द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है। उपरोक्त अभिक्रियाओं को आयनिक रूप में इस प्रकार लिख सकते हैं–

$$\overset{0}{Cl_2(g)} + 2\overset{-1}{Br^-(aq)} \rightarrow 2\overset{-1}{Cl^-(aq)} + \overset{0}{Br_2(l)} \quad (8.41a)$$

$$\overset{0}{Cl_2(g)} + 2\overset{-1}{I^-(aq)} \rightarrow 2\overset{-1}{Cl^-(aq)} + \overset{0}{I_2(s)} \quad (8.42b)$$
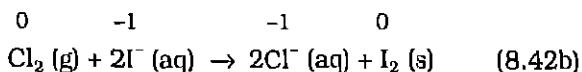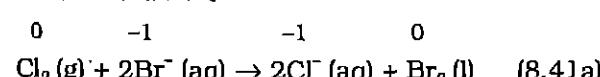
प्रयोगशाला में Br^- तथा I^- की परीक्षण-विधि, जिसका प्रचलित नाम 'परत परीक्षण' (Layer test) है, का आधार अभिक्रियाएँ 8.41 तथा 8.42 हैं। यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि इसी प्रकार विलयन में ब्रोमीन आयोडाइड आयन का विस्थापन कर सकती है।

$$\overset{0}{Br_2(l)} + 2\overset{-1}{I^-(aq)} \rightarrow 2\overset{-1}{Br^-(aq)} + \overset{0}{I_2(s)} \quad (8.43)$$
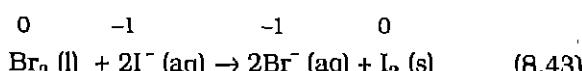
हैलोजेन विस्थापन की अभिक्रियाओं का औद्योगिक अनुप्रयोग होता है। हैलाइडों से हैलोजेन की प्राप्ति के लिए ऑक्सीकरण विधि की आवश्यकता होती है, जिसे निम्नलिखित अभिक्रिया से दर्शाते हैं–

$$2X^- \rightarrow X_2 + 2e^- \quad (8.44)$$

यहाँ X हैलोजेन तत्त्व को प्रदर्शित करता है। यद्यपि रासायनिक साधनों द्वारा Cl^-, Br^- तथा I^- को ऑक्सीकृत करने के लिए शक्तिशाली अभिकारक फ्लुओरीन उपलब्ध है, परंतु F^- को F_2 में बदलने के लिए कोई भी रासायनिक साधन संभव नहीं है। F^- से F_2 प्राप्त करने के लिए केवल विद्युत्-अपघटन द्वारा ऑक्सीकरण ही एक साधन है, जिसका अध्ययन आप आगे चलकर करेंगे।

4. असमानुपातन अभिक्रियाएँ

असमानुपातन अभिक्रियाएँ विशेष प्रकार की अपचयोपचय अभिक्रियाएँ हैं। असमानुपातन अभिक्रिया में तत्त्व की एक ऑक्सीकरण अवस्था एक साथ ऑक्सीकृत तथा अपचयित होती है। असमानुपातन अभिक्रिया में सक्रिय पदार्थ का एक तत्त्व कम से कम तीन ऑक्सीकरण अवस्थाएँ प्राप्त कर सकता है। क्रियाशील पदार्थ में यह तत्त्व माध्यमिक ऑक्सीकरण अवस्था में होता है तथा रासायनिक परिवर्तन में उस तत्त्व की उच्चतर तथा निम्नतर ऑक्सीकरण अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। हाइड्रोजन परॉक्साइड का अपघटन एक परिचित उदाहरण है, जहाँ ऑक्सीजन तत्त्व का असमानुपातन होता है।

$$2\overset{+1\ -1}{H_2O_2(aq)} \rightarrow 2\overset{+1-2}{H_2O(l)} + \overset{0}{O_2(g)} \quad (8.45)$$
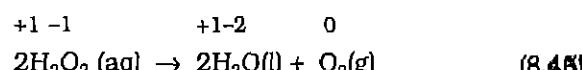
यहाँ परॉक्साइड की ऑक्सीजन, जो -1 अवस्था में है, O_2 में शून्य अवस्था में तथा H_2O में –2 अवस्था में परिवर्तित हो जाती है ।

फॉस्फोरस, सल्फर तथा क्लोरीन का क्षारीय माध्यम में असमानुपातन निम्नलिखित ढंग से होता है -

$$\overset{0}{P_4(s)} + 3\overset{+1}{OH^-(aq)} + 3H_2O(l) \rightarrow \overset{-3}{PH_3(g)} + 3\overset{+1}{H_2PO_2^-(aq)} \quad (8.46)$$

$$\overset{0}{S_8(s)} + 12\ OH^-(aq) \rightarrow \overset{2}{4S^{2-}}(aq) + \overset{+2}{2S_2O_3^{2-}}(aq) + 6H_2O(l) \quad (8.47)$$

$$\overset{0}{Cl_2}(g) + 2\ OH^-(aq) \rightarrow \overset{+1}{ClO^-}(aq) + \overset{-1}{Cl^-}(aq) + H_2O(l) \quad (8.48)$$
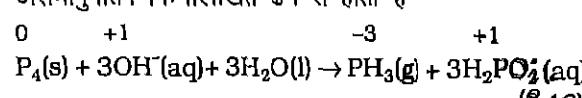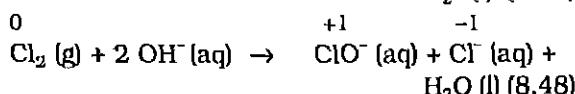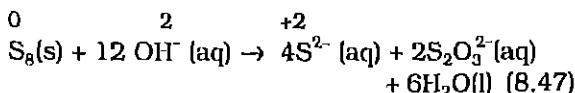
अभिक्रिया 8.48 घरेलू विरंजक के उत्पाद को दर्शाती है। अभिक्रिया में बननेवाला हाइपोक्लोराइट आयन (ClO^-) रंगीन धब्बों को ऑक्सीकृत करके रंगहीन यौगिक बनाता है। यह बताना रुचिकर होगा कि ब्रोमीन तथा आयोडीन द्वारा वही प्रकृति प्रदर्शित होती है, जो क्लोरीन द्वारा अभिक्रिया 8.48 में प्रदर्शित होती है, लेकिन क्षार से फ्लुओरीन की अभिक्रिया भिन्न ढंग से, अर्थात् इस प्रकार होती है–

$$2\ F_2(g) + 2OH^-(aq) \rightarrow 2\ F^-(aq) + OF_2(g) + H_2O(l) \quad (8.49)$$
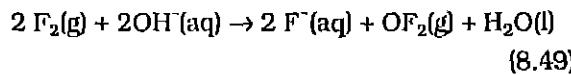
यह ध्यान देने की बात है कि अभिक्रिया 8.49 में निस्संदेह फ्लुओरीन जल से क्रिया करके कुछ ऑक्सीजन भी देती है। फ्लुओरीन द्वारा दिखाया गया भिन्न व्यवहार आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि हमें ज्ञात है कि फ्लुओरीन सर्वाधिक विद्युत् ऋणी तत्त्व होने के कारण धनात्मक ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित नहीं कर सकती।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि हैलोजेनों में फ्लुओरीन असमानुपातन प्रवृत्ति नहीं दर्शा सकती।

उदाहरण 8.5

इनमें से कौन सा स्पीशीज़ असमानुपातन प्रवृत्ति नहीं दर्शाती और क्यों?
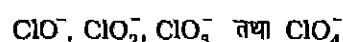
ClO^-, ClO_2^-, ClO_3^- तथा ClO_4^-

उन सभी स्पीशीज़ की अभिक्रियाएँ भी लिखिए, जो असमानुपातन दर्शाती है।

हल

क्लोरीन के उपरोक्त ऑक्सीजन आयनों में ClO_4^- असमानुपातन नहीं दर्शाती, क्योंकि इन ऑक्सोएनायनों में क्लोरीन अपनी उच्चतर ऑक्सीकरण अवस्था +7 में उपस्थित है। शेष तीनों ऑक्सोएनायनों की असमानुपातन अभिक्रियाएँ इस प्रकार हैं–

$$\overset{+1}{3ClO^-} \rightarrow \overset{-1}{2Cl^-} + \overset{+5}{ClO_3^-}$$

$$\overset{+3}{6\ ClO_2^-} \xrightarrow{h\nu} \overset{-1}{Cl^-} + \overset{+5}{2ClO_3^-}$$

$$\overset{+5}{4\ ClO_3^-} \rightarrow \overset{-1}{Cl^-} + \overset{+7}{3\ ClO_4^-}$$
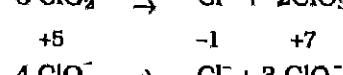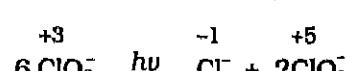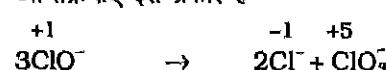
उदाहरण 8.6

निम्नलिखित अपचयोपचय अभिक्रियाओं को वर्गीकृत कीजिए –

(क) $N_2(g) + O_2(g) \rightarrow 2\ NO(g)$

(ख) $2Pb(NO_3)_2(s) \rightarrow 2PbO(s) + 2\ NO_2(g) + \frac{1}{2}O_2(g)$

(ग) $NaH(s) + H_2O(l) \rightarrow NaOH(aq) + H_2(g)$

(घ) $2NO_2(g) + 2OH^-(aq) \rightarrow NO_2^-(aq) + NO_3^-(aq) + H_2O(l)$
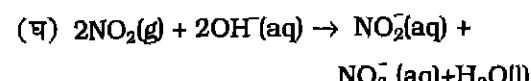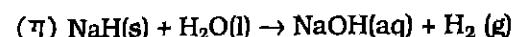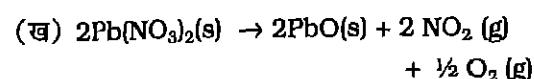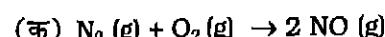
हल

अभिक्रिया 'क' का यौगिक नाइट्रिक ऑक्साइड तत्त्वों के संयोजन द्वारा बनता है। यह संयोजन अभिक्रिया का उदाहरण है। अभिक्रिया 'ख' में लेड नाइट्रेट तीन भागों में अपघटित होता है। इसलिए इस अभिक्रिया को अपघटन श्रेणी में वर्गीकृत करते हैं। अभिक्रिया 'ग' में जल में उपस्थित हाइड्रोजन का विस्थापन हाइड्राइड आयन द्वारा होने के फलस्वरुप डाइहाइड्रोजन गैस बनती है। इसलिए इसे 'विस्थापन अभिक्रिया' कहते हैं। अभिक्रिया 'घ' में NO_2 (+4 अवस्था) का NO_2^- (+3 अवस्था) तथा NO_3^- (+5 अवस्था) में असमानुपातन होता है। इसलिए यह अभिक्रिया असमानापातन अपचयोपचय अभिक्रिया है।

उदाहरण 8.7

निम्नलिखित अभिक्रियाएँ अलग ढंग से क्यों होती हैं?

$Pb_3O_4 + 8HCl \rightarrow 3PbCl_2 + Cl_2 + 4H_2O$ तथा

$Pb_3O_4 + 4HNO_3 \rightarrow 2Pb(NO_3)_2 + PbO_2 + 2H_2O$

हल

वास्तव में Pb_3O_4, 2 मोल PbO तथा 1 मोल PbO_2 का रससमीकरणमिती मिश्रण है। PbO_2 में लेड की ऑक्सीकरण अवस्था +4 है, जबकि PbO में लेड की स्थायी ऑक्सीकरण अवस्था +2 है। PbO_2 इस प्रकार ऑक्सीडेंट (ऑक्सीकरण के रूप में) की भाँति अभिक्रिया कर सकता है। इसलिए HCl के क्लोराइड आयन को क्लोरीन में ऑक्सीकृत कर सकता है। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि PbO एक क्षारीय ऑक्साइड है। इसलिए अभिक्रिया–
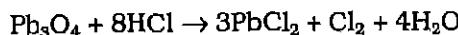
$Pb_3O_4 + 8HCl \rightarrow 3PbCl_2 + Cl_2 + 4H_2O$
को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। जैसे-
$2PbO + 4HCl \rightarrow 2PbCl_2 + 2H_2O$
(अम्ल-क्षार अभिक्रिया)

$$\overset{+4}{Pb}O_2 + 4H\overset{-1}{Cl} \rightarrow \overset{+2}{Pb}Cl_2 + \overset{0}{Cl_2} + 2H_2O$$

(अपचयोपचय अभिक्रिया)
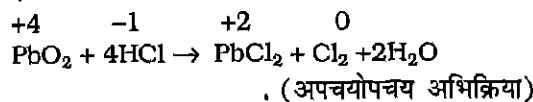
चूँकि HNO_3 स्वयं एक ऑक्सीकारक है, अतः PbO_2 तथा HNO_3 के बीच होने वाली अम्ल-क्षार अभिक्रिया है-

$$2PbO + 4HNO_3 \rightarrow 2Pb(NO_3)_2 + 2H_2O$$
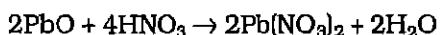
इस अभिक्रिया में PbO_2 की HNO_3 के प्रति निष्क्रियता HCl से होने वाली अभिक्रिया से अलग होती है।

भिन्नात्मक ऑक्सीकरण-संख्या विरोधाभास

कभी-कभी हमें कुछ ऐसे यौगिक भी मिलते हैं, जिनमें किसी एक तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या भिन्नात्मक होती है। उदाहरणार्थ C_3O_2 (जहाँ कार्बन की ऑक्सीकरण-संख्या 4/3 है) Br_3O_8 (जहाँ ब्रोमीन की ऑक्सीकरण-संख्या 16/3 है) तथा $Na_2S_4O_6$ (जहाँ सल्फर की ऑक्सीकरण-संख्या 5/2 है)।

हमें यह ज्ञात है कि भिन्नात्मक ऑक्सीकरण-संख्या स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि इलेक्ट्रॉनों का सहभाजन/स्थानांतरण आंशिक नहीं हो सकता। वास्तव में भिन्नात्मक ऑक्सीकरण अवस्था प्रेक्षित किए जा रहे तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्याओं का औसत है तथा संरचना प्राचलों से ज्ञात होता है कि वह तत्त्व, जिसकी भिन्नात्मक ऑक्सीकरण अवस्था होती है, अलग-अलग ऑक्सीकरण अवस्था में उपस्थित है। C_3O_2, Br_3O_8 तथा $S_4O_6^{2-}$ स्पीशीज़ की संरचनाओं में निम्नलिखित परिस्थितियाँ दिखती हैं-

(कार्बन सबॉक्साइड) C_3O_2 की संरचना है-

$$O = \overset{+2}{C} = \overset{0}{C^*} = \overset{+2}{C} = O$$

Br_3O_8 (ट्राइब्रोमोऑक्टोसाइड) की संरचना है-

$$O=\overset{+6}{Br}(=O)_2 - \overset{+4}{Br^*}(=O)_2 - \overset{+6}{Br}(=O)_2=O$$
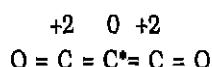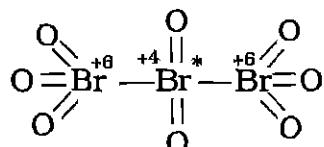
$S_4O_6^{2-}$ (टेट्रा थायोनेट) की संरचना है-

$$^{-}O-\overset{+5}{S}(=O)_2-\overset{0}{S^*}-\overset{0}{S^*}-\overset{+5}{S}(=O)_2-O^{-}$$
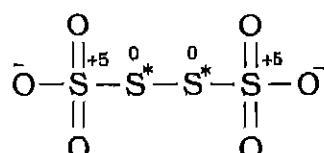
प्रत्येक स्पीशीज़ के तारांकित परमाणु उसी तत्त्व के अन्य परमाणुओं से अलग ऑक्सीकरण अवस्था दर्शाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि C_3O_2 में दो कार्बन परमाणु +2 ऑक्सीकरण अवस्था में तथा तीसरा शून्य ऑक्सीकरण अवस्था में है और इनकी औसत संख्या 4/3 है। वास्तव में किनारे वाले दोनों कार्बनों की ऑक्सीकरण-संख्या +2 तथा बीच वाले कार्बन की शून्य है। इसी प्रकार Br_3O_8 में किनारे वाले दोनों प्रत्येक ब्रोमीन की ऑक्सीकरण अवस्था +6 है तथा बीच वाले ब्रोमीन परमाणु की ऑक्सीकरण अवस्था +4 है। एक बार फिर औसत संख्या 16/3 वास्तविकता से दूर है। इसी प्रकार से स्पीशीज $S_4O_6^{2-}$ में किनारे वाले दोनों सल्फर +5 ऑक्सीकरण अवस्था तथा बीच वाले दोनों सल्फर परमाणु शून्य दर्शाते हैं। चारों सल्फर परमाणु की ऑक्सीकरण-संख्या का औसत 5/2 होगा, जबकि वास्तव में प्रत्येक सल्फर परमाणु की ऑक्सीकरण-संख्या क्रमशः +5,0,0 तथा +5 है।

इस प्रकार हम यह *निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भिन्नात्मक ऑक्सीकरण अवस्था को हमें सावधानी से लेना चाहिए तथा वास्तविकता* ऑक्सीकरण-संख्या उसकी संरचना से ही प्रदर्शित होती है। इसके अतिरिक्त जब भी हमें किसी विशेष तत्त्व की भिन्नात्मक ऑक्सीकरण अवस्था दिखे, तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह केवल औसत ऑक्सीकरण अवस्था है। वास्तव में इस स्पीशीज़ विशेष में एक से अधिक पूर्णांक *ऑक्सीकरण अवस्थाएँ* हैं (जो केवल संरचना द्वारा दर्शाई जा सकती है)। Fe_3O_4, Mn_3O_4, Pb_3O_4 कुछ अन्य ऐसे यौगिक हैं, जो मिश्र ऑक्साइड हैं, जिनमें प्रत्येक धातु की भिन्नात्मक ऑक्सीकरण होती है। O_2^+ एवं O_2^- में भी भिन्नात्मक ऑक्सीकरण अवस्था पाई जाती है। यह क्रमशः +½ तथा –½ है।

8.3.2 अपचयोपचय अभिक्रियाओं का संतुलन

अपचयोपचय अभिक्रियाओं के संतुलन के लिए दो विधिओं का प्रयोग होता है। इनमें से एक विधि अपचायक की ऑक्सीकरण-संख्या में परिवर्तन पर आधारित है तथा दूसरी विधि में अपचयोपचय अभिक्रिया को दो भागों में विभक्त किया जाता है–एक में ऑक्सीकरण तथा दूसरे में अपचयन। दोनों ही विधिओं का प्रचलन है तथा व्यक्ति-विशेष अपनी इच्छानुसार इनका प्रयोग करता है।

(क) ऑक्सीकरण-संख्या विधि

अन्य अभिक्रियाओं की भाँति ऑक्सीकरण-अपचयन अभिक्रियाओं के लिए भी क्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों तथा बनने वाले उत्पादों के सूत्र ज्ञात होने चाहिए। इन पदों द्वारा ऑक्सीकरण-संख्या विधि को हम प्रदर्शित करते हैं–

पद 1 : सभी अभिकारकों तथा उत्पादों के सही सूत्र लिखिए।

पद 2 : अभिक्रिया के सभी तत्त्वों के परमाणुओं को लिखकर उन परमाणुओं को पहचानिए, जिनकी ऑक्सीकरण-संख्या में परिवर्तन हो रहा है।

पद 3 : प्रत्येक परमाणु तथा पूरे अणु/आयन की ऑक्सीकरण-संख्या में वृद्धि या ह्रास की गणना कीजिए। यदि इनमें समानता न हो, तो उपयुक्त गुणांक से गुणा कीजिए, ताकि ये समान हो जाएँ (यदि आपको लगे कि दो पदार्थ अपचयित हो रहे हैं तथा दूसरा कोई ऑक्सीकृत नहीं हो रहा है या विलोमतः हो रहा है, तो समझिए कि कुछ न कुछ गड़बड़ है। या तो अभिकारकों तथा उत्पादों के सूत्र में त्रुटि है या ऑक्सीकरण-संख्याएँ ठीक प्रकार से निर्धारित नहीं की गई हैं।

पद 4 : यह भी निश्चित कर लें कि यदि अभिक्रिया जलीय माध्यम में हो रही है, तो H^+ या OH^- आयन उपयुक्त स्थान पर जोड़िए, ताकि अभिकारकों तथा उत्पादों का कुल आवेश बराबर हो। यदि अभिक्रिया अम्लीय माध्यम में संपन्न होती है, तो H^+ आयन का उपयोग कीजिए। यदि क्षारीय माध्यम हो, तो OH^- आयन का उपयोग कीजिए।

पद 5 : अभिकारकों या उत्पादों में जल-अणु जोड़कर, व्यंजक से दोनों ओर हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या एक समान बनाइए। अब ऑक्सीजन के परमाणुओं की संख्या की भी जाँच कीजिए। यदि अभिकारकों तथा उत्पादों में (दोनों ओर) ऑक्सीजन परमाणुओं की संख्या एक समान है, तो समीकरण संतुलित अपचयोपचय अभिक्रिया दर्शाता है।

आइए, हम कुछ उदाहरणों की सहायता से इन पदों को समझाएँ–

उदाहरण 8.8

पोटैशियम डाइक्रोमेट (VI), $K_2Cr_2O_7$ की सोडियम सल्फाइट, Na_2SO_3 से अम्लीय माध्यम में क्रोमियम (III) आयन तथा सल्फेट आयन देने वाली नेट आयनिक अभिक्रिया लिखिए।

हल

पद 1 : अभिक्रिया का ढाँचा इस प्रकार है–

$$Cr_2O_7^{2-}(aq) + SO_3^{2-}(aq) \rightarrow Cr^{3+}(aq) + SO_4^{2-}(aq)$$
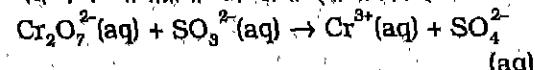
पद 2 : Cr एवं S की ऑक्सीकरण-संख्या लिखिए–

$$\overset{+6}{Cr_2O_7^{2-}}(aq) + \overset{+4}{SO_3^{2-}}(aq) \rightarrow \overset{3+}{Cr}(aq) + \overset{+6}{SO_4^{2-}}(aq)$$
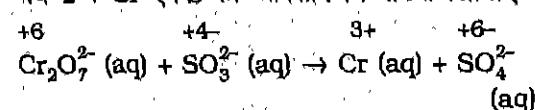
यह इस बात का सूचक है कि डाइक्रोमेट आयन ऑक्सीकारक तथा सल्फाइट आयन अपचायक है।

पद 3 : ऑक्सीकरण-संख्याओं की वृद्धि और ह्रास की गणना कीजिए तथा इन्हें एक समान बनाइए–

$$\overset{+6}{Cr_2O_7^{2-}}(aq) + 3\overset{+4}{SO_3^{2-}}(aq) \rightarrow 2\overset{+3}{Cr^{3+}}(aq) + 3\overset{+6}{SO_4^{2-}}(aq)$$
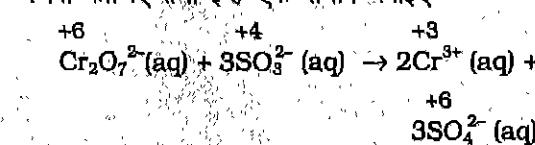
पद 4 : क्योंकि यह अभिक्रिया अम्लीय माध्यम में संपन्न हो रही है तथा दोनों ओर के आयनों का आवेश एक समान नहीं है। इसलिए बाईं ओर $8H^+$ जोड़िए, जिससे आयनिक आवेश एक समान हो जाए।

$$Cr_2O_7^{2-}(aq) + 3SO_3^{2-}(aq) + 8H^+ \rightarrow 2Cr^{3+}(aq) + 3SO_4^{2-}(aq)$$
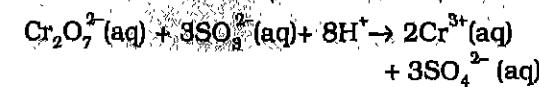
पद 5 : अंत में हाइड्रोजन अणुओं की गणना कीजिए। संतुलित अपचयोपचय अभिक्रिया प्राप्त करने के लिए दाईं ओर उपयुक्त संख्या में जल के अणुओं (यानी $4H_2O$) को जोड़िए–

$$Cr_2O_7^{2-}(aq) + 3SO_3^{2-}(aq) + 8H^+(aq) \rightarrow 2Cr^{3+}(aq) + 3SO_4^{2-}(aq) + 4H_2O(l)$$
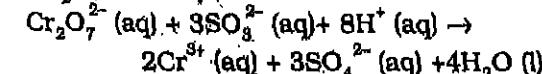
उदाहरण 8.9

क्षारीय माध्यम में परमैंगनेट आयन ब्रोमाइड आयन से संतुलित आयनिक अभिक्रिया समीकरण लिखिए।

हल

पद 1 : समीकरण का ढाँचा इस प्रकार से है–

$$MnO_4^-(aq) + Br^-(aq) \rightarrow MnO_2(s) + BrO_3^-(aq)$$

पद 2 : Mn व Br की ऑक्सीकरण-संख्या लिखिए।

$$\overset{+7}{MnO_4^-}(aq) + \overset{-1}{Br^-}(aq) \rightarrow \overset{+4}{MnO_2}(s) + \overset{+5}{BrO_3^-}(aq)$$
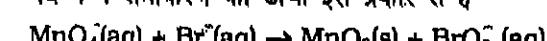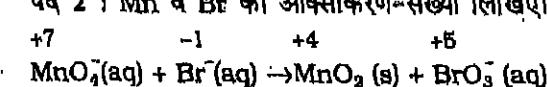
यह इस बात का सूचक है कि परमैंगनेट आयन ऑक्सीकारक है तथा ब्रोमाइड आयन अपचायक है।

पद 3 : ऑक्सीकरण-संख्या में वृद्धि और ह्रास की गणना कीजिए तथा वृद्धि और ह्रास को एक समान बनाइए।

$$\overset{+7}{2MnO_4^-}(aq)+\overset{-1}{Br^-}(aq) \rightarrow \overset{+4}{2MnO_2}(s)+\overset{+5}{BrO_3^-}(aq)$$
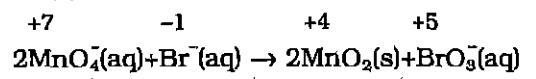
पद 4 : क्योंकि अभिक्रिया क्षारीय माध्यम में संपन्न हो रही है तथा आयनिक आवेश एक समान नहीं है, इसलिए आयनिक आवेश एक समान बनाने के लिए दाईं ओर $2OH^-$ आयन जोड़िए-

$$2MnO_4^- (aq) + Br^- (aq) \rightarrow 2MnO_2(s) + BrO_3^-(aq) + 2OH^-(aq)$$
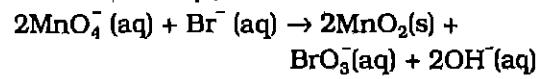
पद 5 : अंत में हाइड्रोजन परमाणुओं की गणना कीजिए तथा बाईं ओर उपयुक्त संख्या में जल-अणुओं (यानी एक H_2O अणु) को जोड़िए, जिससे संतुलित अपचयोपचय अभिक्रिया प्राप्त हो जाए-

$$2MnO_4^-(aq) + Br^-(aq) + H_2O(l) \rightarrow 2MnO_2(s) + BrO_3^- (aq) + 2OH^- (aq)$$
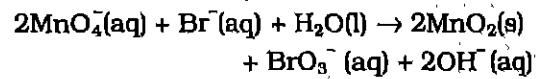
(ख) अर्द्ध-अभिक्रिया विधि

इस विधि द्वारा दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं को अलग-अलग संतुलित करते हैं तथा बाद में दोनों को जोड़कर संतुलित अभिक्रिया प्राप्त करते हैं।

मान लीजिए कि हमें Fe^{2+} आयन से Fe^{3+} आयन में डाइक्रोमेट आयन $(Cr_2O_7)^{2-}$ द्वारा अम्लीय माध्यम में ऑक्सीकरण अभिक्रिया संपन्न करनी है, जिसमें $Cr_2O_7^{2-}$ आयनों का Cr^{3+} आयन में अपचयन होता है। इसके लिए हम निम्नलिखित कदम उठाते हैं-

पद 1 : असंतुलित समीकरण को आयनिक रूप में लिखिए-

$$Fe^{2+}(aq) + Cr_2O_7^{2-} (aq) \rightarrow Fe^{3+} (aq) + Cr^{3+}(aq) \qquad (8.50)$$

पद 2 : इस समीकरण को दो अर्द्ध-अभिक्रियाओं में विभक्त कीजिए-

ऑक्सीकरण अर्द्ध : $Fe^{2+} (aq) \rightarrow Fe^{3+}(aq)$ (8.51)

अपचयन अर्द्ध : $\overset{+6}{Cr_2}O_7^{2-}(aq) \rightarrow \overset{+3}{Cr}(aq)$ (8.52)

पद 3 : प्रत्येक अर्द्ध-अभिक्रिया के O तथा H में अतिरिक्त सभी परमाणुओं को संतुलित कीजिए। अर्द्ध-अभिक्रिया में अतिरिक्त परमाणुओं को संतुलित करने के लिए Cr^{3+} को 2 से गुणा करते हैं। ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रिया Fe परमाणु के लिए पहले ही संतुलित है-

$$Cr_2O_7^{2-}(aq) \rightarrow 2\, Cr^{3+}(aq) \qquad (8.53)$$
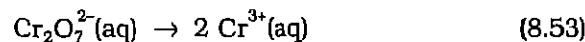
पद 4 : अम्लीय माध्यम में संपन्न होनेवाली अर्द्ध-अभिक्रिया में O परमाणु के संतुलन के लिए H_2O तथा H परमाणु के संतुलन के लिए H^+ जोड़िए। इस प्रकार हमें निम्नलिखित अभिक्रिया मिलती है-

$$Cr_2O_7^{2-} (aq) + 14H^+ (aq) \rightarrow 2\, Cr^{3+}(aq) + 7H_2O (l) \qquad (8.54)$$
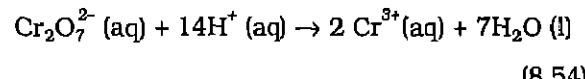
पद 5 : अर्द्ध-अभिक्रियाओं में आवेशों के संतुलन के लिए इलेक्ट्रॉन जोड़िए। दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉनों की संख्या एक जैसी रखने के लिए आवश्यकतानुसार किसी एक को या दोनों को उपयुक्त गुणांक से गुणा कीजिए। आवेश को संतुलित करते हुए ऑक्सीकरण को दोबारा इस प्रकार लिखते हैं-

$$Fe^{2+} (aq) \rightarrow Fe^{3+} (aq) + e^- \qquad (8.55)$$
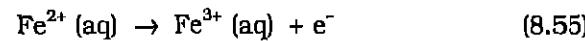
अब अपचयन अर्द्ध-अभिक्रिया की बाईं ओर 12 धन आवेश हैं, 6 इलेक्ट्रॉन जोड़ देते हैं-

$$Cr_2O_7^{2-} (aq) + 14H^+ (aq) + 6e^- \rightarrow 2Cr^{3+}(aq) + 7H_2O (l) \qquad (8.56)$$
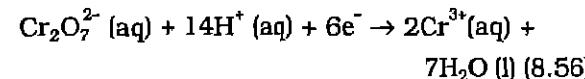
दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉनों की संख्या समान बनाने के लिए ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रिया को 6 से गुणा करके इस प्रकार लिखते हैं-

$$6Fe^{2+} (aq) \rightarrow 6Fe^{3+} (aq) + 6e^- \qquad (8.57)$$
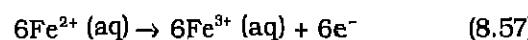
पद 6 : दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं को जोड़ने पर हम पूर्ण अभिक्रिया प्राप्त करते हैं तथा दोनों ओर के इलेक्ट्रॉन निरस्त कर देते हैं।

$$6Fe^{2+}(aq) + Cr_2O_7^{2-}(aq) + 14H^+(aq) \rightarrow 6\,Fe^{3+}(aq) + 2Cr^{3+}(aq) + 7H_2O(l) \qquad (8.58)$$
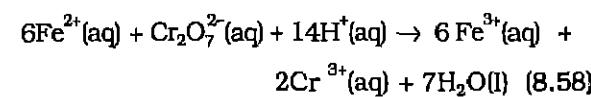
पद 7 : सत्यापित कीजिए कि समीकरण के दोनों ओर परमाणुओं की संख्या तथा आवेश समान हैं। यह अंतिम परीक्षण दर्शाता है कि समीकरण में परमाणुओं की संख्या तथा आवेश का पूरी तरह संतुलन है।

क्षारीय माध्यम में अभिक्रिया को पहले तो उसी प्रकार संतुलित कीजिए, जैसे अम्लीय माध्यम में करते हैं। बाद में समीकरण के दोनों ओर H^+ आयन की संख्या के बराबर OH^- जोड़ दीजिए। जहाँ H^+ तथा OH^- समीकरण एक ओर साथ हों, वहाँ दोनों को जोड़कर H_2O लिख दीजिए।

उदाहरण 8.10

परमैंगनेट (VII) आयन क्षारीय माध्यम में आयोडाइड आयन, I^- आण्विक आयोडीन I_2 तथा मैंगनीज (IV) ऑक्साइड (MnO_2) में ऑक्सीकृत करता है। इस अपचयोपचय अभिक्रिया को दर्शाने वाली संतुलित आयनिक अभिक्रिया लिखिए।

हल

पद 1 : पहले हम ढाँचा समीकरण लिखते हैं–

$MnO_4^- (aq) + I^- (aq) \rightarrow MnO_2(s) + I_2(s)$

पद 2 : दो अर्द्ध-अभिक्रियाएँ इस प्रकार हैं–

ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रिया $\overset{-1}{I^-}(aq) \rightarrow \overset{0}{I_2}(s)$

अपचयन अर्द्ध-अभिक्रिया $\overset{+7}{MnO_4^-}(aq) \rightarrow \overset{+4}{MnO_2}(s)$
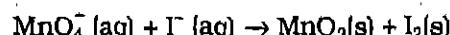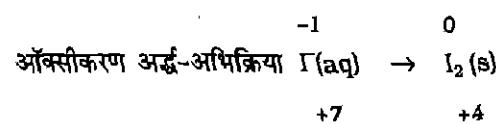
पद 3 : ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रिया में I परमाणु का संतुलन करने पर हम लिखते हैं-

$2I^- (aq) \rightarrow I_2 (s)$
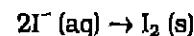
पद 4 : O परमाणु के संतुलन के लिए हम उपचयन अभिक्रिया में दाईं ओर 2 जल-अणु जोड़ते हैं-

$MnO_4^- (aq) \rightarrow MnO_2 (s) + 2\ H_2O\ (l)$

H परमाणु के संतुलन के लिए हम बाईं ओर चार H^+ आयन जोड़ देते हैं।

$MnO_4^- (aq) + 4\ H^+ (aq) \rightarrow MnO_2(s) + 2H_2O\ (l)$
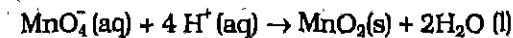
क्योंकि अभिक्रिया क्षारीय माध्यम में होती है, इसलिए $4H^+$ के लिए समीकरण के दोनों ओर हम $4OH^-$ जोड़ देते हैं।

$MnO_4^- (aq) + 4H^+ (aq) + 4OH^- (aq) \rightarrow$

$MnO_2 (s) + 2\ H_2O(l) + 4OH^- (aq)$
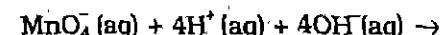
H^+ आयन तथा OH^- आयन के योग को H_2O से बदलने पर परिणामी समीकरण बन गए–

$MnO_4^- (aq) + 2H_2O\ (l) \rightarrow MnO_2\ (s) + 4\ OH^- (aq)$
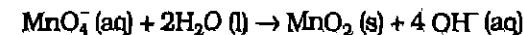
पद 5 : इस पद में हम दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं में आवेश का संतुलन दर्शाई गई विधि द्वारा करते हैं।

$2I^- (aq) \rightarrow I_2 (s) + 2e^-$

$MnO_4^-(aq) + 2H_2O(l) + 3e^- \rightarrow MnO_2(s) + 4OH^-(aq)$
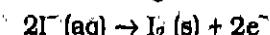
इलेक्ट्रॉनों की संख्या एक समान बनाने के लिए ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रिया को 3 से तथा अपचयन अर्द्ध-अभिक्रिया को 2 से गुणा करते हैं।

$6I^-(aq) \rightarrow 3I_2 (s) + 6e^-$

$2\ MnO_4^- (aq) + 4H_2O\ (l) + 6e^- \rightarrow 2MnO_2(s) + 8OH^- (aq)$
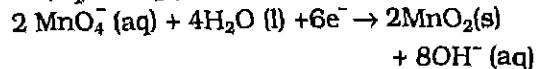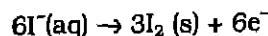
पद 6 : दोनों अर्द्ध-अभिक्रियाओं को जोड़कर दोनों ओर के इलेक्ट्रॉनों को निरस्त करने पर यह समीकरण प्राप्त होता है–

$6I^-(aq) + 2MnO_4^-(aq) + 4H_2O(l) \rightarrow 3I_2(s) + 2MnO_2(s) + 8\ OH^-(aq)$
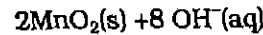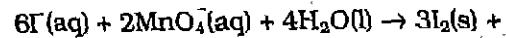
पद 7 : अंतिम सत्यापन दर्शाता है कि दोनों ओर के परमाणुओं की संख्या तथा आवेश की दृष्टि से समीकरण संतुलित है।

8.3.3 अपचयोपचय अभिक्रियाओं पर आधारित अनुमापन

अम्लक्षार निकाय में हम ऐसी अनुमापन विधि के संपर्क में आते हैं, जिससे एक विलयन की प्रबलता pH संवेदनशील संसूचक का प्रयोग कर दूसरे विलयन से ज्ञात करते हैं। समान रूप से अपचयोपचयन निकाय में अनुमापन विधि अपनाई जा सकती है, जिसमें अपचयोपचय संवेदनशील संसूचक का प्रयोग कर रिडक्टेंट/ऑक्सीडेंट की प्रबलता ज्ञात की जा सकती है। अपचयोपचय अनुमापन में संसूचक का प्रयोग निम्नलिखित उदाहरण द्वारा निरूपित किया गया है–

(i) यदि कोई अभिकारक (जो स्वयं किसी गहरे रंग का हो, जैसे–परमैंगनेट आयन MnO_4^-) स्वयंसूचक (Self indicator) की भाँति कार्य करता है। जब अपचायक (Fe^{2+} या $C_2O_4^{2-}$) का अंतिम भाग ऑक्सीकृत हो चुका हो, तो दृश्य अंत्यबिंदु प्राप्त होता है। MnO_4^- आयन की सांद्रता 10^{-6} mol dm^{-3} (10^{-6} mol L^{-1}) से कम होने पर भी गुलाबी रंग की प्रथम स्थायी झलक दिखती है। इससे तुल्यबिंदु पर रंग न्यूनता से अतिलंघित हो जाता है, जहाँ अपचायक तथा ऑक्सीकारक अपनी मोल रससमीकरण-मिति के अनुसार समान मात्रा में होते हैं।

(ii) जैसा MnO_4^- के अनुमापन में होता है, यदि वैसा कोई रंग–परिवर्तन स्वत: नहीं होता है, तो ऐसे भी सूचक हैं, जो अपचायक के अंतिम भाग के उपभोगित हो जाने पर स्वयं ऑक्सीकृत होकर नाटकीय ढंग से रंग-परिवर्तन करते हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण $Cr_2O_7^{2-}$ द्वारा दिया जाता है, जो स्वयं सूचक नहीं है, लेकिन तुल्यबिंदु के बाद यह डाइफेनिल

एमीन सूचक को ऑक्सीकृत करके गहरा नीला रंग प्रदान करता है। इस प्रकार यह अंत्यबिंदु का सूचक होता है।

(iii) एक अन्य विधि भी उपलब्ध है, जो रोचक और सामान्य भी है। इसका प्रयोग केवल उन अभिकारकों तक सीमित है, जो I- आयनों को ऑक्सीकृत कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर–

$$2Cu^{2+}(aq) + 4I^-(aq) \rightarrow Cu_2I_2(s) + I_2(aq) \quad (8.59)$$
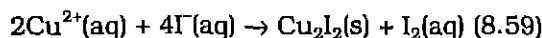
इस विधि का आधार आयोडीन का स्टार्च के साथ गहरा नीला रंग देना तथा आयोडीन की थायोसल्फेट आयन से विशेष अभिक्रिया है, जो अपचयोपचय अभिक्रिया भी है।

$$I_2(aq) + 2\,S_2O_3^{2-}(aq) \rightarrow 2I^-(aq) + S_4O_6^{2-}(aq) \quad (8.60)$$
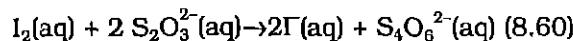
यद्यपि I_2 जल में अविलेय है, KI के विलयन में KI_3 के रूप में विलेय है।

अंत्यबिंदु को स्टार्च डालकर पहचाना जाता है। शेष स्टाइकियोमिती गणनाएँ ही हैं।

8.3.4 ऑक्सीकरण अंकधारणा की सीमाएँ

उपरोक्त विवेचना से आप यह जान गए हैं कि उपचयोपचय विधियों का विकास समयानुसार होता गया है। विकास का यह क्रम अभी जारी है। वास्तव में कुछ समय पहले तक ऑक्सीकरण पद्धति को अभिक्रिया में संलग्न परमाणु (एक या अधिक) के चारों ओर इलेक्ट्रॉन घनत्व में ह्रास के रूप में तथा अपचयन पद्धति को इलेक्ट्रॉन घनत्व-वृद्धि के रूप में देखा जाता था।

8.4 अपचयोपचन अभिक्रियाएँ तथा इलेक्ट्रोड प्रक्रम

यदि ज़िंक की छड़ को कॉपर सल्फेट के विलयन में डुबोएँ, तो अभिक्रिया (8.15) के अनुसार संगत प्रयोग दिखाई देता है। इस अपचयोपचय अभिक्रिया के दौरान ज़िंक से कॉपर पर इलेक्ट्रॉन के *प्रत्यक्ष स्थानांतरण द्वारा ज़िंक का ऑक्सीकरण ज़िंक आयन* के रूप में होता है तथा कॉपर आयनों का अपचयन कॉपर धातु के रूप में होता है। इस अभिक्रिया में ऊष्मा का उत्सर्जन होता है। अभिक्रिया की ऊष्मा विद्युत् ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इसके लिए कॉपर सल्फेट विलयन से ज़िंक धातु *का पृथक्करण करना* आवश्यक हो जाता है। हम कॉपर सल्फेट घोल को एक बीकर में रखते हैं, कॉपर की छड़ या पत्ती को इसमें डाल देते हैं। एक दूसरे बीकर में ज़िंक सल्फेट घोल डालते हैं तथा ज़िंक की छड़ या पत्ती इसमें डालते हैं। किसी भी बीकर में कोई भी अभिक्रिया नहीं होती तथा दोनों बीकरों में धातु और उसके लवण के घोल के अंतरापृष्ठ पर एक ही रसायन के अपचयित और ऑक्सीकृत रूप एक साथ उपस्थित होते हैं। ये अपचयन तथा ऑक्सीकरण अर्द्ध-अभिक्रियाओं में उपस्थित स्पीशीज़ को दर्शाते हैं। ऑक्सीकरण *तथा अपचयन अभिक्रियाओं में भाग ले रहे पदार्थों के ऑक्सीकृत* तथा अपचयित स्वरूपों की एक साथ उपस्थिति से रेडॉक्स युग्म को परिभाषित करते हैं।

इस ऑक्सीकृत स्वरूप को अपचयित स्वरूप से एक सीधी रेखा या तिरछी रेखा द्वारा पृथक् करना दर्शाया गया है, जो अंतरापृष्ठ (जैसे-ठोस/घोल) को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, इस प्रयोग में दो रेडॉक्स युग्मों को Zn^{2+}/Zn तथा Cu^{2+}/Cu द्वारा दर्शाया गया है। दोनों में ऑक्सीकृत स्वरूप को अपचयित स्वरूप से पहले लिखा जाता है। अब हम कॉपर सल्फेट घोल वाले बीकर को ज़िंक सल्फेट घोल वाले बीकर के पास रखते हैं (चित्र 8.3)। दोनों बीकरों के घोलों को लवण-सेतु द्वारा जोड़ते हैं (लवण-सेतु U आकृति की एक नली है, जिसमें पोटैशियम क्लोराइड या अमोनियम नाइट्रेट के घोल को सामान्यतया 'ऐगर-ऐगर' के साथ उबालकर U नली में भरकर तथा ठंडा करके जेली बना देते हैं)। इन दोनों विलयनों को बिना एक-दूसरे से मिलाए हुए वैद्युत् संपर्क प्रदान किया जाता है। ज़िंक तथा कॉपर की छड़ों को ऐमीटर तथा स्विच के प्रावधान द्वारा धातु के तार से जोड़ा जाता है। चित्र 8.3 में दर्शाई गई व्यवस्था को 'डेनियल सेल' कहते हैं। जब स्विच 'ऑफ' (बंद) स्थिति में होता है, तो किसी बीकर में कोई भी अभिक्रिया नहीं होती और धातु के तार से विद्युत्-धारा प्रवाहित नहीं होती है। स्विच को ऑन करते ही हम पाते हैं कि–
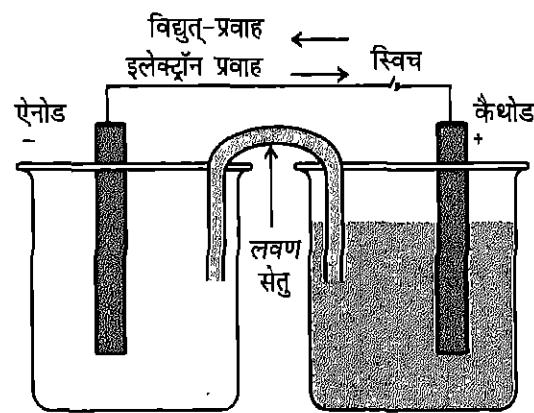
चित्र 8.3 डेनियल सेल की आयोजना। ऐनोड पर Zn के ऑक्सीकरण द्वारा उत्पन्न इलेक्ट्रॉन बाहरी परिपथ से कैथोड तक पहुँचते हैं। सेल के अंदर का परिपथ लवण-सेतु के माध्यम से आयनों के विस्थापन द्वारा पूरा होता है। ध्यान दीजिए कि विद्युत्-प्रवाह की दिशा इलेक्ट्रॉनों के प्रवाह की दिशा के विपरीत है।

1. Zn से Cu^{2+} तक इलेक्ट्रॉनों का स्थानांतरण प्रत्यक्ष रूप से न होकर दोनों छड़ों को जोड़ने वाले धात्विक तार के द्वारा होता है, जो तीर द्वारा विद्युत्-धारा में प्रवाह के रूप में दर्शाया गया है।
2. एक बीकर में रखे घोल से दूसरे बीकर के घोल की ओर लवण-सेतु के माध्यम से आयनों के अभिगमन द्वारा विद्युत् प्रवाहित होती है। हम जानते हैं कि कॉपर और ज़िंक की छड़ों, जिन्हें 'इलेक्ट्रोड' कहते हैं, में विभव का अंतर होने पर ही विद्युत्-धारा का प्रवाह संभव है।

प्रत्येक इलेक्ट्रोड के विभव को 'इलेक्ट्रोड विभव' कहते हैं। यदि इलेक्ट्रोड अभिक्रिया में भाग लेने वाले सभी स्पीशीज़ की इकाई सांद्रता हो (यदि इलेक्ट्रोड अभिक्रिया में कोई गैस निकलती है, तो उसे एक वायुमंडलीय दाब पर होना चाहिए) तथा अभिक्रिया 298K पर होती हो, तो प्रत्येक इलेक्ट्रोड पर

तालिका 8.1 298 K पर मानक इलेक्ट्रोड विभव-आयन

आयन जलीय स्पीशीज़ के रूप में तथा जल द्रव के रूप में उपस्थित हैं: गैस तथा ठोस को g तथा s द्वारा दर्शाया गया है।

	अभिक्रिया (ऑक्सीकृत स्वरूप $+ne^- \rightarrow$	अपचयित स्वरूप)		$E^\ominus/V$
↑ ऑक्सीकारक के बढ़ते सामर्थ्य	$F_2(g) + 2e^-$	$\rightarrow 2F^-$	अपचायक के बढ़ते सामर्थ्य ↓	2.87
	$Co^{3+} + e^-$	$\rightarrow Co^{2+}$		1.81
	$H_2O_2 + 2H^+ + 2e^-$	$\rightarrow 2H_2O$		1.78
	$MnO_4^- + 8H^+ + 5e^-$	$\rightarrow Mn^{2+} + 4H_2O$		1.51
	$Au^{3+} + 3e^-$	$\rightarrow Au(s)$		1.40
	$Cl_2(g) + 2e^-$	$\rightarrow 2Cl^-$		1.36
	$Cr_2O_7^{2-} + 14H^+ + 6e^-$	$\rightarrow 2Cr^{3+} + 7H_2O$		1.33
	$O_2(g) + 4H^+ + 4e^-$	$\rightarrow 2H_2O$		1.23
	$MnO_2(s) + 4H^+ + 2e^-$	$\rightarrow Mn^{2+} + 2H_2O$		1.23
	$Br_2 + 2e^-$	$\rightarrow 2Br^-$		1.09
	$NO_3^- + 4H^+ + 3e^-$	$\rightarrow NO(g) + 2H_2O$		0.97
	$2Hg^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Hg_2^{2+}$		0.92
	$Ag^+ + e^-$	$\rightarrow Ag(s)$		0.80
	$Fe^{3+} + e^-$	$\rightarrow Fe^{2+}$		0.77
	$O_2(g) + 2H^+ + 2e^-$	$\rightarrow H_2O_2$		0.68
	$I_2(s) + 2e^-$	$\rightarrow 2I^-$		0.54
	$Cu^+ + e^-$	$\rightarrow Cu(s)$		0.52
	$Cu^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Cu(s)$		0.34
	$AgCl(s) + e^-$	$\rightarrow Ag(s) + Cl^-$		0.22
	$AgBr(s) + e^-$	$\rightarrow Ag(s) + Br^-$		0.10
	$2H^+ + 2e^-$	**$\rightarrow H_2(g)$**		**0.00**
	$Pb^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Pb(s)$		–0.13
	$Sn^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Sn(s)$		–0.14
	$Ni^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Ni(s)$		–0.25
	$Fe^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Fe(s)$		–0.44
	$Cr^{3+} + 3e^-$	$\rightarrow Cr(s)$		–0.74
	$Zn^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Zn(s)$		–0.76
	$2H_2O + 2e^-$	$\rightarrow H_2(g) + 2OH^-$		–0.83
	$Al^{3+} + 3e^-$	$\rightarrow Al(s)$		–1.66
	$Mg^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Mg(s)$		–2.36
	$Na^+ + e^-$	$\rightarrow Na(s)$		–2.71
	$Ca^{2+} + 2e^-$	$\rightarrow Ca(s)$		–2.87
	$K^+ + e^-$	$\rightarrow K(s)$		–2.93
	$Li^+ + e^-$	$\rightarrow Li(s)$		–3.05

1. ऋणात्मक E^0 का अर्थ यह है कि रेडॉक्स युग्म H^+/H_2 की तुलना में प्रबल अपचायक है।
2. धनात्मक $E^\ominus$ का अर्थ यह है कि रेडॉक्स युग्म H^+/H_2 की तुलना में दुर्बल अपचायक है।

विभव को **मानक इलेक्ट्रोड विभव** कहते हैं। मान्यता के अनुसार, हाइड्रोजन का मानक इलेक्ट्रोड विभव 0.00 वोल्ट होता है। प्रत्येक इलेक्ट्रोड अभिक्रिया के लिए इलेक्ट्रोड विभव का मान सक्रिय स्पीशीज़ की ऑक्सीकृत/अपचयित अवस्था की आपेक्षिक प्रवृत्ति का माप है। E° के ऋणात्मक होने का अर्थ है कि रेडॉक्स युग्म H^+/H_2 की तुलना में अधिक शक्तिशाली अपचायक है। धनात्मक E° का अर्थ यह है कि H^+/H_2 की तुलना में एक दुर्बल अपचायक है। मानक इलेक्ट्रोड विभव बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनसे हमें बहुत सी दूसरी उपयोगी जानकारियाँ भी मिलती हैं। कुछ चुनी हुई इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं (अपचयन अभिक्रिया) के मानक इलेक्ट्रोड विभव के मान तालिका 8.1 में दिए गए हैं। इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं तथा सेलों के बारे में और अधिक विस्तार से आप अगली कक्षा में पढ़ेंगे।

सारांश

अभिक्रियाओं का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग अपचयोपचय अभिक्रिया है, जिसमें **ऑक्सीकरण** तथा **अपचयन** साथ-साथ होते हैं। इस पाठ में तीन प्रकार की संकल्पनाएँ विस्तार से दी गई हैं–चिरप्रतिष्ठित (Classical), इलेक्ट्रॉनिक तथा ऑक्सीकरण-संख्या। इन संकल्पनाओं के आधार पर *ऑक्सीकरण, अपचयन, ऑक्सीकारक* (**ऑक्सीडेंट**) *तथा अपचायक* (*रिडक्टेंट*) को समझाया गया है। संगत नियमों के अंतर्गत ऑक्सीकरण-संख्या का निर्धारण किया गया है। ये दोनों **ऑक्सीकरण-संख्या** तथा **आयन इलेक्ट्रॉन विधियाँ** अपचयोपचय अभिक्रियाओं के समीकरण लिखने में उपयोगी हैं। अपचयोपचय अभिक्रियाओं को चार वर्गों में विभाजित किया गया है–योग, अपघटन, विस्थापन तथा असमानुपातन। **रिडॉक्स युग्म तथा इलेक्ट्रॉड प्रक्रम** की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। रेडॉक्स अभिक्रियाओं का इलेक्ट्रोड अभिक्रियाओं तथा सेलों के अध्ययन में व्यापक अनुप्रयोग होता है।

अभ्यास

8.1 निम्नलिखित स्पीशीज़ में प्रत्येक रेखांकित तत्त्व की ऑक्सीकरण-संख्या का निर्धारण कीजिए–

(क) $NaH_2\underline{P}O_4$ (ख) $NaH\underline{S}O_4$ (ग) $H_4\underline{P}_2O_7$ (घ) $K_2\underline{Mn}O_4$

(ङ) $Ca\underline{O}_2$ (च) $Na\underline{B}H_4$ (छ) $H_2\underline{S}_2O_7$ (ज) $KAl(\underline{S}O_4)_2.12\,H_2O$

8.2 निम्नलिखित यौगिकों के रेखांकित तत्त्वों की ऑक्सीकरण-संख्या क्या है तथा इन परिणामों को आप कैसे प्राप्त करते हैं?

(क) $K\underline{I}_3$ (ख) $H_2\underline{S}_4O_6$ (ग) $F\underline{e}_3O_4$ (घ) $\underline{C}H_3\underline{C}H_2OH$ (ङ) $\underline{C}H_3\underline{C}OOH$

8.3 निम्नलिखित अभिक्रियाओं का अपचयोपचय अभिक्रियाओं के रूप में औचित्य स्थापित करने का प्रयास करें–

(क) $CuO(s) + H_2(g) \rightarrow Cu(s) + H_2O(g)$

(ख) $Fe_2O_3(s) + 3CO(g) \rightarrow 2Fe(s) + 3CO_2(g)$

(ग) $4BCl_3(g) + 3LiAlH_4(s) \rightarrow 2B_2H_6(g) + 3LiCl(s) + 3\,AlCl_3(s)$

(घ) $2K(s) + F_2(g) \rightarrow 2K^+F^-(s)$

(ङ) $4\,NH_3(g) + 5\,O_2(g) \rightarrow 4NO(g) + 6H_2O(g)$

8.4 फ्लुओरीन बर्फ से अभिक्रिया करके यह परिवर्तन लाती है–

$H_2O(s) + F_2(g) \rightarrow HF(g) + HOF(g)$

इस अभिक्रिया का अपचयोपचय औचित्य स्थापित कीजिए।

8.5 H_2SO_5, Cr_2O^{2-} तथा NO_3^- में सल्फर, क्रोमियम तथा नाइट्रोजन की ऑक्सीकरण-संख्या की गणना कीजिए। साथ ही इन यौगिकों की संरचना बताइए तथा इसमें हेत्वाभास (Fallacy) का स्पष्टीकरण दीजिए।

8.6 निम्नलिखित यौगिकों के सूत्र लिखिए–

(क) मरक्यूरी (II) क्लोराइड (ख) निकल (II) सल्फेट

(ग) टिन (IV) ऑक्साइड (घ) थेलियम (I) सल्फेट

(ङ) आयरन (III) सल्फेट (च) क्रोमियम (III) ऑक्साइड

8.7 उन पदार्थों की सूची तैयार कीजिए, जिनमें कार्बन – 4 से +4 तक की तथा नाइट्रोजन –3 से +5 तक की ऑक्सीकरण अवस्था होती है।

8.8 अपनी अभिक्रियाओं में सल्फर डाइऑक्साइड तथा हाइड्रोजन परॉक्साइड ऑक्सीकारक तथा अपचायक—दोनों ही रूपों में क्रिया करते हैं, जबकि ओज़ोन तथा नाइट्रिक अम्ल केवल ऑक्सीकारक के रूप में ही। क्यों?

8.9 इन अभिक्रियाओं को देखिए—

(क) $6\,CO_2(g) + 6H_2O(l) \rightarrow C_6H_{12}O_6(aq) + 6O_2(g)$

(ख) $O_3(g) + H_2O_2(l) \rightarrow H_2O(l) + 2O_2(g)$

बताइए कि इन्हें निम्नलिखित ढंग से लिखना ज्यादा उचित क्यों है?

(क) $6CO_2(g) + 12H_2O(l) \rightarrow C_6H_{12}O_6(aq) + 6H_2O(l) + 6O_2(g)$

(ख) $O_3(g) + H_2O_2(l) \rightarrow H_2O(l) + O_2(g) + O_2(g)$

उपरोक्त अपचयोपचय अभिक्रियाओं (क) तथा (ख) के अन्वेषण की विधि सुझाइए।

8.10 AgF_2 एक अस्थिर यौगिक है। यदि यह बन जाए, तो यह यौगिक एक अति शक्तिशाली ऑक्सीकारक की भाँति कार्य करता है। क्यों?

8.11 "जब भी एक ऑक्सीकारक तथा अपचायक के बीच अभिक्रिया संपन्न की जाती है, तब अपचायक के आधिक्य में निम्नतर ऑक्सीकरण अवस्था का यौगिक तथा ऑक्सीकारक के आधिक्य में उच्चतर ऑक्सीकरण अवस्था का यौगिक बनता है।" इस वक्तव्य का औचित्य तीन उदाहरण देकर दीजिए।

8.12 इन प्रेक्षणों की अनुकूलता को कैसे समझाएँगे?

(क) यद्यपि क्षारीय पोटैशियम परमैंगनेट तथा अम्लीय पोटैशियम परमैंगनेट–दोनों ही ऑक्सीकारक हैं। फिर भी टॉलुइन से बेंजोइक अम्ल बनाने के लिए हम एल्कोहॉलक पोटैशियम परमैंगनेट का प्रयोग ऑक्सीकारक के रूप में क्यों करते हैं? इस अभिक्रिया के लिए संतुलित अपचयोपचय समीकरण दीजिए।

(ख) क्लोराइडयुक्त अकार्बनिक यौगिक में सांद्र सल्फ्युरिक अम्ल डालने पर हमें तीक्ष्ण गंध वाली HCl गैस प्राप्त होती है, परंतु यदि मिश्रण में ब्रोमाइड उपस्थित हो, तो हमें ब्रोमीन की लाल वाष्प प्राप्त होती है, क्यों?

8.13 निम्नलिखित अभिक्रियाओं में ऑक्सीकृत, अपचयित, ऑक्सीकारक तथा अपचायक पदार्थ पहचानिए–

(क) $2AgBr\,(s) + C_6H_6O_2(aq) \rightarrow 2Ag(s) + 2HBr\,(aq) + C_6H_4O_2(aq)$

(ख) $HCHO(l) + 2[Ag\,(NH_3)_2]^+(aq) + 3OH^-(aq) \rightarrow 2Ag(s) + HCOO^-(aq) + 4NH_3(aq) + 2H_2O(l)$

(ग) $HCHO\,(l) + 2\,Cu^{2+}(aq) + 5\,OH^-(aq) \rightarrow Cu_2O(s) + HCOO^-(aq) + 3H_2O(l)$

(घ) $N_2H_4(l) + 2H_2O_2(l) \rightarrow N_2(g) + 4H_2O(l)$

(ङ) $Pb(s) + PbO_2(s) + 2H_2SO_4(aq) \rightarrow 2PbSO_4(s) + 2H_2O(l)$

8.14 निम्नलिखित अभिक्रियाओं में एक ही अपचायक थायोसल्फेट, आयोडीन तथा ब्रोमीन से अलग-अलग प्रकार से अभिक्रिया क्यों करता है?

$2\,S_2O_3^{2-}\,(aq) + I_2(s) \rightarrow S_4O_6^{2-}(aq) + 2I^-(aq)$

$S_2O_3^{2-}(aq) + 2Br_2(l) + 5\,H_2O(l) \rightarrow 2SO_4^{2-}(aq) + 4Br^-(aq) + 10H^+(aq)$

8.15 अभिक्रिया देते हुए सिद्ध कीजिए कि हैलोजेनों में फ्लुओरीन श्रेष्ठ ऑक्सीकारक तथा हाइड्रोहैलिक यौगिकों में हाइड्रोआयोडिक अम्ल श्रेष्ठ अपचायक है।

8.16 निम्नलिखित अभिक्रिया क्यों होती है—

$XeO_6^{4-}(aq) + 2F^-(aq) + 6H^+(aq) \rightarrow XeO_3(g) + F_2(g) + 3H_2O(l)$
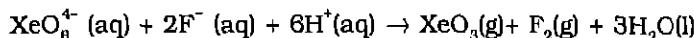
यौगिक Na_4XeO_6 (जिसका एक भाग XeO_6^{4-} है) के बारे में आप इस अभिक्रिया में क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

8.17 निम्नलिखित अभिक्रियाओं में

(क) $H_3PO_2(aq) + 4\ AgNO_3(aq) + 2\ H_2O(l) \rightarrow H_3PO_4(aq) + 4Ag(s) + 4HNO_3(aq)$

(ख) $H_3PO_2(aq) + 2CuSO_4(aq) + 2\ H_2O(l) \rightarrow H_3PO_4(aq) + 2Cu(s) + H_2SO_4(aq)$

(ग) $C_6H_5CHO(l) + 2[Ag(NH_3)_2]^+(aq) + 3OH^-(aq) \rightarrow C_6H_5COO^-(aq) + 2Ag(s) + 4NH_3(aq) + 2\ H_2O(l)$

(घ) $C_6H_5CHO(l) + 2Cu^{2+}(aq) + 5OH^-(aq) \rightarrow$ कोई परिवर्तन नहीं।
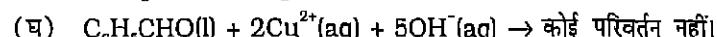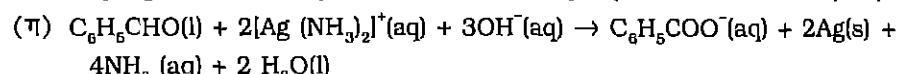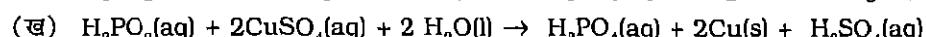
इन अभिक्रियाओं से Ag^+ तथा Cu^{2+} के व्यवहार के विषय में निष्कर्ष निकालिए।

8.18 आयन इलेक्ट्रॉन विधि द्वारा निम्नलिखित रिडॉक्स अभिक्रियाओं को संतुलित कीजिए —

(क) $MnO_4^-(aq) + I^-(aq) \rightarrow MnO_2(s) + I_2(s)$ (क्षारीय माध्यम)

(ख) $MnO_4^-(aq) + SO_2(g) \rightarrow Mn^{2+}(aq) + HSO_4^-(aq)$ (अम्लीय माध्यम)

(ग) $H_2O_2(aq) + Fe^{2+}(aq) \rightarrow Fe^{3+}(aq) + H_2O(l)$ (अम्लीय माध्यम)

(घ) $Cr_2O_7^{2-} + SO_2(g) \rightarrow Cr^{3+}(aq) + SO_4^{2-}(aq)$ (अम्लीय माध्यम)
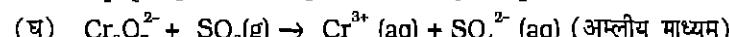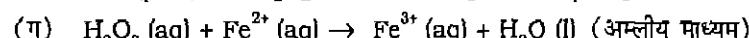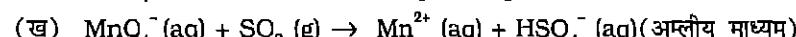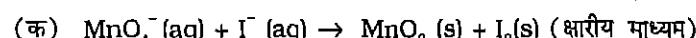
8.19 निम्नलिखित अभिक्रियाओं के समीकरणों को आयन इलेक्ट्रॉन तथा ऑक्सीकरण-संख्या विधि (क्षारीय माध्यम में) द्वारा संतुलित कीजिए तथा इनमें ऑक्सीकरण और अपचायकों की पहचान कीजिए—

(क) $P_4(s) + OH^-(aq) \rightarrow PH_3(g) + HPO_2^-(aq)$

(ख) $N_2H_4(l) + ClO_3^-(aq) \rightarrow NO(g) + Cl^-(g)$

(ग) $Cl_2O_7(g) + H_2O_2(aq) \rightarrow ClO_2^-(aq) + O_2(g) + H^+$
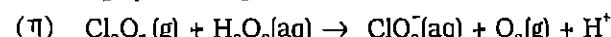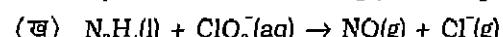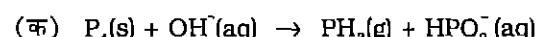
8.20 निम्नलिखित अभिक्रिया से आप कौन सी सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं—

$(CN)_2(g) + 2OH^-(aq) \rightarrow CN^-(aq) + CNO^-(aq) + H_2O(l)$

8.21 Mn^{3+} आयन विलयन में अस्थायी होता है तथा असमानुपातन द्वारा Mn^{2+}, MnO_2 और H^+ आयन देता है। इस अभिक्रिया के लिए संतुलित आयनिक समीकरण लिखिए—

8.22 Cs, Ne, I, तथा F में ऐसे तत्त्व की पहचान कीजिए, जो

(क) केवल ऋणात्मक ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करता है।

(ख) केवल धनात्मक ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करता है।

(ग) ऋणात्मक तथा धनात्मक दोनों ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करता है।

(घ) न ऋणात्मक और न ही धनात्मक ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करता है।

8.23 जल के शुद्धिकरण में क्लोरीन को प्रयोग में लाया जाता है। क्लोरीन की अधिकता हानिकारक होती है। सल्फरडाइऑक्साइड से अभिक्रिया करके इस अधिकता को दूर किया जाता है। जल में होने वाले इस अपचयोपचय परिवर्तन के लिए संतुलित समीकरण लिखिए।

8.24 इस पुस्तक में दी गई आवर्त सारणी की सहायता से निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

(क) संभावित अधातुओं के नाम बताइए, जो असमानुपातन की अभिक्रिया प्रदर्शित कर सकती हों।

(ख) किन्हीं तीन धातुओं के नाम बताइए, जो असमानुपातन अभिक्रिया प्रदर्शित कर सकती हों।

8.25 नाइट्रिक अम्ल निर्माण की ओस्टवाल्ड विधि के प्रथम पद में अमोनिया गैस के ऑक्सीजन गैस द्वारा ऑक्सीकरण से नाइट्रिक ऑक्साइड गैस तथा जलवाष्प बनती है। 10.0 ग्राम अमोनिया तथा 20.00 ग्राम ऑक्सीजन द्वारा नाइट्रिक ऑक्साइड की कितनी अधिकतम मात्रा प्राप्त हो सकती है?

8.26 सारणी 8.1 में दिए गए मानक विभवों की सहायता से अनुमान लगाइए कि क्या इन अभिकारकों के बीच अभिक्रिया संभव है?

(क) Fe^{3+} तथा I^-(aq)

(ख) Ag^+ तथा Cu(s)

(ग) Fe^{3+}(aq) तथा Br^-(aq)

(घ) Ag(s) तथा Fe^{3+}(aq)

(ङ) Br_2(aq) तथा Fe^{2+}

8.27 निम्नलिखित में से प्रत्येक के विद्युत्-अपघटन से प्राप्त उत्पादों के नाम बताइए–

(क) सिल्वर इलेक्ट्रोड के साथ $AgNO_3$ का जलीय विलयन

(ख) प्लैटिनम इलेक्ट्रोड के साथ $AgNO_3$ का जलीय विलयन

(ग) प्लैटिनम इलेक्ट्रोड के साथ H_2SO_4 का तनु विलयन

(घ) प्लैटिनम इलेक्ट्रोड के साथ $CuCl_2$ का जलीय विलयन

2.28 निम्नलिखित धातुओं को उनके लवणों के विलयन में से विस्थापन की क्षमता के क्रम में लिखिए–

Al, Cu, Fe, Mg तथा Zn

2.29 नीचे दिए गए मानक इलेक्ट्रोड विभवों के आधार पर धातुओं को उनकी बढ़ती अपचायक क्षमता के क्रम में लिखिए–

$K^+/K = -2.93V$, $Ag^+/Ag = 0.80V$,

$Hg^{2+}/Hg = 0.79V$

Mg2+/Mg = −2.37V, $Cr^{3+}/Cr = -0.74V$

8.30 उस गैल्वेनी सेल को चित्रित कीजिए, जिसमें निम्नलिखित अभिक्रिया होती है–

$Zn(s) + 2Ag^+(aq) \rightarrow Zn^{2+}(aq) + 2Ag(s)$

अब बताइए कि–

(क) कौन सा इलेक्ट्रोड ऋण आवेशित है?

(ख) सेल में विद्युत्धारा के वाहक कौन हैं?

(ग) प्रत्येक इलेक्ट्रोड पर होने वाली अभिक्रियाएँ क्या हैं?

हाइड्रोजन
HYDROGEN

हाइड्रोजन ब्रह्मांड में अतिबहुल तत्व है। पृथ्वी की सतह पर अतिबहुलता के क्रम में यह तीसरे स्थान पर है। यह भविष्य में ऊर्जा के प्रमुख स्रोत के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप–

- आवर्त सारणी में हाइड्रोजन की स्थिति की ज्ञात धारणाओं को बता सकेंगे;
- हाइड्रोजन के लघु तथा व्यापारिक स्तर पर बनाने की विधियों का तथा उनके समस्थानिकों का वर्णन कर सकेंगे;
- डाइहाइड्रोजन किस प्रकार विभिन्न तत्वों से संयुक्त होकर आयनिक, आण्विक तथा अरसमीकरणमितीय यौगिकों को बनाती है, इसे समझ सकेंगे;
- इसके गुणों की समझ के आधार पर उपयोगी पदार्थों तथा नयी तकनीकों के उत्पादन का वर्णन कर सकेंगे;
- वातावरणीय जल की गुणवत्ता किस प्रकार विभिन्न विलेय पदार्थों पर निर्भर करती है, यह समझा सकेंगे। साथ ही कठोर और मृदु जल में अंतर कर सकेंगे तथा जल के मृदुकरण को समझ सकेंगे;
- भारी जल और उसके महत्त्व के संबंध में ज्ञान अर्जित कर सकेंगे;
- हाइड्रोजन परॉक्साइड की संरचना समझ सकेंगे तथा इसे बनाने की विधियों और इसके गुणों के आधार पर उपयोगी रसायनों के उत्पादन तथा पर्यावरण की स्वच्छता को समझ सकेंगे;
- इलेक्ट्रॉन-न्यून, इलेक्ट्रॉन-परिशुद्ध, इलेक्ट्रॉन-समृद्ध, हाइड्रोजनीकरण, हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था इत्यादि पदों को समझ सकेंगे तथा इनका उपयोग कर पाएँगे;
- जल की संरचना के आधार पर उसके भौतिक तथा रासायनिक गुणों का वर्णन कर सकेंगे।

प्रकृति में समस्त ज्ञात तत्वों में हाइड्रोजन की परमाणु-संरचना सरलतम है। इसके परमाणु में एक प्रोट्रॉन तथा एक इलेक्टॉन होता है। तात्विक हाइड्रोजन का अस्तित्व द्विपरमाणुक H_2 अणु के रूप में है, जिसे डाइहाइड्रोजन (H_2) कहते हैं। क्या आप यह जानते हैं कि हाइड्रोजन अन्य तत्वों की तुलना में अधिक यौगिक बनाते हैं? हाइड्रोजन का उपयोग ऊर्जा-स्रोत के रूप में करके अत्यधिक स्तर तक सार्वभौमिक ऊर्जा की पूर्ति की जा सकती है। इस एकक में आप हाइड्रोजन के औद्योगिक महत्त्व के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।

9.1 आवर्त सारणी में हाइड्रोजन का स्थान

हाइड्रोजन आवर्त सारणी का प्रथम तत्व है, यद्यपि आवर्त सारणी में हाइड्रोजन का उचित स्थान विवेचना का विषय रहा है। जैसा आप जानते हैं, आवर्त सारणी में तत्व इलेक्ट्रॉनिक विन्यास के आधार पर व्यवस्थित रहते हैं।

हाइड्रोजन का इलेक्ट्रॉनिक विन्यास $1s^1$ है। एक तरफ इसका बाह्यतम इलेक्ट्रॉनिक विन्यास क्षार धातुओं (ns^1) के समान होता है, जो आवर्त सारणी के प्रथम वर्ग से संबंधित है, जबकि दूसरी तरफ हैलोजनों की भाँति ($ns^2\ np^5$ इलेक्ट्रॉनिक विन्यास के साथ आवर्त सारणी के सत्रहवें वर्ग से संबंधित है) जो संगत उत्कृष्ट गैस विन्यास से एक इलेक्ट्रॉन कम है। इस प्रकार हाइड्रोजन क्षार धातुओं से समानता दर्शाता है, जो एक इलेक्ट्रॉन त्यागकर एकधनीय आयन बनाते हैं। साथ ही यह हैलोजन की भाँति एक इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर एकऋणीय आयन बनाता है। क्षार धातुओं के समान हाइड्रोजन, ऑक्साइड, हैलाइड एवं सल्फाइड बनाता है, यद्यपि सामान्य परिस्थितियों में इसकी क्षार धातुओं के विपरीत उच्च आयनन एंथैल्पी होती है एवं धात्विक अभिलक्षण नहीं दर्शाता है। यथार्थ में *आयनन ऊर्जा के पदों में हाइड्रोजन हैलोजन से अधिक समानता दर्शाता है।* Li की ΔH 520 kJ mol^{-1}, F की 1680 kJ mol^{-1} एवं H की 1312 kJ mol^{-1}।

यह हैलोजेन के समान द्विपरमाणवीय अणु तथा विभिन्न तत्वों से संयुक्त होकर हाइड्राइड एवं बहुत से सहसंयोजी यौगिक बनाता है। क्रियाशीलता के आधार पर यह हैलोजनों की तुलना में कम सक्रिय है।

कुछ सीमा तक क्षार धातुओं एवं हैलोजनों से समानता दर्शाने के बावजूद उनसे असमानताएँ भी दर्शाता है। अब प्रासंगिक प्रश्न यह है कि इसे आवर्त सारणी में कहाँ रखा जाए? हाइड्रोजन से इलेक्ट्रॉन का परित्याग कर नाभिक (H^+) देता है, जिसका आकार ~ 1.5×10^{-3}pm है, जो सामान्य परमाणवीय एवं आयनिक आकार 50 से 200 pm की तुलना में बहुत कम है। परिणामत: H^+ स्वतंत्र अवस्था में नहीं मिलता है एवं दूसरे परमाणुओं या अणुओं से संयुक्त रहता है। अत: इसके अद्वितीय व्यवहार के कारण इसे आवर्त सारणी में अलग रखा गया है (एकक-3)।

9.2 डाइहाइड्रोजन (H_2)

9.2.1 प्राप्ति

डाइहाइड्रोजन ब्रह्मांड में अतिबाहुल्य तत्व (ब्रह्मांड के संपूर्ण द्रव्यमान का 70 प्रतिशत) है तथा यह सौरवायुमंडल का प्रमुख तत्व है। बड़े ग्रहों–बृहस्पति (Jupiter) तथा शनि (Saturn) में अधिकांशत: हाइड्रोजन होती है, हालाँकि अपनी हलकी प्रकृति के कारण यह पृथ्वी के वायुमंडल में कम मात्रा (द्रव्यमानानुसार लगभग 0.15 प्रतिशत) में पाया जाती है। संयुक्त अवस्था में हाइड्रोजन तत्व भू-पर्पटी तथा महासागर में 15.4 प्रतिशत भाग का निर्माण करता है। संयुक्त अवस्था में जल के अतिरिक्त यह पादप तथा जंतु-ऊतकों, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, हाइड्राइड, हाइड्रोकार्बन और कई अन्य यौगिकों में पाया जाता है।

9.2.2 हाइड्रोजन के समस्थानिक

हाइड्रोजन के तीन समस्थानिक **प्रोटियम** (^1_1H), **ड्यूटीरियम** (^2_1H या D) तथा **ट्राइटियम** (^3_1H या T) होते हैं। क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि ये समस्थानिक एक-दूसरे से कैसे भिन्न होते हैं? ये तीनों समस्थानिक से न्यूट्रॉन की संख्या के आधार पर एक-दूसरे भिन्न होते हैं। सामान्य हाइड्रोजन (प्रोटियम) में कोई न्यूट्रॉन नहीं है। ड्यूटीरियम (जिसे 'भारी हाइड्रोजन' भी कहा जाता है) में एक तथा ट्राइटियम के नाभिक में दो न्यूट्रॉन होते हैं। सन् 1934 में एक अमेरिकी वैज्ञानिक हेरॉल्ड सी. यूरे को भौतिक विधियों द्वारा 2 परमाणु द्रव्यमान वाले हाइड्रोजन के समस्थानिक का पृथक्करण करने पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

हाइड्रोजन का प्रमुख समस्थानिक प्रोटियम है। ड्यूटीरियम लौकिक हाइड्रोजन में 0.0156 प्रतिशत तक मुख्यत: HD के रूप में निहित है। ट्राइटियम की सांद्रता लगभग 10^{18} प्रोटियम परमाणुओं में एक ट्राइटियम के परमाणु की है। इन समस्थानिकों में से केवल ट्राइटियम रेडियो सक्रिय ($t_{1/2} = 12.33$ वर्ष) है तथा न्यून ऊर्जा वाले β कणों को उत्सर्जित करता है।

चूँकि समस्थानिकों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास समान हैं, इसलिए इनके रासायनिक गुण भी लगभग समान हैं। इनकी केवल अभिक्रिया की गति मुख्य रुप से अपने विभिन्न बंध -वियोजन एंथैल्पी के कारण भिन्न होती है (सारणी 9.1) तथापि भौतिक गुणों में ये समस्थानिक परमाणु-भार में अंतर के कारण भिन्नता दर्शाते हैं।

9.3 डाइहाइड्रोजन बनाने की विधियाँ (H_2)

धातुओं तथा धातु हाइड्राइडों से डाइहाइड्रोजन बनाने की अनेक विधियाँ हैं।

9.3.1 डाइहाइड्रोजन बनाने की प्रयोगशाला विधि–

(i) सामान्यत: यह दानेदार जिंक की तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अभिक्रिया करके बनाई जाती है–

$$Zn(s) + 2H^+(aq) \rightarrow Zn^{2+}(aq) + H_2(g)$$
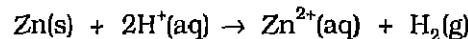
(ii) यह जिंक धातु की जलीय क्षार के साथ अभिक्रिया करके भी बनाई जाती है–

$$Zn(s) + 2NaOH(aq) \rightarrow \underset{\text{सोडियम जिंकेट}}{Na_2ZnO_2(aq)} + H_2(g)$$
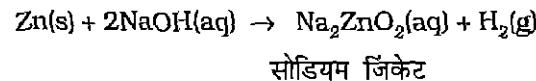
9.3.2 डाइहाइड्रोजन का व्यापारिक उत्पादन

इसके लिए प्रयुक्त साधारण प्रक्रमों की रूपरेखा नीचे दी जा रही है–

(i) प्लैटिनम इलेक्ट्रॉड का उपयोग कर अम्लीय जल के विद्युत्-अपघटन से डाइहाइड्रोजन प्राप्त की जाती है।

$$2H_2O(l) \xrightarrow[\text{अल्प मात्रा में अम्ल/क्षार}]{\text{विद्युत् अपघटन}} 2H_2(g) + O_2(g)$$
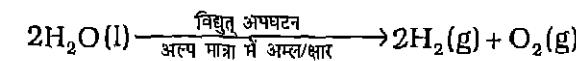
(ii) अति शुद्ध हाइड्रोजन (> 99.95%) निकैल इलेक्ट्रोडों के बीच रखे गए बेरियम हाइड्रॉक्साइड के जलीय विलयन को गरम अवस्था में विद्युत्-अपघटन कराकर प्राप्त की जाती है।

(iii) ब्राइन विलयन के विद्युत्-अपघटन द्वारा क्लोरीन तथा सोडियम हाइड्रॉक्साइड के औद्योगिक निर्माण में डाइहाइड्रोजन उप-उत्पाद (by-product) के रूप में प्राप्त होता है। विद्युत्-अपघटन में होने वाली अभिक्रियाएँ हैं–

एनोड पर : $2\ Cl^-(aq) \rightarrow Cl_2(g) + 2e^-$

कैथोड पर : $2H_2O\ (l)\ 2e^- \rightarrow H_2(g) + 2OH^-(aq)$

कुल अभिक्रिया : $2Na^+(aq) + 2\ Cl^-(aq) + 2H_2O(l)$

$\rightarrow Cl_2(g) + H_2(g) + 2Na^+(aq) + 2OH^-$ है।
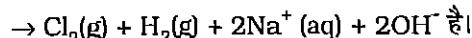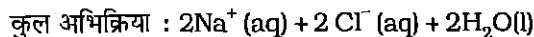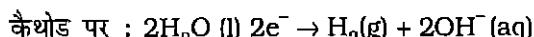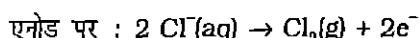
(iv) हाइड्रोकार्बन अथवा कोक की उच्च ताप पर एवं उत्प्रेरक की उपस्थिति में भाप से अभिक्रिया कराने पर डाइहाइड्रोजन प्राप्त होती है।

$$C_nH_{2n+2} + nH_2O \xrightarrow[Ni]{1270K} nCO + (3n+1)H_2$$

उदाहरणस्वरूप–

$$CH_4(g) + H_2O(g) \xrightarrow[Ni]{1270K} CO(g) + 3H_2(g)$$
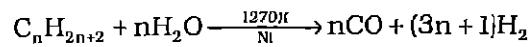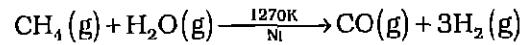
CO एवं H_2 के मिश्रण को **वाटर गैस** कहते हैं। CO एवं H_2 का यह मिश्रण मेथेनॉल तथा अन्य कई हाइड्रोकार्बनों के संश्लेषण में काम आता है। अत: इसे 'संश्लेषण गैस' या 'सिन्गैस' (Syngas) भी कहते हैं। आजकल सिन्गैस वहितमल (Sewage waste), अखबार, लकड़ी का बुरादा, लकड़ी की छीलन आदि से प्राप्त की जाती है। कोल से सिन्गैस का उत्पादन करने की प्रक्रिया को 'कोलगैसीकरण' (Coal-gasification) कहते हैं–

$$C(s) + H_2O(g) \xrightarrow{1270K} CO(g) + H_2(g)$$
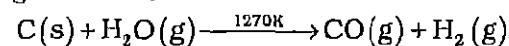
सिन्गैस में उपस्थित कार्बन मोनोऑक्साइड को आयरन क्रोमेट उत्प्रेरक की उपस्थिति में भाप से क्रिया कराने पर डाइहाइड्रोजन का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है–

$$CO(g) + H_2O(g) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{673K} CO_2(g) + H_2(g)$$
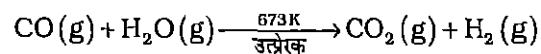
यह भाप 'अंगार गैस सृति-अभिक्रिया' (Water gas shift reaction) कहलाती है। वर्तमान में ~77 प्रतिशत डाइहाइड्रोजन का औद्योगिक उत्पादन शैल रसायनों (Petro-chemicals), 18 प्रतिशत कोल, 4 प्रतिशत जलीय विलयनों के विद्युत्-अपघटन तथा 1 प्रतिशत उत्पादन अन्य स्रोतों से होता है।

9.4 डाइहाइड्रोजन के गुण

9.4.1 भौतिक गुण

डाइहाइड्रोजन एक रंगहीन, गंधहीन तथा स्वादहीन दहनशील गैस होती है। यह वायु से हलकी तथा जल में अघुलनशील है। इनके तथा ड्यूटीरियम के अन्य भौतिक गुण सारणी 9.1 में दिए गए हैं।

9.4.2 रासायनिक गुण

डाइहाइड्रोजन अथवा (किसी भी अणु) का रासायनिक व्यवहार काफी हद तक बंध वियोजन एंथैल्पी द्वारा निर्धारित किया जाता है। H–H बंध वियोजन एंथैल्पी किसी तत्त्व के दो परमाणुओं के एकल बंध के लिए अधिकतम है। इस तथ्य से आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं? यह इस कारक के कारण है कि

सारणी 9.1 हाइड्रोजन के समस्थानिकों के परमाण्विक तथा भौतिक गुण

गुण	हाइड्रोजन (H)	ड्यूटीरियम (D)	ट्राइटियम (T)
सापेक्षिक बहुतायत (%)	99.985	0.0156	10^{-15}
सापेक्षिक परमाणु-भार/$g\ mol^{-1}$	1.008	2.014	3.016
गलनांक/K	13.96	18.73	20.62
क्वथनांक/K	20.39	23.67	25.00
घनत्व/$g\ L^{-1}$	0.09	0.18	0.27
संलयन एंथैल्पी/$kJ\ mol^{-1}$	0.117	0.197	-
वाष्पन एंथैल्पी/$kJ\ mol^{-1}$	0.904	1.226	-
बंध-वियोजन एंथैल्पी ($kJ\ mol^{-1}$) 298.2 K पर	435.88	443.35	-
अंतरानाभिक दूरी/pm	74.14	74.14	-
आयनन एंथैल्पी/$kJ\ mol^{-1}$	1312	-	-
इलेक्ट्रॉन-ग्रहण एंथैल्पी/$kJ\ mol^{-1}$	-73	-	-
सहसंयोजक त्रिज्या/pm	37	-	-
आयनिक त्रिज्या (H^-)/pm	208	-	-

डाइहाइड्रोजन का इसके परमाणुओं में वियोजन केवल 2000 K के ऊपर लगभग 0.081 प्रतिशत ही होता है, जो 5000 K पर बढ़कर 95.5 प्रतिशत तक पहुँच जाता है। उच्च H–H बंध एंथैल्पी के कारण कक्ष ताप पर डाइहाइड्रोजन अपेक्षाकृत निष्क्रिय है। अतः विद्युत् आर्क या पराबैंगनी विकिरणों द्वारा परमाण्विक हाइड्रोजन का उत्पादन किया जाता है। चूँकि इसका एक कक्षक $1s^1$ इलेक्ट्रॉनिक विन्यास के साथ अपूर्ण है, अतः यह लगभग सभी तत्वों के साथ संयोग करता है। डाइहाइड्रोजन अभिक्रियाओं में– (i) एक इलेक्ट्रॉन का परित्याग कर H^+ देता है। (ii) एक इलेक्ट्रॉन ग्रहण करके H^- आयन बनाता है। (iii) इलेक्ट्रॉन का साझा करके एकल सहसंयोजक बंध बनाता है।

डाइहाड्रोजन का रसायन निम्नलिखित अभिक्रियाओं द्वारा स्पष्ट किया जाता है–

हैलोजेन के साथ अभिक्रिया : डाइहाइड्रोजन हैलोजेन के साथ अभिक्रिया करके हाइड्रोजन हैलाइड देते हैं–

$$H_2(g) + X_2(g) \rightarrow 2HX(g) \quad (X = F, Cl, Br, I)$$
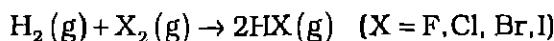
फ्लुओरीन की अभिक्रिया अँधेरे में भी हो सकती है। आयोडीन के साथ उत्प्रेरक की आवश्यकता पड़ती है।

डाइऑक्सीजन के साथ अभिक्रिया : यह डाइऑक्सीजन के साथ अभिक्रिया करके जल बनाता है। यह अभिक्रिया प्रबल ऊष्माक्षेपी (Exothermic) है–

$$2H_2(g) + O_2(g) \xrightarrow{\text{उत्प्रेरक अथवा ताप}} 2H_2O(l); \quad \Delta H^\ominus = -285.9 \text{ kJ mol}^{-1}$$
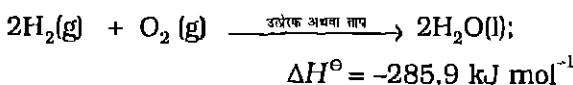
डाइनाइट्रोजन के साथ अभिक्रिया : डाइनाइट्रोजन के साथ अभिक्रिया करके अमोनिया बनाती है–

$$3H_2(g) + N_2(g) \xrightarrow[\text{Fe}]{673K, 200atm} 2NH_3(g); \quad \Delta H^\ominus = -92.6 \text{ kJ mol}^{-1}$$
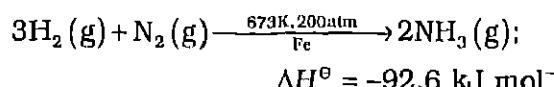
अमोनिया को व्यापारिक मात्रा में इस विधि से हाबर प्रक्रम द्वारा बनाया जाता है।

धातुओं के साथ क्रिया : डाइहाइड्रोजन उच्च ताप पर कई धातुओं के साथ क्रिया करके संगत हाइड्राइड देता है (अनुभाग 9.5)।

$H_2(g) + 2M(g) \rightarrow 2MH(s)$; जहाँ M क्षारीय धातु है।
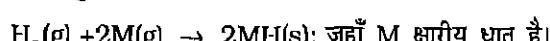
धातु आयन तथा धातु ऑक्साइड के साथ अभिक्रिया : डाइहाइड्रोजन कुछ धातु आयनों को जलीय विलयन तथा उनके धातु (आयरन से कम क्रियाशील) ऑक्साइड से अभिक्रिया करके संगत धातुओं में अपचयित कर देती है–

$$H_2(g) + Pd^{2+}(aq) \rightarrow Pd(s) + 2H^+(aq)$$

$$yH_2(g) + M_xO_y(s) \rightarrow xM(s) + yH_2O(l)$$
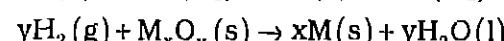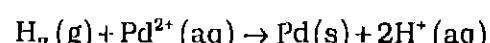
कार्बनिक यौगिकों के साथ अभिक्रिया : उत्प्रेरकों की उपस्थिति में डाइहाइड्रोजन कार्बनिक यौगिकों से अभिक्रिया करके कई महत्त्वपूर्ण औद्योगिक हाइड्रोजनीकृत उत्पाद बनाती है। उदाहरणार्थ–

(i) वनस्पति तेलों को निकैल उत्प्रेरक की उपस्थिति में हाइड्रोजनीकरण कराने पर खाद्य वसा (मार्गरीन तथा वनस्पति घी) प्राप्त होता है।

(ii) ओलिफीन का हाइड्रोफॉर्मिलीकरण कराने पर ऐल्डिहाइड प्राप्त होता है, जो आगे एल्कोहॉल में अपचयित हो जाता है–

$$H_2 + CO + RCH = CH_2 \rightarrow RCH_2CH_2CHO$$

$$H_2 + RCH_2CH_2CHO \rightarrow RCH_2CH_2CH_2OH$$
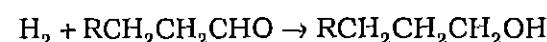
उदाहरण 9.1

निम्नलिखित से डाइहाइड्रोजन की अभिक्रिया पर टिप्पणी कीजिए-

(i) क्लोरीन (ii) सोडियम (iii) कॉपर (II) ऑक्साइड

हल

(i) डाइहाइड्रोजन क्लोरीन को क्लोराइड (Cl^-) आयन में अपचयित करती है तथा स्वयं क्लोरीन द्वारा ऑक्सीकृत होकर हाइड्रोजन आयन (H^+) हाइड्रोक्लोराइड के रूप में बनाती है। H एवं Cl के मध्य एक इलेक्ट्रॉन युग्म का साझा होकर एक सहसंयोजक अणु बनता है।

(ii) डाइहाइड्रोजन सोडियम के द्वारा अपचयित होकर सोडियम हाइड्राइड बनाता है। एक इलेक्ट्रॉन सोडियम से हाइड्रोजन पर स्थानांतरित होकर आयनिक $Na^+ H^-$ का निर्माण करता है।

(iii) डाइहाइड्रोजन कॉपर (II) ऑक्साइड को कॉपर की शून्य ऑक्सीकरण अवस्था में अपचयित कर देती है और स्वयं जल, जो एक सहसंयोजक अणु है, में ऑक्सीकृत हो जाती है।

9.4.3 डाइहाइड्रोजन के अनुप्रयोग

- डाइहाइड्रोजन का एकल बृहद् अनुप्रयोग अमोनिया के संश्लेषण में होता है, जो नाइट्रिक अम्ल तथा नाइट्रोजनी उर्वरक उत्पादन में काम आता है।

- डाइहाइड्रोजन का उपयोग बहुअसंतृप्त वनस्पति तेलों (जैसे– सोयाबीन, बिनौला आदि) से वनस्पति वसा के उत्पादन में होता है।
- डाइहाइड्रोजन का उपयोग अनेक कार्बनिक रसायनों, मुख्यतः मेथेनॉल के उत्पादन में होता है–

$$CO(g) + 2H_2(g) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{\text{कोबाल्ट}} CH_3OH(l)$$

- डाइहाइड्रोजन का उपयोग धात्विक हाइड्राइड के निर्माण में होता है। (खण्ड-9.5)
- डाइहाइड्रोजन का उपयोग अति उपयोगी रसायन (जैसे– हाइड्रोजन क्लोराइड) के निर्माण में होता है।
- धातुकर्म प्रक्रमों में डाइहाइड्रोजन का उपयोग भारी धातु ऑक्साइडों को धातु में अपचयित करने में होता है।
- परमाण्विक हाइड्रोजन तथा ऑक्सी-हाइड्रोजन टॉर्च का उपयोग कर्तन तथा वेल्डिंग में होता है। परमाण्विक हाइड्रोजन परमाणु (जो विद्युत् आर्क की सहायता से डाइहाइड्रोजन के वियोजन से बनते हैं) का पुनर्संयोग वेल्डिंग की जाने वाली धातुओं की सतह पर लगभग 4000 K तक ताप पैदा कर देता है।
- डाइहाइड्रोजन का उपयोग अंतरिक्ष अनुसंधान में रॉकेट ईंधन के रूप में किया जाता है।
- डाइहाइड्रोजन का उपयोग ईंधन सेलों में विद्युत् उत्पादन के लिए किया जाता है। परंपरागत जीवाश्मी ईंधन और विद्युत् शक्ति की तुलना में हाइहाड्रोजन का प्रयोग ईंधन के रूप में करने से अनेक लाभ होते हैं। यह ईंधन प्रदूषण मुक्त है और पेट्रोल तथा अन्य ईंधन की तुलना में इकाई द्रव्यमान से अधिक ऊर्जा मुक्त करता है।

9.5 हाइड्राइड

डाइहाइड्रोजन निश्चित परिस्थितियों में उत्कृष्ट गैसों के अलावा लगभग सभी तत्वों के साथ संयोग करके द्विअंगी यौगिक बनाती हैं, जिन्हें **हाइड्राइड** कहते हैं। अगर E किसी तत्व का प्रतीक है, तो हाइड्राइड को EH_x (उदाहरणस्वरूप- MgH_2) या E_mH_n, (उदाहरणस्वरूप- B_2H_6) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

हाइड्राइडों को तीन विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–

(i) आयनिक या लवणीय या लवण-समान हाइड्राइड (Saline Hydride)

(ii) सहसंयोजक या आण्विक हाइड्राइड (Molecular Hydride)

(iii) धात्विक या अरससमीकरणमितीय हाइड्राइड (Non-stoichometric Hydride)

9.5.1 आयनिक या लवणीय हाइड्राइड

s ब्लॉक के अधिकांश तत्व, जो उच्च विद्युत् धनीय प्रकृति के होते हैं, डाइहाइड्रोजन के साथ रससमीकरणमितीय यौगिक बनाते हैं। यद्यपि हलके धात्विक हाइड्राइड (जैसे LiH, BeH_2 *तथा* MgH_2) *में सार्थक सहसंयोजक गुण पाया जाता है।* वस्तुतः LiH, BeH_2 तथा MgH_2 में सहसंयोजी बहुलक (Polymeric) संरचना होती है। आयनिक हाइड्राइड ठोस अवस्था में क्रिस्टलीय, अवाष्पशील तथा ठोस अवस्था में अचालक होते हैं, तथापि क्षार-धातुओं के गलित हाइड्राइड विद्युत् का चालन करते हैं और विद्युत्-अपघटन द्वारा डाइहाइड्रोजन एनोड पर मुक्त होती है, जो हाइड्राइड H^- आयन के अस्तित्व की पुष्टि करता है।

$$2H^- \text{ गलित} \xrightarrow{\text{एनोड}} H_2(g) + 2e^-$$
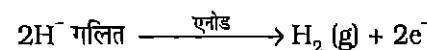
लवणीय हाइड्राइड जल के साथ विस्फोटीय रूप से अभिक्रिया करके डाइहाइड्रोजन गैस देते हैं–

$$NaH(s) + H_2O(aq) \rightarrow NaOH(aq) + H_2(g)$$
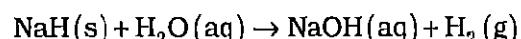
लिथियम हाइड्राइड साधारण ताप पर O_2 एवं Cl_2 के साथ अक्रियाशील है। अतः इसका उपयोग अन्य उपयोगी हाइड्राइड बनाने में किया जाता है। उदाहरणस्वरूप–

$$8LiH + Al_2Cl_6 \rightarrow 2LiAlH_4 + 6LiCl$$
$$2LiH + B_2H_6 \rightarrow 2LiBH_4$$
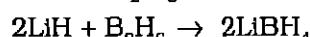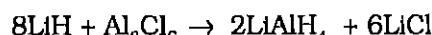
9.5.2 सहसंयोजक या आण्विक हाइड्राइड

डाइहाइड्रोजन अधिकांश *p*-ब्लॉक के तत्वों के साथ संयुक्त होकर आण्विक यौगिक बनाती है। इसके कुछ सुपरिचित उदाहरण CH_4, NH_3, H_2O तथा HF हैं। सुविधा के लिए अधातुओं के हाइड्रोजन यौगिकों को भी हाइड्राइड माना गया है। सहसंयोजक होने के कारण ये वाष्पशील यौगिक हैं।

आण्विक हाइड्राइड का पुनः वर्गीकरण उनके लूइस संरचना (Lewis structure) में आपेक्षिक इलेक्ट्रॉन की संख्या तथा आबंधों की संख्या पर किया गया है–

(i) इलेक्ट्रॉन न्यून (Electron-defecient)

(ii) इलेक्ट्रॉन परिशुद्ध (Electron-precise)

(iii) इलेक्ट्रॉन समृद्ध (Electron-rich)

इलेक्ट्रॉन न्यून हाइड्राइड, जैसा नाम से पता चलता है, परंपरागत लूइस-संरचना लिखने के लिए इनमें इलेक्ट्रॉन की संख्या अपर्याप्त होती है। इसका उदाहरण डाइबोरेन (B_2H_6) है। वस्तुतः आवर्त सारणी के 13वें वर्ग के सभी तत्व इलेक्ट्रॉन न्यून यौगिक बनाते हैं। आप इनके व्यवहार से क्या अपेक्षा रखते हैं? ये लूइस अम्ल की भाँति कार्य करते हैं। ये इलेक्ट्रॉनग्राही होते हैं।

इलेक्ट्रॉन परिशुद्ध हाइड्राइड में परंपरागत लूइस-संरचना के लिए आवश्यक इलेक्ट्रॉन की संख्या होती है। आवर्त सारणी के 14वें वर्ग के सभी तत्व इस प्रकार के यौगिक (जैसे– CH_4) बनाते हैं, जो चतुष्फलकीय ज्यामिति के होते हैं।

इलेक्ट्रॉन समृद्ध हाइड्राइड इलेक्ट्रॉन आधिक्य एकांकी इलेक्ट्रॉन युग्म के रूप में उपस्थित होते हैं। आवर्त सारणी के 15वें से 17वें वर्ग तक के तत्व इस प्रकार के यौगिक बनाते हैं– (NH_3 में एकांकी युग्म, H_2O में दो तथा HF में तीन एकांकी युग्म होते हैं)। आप इनके व्यवहार से क्या अपेक्षा रखते हैं? ये लूइस क्षार के रूप में व्यवहार करते हैं। ये इलेक्ट्रॉनदाता होते हैं। उच्च विद्युत्-ऋणात्मकता वाले परमाणु, जैसे– नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा फ्लूओरीन के हाइड्राइड पर एकांकी इलेक्ट्रॉन युग्म होने के कारण अणुओं में हाइड्रोजन बंध बनता है, जिनके कारण अणुओं में संगुणन होता है।

उदाहरण 9.2

क्या आप यह अपेक्षा करते हैं कि N,O तथा F के हाइड्राइडों के क्वथनांक उनके वर्ग के संगत सदस्यों के हाइड्राइडों से निम्न होते हैं? कारण बताइए।

हल

NH_3, H_2O तथा HF के आण्विक भारों के आधार पर इनके क्वथनांक संगत सदस्यों के हाइड्राइडों से कम होने चाहिए, परंतु N,O,F की उच्च विद्युतऋणता के कारण हाइड्राइडों में हाइड्रोजन बंध बनाने की क्षमता उल्लेखनीय है। अतः NH_3, H_2O तथा HF के क्वथनांक उनके वर्ग के सदस्यों से उच्च होते हैं।

9.5.3 धात्विक या अरससमीकरणमितीय (या अंतराकाशी) हाइड्राइड

ये अधिकांश *d*-ब्लॉक तथा *f*-ब्लॉक के तत्वों से बनते हैं, हालाँकि सातवें, आठवें तथा नौवें वर्ग की धातुएँ इस प्रकार के हाइड्राइड नहीं बनाती है, छठे वर्ग में केवल क्रोमियम ही CrH हाइड्राइड बनाता है। इस प्रकार के हाइड्राइड ऊष्मा एवं विद्युत् का चालन करते हैं, किंतु उनकी चालकता जनक धातु की तरह कार्यक्षम नहीं हैं। हाइड्रोजन की न्यूनता के कारण लवणीय हाइड्राइड के विषम ये हमेशा अरससमीकरणमितीय होते हैं। उदाहरणस्वरूप– $LaH_{2.87}$, $YbH_{2.55}$, $TiH_{1.5-1.8}$, $ZrH_{1.3-1.75}$, $VH_{0.56}$, $NiH_{0.6-0.7}$, $PdH_{0.6-0.8}$ आदि। ऐसे हाइड्राइड्रो में स्थित संगठन का नियम लागू नहीं होता है।

पूर्व में यह सोचा जाता था कि इन हाइड्राइडों के धातु-जालक में हाइड्रोजन अंतराकाशी स्थिति ग्रहण करते हैं, जिससे इनमें बिना किसी परिवर्तन की विकृति उत्पन्न होती है। फलतः इन्हें 'अंतराकाशी हाइड्राइड' कहा गया, यद्यपि बाद में अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि Ni, Pd, Ce एवं Ac के हाइड्राइड को छोड़कर इस वर्ग के अन्य हाइड्राइड अपने जनक धातु की तुलना में भिन्न जालक रखते हैं। संक्रमण धातुओं पर हाइड्रोजन के अवशोषण के गुण को उत्प्रेरकीय अपचयन अथवा हाइड्रोजनीकरण अभिक्रियाओं द्वारा अनेक यौगिक बनाने में बृहद् रूप से प्रयुक्त होता है। कुछ धातुएँ (जैसे– Pd एवं Pt) हाइड्रोजन के बृहद् आयतन को समायोजित कर सकती हैं। अतः इन्हें भंडारण-माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। **हाइड्रोजन भंडारण** एवं **ऊर्जा-स्रोत** के रूप में इस गुण के प्रयोग की प्रबल संभावना है।

उदाहरण 9.3

क्या फॉस्फोरस बाह्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास $3s^2 3p^3$ के आधार पर PH_5 बनाएगा?

हल

यद्यपि फॉस्फोरस +3 तथा +5 ऑक्सीकरण अवस्था दर्शाता है, तथापि यह PH_5 नहीं बनाता है। कुछ अन्य तथ्यों के अतिरिक्त डाइहाइड्रोजन के उच्च Δ_a तथा $\Delta_{eg}H$ मान P को सर्वोच्च ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करने तथा फलस्वरूप pH_5 के विरचन का समर्थन नहीं करते।

9.6 जल

सभी सजीवों का एक बृहद् भाग जल द्वारा निर्मित है। मानव शरीर में लगभग 65 प्रतिशत एवं कुछ पौधों में लगभग 95 प्रतिशत जल होता है। जीवों को जीवित रखने के लिए जल एक महत्त्वपूर्ण यौगिक है। यह एक अतिमहत्त्वपूर्ण विलायक है। पृथ्वी की सतह पर जल का वितरण एक समान नहीं है। विश्व की आकलित जल-आपूर्ति सारणी 9.2 में दी गई है–

सारणी 9.2 विश्व की आकलित जल-आपूर्ति

स्रोत	संपूर्ण % मात्रा
महासागर (Oceans)	97.33
खारी झील (Saline lakes) तथा अंत:स्थलीय समुद्र (Inland sea)	0.008
ध्रुवीय बर्फ (Polar ice) तथा हिमानी (Glaciers)	2.04
भौम जल (Ground water)	0.61
झील (Lakes)	0.009
मृदा-आर्द्रता (Soil moisture)	0.005
वायुमंडलीय जलवाष्प (Atomospheric water vapour)	0.001
नदियाँ (River)	0.0001

9.6.1 जल के भौतिक गुण

यह एक रंगहीन तथा स्वादहीन द्रव है। जल (H_2O) तथा भारी जल (D_2O) के भौतिक गुण सारणी 9.3 में दिए गए हैं।

संघनित प्रावस्था (द्रव तथा ठोस अवस्था) में जल के असामान्य गुणों का कारण जल के अणुओं के बीच विस्तृत हाइड्रोजन बंधन का होना है। इसी वर्ग के अन्य तत्वों के हाइड्राइड H_2S तथा H_2Se की तुलना में जल का उच्च हिमांक, उच्च क्वथनांक, उच्च वाष्पन ऊष्मा, उच्च संलयन ऊष्मा का कारण हाइड्रोजन-बंधन का होना है। अन्य द्रवों की तुलना में जल की विशिष्ट ऊष्मा, तापीय चालकता, पृष्ठ-तनाव, द्विध्रुव आघूर्ण तथा परावैद्युतांक के मान उच्च होते हैं। इन्हीं गुणों के कारण जीवमंडल में जल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

जल की उच्च वाष्पन ऊष्मा तथा उच्च ऊष्माधारिता ही जीवों के शरीर तथा जलवायु के सामान्य ताप को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है। वनस्पतियों एवं प्राणियों के उपापचय (Metabolism) में अणुओं के अभिगमन के लिए जल एक उत्तम विलायक का कार्य करता है। जल ध्रुवीय अणुओं के साथ हाइड्रोजन बंध बनाता है, जिससे सहसंयोजक यौगिक ,जैसे– ऐल्कोहॉल तथा कार्बोहाइड्रेट यौगिक जल में विलेय होते हैं।

9.6.2 जल की संरचना

गैस-प्रावस्था में जल एक बंकित अणु है। आबंध कोण तथा O–H आबंध दूरी के मान क्रमश: 104.5° तथा 95.7 pm हैं, जैसा चित्र 9.1 (क) में प्रदर्शित किया गया है। अत्यधिक ध्रुवित अणु चित्र 9.1 (ख) में तथा चित्र 9.1 (ग) में जल के अणु में आर्बिटल अतिव्यापन दर्शाया गया है।
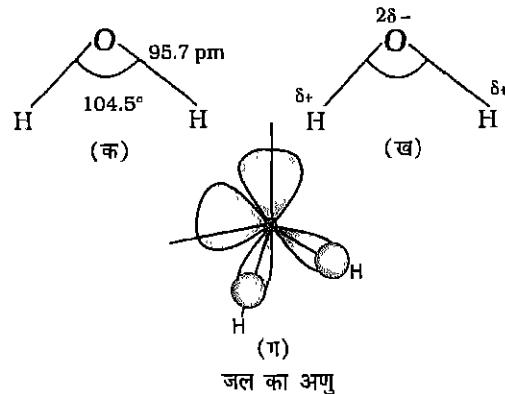
चित्र 9.1 (क) जल की बंकित संरचना (ख) जल अणु द्विध्रुव के रूप में और (ग) जल के अणु में आर्बिटल अतिव्यापन

सारणी 9.3 H_2O एवं D_2O के भौतिक गुण

गुण	H_2O	D_2O
आण्विक द्रव्यमान/g mol^{-1}	18.0151	20.0276
गलनांक/K	273.0	276.8
क्वनांक/K	373.0	374.4
विरचन एंथैल्पी (Enthalpy of formation)/(kJ mol^{-1})	–285.9	–294.6
वाष्पन एंथैल्पी (Enthalpy of vapourisation)/(373k)/(kJ mol^{-1})	40.66	41.61
संलयन एंथैल्पी (Enthalpy of fusion) (kJ mol^{-1})	6.01	-
उच्च घनत्व का ताप/K	276.98	284.2
घनत्व (298K)/g cm^{-3}	1.0000	1.1059
श्यानता (Centipoise)	0.8903	1.107
परावैद्युतांक /$C^2/N.m^2$	78.39	78.06
विद्युत्-चालकता (293K/ohm^{-1} cm^{-1})	5.7×10^{-8}	–

जल का क्रिस्टलीय प्रारूप बर्फ है। वायुमंडलीय दाब पर बर्फ का क्रिस्टलीकरण षट्कोणीय आकृति के रूप में होता है। परंतु न्यून ताप पर इसका संघनन घनीय आकृति के रूप में होता है। बर्फ का घनत्व जल से कम होता है। फलत: बर्फ का टुकड़ा जल में तैरता रहता है। शीतकाल में झीलों में पानी की सतह पर जमी बर्फ की सतह ऊष्मारोधन (Thermal insulation) प्रदान करती है, जिससे जलीय जीवन सुरक्षित रहता है। यह तथ्य पारिस्थितिकी (Eological) दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है।

9.6.3 बर्फ की संरचना

बर्फ एक अतिव्यवस्थित त्रिविम हाइड्रोजन आबंधित संरचना (Highly ordered three dimensional hydrogen bonded structure) है, जिसे चित्र 9.2 में दर्शाया गया है।

X-किरणों द्वारा परीक्षण से पता चला है कि बर्फ क्रिस्टल में ऑक्सीजन परमाणु चार अन्य हाइड्रोजन परमाणुओं से 276 pm दूरी पर चतुष्फलकीय रूप से घिरा रहता है।

हाइड्रोजन आबंध बर्फ में बृहद छिद्रयुक्त एक प्रकार की खुली संरचना बनाते हैं। ये छिद्र उपयुक्त आकार के कुछ दूसरे अणुओं को अंतराकाश में ग्रहण कर सकते हैं।
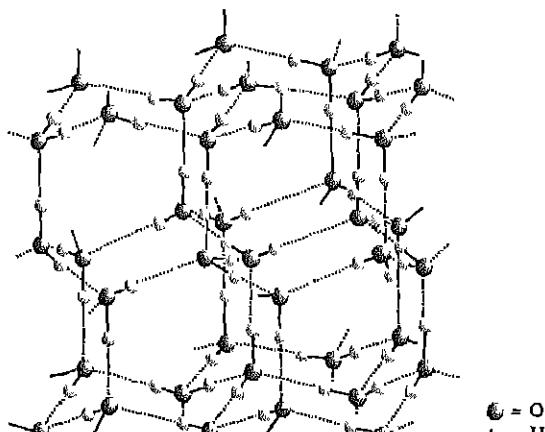
चित्र 9.2 बर्फ की संरचना

9.6.4 जल के रासायनिक गुण

जल अनेक पदार्थों के साथ अभिक्रिया करता है। कुछ महत्त्वपूर्ण अभिक्रियाएँ निम्नलिखित हैं–

(1) उभयधर्मी प्रकृति : जल अम्ल तथा क्षार–दोनों रूपों में व्यवहार करता है। अत: यह उभयधर्मी है। ब्रांस्टेड अवधारणा के संदर्भ में जल NH_3 के साथ अम्ल के रूप में तथा H_2S के साथ क्षार के रूप में कार्य करता है–

$$H_2O(l) + NH_3(aq) \rightleftharpoons OH^-(aq) + NH_4^+(aq)$$

$$H_2O(l) + H_2S(aq) \rightleftharpoons H_3O^+(aq) + HS^-(aq)$$
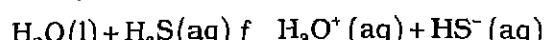
जल के स्वत: प्रोटोअपघटन (स्वत: आयनन) को निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$H_2O(l) + H_2O(l) \rightleftharpoons H_3O^+(aq) + OH^-(aq)$$

अम्ल-1 (अम्ल)   क्षार-2 (क्षार)   अम्ल-2 (संयुग्मी अम्ल)   क्षार-1 (संयुग्मी क्षार)
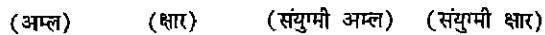
(2) जल की अपोपचयन अभिक्रिया : उच्च विद्युत् धनीय धातुओं द्वारा जल आसानी से डाइहाइड्रोजन में अपचयित हो जाता है–

$$2H_2O(l) + 2Na(s) \rightarrow 2NaOH(aq) + H_2(g)$$
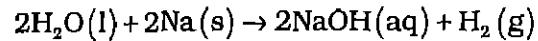
अत: यह अभिक्रिया हाइड्रोजन के प्रमुख स्रोत के रूप में उपयोगी है।

प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में जल O_2 में ऑक्सीकृत होता है।

$$6CO_2(g) + 12H_2O(l) \rightarrow C_6H_{12}O_6(aq) + 6H_2O(l) + 6O_2(g)$$
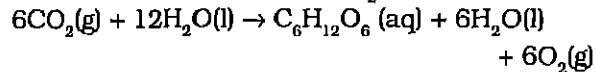
फ्लुओरीन द्वारा भी H_2O का ऑक्सीजन में ऑक्सीकरण होता है–

$$2F_2(g) + 2H_2O(aq) \rightarrow 4H^+(aq) + 4F^-(aq) + O_2(g)$$
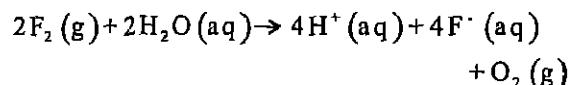
(3) जल-अपघटन अभिक्रिया : जल का परावैद्युतांक उच्च होने के कारण इसमें प्रबल जलयोजन गुण पाया जाता है। यह अनेक आयनिक यौगिक को घोलने में सक्षम है। फलस्वरुप कुछ आयनिक तथा सहसंयोजी यौगिकों का जल-अपघटन हो जाता है–

$$P_4O_{10}(s) + 6H_2O(l) \rightarrow 4H_3PO_4(aq)$$

$$SiCl_4(l) + 2H_2O(l) \rightarrow SiO_2(s) + 4HCl(aq)$$

$$N^{3-}(s) + 3H_2O(l) \rightarrow NH_3(g) + 3OH^-(aq)$$
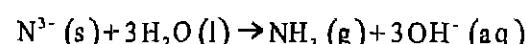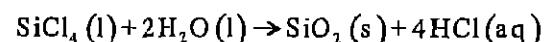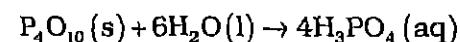
(4) हाइड्रेट-विरचन : जलीय विलयन से अनेक लवण जलयोजित लवण के रूप में क्रिस्टलीकृत किए जा सकते हैं। जल का संगुणन विभिन्न प्रकार से होता है–

(i) उपसहसंयोजित जल

(उदाहरणस्वरूप $[Cr(H_2O)_6]^{3+} 3Cl^-$)

(ii) अंतराकाशीय जल

(उदाहरणस्वरूप $BaCl_2.2HO_2$)

(iii) हाइड्रोजन आबंधी जल

(उदाहरणस्वरूप $CuSO_4.5HO_2$ में

$[Cu(H_2O)_4]^{2+} SO_4^{2-}.H_2O$)
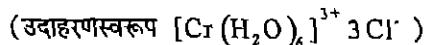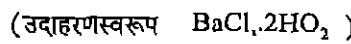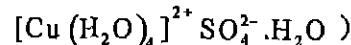
उदाहरण 9.4

$CuSO_4, 5H_2O$ में कितने जल-अणु हाइड्रोजन बंध द्वारा संगुणित हैं?

हल

केवल जल का एक अणु, जो बड़े कोष्ठक के बाहर (सहसंयोजन क्षेत्र) है, हाइड्रोजन बंध द्वारा संगुणित है। जल के शेष चार अणु उपसहसंयोजित हैं।

9.6.5 कठोर एवं मृदु जल

सामान्यतः वर्षा का जल लगभग शुद्ध होता है। (वायुमंडल की कुछ विलयशील गैसें घुली हो सकती हैं)। जब जल पृथ्वी की सतह पर बहता है, तब इसका अस्तित्व उत्तम विलायक के रूप में होता है। यह कई लवणों को घोल लेता है। जल में उपस्थित विलयशील कैल्सियम तथा मैग्नीशियम लवण, (जो हाइड्रोजन कार्बोनेट, क्लोराइड तथा सल्फेट के रूप में रहते हैं) उसकी कठोरता के कारण होते हैं। कठोर जल साबुन के साथ आसानी से झाग नहीं देता है। विलयशील कैल्सियम तथा मैग्नीशियम लवण से मुक्त जल को 'मृदु जल' (Soft water) कहते हैं। मृदु जल साबुन के साथ आसानी से झाग देता है।

कठोर जल साबुन के साथ मलफेन/अवक्षेप देता है। साबुन, जिसमें सोडियम स्टीअरेट ($C_{17}H_{35}COONa$) होता है, कठोर जल के साथ अभिक्रिया करके Ca/Mg स्टीअरेट के रूप में अवक्षेपित हो जाता है–

$$2C_{17}H_{35}COONa(aq) + M^{2+}(aq) \rightarrow$$
$$(C_{17}H_{35}COO)_2M\downarrow + 2Na^+(aq);\ M\ Ca/Mg$$
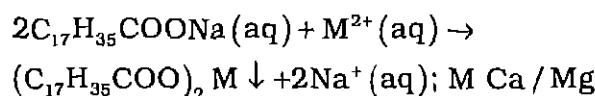
अतः कठोर जल धुलाई के लिए उपयुक्त नहीं है। यह भाप क्वथित्र (Steam boiler) के लिए भी हानिकारक है, क्योंकि पपड़ी के रूप में इसमें लवण जम जाते हैं, जिससे भाप क्वथित्र की दक्षता में कमी आ जाती है। जल की कठोरता दो प्रकार की होती है–

(i) अस्थायी कठोरता

(ii) स्थायी कठोरता

9.6.6 अस्थायी कठोरता

अस्थायी कठोरता जल में कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के हाइड्रोजन कार्बोनेट की उपस्थिति के कारण होती है। जल की अस्थायी कठोरता निम्नलिखित विधियों द्वारा दूर की जाती है–

(i) उबालना : उबालने की प्रक्रिया में $Mg(HCO_3)_2$ एवं $Ca(HCO_3)_2$ के विलयशील लवण क्रमशः अविलयशील $Mg(OH)_2$ तथा $CaCO_3$ में परिवर्तित हो जाते हैं। $MgCO_3$ की तुलना में $Mg(OH_2)$ का विलेयता-गुणनफल उच्च होता है, अतः $Mg(HO)_2$ अवक्षेपित हो जाता है। इस अवक्षेप को छानकर अलग कर लिया जाता है। प्राप्त छनित ही मृदु जल है।

$$Mg(HCO_3)_2 \xrightarrow{\text{गरम करने पर}} Mg(OH)_2\downarrow + 2CO_2$$

$$Ca(HCO_3)_2 \xrightarrow{\text{गरम करने पर}} CaCO_3\downarrow + H_2O + CO_2$$
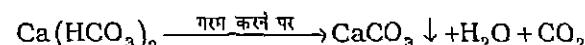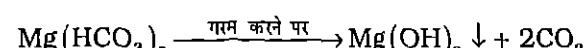
(ii) क्लार्क विधि (Clark's method) : इस विधि में बुझे चूने की परिकलित मात्रा को कठोर जल में मिला दिया जाता है। फलतः कैल्सियम कार्बोनेट तथा मैग्नेशियम हाइड्रॉक्साइड अवक्षेपित हो जाता है। उसे छानकर अलग कर लिया जाता है।

$$Ca(HCO_3)_2 + Ca(OH)_2 \rightarrow 2CaCO_3\downarrow + 2H_2O$$

$$Mg(HCO_3)_2 + 2Ca(OH)_2 \rightarrow 2CaCO_3\downarrow + Mg(OH)_2 + 2H_2O$$
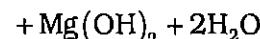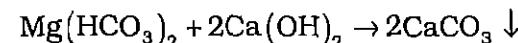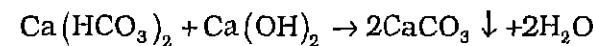
9.6.7 स्थायी कठोरता

इस प्रकार की कठोरता जल में विलयशील कैल्सियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड तथा सल्फेट के रूप में घुले रहने के कारण होती है। यह (स्थायी कठोरता) उबालने से दूर नहीं की जा सकती है।

इसे निम्नलिखित विधियों द्वारा दूर किया जा सकता है–

(i) धावन सोडा (सोडियम कार्बोनेट) के उपचार से : धावन सोडा कठोर जल में विलयशील कैल्सियम एवं मैग्नीशियम क्लोराइड तथा सल्फेट के साथ क्रिया करके अविलयशील कार्बोनेट बनाता है।

$$MCl_2 + Na_2CO_3 \rightarrow MCO_3\downarrow + 2NaCl \quad (M = Mg, Ca)$$

$$MSO_4 + Na_2CO_3 \rightarrow MCO_3\downarrow + Na_2SO_4$$
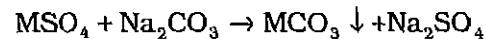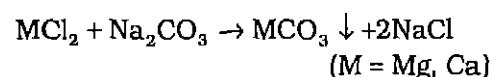
(ii) केलगॉन विधि–सोडियम हेक्सामेटाफॉस्फेट [Sodium hexametaphosphate, $Na_6P_6O_{18}$] को व्यापारिक रूप में 'केलगॉन' कहते हैं। जब यह कठोर जल में मिलाया जाता है, तब निम्नलिखित अभिक्रिया देता है–

$$Na_6P_6O_{18} \rightarrow 2Na^+ + Na_4P_6O_{18}^{2-}$$

$$M^{2+} + Na_4P_6O_{18}^{2-} \rightarrow [Na_2MP_6O_{18}]^{2-} + 2Na^+ \quad (M = Mg, Ca)$$
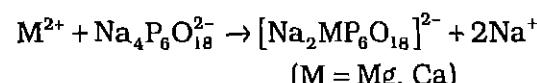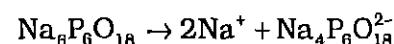
यह ऋणायन संकुल Mg^{2+} एवं Ca^{2+} आयन को विलयन में रखता है।

(iii) आयन विनिमय विधि (Ion exchange method) : इस विधि को 'जीओलाइट/परम्यूटिट विधि' भी कहते हैं। जलयुक्त सोडियम ऐलुमीनोसिलिकेट ($NaAlSiO_4 . 3H_2O$) जीओलाइट/परम्यूटिट (Permuitit) कहलाता है। सरलता के लिए सोडियम ऐलुमीनियम सिलिकेट को NaZ भी लिख सकते हैं। कठोर जल में इसके मिलाने पर निम्नलिखित विनिमय अभिक्रिया होती है–

$$2NaZ(s) + M^{2+}(aq) \rightarrow MZ_2(s) + 2Na^+(aq) \quad (M = Mg, Ca)$$
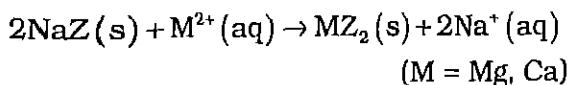
परम्यूटिट/ जीओलाइट में से जब सारा सोडियम पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है, तब जलीय सोडियम क्लोराइड विलयन द्वारा उपचार कराकर इनका पुन: प्रयोग करने के लिए पुनर्जनन (Regenerated) कर लिया जाता है–

$$MZ_2(s) + 2NaCl(aq) \rightarrow 2NaZ(s) + MCl_2(aq)$$
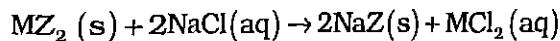
(iv) संश्लेषित रेजिन (Resin) विधि : आजकल कठोर जल का मृदुकरण मुख्य रूप से संश्लेषित धनायन विनिमयक द्वारा किया जाता है। यह विधि जीओलाइट की तुलना में अधिक दक्ष है। धनायन विनिमयक रेजिन $-SO_3H$ समूहयुक्त बृहद् कार्बनिक अणु होते हैं तथा जल में अविलेय होते हैं। आयन विनियम रेजिन ($R-SO_3H$) को NaCl से उपचार करके R-Na में परिवर्तित किया जाता है। रेजन Na^+ आयन का जल में उपस्थित Ca^{2+} एवं Mg^{2+} आयन से विनिमय करके कठोर जल को मृदु बना देता है, जहाँ (R = रेजिन ऋणायन है)–

$$2RNa(s) + M^{2+}(aq) \rightarrow R_2M(s) + 2Na^+(aq)$$
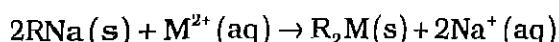
रेजिन का पुनर्जनन (Regeneration) सोडियम क्लोराइड विलयन मिलाकर किया जाता है।

जल को उत्तरोत्तर (Successively) धनायन-विनिमयक (H^+ आयन के रूप में) तथा ऋणायन-विनिमयक (OH^- के रूप में) रेजिन से प्रवाहित करने पर शुद्ध विखनिजित (Demineralised) तथा विआयनित (Deionised) जल प्राप्त किया जाता है–

$$2RH(s) + M^{2+}(aq) \rightleftharpoons MR_2(s) + 2H^+(aq)$$
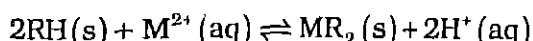
धनायन विनिमय के इस प्रक्रम में, H^+ का विनिमय जल में उपस्थित Na^+, Ca^{2+}, Mg^{2+} एवं अन्य धनायनों द्वारा हो जाता है। फलत: प्रोटान का निष्कासन होता है तथा जल अम्लीय हो जाता है।

ऋण आयन विनिमय के दूसरे प्रक्रम में

$$RNH_2(s) + H_2O(l) \rightleftharpoons RNH_3^+.OH^-(aq)$$

$$RNH_3^+.OH^-(s) + X^-(aq) \rightleftharpoons RNH_3^+.X^-(s) + OH^-(aq)$$
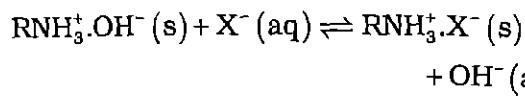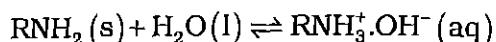
OH^- का विनिमय जल में उपस्थित ऋणायन (जैसे– Cl^-, HCO_3^-, SO_4^{2-}) द्वारा होता है। इस प्रकार मुक्त OH^- आयन धनायन विनिमय से मुक्त H^+ आयन से अभिक्रिया करके जल को उदासीन कर देता है।

$$H^+(aq) + OH^-(aq) \rightarrow H_2O(l)$$
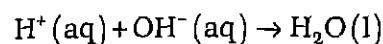
धनायन तथा ऋणायन विनिमयकों के रेजिन तल (Resin bed) का उपयोग जब पूर्ण रूप से हो जाता है, तब इन्हें क्रमश: तनु अम्ल तथा तनु क्षारक विलयनों से अभिक्रिया कराकर पुनर्जनित कर लिया जाता है।

9.7 हाइड्रोजन परॉक्साइड (H_2O_2)

हाइड्रोजन परॉक्साइड एक महत्त्वपूर्ण रसायन है, जो पर्यावरण-नियंत्रण में घरेलू तथा औद्योगिक बहि:स्राव (Effluents) के उपचार के रूप में काम आता है।

9.7.1 बनाने की विधियाँ

यह निम्नलिखित विधियों द्वारा बनाया जा सकता है–

(i) बेरियम परॉक्साइड को अम्लीकृत करके तथा जल की आधिक्य मात्रा को कम दाब पर वाष्पीकृत करके हाइड्रोजन परॉक्साइड प्राप्त किया जाता है–

$$BaO_2.8H_2O(s) + H_2SO_4(aq) \rightarrow BaSO_4(s) + H_2O_2(aq) + 8H_2O(l)$$
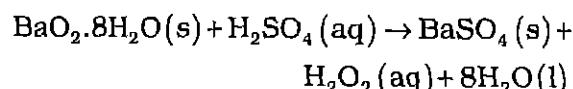
(ii) उच्च धारा घनत्व पर अम्लीकृत सल्फेट विलयन के विद्युत्-अपघटनी ऑक्सीकरण से प्राप्त परॉक्साइड सल्फेट के जल-अपघटन से हाइड्रोजन परॉक्साइड प्राप्त किया जाता है।

$$2HSO_4^-(aq) \xrightarrow{\text{विद्युत्-अपघटन}} HO_3SOOSO_3H(aq) \xrightarrow{\text{जल-अपघटन}} 2HSO_4^-(aq) + 2H^+(aq) + H_2O_2(aq)$$
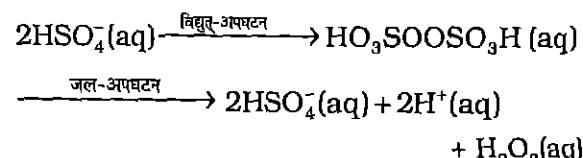
अब यह विधि प्रयोगशाला में (D_2O_2) बनाने के काम में आती है।

$$K_2S_2O_8(s) + 2D_2O(l) \rightarrow 2KDSO_4(aq) + D_2O_2(l)$$
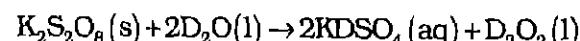
(iii) हाइड्रोजन परॉक्साइड का औद्योगिक उत्पादन 2-एल्किलऐन्थ्राक्विनॉल (2-alkylanthraquinol) के स्वतः ऑक्सीकरण द्वारा किया जाता है।

$$\text{2-एथिलऐन्थ्राक्विनॉल} \underset{H_2/Pd}{\overset{O_2(\text{वायु})}{\rightleftharpoons}} H_2O_2 + (\text{ऑक्सीकृत उत्पाद})$$
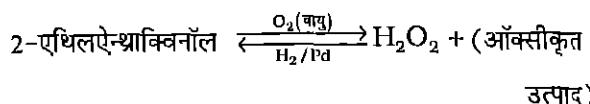
इस विधि से प्राप्त (~1प्रतिशत) हाइड्रोजन परॉक्साइड का निष्कर्षण जल द्वारा कर लिया जाता है। तत्पश्चात् कम दाब पर इसका आसवन कराकर हाइड्रोजन परॉक्साइड का सांद्रण (द्रव्यमानानुसार 30 प्रतिशत) तक कर लिया जाता है। हाइड्रोजन परॉक्साइड के 85 प्रतिशत तक सांद्रण हेतु कम दाब पर विलयन का आसवन सावधानीपूर्वक कराकर किया जाता है। अवशेष को हिमशीतित (Frozen) करके शुद्ध हाइड्रोजन परॉक्साइड प्राप्त की जाती है।

9.7.2 भौतिक गुण

शुद्ध अवस्था में हाइड्रोजन परॉक्साइड लगभग रंगहीन (अति हलका नीला) द्रव है। इसके मुख्य भौतिक गुण सारणी 9.4 में दिए गए हैं।

हाइड्रोजन परॉक्साइड जल के प्रत्येक अनुपात के साथ मिश्रणीय है। यह हाइड्रेट $H_2O_2.H_2O$ (क्वथनांक 221K) बना लेता है। बाजार में उपलब्ध 30 प्रतिशत सांद्रता वाले हाइड्रोजन परॉक्साइड विलयन की आयतन सांद्रता (Volume strength) '100 आयतन' होती है। '100 आयतन' H_2O_2 सांद्रता से अभिप्राय यह है कि 1mL H_2O_2 विलयन के पूर्ण अपघटन के फलस्वरूप मानक ताप तथा दाब पर 100 mL ऑक्सीजन मुक्त होती है। बाजार में यह '10 आयतन' के रूप में बेचा जाता है, अर्थात् इसकी सांद्रता 3 प्रतिशत होती है।

उदाहरण 9.4

10 आयतन H_2O_2 विलयन की सामर्थ्य परिकलित करें।

हल

H_2O_2 के '10 आयतन विलयन' का अर्थ है कि 1 लिटर H_2O_2 मानक ताप एवं दाब पर 10 लिटर ऑक्सीजन देगा–

$$2H_2O_2(l) \rightarrow O_2(g) + H_2O(l)$$

2 × 34g 22.4 L at STP

68 g

उपरोक्त समीकरण के आधार पर 68 ग्राम H_2O_2 से मानक ताप एवं दाब पर 22.4 L O_2 प्राप्त होगी। मानक ताप एवं दाब पर 10L लिटर O_2 उत्पन्न करने के लिए आवश्यक मात्रा होगी–

$$H_2O_2 = \frac{68 \times 10}{22.4} g = 30.36 \text{ g}$$

अतः 10 आयतन H_2O_2 की सामर्थ्य = 30.36 g/L है।

9.7.3 संरचना

हाइड्रोजन परॉक्साइड की संरचना असमतलीय होती है। गैसीय प्रावस्था तथा ठोस प्रावस्था में इसकी आण्विक संरचना को चित्र 9.3 में दर्शाया गया है।
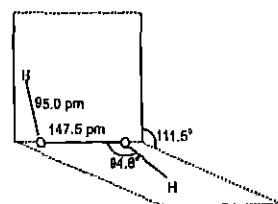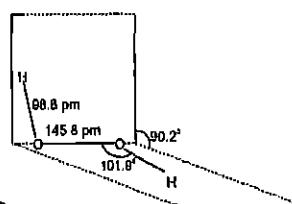
चित्र 9.3 (क) गैसीय प्रावस्था में H_2O_2 की संरचना द्वितल कोण 111.5° है।

(ख) ठोस प्रावस्था में 110 K ताप पर H_2O_2 की संरचना द्वितल कोण 90.2° है।

9.7.4 रासायनिक गुण

अम्लीय तथा क्षारीय–दोनों माध्यम में हाइड्रोजन परॉक्साइड अपचायक तथा ऑक्सीकारक, दोनों कार्य करता है। कुछ सरल अभिक्रियाओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है–

सारणी 9.4 हाइड्रोजन परॉक्साइड के भौतिक गुण

गलनांक/K	272.4	घनत्व (द्रव 298 K)/gcm^{-3}	1.44
क्वथनांक/K	423.0	श्यानता (290K)/Centipoise	1.25
वाष्प-दाब (298K)/mmHg	1.9	परावैद्युतांक (298K)/$C^2/N.m^2$	70.7
घनत्व (268.5K पर ठोस)/gcm^{-3}	1.64	विद्युत् चालकता (298K)/$\Omega^{-1} cm^{-1}$	5.1×10^{-8}

(i) अम्लीय माध्यम में H_2O_2 ऑक्सीकारक के रूप में–

$$2Fe^{2+}(aq) + 2H^+(aq) + H_2O_2(aq) \rightarrow 2Fe^{3+}(aq) + 2H_2O(l)$$

$$PbS(s) + 4H_2O_2(aq) \rightarrow PbSO_4(s) + 4H_2O(l)$$

(ii) अम्लीय माध्यम में H_2O_2 अपचायक के रूप में–

$$2MnO_4^- + 6H^+ + 5H_2O_2 \rightarrow 2Mn^{2+} + 8H_2O + 5O_2$$

$$HOCl + H_2O_2 \rightarrow H_3O^+ + Cl^- + O_2$$
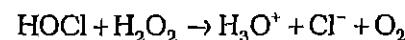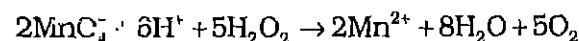
(iii) क्षारीय माध्यम में H_2O_2 ऑक्सीकारक के रूप में–

$$2Fe^{2+} + H_2O_2 \rightarrow 2Fe^{3+} + 2OH^-$$

$$Mn^{2+} + H_2O_2 \rightarrow Mn^{4+} + 2OH^-$$

(iv) क्षारीय माध्यम में H_2O_2 अपचायक के रूप में–

$$I_2 + H_2O_2 + 2OH^- \rightarrow 2I^- + 2H_2O + O_2$$

$$2MnO_4^- + 3H_2O_2 \rightarrow 2MnO_2 + 3O_2 + 2H_2O + 2OH^-$$
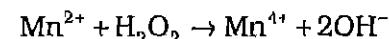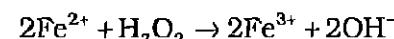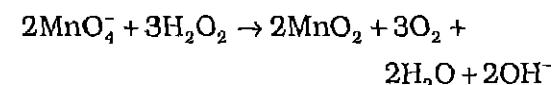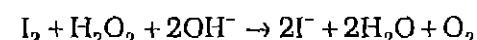
9.7.5 भंडारण

प्रकाश के मंद प्रभाव से H_2O_2 अपघटित हो जाता है।

$$2H_2O_2(l) \rightarrow 2H_2O(l) + O_2(g)$$
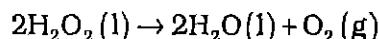
धातुओं की सतह तथा क्षार की सूक्ष्म मात्रा (जो काँच में निहित रहती है) की उपस्थिति के कारण उपरोक्त अभिक्रिया उत्प्रेरित होती है। अतः इसे मोम के स्तर से युक्त काँच या प्लास्टिक पात्रों में अँधेरे में रखा जाता है। यूरिया एक स्थायीकारी के रूप में मिलाया जाता है। इसे धूल के कण से दूर रखा जाता है, क्योंकि धूल हाइड्रोजन परॉक्साइड के विस्फोटी अपघटन को प्रेरित कर देती है।

9.7.6 उपयोग

H_2O_2 के बृहद् रूप में उपयोग के कारण इसके औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होती जा रही है। इसके कुछ उपयोग नीचे दिए जा रहे हैं–

(i) दैनिक जीवन में इसका उपयोग मंद कीटनाशी तथा बालों के विरंजन के रूप में किया जाता है। पूतिरोधी (Antiseptic) के रूप में यह बाजार में 'परहाइड्रॉल' (Perhydrol) नाम से बेचा जाता है।

(ii) इसका उपयोग सोडियम परबोरेट तथा सोडियम परकार्बोनेट के निर्माण में किया जाता है, जो उच्च कोटि के अपमार्जकों के लिए उपयोगी है।

(iii) इसका उपयोग हाइड्रोक्यूनोन, टार्टरिक अम्ल, खाद्य-उत्पादों तथा औषधियों (सिफैलोस्पोरिन) के संश्लेषण में किया जाता है।

(iv) उद्योगों में H_2O_2 का उपयोग वस्त्रों, कागज की लुगदी, चमड़ा, तेल, वसा आदि के विरंजन कारक (Bleaching Agent) के रूप में किया जाता है।

(v) आजकल H_2O_2 का उपयोग पर्यावरणीय (हरित) रसायन (उदाहरणस्वरूप–पर्यावरण-नियंत्रण में, घरेलू तथा औद्योगिक बहिस्राव (Effluents) उपचार में, सायनाइड के ऑक्सीकरण में, वाहित मल के लिए वायुजीवी दशाओं पुनर्स्थापन आदि) में किया जाता है।

9.8 भारी जल, D_2O

भारी जल विस्तृत रूप से नाभिकीय रिएक्टरों में न्यूटॉन मंदक के रूप में तथा विनिमय अभिक्रियाओं की क्रियाविधियों के अध्ययन में काम आता है। इसका उत्पादन जल के वैद्युत अपघटन द्वारा तथा उर्वरक उद्योगों में उपोत्पाद (By products) के रूप में होता है। भारी जल के भौतिक गुण सारणी 9.3 में दिए गए हैं। भारी जल का उपयोग ड्यूटीरियम के अनेक यौगिक बनाने के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ–

$$CaC_2 + 2D_2O \rightarrow C_2D_2 + Ca(OD)_2$$

$$SO_3 + D_2O \rightarrow D_2SO_4$$

$$Al_4C_3 + 12D_2O \rightarrow 3CD_4 + 4Al(OD)_3$$
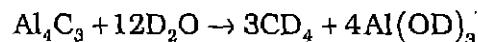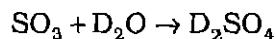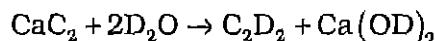
9.9 डाइहाइड्रोजन ईंधन के रूप में

दहन में डाइहाइड्रोजन अधिक मात्रा में ऊष्मा मुक्त करती है। ईंधन (जैसे–हाइहाइड्रोजन, मेथैन, एल.पी.जी. आदि) की समान आण्विक मात्रा, द्रव्यमान तथा आयतन के दहन से मुक्त ऊर्जा के आँकड़े सारणी 9.5 में दर्शाए गए हैं।

इस सारणी से स्पष्ट है कि डाइहाइड्रोजन, पेट्रोल के (समान द्रव्यमान की) तुलना में तीनगुना अधिक ऊर्जा मुक्त कर सकती है, हालाँकि डाइहाइड्रोजन के दहन में प्रदूषक पेट्रोल से कम होते हैं। केवल डाइनाइट्रोजन के ऑक्साइड ही प्रदूषक होंगे। (डाइहाइड्रोजन के साथ डाइनाइट्रोजन की अशुद्धि के रूप में उपस्थिति के कारण) गैस सिलेंडर में थोड़ी मात्रा में जल अंतःक्षिप्त (Inject) करने पर डाइनाइट्रोजन तथा डाइऑक्सीजन की अभिक्रिया नहीं हो पाती, हालाँकि पात्र (जिसमें डाइहाइड्रोजन रखी जाती है) के द्रव्यमान का भी ध्यान रखना चाहिए। संपीडित डाइहाइड्रोजन के एक सिलिंडर का भार समान ऊर्जा वाले पेट्रोल

सारणी 9.5 विभिन्न ईंधनों द्वारा दहन से मुक्त ऊर्जा मोल, द्रव्यमान तथा आयतन में

दहन से मुक्त हुई ऊर्जा kJ में	डाइहाइड्रोजन (गैसीय प्रावस्था)	डाइहाइड्रोजन (द्रव-प्रावस्था)	एल.पी.जी.	मेथैन गैस	ऑक्टेन (द्रव-अवस्था)
प्रति मोल	286	285	2220	880	5511
प्रति ग्राम	143	142	50	53	47
प्रति लिटर	12	9968	25590	35	34005

टैंक से लगभग 30 गुना अधिक होता। डाइहाइड्रोजन को 20 K पर ठंडा कर द्रवित भी किया जा सकता है। इसके लिए महँगे रोधी टैंकों की आवश्यकता पड़ती है। भिन्न-भिन्न धातुओं, जैसे– $NaNi_5$, Ti–TiH_2, Mg–MgH_2 आदि के टैंकों का प्रयोग डाइहाइड्रोजन की कम मात्रा का भंडारण करने हेतु किया जाता है। इन सीमाओं ने शोधकर्त्ताओं को डाइहाइड्रोजन के सफल प्रयोग की वैकल्पिक तकनीकों की खोज करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

इस संदर्भ में भावी विकल्प **'हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था'** है। *हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था का मूल सिद्धांत ऊर्जा का* द्रव हाइड्रोजन अथवा गैसीय हाइड्रोजन के रूप में अभिगमन तथा भंडारण है। हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था का मुख्य ध्येय तथा लाभ-ऊर्जा का संचरण विद्युत्-ऊर्जा के रूप में न होकर हाइड्रोजन के रूप में होना है। हमारे देश में पहली बार अक्तूबर, 2005 में आरंभ परियोजना में डाइहाइड्रोजन स्वचालित वाहनों के ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया गया। प्रारंभ में चौपहिया वाहन के लिए 5 प्रतिशत डाइहाइड्रोजन मिश्रित CNG को प्रयोग किया गया। बाद में डाइहाइड्रोजन की प्रतिशतता धीरे-धीरे अनुकूलतम स्तर तक बढ़ाई जाएगी।

आजकल डाहहाइड्रोजन का उपयोग ईंधन सेलों में विद्युत्-उत्पादन के लिए किया जाता है। ऐसी आशा की जाती है कि *आर्थिक रूप से व्यवहार्य तथा डाइहाइड्रोजन के सुरक्षित स्रोत* का पता आने वाले वर्षों में लग सकेगा तथा उसका उपयोग ऊर्जा के रूप में हो सकेगा।

सारांश

हाइड्रोजन केवल एक इलेक्ट्रॉन से युक्त सबसे हलका परमाणु है। यह इलेक्ट्रॉन को परित्याग कर मूल कण प्रोट्रॉन बनाता है। यह इसका विशिष्ट व्यवहार है। इसके तीन समस्थानिक प्रोटियम (^1H), ड्यूटीरियम (D या ^2H), ट्राइटियम (T या ^3H) हैं। इन तीनों में केवल ट्राइटियम रेडियोसक्रिय हैं। क्षार धातुओं तथा हैलोजेन में समानताओं के बावजूद इसके विशिष्ट गुणों के कारण आवर्त्त सारणी में पृथक् स्थान दिया गया है।

ब्रह्मांड में हाइड्रोजन अतिबहुल तत्व है। मुक्त अवस्था में यह पृथ्वी के वायुमंडल में नहीं पाया जाता, हालाँकि संयुक्त अवस्था में पृथ्वी की सतह पर अतिबहुल्य तत्वों के क्रम में हाइड्रोजन का स्थान तीसरा है।

शैल रसायनों से भाप अंगार सृति अभिक्रिया (Water gas shift reaction) द्वारा डाइहाइड्रोजन का औद्योगिक उत्पादन किया जाता है। यह लवणी जल के विद्युत्-अपघटन में सह-उत्पादन के रूप में प्राप्त होता है। डाइहाइड्रोजन H-H एकलबंध वियोजन एंथैल्पी (435.88kJ mol^{-1}) तत्वों के दो परमाणुओं के मध्य एकल बंध के लिए अधिकतम है। इस गुण के आधार पर डाइहाइड्रोजन का उपयोग परमाण्विय टॉर्च (Atomic torch) में किया जाता है। फलस्वरूप तापमान ~4000K तक पहुँच जाता है, जो उच्च गलनांक वाले धातुओं की वेल्डिंग के लिए उपयुक्त होती है।

कक्ष ताप पर डाइहाइड्रोजन उच्च वियोजन एंथैल्पी के कारण अक्रिय होती है। यह लगभग सभी तत्वों के साथ उपयुक्त परिस्थितियों में संयुक्त होकर हाइड्राइड बनाता है। सभी हाइड्राइडों को तीन श्रेणियों–आयनिक या लवणीय (Saline) हाइड्राइड, सहसंयोजक या आण्विक हाइड्राइड तथा धात्विक या अरससमीकरणमितीय हाइड्राइड में वर्गीकृत किया गया है। अन्य हाइड्राइड बनाने के लिए क्षार-धातु हाइड्राइड उपयुक्त अभिकर्मक हैं। आण्विक हाइड्राइड (उदाहरणस्वरूप B_2H_6, CH_4, NH_3, H_2O) का दैनिक जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। धात्विक हाइड्राइडों का उपयोग डाइहाइड्रोजन के अतिशुद्धिकरण (Ultrapurification) तथा डाइहाइड्रोजन-संग्रह हेतु माध्यम (Medium) के रूप में होता है।

डाइहाइड्रोजन से हाइड्रोजन हैलाइड, जल, अमोनिया मेथैनॉल, वनस्पति घी आदि महत्त्वपूर्ण यौगिकों का विरचन अपचयन अभिक्रियाओं द्वारा होता है। धातुकर्मीय अभिक्रियाओं में यह धात्विक ऑक्साइड को धातु में अपचयित करता है। अंतरिक्ष-अनुसंधान में डाइहाइड्रोजन का उपयोग रॉकेट ईंधन के रूप में होता है। वस्तुत: भविष्य में डाइहाइड्रोजन का उपयोग प्रदूषणमुक्त ईंधन के रूप में महत्त्वपूर्ण होगा (**हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था**)।

जल अति सामान्य, बहुतायत तथा आसानी से उपलब्ध पदार्थ है। रासायनिक एवं जैविक दृष्टिकोण से यह अतिमहत्त्वपूर्ण है। द्रव-अवस्था से ठोस अवस्था तथा द्रव अवस्था का गैसीय अवस्था में इसका रूपांतरण सरल है, जो जीवमंडल में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जल के अणु की बंकित संरचना के कारण अत्यधिक ध्रुवीय प्रकृति होती है, जिससे जल बर्फ में सबसे ज्यादा एवं जलवाष्प में सबसे कम हाइड्रोजन बंधन के लिए उत्तरदायी है। जल (क) ध्रुवीय प्रकृति के आधार पर यह आयनिक तथा आंशिक आयनिक यौगिकों में उत्तम विलायक के रूप में व्यवहार करता है (ख) एक उभयधर्मी (अम्ल अथवा क्षार) पदार्थ के रूप में व्यवहार करता है तथा (ग) यह कई प्रकार के हाइड्रेट बनाता है। जल में अनेक लवणों की अधिक मात्रा घुलने से जल कठोर हो जाता है, जो व्यापारिक महत्त्व के लिए हानिकारक है। जल की अस्थायी तथा स्थायी कठोरता जीओलाइट और संश्लेषित आयन विनिमयकों का उपयोग करके दूर की जाती है।

भारी जल D_2O एक अन्य महत्त्वपूर्ण यौगिक है, जिसका निर्माण साधारण जल के विद्युत्-अपघटन द्वारा किया जाता है। इसका उपयोग नाभिकीय रिएक्टरों में मंदक के रूप में किया जाता है।

हाइड्रोजन परॉक्साइड H_2O_2 की असमतलीय संरचना होती है। इसका उपयोग औद्योगिक विरंजन, औषधि, प्रदूषण-नियंत्रण, औद्योगिक तथा घरेलू बहिस्राव उपचार में बृहद् रूप से किया जाता है।

अभ्यास

9.1 हाइड्रोजन के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास के आधार पर आवर्त सारणी में इसकी स्थिति को युक्तिसंगत ठहराइए।

9.2 हाइड्रोजन के समस्थानिकों के नाम लिखिए तथा बताइए कि इन समस्थानिकों का द्रव्यमान अनुपात क्या है।

9.3 सामान्य परिस्थितियों में हाइड्रोजन एक परमाण्विक की अपेक्षा द्विपरमाण्विक रूप में क्यों पाया जाता है?

9.4 'कोल गैसीकरण' से प्राप्त डाइहाइड्रोजन का उत्पादन कैसे बढ़ाया जा सकता है?

9.5 विद्युत्-अपघटन विधि द्वारा डाइहाइड्रोजन बृहद् स्तर पर किस प्रकार बनाई जा सकती है? इस प्रक्रम में वैद्युत-अपघट्य की क्या भूमिका है?

9.6 निम्नलिखित समीकरणों को पूरा कीजिए-

(i) $H_2(g) + M_mO_n(s) \xrightarrow{\Delta}$

(ii) $CO(g) + H_2(g) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{\Delta}$

(iii) $C_3H_8(g) + 3H_2O(g) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{\Delta}$

(iv) $Zn(s) + NaOH(aq) \xrightarrow{\text{ऊष्मा}}$

9.7 डाइहाइड्रोजन की अभिक्रियाशीलता के पदों में H–H बंध की उच्च एंथैल्पी के परिणामों की विवेचना कीजिए।

9.8 हाइड्रोजन के (i) इलेक्ट्रॉन न्यून, (ii) इलेक्ट्रॉन परिशुद्ध तथा (iii) इलेक्ट्रॉन समृद्ध यौगिकों से आप क्या समझते हैं? उदाहरणों द्वारा समझाइए।

9.9 संरचना एवं रासायनिक अभिक्रियाओं के आधार पर बताइए कि इलेक्ट्रॉन न्यून हाइड्राइड के कौन-कौन से अभिलक्षण होते हैं।

9.10 क्या आप आशा करते हैं कि (C_nH_{2n+2}) कार्बनिक हाइड्राइड लूइस अम्ल या क्षार की भाँति कार्य करेंगे? अपने उत्तर को युक्तिसंगत ठहराइए।

9.11 अरससमीकरणमितीय हाइड्राइड (Non stochiometric hydride) से आप क्या समझते हैं? क्या आप क्षारीय धातुओं से ऐसे यौगिकों की आशा करते हैं? अपने उत्तर को न्यायसंगत ठहराइए।

9.12 हाइड्रोजन भंडारण के लिए धात्विक हाइड्राइड किस प्रकार उपयोगी है? समझाइए।

9.13 कर्तन और वेल्डिंग में परमाण्विय हाइड्रोजन अथवा ऑक्सी हाइड्रोजन टॉर्च किस प्रकार कार्य करती है? समझाइए।

9.14 NH_3, H_2O तथा HF में से किसका हाइड्रोजन बंध का परिमाण उच्चतम अपेक्षित है और क्यों?

9.15 लवणीय हाइड्राइड जल के साथ प्रबल अभिक्रिया करके आग उत्पन्न करती है। क्या इसमें CO_2 (जो एक सुपरिचित अग्निशामक है) का उपयोग हम कर सकते हैं? समझाइए।

9.16 निम्नलिखित को व्यवस्थित कीजिए–

(i) CaH_2, BeH_2 तथा TiH_2 को उनकी बढ़ती हुई विद्युत्चालकता के क्रम में।

(ii) LiH, NaH तथा CsH आयनिक गुण के बढ़ते हुए क्रम में।

(iii) H–H, D–D तथा F–F को उनके बंध-वियोजन एंथैल्पी के बढ़ते हुए क्रम में।

(iv) NaH, MgH_2 तथा H_2O को बढ़ते हुए अपचायक गुण के क्रम में।

9.17 H_2O तथा H_2O_2 की संरचनाओं की तुलना कीजिए।

9.18 जल के स्वतः प्रोटोनीकरण से आप क्या समझते हैं? इसका क्या महत्त्व है?

9.19 F_2 के साथ जल की अभिक्रिया में ऑक्सीकरण तथा अपचयन के पदों पर विचार कीजिए एवं बताइए कि कौन सी स्पीशीज़ ऑक्सीकृत/अपचयित होती है।

9.20 निम्नलिखित अभिक्रियाओं को पूर्ण कीजिए–

(i) $PbS(s) + H_2O_2(aq) \rightarrow$

(ii) $MnO_4^-(aq) + H_2O_2(aq) \rightarrow$

(iii) $CaO(s) + H_2O(g) \rightarrow$

(iv) $AlCl_3(g) + H_2O(l) \rightarrow$

(v) $Ca_3N_2(s) + H_2O(l) \rightarrow$

उपरोक्त को (क) जल-अपघटन, (ख) अपचयोपचय (Redox) तथा (ग) जलयोजन अभिक्रियाओं में वर्गीकृत कीजिए।

9.21 बर्फ के साधारण रूप की संरचना का उल्लेख कीजिए।

9.22 जल की अस्थायी एवं स्थायी कठोरता के क्या कारण हैं? वर्णन कीजिए।

9.23 संश्लेषित आयन विनिमयक विधि द्वारा कठोर जल के मृदुकरण के सिद्धांत एवं विधि की विवेचना कीजिए।

9.24 जल के उभयधर्मी स्वभाव को दर्शाने वाले रासायनिक समीकरण लिखिए।

9.25 हाइड्रोजन परॉक्साइड के ऑक्सीकारक एवं अपचायक रूप को अभिक्रियाओं द्वारा समझाइए।

9.26 विखनिजित जल से क्या अभिक्रिया है? यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

9.27 क्या विखनिजित या आसुत जल पेय-प्रयोजनों में उपयोगी है? यदि नहीं, तो इसे उपयोगी कैसे बनाया जा सकता है?

9.28 जीवमंडल एवं जैव प्रणालियों में जल की उपादेयता को समझाइए।

9.29 जल का कौन सा गुण इसे विलायक के रूप में उपयोगी बनाता है? यह किस प्रकार के यौगिक- (i) घोल सकता है और (ii) जल-अपघटन कर सकता है?

9.30 H_2O एवं D_2O के गुणों को जानते हुए क्या आप मानते हैं कि D_2O का उपयोग पेय-प्रयोजनों के रूप में लाया जा सकता है?

9.31 'जल-अपघटन' (Hydrolysis) तथा 'जलयोजन' (Hydration) पदों में क्या अंतर है?

9.32 लवणीय हाइड्राइड किस प्रकार कार्बनिक यौगिकों से अति सूक्ष्म जल की मात्रा को हटा सकते हैं?

9.33 परमाणु क्रमांक 15, 19, 23 तथा 44 वाले तत्व यदि डाइहाइड्रोजन से अभिक्रिया कर हाइड्राइड बनाते हैं, तो उनकी प्रकृति से आप क्या आशा करेंगे? जल के प्रति इनके व्यवहार की तुलना कीजिए।

9.34 जब ऐलुमिनियम (III) क्लोराइड एवं पोटैशियम क्लोराइड को अलग-अलग (i) सामान्य जल, (ii) अम्लीय जल एवं (iii) क्षारीय जल से अभिकृत कराया जाएगा, तो आप किन-किन विभिन्न उत्पादों की आशा करेंगे? जहाँ आवश्यक हो, वहाँ रासायनिक समीकरण दीजिए।

9.35 H_2O_2 विरंजन कारक के रूप में कैसे व्यवहार करता है? लिखिए।

9.36 निम्नलिखित पदों से आप क्या समझते हैं?

(i) हाइड्रोजन अर्थव्यवस्था, (ii) हाइड्रोजनीकरण, (iii) सिन्गैस, (iv) भाप अंगार गैस सृति अभिक्रिया तथा (v) ईंधन सेल।

s-ब्लॉक तत्त्व
THE s-BLOCK ELEMENT

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप–

- क्षार-धातुओं एवं उनके यौगिकों के सामान्य अभिलक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- क्षारीय मृदा-धातुओं एवं उनके यौगिको के सामान्य अभिलक्षणों को समझ सकेंगे;
- पोर्टलैंड सीमेन्ट सहित सोडियम एवं कैल्सियम के महत्त्वपूर्ण यौगिकों के निर्माण, गुणों एवं उपयोगों का वर्णन कर सकेंगे;
- सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम व कैल्सियम की जैव महत्ता के बारे में जान सकेंगे।

क्षार एवं क्षारीय मृदा धातु-समूहों के प्रथम तत्त्व इन समूहों के अन्य तत्त्वों से कई गुणों में भिन्न होते हैं।

आवर्त सारणी में s–ब्लॉक के तत्त्व वे तत्त्व हैं। जिनमें अंतिम इलेक्ट्रॉन बाह्यतम s–कक्षक में जाता है। चूँकि s–कक्षक में अधिकतम दो ही इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं, अतः केवल दो ही वर्ग (1 तथा 2) s–ब्लॉक तत्त्वों के अंतर्गत आते हैं। प्रथम वर्ग के तत्त्व हैं– लीथियम (Li), सोड़ियम (Na), पोटैशियम (K), रूबीडियम (Rb), सीजियम (Cs) एवं फ्रेन्सियम (Fr)। सामान्य रूप से ये तत्त्व क्षार धातुओं के रूप में जाने जाते हैं। चूँकि ये जल के साथ अभिक्रिया करके क्षारीय प्रकृति के हाइड्रॉक्साइड बनाते हैं, इसलिए इन्हें 'क्षार धातुएँ' कहते हैं। द्वितीय वर्ग के तत्त्व हैं– बेरीलियम (Be), मैग्नीशियम (Mg), कैल्सियम (Ca), स्ट्रॉन्शियम (Sr), बेरियम (Ba) एवं रेडियम (Ra)। बेरीलियम के अतिरिक्त शेष तत्त्व क्षारीय मृदा धातुओं के नाम से जाने जाते हैं। चूँकि इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड की प्रकृति क्षारीय होती है एवं ये ऑक्साइड सामान्यतः भू–पर्पटी* (Earth-Crust) में मिलते हैं, इसलिए इन्हें 'क्षारीय मृदा धातु' कहते हैं।

क्षार धातुओं में सोडियम एवं पोटैशियम प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, जबकि लीथियम, रूबीडियम एवं सीजियम अल्प मात्रा में पाए जाते हैं। फ्रेन्सियम एक अति रेडियो सक्रिय तत्त्व है (सारणी 10.1)। फ्रेन्सियम के अधिकतम दीर्घ आयु वाले समस्थानिक ^{223}Fr की अर्ध आयु मात्र 21 मिनट है। क्षारीय मृदा धातुओं की भू-पर्पटी में उपस्थिति के आधार पर कैल्सियम तथा मैग्नीशियम का स्थान क्रमशः पाँचवाँ तथा छठवाँ है। स्ट्रॉन्शियम एवं बेरियम की उपलब्धता बहुत कम है। बेरीलियम एक दुर्लभ धातु है, जबकि रेडियम की मात्रा आग्नेय शैल⁺ में केवल 10^{-10} प्रतिशत है (सारणी 10.2)।

क्षार धातुओं का सामान्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास [उत्कृष्ट गैस]ns^1 तथा क्षारीय मृदा–धातुओं का विन्यास [उत्कृष्ट गैस]ns^2 है। लीथियम एवं बेरीलियम, जो क्रमशः वर्ग 1 व वर्ग 2 के प्रथम तत्त्व हैं, के कुछ गुण इन वर्गों के अन्य तत्त्वों से भिन्न होते हैं। इस असंगत व्यवहार के कारण दोनों तत्त्व अपने ठीक आगे

* पृथ्वी सतह पर पतली चट्टानी सतह भू-पर्पटी कहलाती है। + मेग्मा (पिघली हुई चट्टान) के शीतलन से बनी कठोर चट्टान।

वाले वर्ग के दूसरे तत्त्वों से गुणों में समानताएँ प्रदर्शित करते हैं। लीथियम के बहुत से गुण मैग्नीशियम तथा बेरीलियम के बहुत से गुण ऐलुमीनियम के गुणों के समान हैं। इस प्रकार की विकर्ण समानताएँ आवर्त सारणी में विकर्ण संबंध (Diagonal Relationship) के रूप में संदर्भित की जाती हैं। तत्त्वों के आयनिक आकार या उनके आवेश/त्रिज्या अनुपात का समान होना ही विकर्ण संबंध का मुख्य आधार है।

एकल संयोजी सोडियम तथा पोटैशियम आयन एवं द्विसंयोजी मैग्नीशियम और कैल्सियम आयन जैव तरलों में बहुतायत में पाए जाते हैं। ये आयन जैवीय क्रियाओं, जैसे– आयन का संतुलन (Maintenance Of Ion Balance) और शिरा आवेग संचरण (Nerve-impulse Conduction) आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

10.1 वर्ग 1 के तत्त्व : क्षार-धातुएँ

क्षार धातुओं के रासायनिक तथा भौतिक गुणों में परमाणु-क्रमांक के साथ एक नियमित प्रवृत्ति पाई जाती है। इन तत्त्वों के परमाण्वीय, भौतिक तथा रासायनिक गुणों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है।

10.1.1 इलेक्ट्रॉनिक विन्यास

सभी क्षार धातुओं के तत्त्वों में एक संयोजी इलेक्ट्रॉन होता है तथा अंतिम दूसरे कोश की उत्कृष्ट गैस की संरचना होती है (सारणी 10.1)। इन तत्त्वों के बाह्यतम कोश में उपस्थित s-इलेक्ट्रॉन को आसानी से त्यागने के कारण ये अत्यधिक धनविद्युतीय तत्त्व एक संयोजी आयन M^+ देते हैं। अत: ये प्रकृति में मुक्त अवस्था में नहीं पाए जाते हैं।

तत्त्व	प्रतीक	इलेक्ट्रॉनिक विन्यास
लीथियम	Li	$1s^2 2s^1$
सोडियम	Na	$1s^2 2s^2 2p^6 3s^1$
पोटैशियम	K	$1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 4s^1$
रूबीडियम	Rb	$1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^2 4p^6 5s^1$
सीज़ियम	Cs	$1s^2 2s^2 2p^6 3s^2 3p^6 3d^{10} 4s^2$
		$4p^6 4d^{10} 5s^2 5p^6 6s^1$ या $[Xe]6s^1$
फ्रेन्सियम	Fr	$[Rn]7s^1$

10.1.2 परमाण्वीय तथा आयनिक त्रिज्या

क्षार धातुओं के परमाणुओं का आकार आवर्त सारणी के किसी विशेष आवर्त में सर्वाधिक होता है। परमाणु-क्रमांक में वृद्धि होने के साथ-साथ परमाणु का आकार बढ़ता जाता है। एक संयोजी आयन (M^+) का आकार उसके जनक परमाणु के आकार की तुलना में कम होता है। क्षार धातुओं की परमाण्वीय तथा आयनिक त्रिज्या वर्ग में ऊपर से नीचे जाने पर बढ़ती जाती है, अर्थात् इनका आकार Li से Cs तक बढ़ता है।

10.1.3 आयनन एंथैल्पी

क्षार धातुओं के आयनन एंथैल्पी का मान बहुत कम होता है। यह वर्ग में लीथियम से सीजियम की ओर नीचे जाने पर कम होता जाता है। इसका कारण यह है कि बढ़ते हुए नाभिकीय आवेश की तुलना में बढ़ते हुए परमाणु-आकार का प्रभाव अधिक हो जाता है तथा बाह्यतम इलेक्ट्रॉन नाभिकीय आवेश द्वारा भली-भाँति परिरक्षित होते हैं।

10.1.4 जलयोजन एंथैल्पी

क्षार धातुओं की जलयोजन एंथैल्पी आयनिक आकार के बढ़ने पर घटती जाती है।

$$Li^+ > Na^+ > K^+ > Rb^+ > Cs^+$$
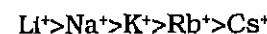
Li की जलयोजन की मात्रा अधिकतम होती है, इसीलिए लीथियम के अधिकांश लवण (उदाहरणार्थ– $LiCl.2H_2O$) जलयोजित होते हैं।

10.1.5 भौतिक गुण

क्षार धातुएँ बहुत ही नरम, हलकी तथा चाँदी के समान श्वेत होती हैं। बड़ा आकार होने के कारण इनका घनत्व कम होता है, जो लीथियम से सीजियम की ओर नीचे जाने पर कम होता जाता है, यद्यपि पोटैशियम धातु सोडियम की तुलना में हलका होता है। क्षार धातुओं के गलनांक एवं क्वथनांक कम होते हैं, जो इन धातुओं के मात्र एक संयोजी इलेक्ट्रॉन की उपस्थिति के कारण इनके बीच दुर्बल धात्विक बंध को दर्शाते हैं। क्षार धातुएँ तथा इनके लवण ऑक्सीकारक ज्वाला को अभिलाक्षणिक रंग प्रदान करते हैं। इसका कारण यह है कि ज्वाला की ऊष्मा इनके बाह्यतम इलेक्ट्रॉन को उच्च ऊर्जा-स्तर पर उत्तेजित कर देती है। जब ये इलेक्ट्रॉन पुनः अपनी तलस्थ अवस्था में आता है, तो दृश्य क्षेत्र में विकिरण उत्सर्जन के कारण ज्वाला को रंग प्रदान करता है। ऑक्सीकारक ज्वाला को मिले रंग इस सारणी में दर्शाए गए हैं–

धातु	Li	Na	K	Rb	Cs
रंग	किरमिजी लाल	पीला	बैंगनी	लाल बैंगनी	नीला
λ/nm	670.8	589.2	766.5	780.0	455.5

अत: क्षार धातुओं को इनके ज्वाला-परीक्षण के द्वारा पहचाना जा सकता है तथा इनकी सांद्रता का निर्धारण ज्वाला-प्रकाशमापी (फ्लेम फोटोमीट्री) अथवा परमाण्वीय अवशोषण स्पेक्ट्रोमिती (एटॉमिक ऐब्जॉर्बान स्पेक्ट्रोस्कोपी) द्वारा किया जा

सकता है। इन तत्त्वों को जब प्रकाश द्वारा विकरित किया जाता है, तब प्रकाश-अवशोषण के कारण ये इलेक्ट्रॉन का परित्याग करते हैं। इसी गुण के कारण सीजियम तथा पोटैशियम का प्रयोग प्रकाश-विद्युत् सेल में इलेक्ट्रोड के रूप में किया जाता है।

10.1.6 रासायनिक गुण

बड़े आकार तथा कम आयनन एंथैल्पी के कारण धातुएँ अत्यधिक क्रियाशील होती हैं। इनकी क्रियाशीलता वर्ग में ऊपर से नीचे क्रमशः बढ़ती जाती है।

(i) **वायु के साथ अभिक्रियाशीलता :** क्षार धातुएँ वायु की उपस्थिति में मलिन हो जाती हैं, क्योंकि वायु की उपस्थिति में इनपर ऑक्साइड तथा हाइड्रॉक्साइड की परत बन जाती है। ये ऑक्सीजन में तीव्रता से जलकर ऑक्साइड बनाती हैं। लीथियम और सोडियम क्रमशः मोनोऑक्साइड तथा परॉक्साइड का निर्माण करती हैं, जबकि अन्य धातुओं द्वारा सुपर ऑक्साइड आयन का निर्माण होता है। सुपर ऑक्साइड आयन O_2^- बड़े धनायनों, जैसे– K^+, Rb^+ तथा Cs^+ की उपस्थिति में स्थायी होता है।

$$4Li + O_2 \longrightarrow 2Li_2O \text{ (ऑक्साइड)}$$

$$2Na + O_2 \longrightarrow Na_2O_2 \text{ (परॉक्साइड)}$$

$$M + O_2 \longrightarrow MO_2 \text{ (सुपर ऑक्साइड)}$$
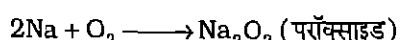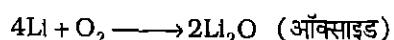
(M = K, Rb, Cs)

इन सभी ऑक्साइडों में क्षार की ऑक्सीकरण अवस्था +1 होती है। लीथियम अपवादस्वरूप वायु में उपस्थित नाइट्रोजन से अभिक्रिया करके नाइट्राइड, Li_3N बना लेता है। इस प्रकार लीथियम भिन्न स्वभाव दर्शाता है। क्षार धातुओं को वायु एवं जल के प्रति उनकी अति सक्रियता के कारण साधारणतया कैरोसिन में रखा जाता है।

उदाहरण 10.1

KO_2 में K की ऑक्सीकरण अवस्था क्या है?

हल

सुपर ऑक्साइड को O_2^- से दर्शाया जाता है। चूँकि यौगिक उदासीन है, अतः इसमें K की ऑक्सीकरण अवस्था +1 है।

सारणी 10.1 क्षार धातुओं के परमाण्वीय एवं भौतिक गुण
(Atomic and Physical Properties of the Alkali Metals)

गुण	लीथियम Li	सोडियम Na	पोटैशियम K	रूबीडियम Rb	सीजियम Cs	फ्रेन्सियम Fr
परमाणु-क्रमांक	3	11	19	37	55	87
परमाणु द्रव्यमान (g mol^{-1})	6.94	22.99	39.10	85.47	132.91	(223)
इलेक्ट्रॉनिक विन्यास	[He] $2s^1$	[Ne] $3S^1$	[Ar] $4s^1$	[Kr] $5s^1$	[Xe] $6s^1$	[Rn] $7s^1$
आयनन एंथैल्पी/kJ mol^{-1}	520	496	419	403	376	~ 375
जलयोजन एंथैल्पी/kJ mol^{-1}	–506	–406	–330	–310	–276	–
धात्विक त्रिज्या/pm	152	186	227	248	265	–
आयनिक त्रिज्या M^+/pm	76	102	138	152	167	(180)
गलनांक/K	454	371	336	312	302	–
क्वथनांक/K	1615	1156	1032	961	944	–
घनत्व/g cm^{-3}	0.53	0.97	0.86	1.53	1.90	–
मानक विभव E°/V (M^+/M) के लिए	–3.04	–2.714	–2.925	–2.930	–2.927	–
स्थलमंडल$^+$ में प्राप्ति	18*	2.27**	1.84**	78–12*	2–6*	~ 10^{-18}*

* ppm (Part per million), **भारात्मक %, $^+$स्थलमंडल: पृथ्वी का बाह्यतल; इसकी पर्पटी तथा ऊपरी मेंटल का भाग।

(ii) जल के साथ अभिक्रियाशीलता : क्षार धातुएँ जल के साथ अभिक्रिया करके हाइड्रॉक्साइड एवं डाइहाइड्रोजन बनाती हैं।

$$2M + 2H_2O \longrightarrow 2M^+ + 2OH^- + H_2$$
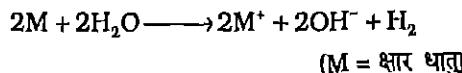
(M = क्षार धातु)

यद्यपि लीथियम के $E^\ominus$ का मान अधिकतम ऋणात्मक होता है, परंतु जल के साथ इसकी अभिक्रियाशीलता सोडियम की तुलना में कम है, जबकि सोडियम के $E^\ominus$ का मान अन्य क्षार धातुओं की अपेक्षा न्यून ऋणात्मक होता है। लीथियम के इस व्यवहार का कारण इसके छोटे आकार तथा अत्यधिक जलयोजन ऊर्जा का होना है। अन्य क्षार धातुएँ जल के साथ विस्फोटी अभिक्रिया करती हैं।

ये क्षार धातुएँ प्रोटॉनदाता (जैसे—ऐल्कोहॉल, गैसीय अमोनिया, ऐल्काइन आदि) से भी अभिक्रियाएँ करती हैं।

(iii) डाइहाइड्रोजन से अभिक्रियाशीलता : लगभग 673K (लीथियम के लिए 1073K) पर क्षार धातुएँ डाइहाइड्रोजन से अभिक्रिया कर हाइड्राइड बनाती हैं। सभी क्षार धातुओं के हाइड्राइड ठोस एवं आयनिक होते हैं। इन हाइड्राइडों के गलनांक उच्च होते हैं।

$$2M + H_2 \longrightarrow 2M^+H^-$$

(iv) हैलोजेन से अभिक्रियाशीलता : क्षार धातुएँ हैलोजेन से शीघ्र प्रबल अभिक्रिया करके आयनिक हैलाइड M^+X^- बनाती हैं, हालाँकि लीथियम के हैलाइड आंशिक रूप से सहसंयोजक होते हैं। इसका कारण लीथियम की उच्च ध्रुवण-क्षमता है। (धनायन के कारण ऋणायन के इलेक्ट्रॉन अभ्र का विकृत होना 'ध्रुवणता' कहलाता है।) लीथियम आयन का आकार छोटा है, अतः यह हैलाइड आयन के इलेक्ट्रॉन अभ्र को विकृत करने की अधिक क्षमता दर्शाता है। चूँकि बड़े आकार का ऋणायन आसानी से विकृत हो जाता है, इसलिए लीथियम आयोडाइड सहसंयोजक प्रकृति सबसे अधिक दर्शाते हैं।

(v) अपचायक प्रकृति : क्षार धातुएँ प्रबल अपचायक के रूप में कार्य करती हैं, जिनमें लीथियम प्रबलतम एवं सोडियम दुर्बलतम अपचायक हैं (सारणी 10.1)। मानक इलेक्ट्रोड विभव ($E^\ominus$), जो अपचायक क्षमता का मापक है, संपूर्ण परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है–

$M(s) \longrightarrow M(g)$ ऊर्ध्वपातन एंथैल्पी

$M(g) \longrightarrow M^+(g) + e^-$ आयनन एंथैल्पी

$M^+(g) + H_2O \longrightarrow M^+(aq)$ जलयोजन एंथैल्पी
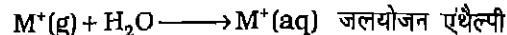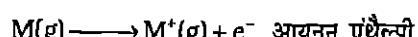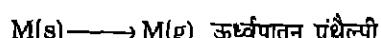
लीथियम आयन का आकार छोटा होने के कारण इसकी जलयोजन एंथैल्पी का मान अधिकतम होता है, जो इसके उच्च ऋणात्मक $E^\ominus$ मान तथा इसके प्रबल अपचायक होने की पुष्टि करता है।

उदाहरण 10.2

Cl_2/Cl^- के लिए $E^\ominus$ का मान +1.36, I_2/I^- के लिए + 0.53, Ag^+/Ag के लिए +0.79, Na^+/Na के लिए –2.71 एवं Li^+/Li के लिए –3.04 है। निम्नलिखित को उनकी घटती हुई अपचायक क्षमता के अनुसार व्यवस्थित कीजिए–

I^-, Ag, Cl^-, Li, Na
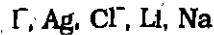
हल

क्रम इस प्रकार है : $Li > Na > I^- > Ag > Cl^-$

(vi) द्रव अमोनिया में विलयन : क्षार धातुएँ द्रव अमोनिया में घुलनशील हैं। अमोनिया में इनके विलयन का रंग गहरा नीला होता है एवं विलयन प्रकृति में विद्युत् का सुचालक होता है–

$$M + (x+y)NH_3 \longrightarrow [M(NH_3)_x]^+ + [e(NH_3)_y]^-$$

विलयन का नीला रंग अमोनीकृत इलेक्ट्रॉनों के कारण होता है, जो दृश्यप्रकाश क्षेत्र की संगत ऊर्जा का अवशोषण करके विलयन को नीला रंग प्रदान करते हैं। अमोनीकृत विलयन अनुचुंबकीय (Paramagnetic) होता है, जो कुछ समय पड़े रहने पर हाइड्रोजन को मुक्त करता है। फलस्वरूप विलयन में ऐमाइड बनता है।

$$M^+_{(am)} + e^- + NH_3(l) \rightarrow MNH_{2(am)} + \frac{1}{2}H_2(g)$$

(जहाँ 'am' अमोनीकृत विलयन दर्शाता है।) सांद्र विलयन में नीला रंग ब्रॉन्ज रंग में बदल जाता है और विलयन प्रतिचुंबकीय (Diamagnetic) हो जाता है।

10.1.7 उपयोग

लीथियम का उपयोग महत्त्वपूर्ण मिश्रधातुओं के निर्माण में होता है। उदाहरणार्थ–लैड के साथ यह श्वेत धातु (White metal) बनाता है, जिससे इंजन की बियरिंग बनाई जाती है। ऐलुमीनियम के साथ मिलकर लीथियम उच्च शक्ति का मिश्रधातु बनाता है, जिसका उपयोग वायुयानों के निर्माण में होता है। मैग्नीशियम के साथ उसकी मिश्रधातु का उपयोग कवच-प्लेट (Armour-

plate) बनाने में तथा लीथियम का उपयोग ताप नाभिकीय अभिक्रियाओं के अतिरिक्त विद्युत् रासायनिक सेलों में भी होता है। सोडियम का उपयोग Na/Pb मिश्रधातु में होता है, जो $PbEt_4$ तथा $PbMe_4$ के निर्माण के लिए आवश्यक है। इन कार्बलैड यौगिकों का उपयोग पूर्व में पेट्रोल में अपस्फोटरोधी (Antihknock) के रूप में होता था, परंतु अब अधिकतर वाहनों में सीसारहित (Lead-free) पेट्रोल का उपयोग होने लगा है। द्रव सोडियम धातु का उपयोग नाभिकीय रिऐक्टर में शीतलक (Coolant) के रूप में होता है। जैवीय क्रियाओं में पोटैशियम की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पोटैशियम क्लोराइड का उपयोग उर्वरक के रूप में तथा पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड का उपयोग मृदु साबुन के निर्माण में और कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषक के रूप में भी होता है। सीजियम का उपयोग प्रकाश वैद्युत् सेल (Photoelectric cells) में होता है।

10.2 क्षार धातुओं के यौगिकों के सामान्य अभिलक्षण

क्षार धातुओं के सभी यौगिक साधारणतया आयनिक प्रकृति के होते हैं। इनमें से कुछ यौगिकों के सामान्य अभिलक्षणों की विवेचना यहाँ की जा रही है।

10.2.1 ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड

वायु के आधिक्य में दहन करने पर लीथियम मुख्य रूप से मोनोऑक्साइड Li_2O (एवं कुछ परॉक्साइड Li_2O_2), सोडियम परॉक्साइड Na_2O_2 (एवं कुछ सुपर ऑक्साइड NaO_2 भी) बनाते हैं, जबकि पोटैशियम, रूबीडियम तथा सीजियम सुपर ऑक्साइड (MO_2) बनाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में M_2O, M_2O_2 एवं MO_2 शुद्ध रूप में बनाए जा सकते हैं। धातु-आयनों का आकार बढ़ने के साथ-साथ परॉक्साइडों तथा सुपर ऑक्साइडों के स्थायित्व में भी वृद्धि होती है। इसका कारण जालक ऊर्जा-प्रभाव (Lattice Energy Effect) के फलस्वरूप बड़े ऋणायनों का बड़े धनायनों द्वारा स्थायित्व प्रदान करना है। ये ऑक्साइड सरलतापूर्वक जल अपघटित होकर हाइड्रॉक्साइड में परिवर्तित हो जाते हैं।

$$M_2O + H_2O \longrightarrow 2M^+ + 2OH^-$$

$$M_2O_2 + 2H_2O \longrightarrow 2M^+ + 2OH^- + H_2O_2$$

$$2MO_2 + 2H_2O \longrightarrow 2M^+ + 2OH^- + H_2O_2 + O_2$$
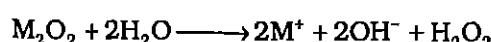
शुद्ध अवस्था में ऑक्साइड एवं परॉक्साइड रंगहीन होते हैं, परंतु सुपर ऑक्साइड पीले या नारंगी रंग के होते हैं। सुपर ऑक्साइड भी अनुचुंबकीय (Paramagnetic) होते हैं। अकार्बनिक रसायन में सोडियम परॉक्साइड को ऑक्सीकारक के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

उदाहरण 10.3

KO_2 अनुचुंबकीय क्यों होता है?

हल

KO_2 तथा O_2^- में एक अयुग्मित इलेक्ट्रॉन π^*2p आण्विक आर्बिटल में होने के कारण KO_2 अनुचुंबकीय होता है।

ऑक्साइड तथा जल-अभिक्रिया से प्राप्त हाइड्रॉक्साइड श्वेत क्रिस्टलीय ठोस होते हैं। क्षार धातुओं के हाइड्रॉक्साइड प्रबलतम क्षारक होते हैं। ये जल में अत्यधिक ऊष्मा के उत्सर्जन के साथ आसानी से घुल जाते हैं। जल में इनके घुलने का कारण तीव्र जलयोजन है।

10.2.2 हैलाइड

क्षार धातुओं के हैलाइड, MX, (X = F, Cl, Br, I) उच्च गलनांक वाले रंगहीन, क्रिस्टलीय ठोस पदार्थ होते हैं। इन्हें उपयुक्त ऑक्साइड, हाइड्रॉक्साइड या कार्बोनेट की हाइड्रोहेलिक अम्ल (HX) के साथ अभिक्रिया करके बनाया जा सकता है। इन सभी हैलाइडों की संभवन एंथैल्पी उच्च ऋणात्मक होती है। क्षार धातुओं के फ्लुओराइडों के $\Delta_f H^\ominus$ का मान वर्ग में नीचे की ओर बढ़ने पर कम ऋणात्मक होता जाता है, जबकि इन क्षार धातुओं के क्लोराइड, ब्रोमाइड तथा आयोडाइड के $\Delta_f H^\ominus$ का मान ठीक इससे विपरीत होता है। किसी धातु-विशेष के लिए $\Delta_f H^\ominus$ का मान फ्लुओराइड से आयोडाइड तक हमेशा कम ऋणात्मक होता जाता है।

गलनांक एवं क्वथनांक का क्रम हमेशा फ्लुओराइड > क्लोराइड > ब्रोमाइड > आयोडाइड के अनुसार होता है। ये सभी हैलाइड जल में घुलनशील होते हैं। जल में LiF की निम्न विलेयता इसकी उच्च जालक ऊर्जा (Latice Energy) के कारण तथा CsI की निम्न विलेयता Cs^+ तथा I^- की निम्न जलयोजन ऊर्जा (Hydration Energy) के कारण है। लीथियम के अन्य हैलाइड एथानॉल, ऐसीटोन और एथिल ऐसीटेट में घुलनशील हैं। LiCl पिरीडीन में भी घुलनशील हैं।

10.2.3 ऑक्सो-अम्लों के लवण

ऑक्सो-अम्ल वे होते हैं, जिनमें जिस परमाणु पर अम्लीय प्रोटॉन से युक्त हाइड्रॉक्सिल समूह होता है, उसी परमाणु पर

ऑक्सो समूह जुड़ा रहता है। जैसे–कार्बोनिक अम्ल, H_2CO_3 $[OC(OH)_2]$ सल्फ्यूरिक अम्ल, H_2SO_4 $[O_2S(OH)_2]$ क्षार धातुएँ–सभी ऑक्सो-अम्लों के साथ लवण बनाते हैं। ये साधारणतया जल में घुलनशील होते हैं तथा तापीय स्थायी होते हैं। इनके कार्बोनेटों (M_2CO_3) एवं हाइड्रोजन कार्बोनेटों $(MHCO_3)$ का तापीय स्थायित्व अत्यधिक होता है। चूँकि वर्ग में ऊपर से नीचे धनविद्युतीय स्वभाव बढ़ता है, अतः कार्बोनेटों एवं हाइड्रोजन कार्बोनेटों का स्थायित्व भी बढ़ता है। लीथियम कार्बोनेट ताप के प्रति अधिक स्थायी नहीं होता है। लीथियम का आकार छोटा होने के कारण यह बड़े ऋणायन CO_3^{2-} को ध्रुवित कर अधिक स्थायी Li_2O एवं CO_2 का विरचन करता है। इसके हाइड्रोजन कार्बोनेट का अस्तित्व ठोस अवस्था में नहीं होता है।

10.3 लीथियम का असंगत व्यवहार

निम्नलिखित कारणों से लीथियम का व्यवहार असंगत है–

(क) इसके परमाणु एवं आयन (Li^+) का असामान्य छोटा आकार, (ख) उच्च ध्रुवण-क्षमता (अर्थात् आवेश/त्रिज्या अनुपात)। परिणामस्वरूप लीथियम यौगिकों की सहसंयोजक प्रवृत्ति अधिक होती है। इसी कारण ये कार्बनिक विलायकों में घुलनशील होते हैं। लीथियम मैग्नीशियम से विकर्ण संबंध दर्शाता है, जिसका वर्णन आगे (खंड 10.3.2 में) दिया गया है।

10.3.1 लीथियम एवं अन्य क्षार धातुओं में असमानताओं के मुख्य बिंदु

(i) लीथियम अत्यधिक कठोर है। इसका गलनांक एवं क्वथनांक अन्य क्षार धातुओं की तुलना में अधिक है।

(ii) लीथियम की अभिक्रियाशीलता अन्य क्षार धातुओं की अपेक्षा सबसे कम है, परंतु यह प्रबलतम अपचायक का कार्य करता है। वायु में दहन के फलस्वरूप लीथियम मुख्यतः मोनोऑक्साइड (Li_2O) बनाता है। अन्य क्षार धातुओं के विपरीत लीथियम नाइट्रोजन के साथ अभिक्रिया करके नाइट्राइड (Li_3N) भी बना लेता है।

(iii) LiCl प्रस्वेद्य (Deliquescent) है एवं हाइड्रेट, $LiCl.2H_2O$ के रूप में क्रिस्टलित होता है, जबकि अन्य क्षार धातुओं के क्लोराइड हाइड्रेट नहीं बनाते हैं।

(iv) लीथियम हाइड्रोजनकार्बोनेट ठोस अवस्था में प्राप्य नहीं है, जबकि अन्य क्षार धातु ठोस हाइड्रोजनकार्बोनेट बनाते हैं।

(v) लीथियम एथाइन (Ethyne) से अभिक्रिया करके एथाइनाइड (Ethynide) नहीं बनाता है, जबकि अन्य क्षार धातुएँ ऐसा करती हैं।

(vi) लीथियम नाइट्रेट गरम करने पर लीथियम ऑक्साइड, Li_2O देता है, जबकि अन्य क्षार धातुएँ नाइट्रेट विघटित होकर नाइट्राइट देती हैं।

$$4LiNO_3 \rightarrow 2Li_2O + 4NO_2 + O_2$$

$$2NaNO_3 \rightarrow 2NaNO_2 + O_2$$
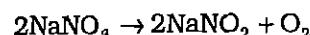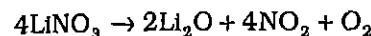
(vii) अन्य क्षार धातुओं के फ्लुओराइड एवं ऑक्साइड की तुलना में LiF एवं Li_2O जल में कम विलेय हैं।

10.3.2 लीथियम एवं मैग्नीशियम में समानताओं के बिंदु

लीथियम एवं मैग्नीशियम में समानताएँ मुख्य रूप से विचारणीय हैं। इनके समान आकार के कारण ऐसा होता है। Li तथा Mg की परमाण्वीय त्रिज्या क्रमशः 152 pm तथा 160 pm है। Li^+ तथा Mg^{2+} की आयनिक त्रिज्या क्रमशः 76 pm एवं 72 pm है। लीथियम एवं मैग्नीशियम में समानताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) लीथियम एवं मैग्नीशियम अपने वर्गों की अन्य धातुओं की तुलना में कठोर तथा हलकी धातुएँ हैं।

(ii) लीथियम एवं मैग्नीशियम जल के साथ धीमी गति से अभिक्रिया करते हैं। इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड बहुत कम घुलनशील हैं। हाइड्रॉक्साइड गरम करने पर विघटित हो जाते हैं। दोनों ही नाइट्रोजन से सीधे संयोग करके नाइट्राइड क्रमशः Li_3N एवं Mg_3N_2 बनाते हैं।

(iii) Li_2O एवं MgO ऑक्सीजन के आधिक्य से अभिक्रिया करके सुपर ऑक्साइड नहीं बनाते हैं।

(iv) लीथियम एवं मैग्नीशियम धातुओं के कार्बोनेट गरम करने पर सरलतापूर्वक विघटित होकर उनके ऑक्साइड एवं CO_2 बनाते हैं। दोनों ही ठोस हाइड्रोजनकार्बोनेट नहीं बनाते हैं।

(v) LiCl एवं $MgCl_2$ एथेनॉल में विलेय हैं।

(vi) LiCl एवं $MgCl_2$ दोनों ही प्रस्वेद्य (Deliquescent) यौगिक हैं। ये जलीय विलयन से $LiCl.2H_2O$ एवं $MgCl_2.8H_2O$ के रूप में क्रिस्टलीकृत होते हैं।

10.4 सोडियम के कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिक

औद्योगिक स्तर पर सोडियम के महत्त्वपूर्ण यौगिक हैं: सोडियम कार्बोनेट, सोडियम हाइड्रॉक्साइड, सोडियम क्लोराइड एवं सोडियम

बाइकार्बोनेट। इन यौगिकों के औद्योगिक निर्माण एवं उपयोगों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सोडियम कार्बोनेट (धावन सोडा) $Na_2CO_3.10H_2O$

साधारणतया सोडियम कार्बोनेट 'साल्वे विधि' द्वारा बनाया जाता है। इस प्रक्रिया में लाभ यह है कि सोडियम हाइड्रोजनकार्बोनेट, जो अमोनियम हाइड्रोजनकार्बोनेट एवं सोडियम क्लोराइड के संयोग से अवक्षेपित होता है, अल्प विलेय होता है। अमोनियम हाइड्रोजनकार्बोनेट, CO_2 गैस को सोडियम क्लोराइड के अमोनिया से संतृप्त सांद्र विलयन में प्रवाहित कर बनाया जाता है। वहाँ पहले अमोनियम कार्बोनेट और फिर अमोनियम हाइड्रोजनकार्बोनेट बनता है। संपूर्ण प्रक्रम की अभिक्रियाएँ निम्नलिखित हैं–

$$2NH_3 + H_2O + CO_2 \rightarrow (NH_4)_2CO_3$$

$$(NH_4)_2CO_3 + H_2O + CO_2 \rightarrow 2NH_4HCO_3$$

$$NH_4HCO_3 + NaCl \rightarrow NH_4Cl + NaHCO_3$$
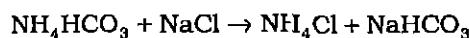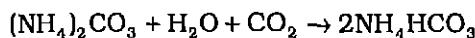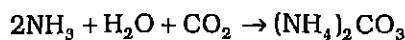
इस प्रकार सोडियम बाइकार्बोनेट के क्रिस्टल पृथक् हो जाते हैं, जिन्हें गरम करके सोडियम कार्बोनेट प्राप्त किया जाता है–

$$2NaHCO_3 \rightarrow Na_2CO_3 + CO_2 + H_2O$$
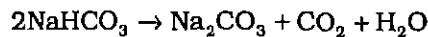
इस प्रक्रम में NH_4Cl युक्त विलयन की $Ca(OH)_2$ से अभिक्रिया पर NH_3 को पुन: प्राप्त किया जा सकता है। कैल्सियम क्लोराइड सह-उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है–

$$2NH_4Cl + Ca(OH)_2 \rightarrow 2NH_3 + CaCl_2 + H_2O$$
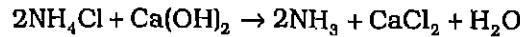
यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साल्वे विधि का उपयोग पोटैशियम कार्बोनेट के निर्माण में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि पोटैशियम हाइड्रोजनकार्बोनेट की अधिक विलेयता के कारण इसे पोटैशियम क्लोराइड के संतृप्त विलयन में अमोनियम हाइड्रोजनकार्बोनेट के संयोग द्वारा अवक्षेपित करना संभव नहीं है।

गुण

सोडियम कार्बोनेट श्वेत क्रिस्टलीय ठोस है, जो डेकाहाइड्रेट $Na_2CO_3 \cdot 10H_2O$ के रूप में पाया जाता है। इसे 'धावन सोडा' (Washing Soda) भी कहते हैं। यह जल में आसानी से घुल जाता है। गरम करने पर डेकाहाइड्रेट क्रिस्टलीय जल त्यागकर मोनोहाइड्रेट में बदल जाता है। 373 K से उच्च ताप पर मोनोहाइड्रेट पूर्ण रूप से शुष्क हो जाता है एवं एक श्वेत रंग के चूर्ण में बदल जाता है, जिसे 'सोडा ऐश' (Soda Ash) कहते हैं।

$$Na_2CO_3 \cdot 10H_2O \xrightarrow{375\,K} Na_2CO_3 \cdot H_2O + 9H_2O$$

$$Na_2CO_3 \cdot H_2O \xrightarrow{>373\,K} \underset{\text{सोडा ऐश}}{Na_2CO_3} + H_2O$$
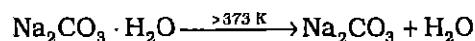
सोडियम कार्बोनेट का कार्बोनेट वाला भाग जल-अपघटित होकर क्षारीय विलयन बनाता है–

$$CO_3^{2-} + H_2O \rightarrow HCO_3^- + OH^-$$
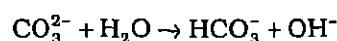
उपयोग

(1) जल के मृदुकरण, धुलाई एवं निर्मलन में;

(2) काँच, साबुन, बोरेक्स एवं कास्टिक सोडा के निर्माण में;

(3) कागज, पेन्ट एवं वस्त्र उद्योग में; और

(4) प्रयोगशाला में गुणात्मक एवं मात्रात्मक विश्लेषण में अभिकर्मक के रूप में।

सोडियम क्लोराइड (NaCl)

सोडियम क्लोराइड का मुख्य स्रोत समुद्री जल है, जिसमें लगभग 2.7 से 2.9 प्रतिशत (भारात्मक) तक लवण होता है। हमारे देश जैसे देशों में समुद्री जल के वाष्पीकरण द्वारा साधारण नमक प्राप्त किया जाता है। हमारे देश में सूर्य से वाष्पीकरण द्वारा लगभग 50 लाख टन नमक का उत्पादन प्रतिवर्ष किया जाता है। अपरिष्कृत नमक, जो ब्राइन विलयन के क्रिस्टलीकरण से प्राप्त किया जाता है, में सोडियम सल्फेट, कैल्सियम सल्फेट, कैल्सियम क्लोराइड एवं मैग्नीशियम क्लोराइड अशुद्धि के रूप में होते हैं। कैल्सियम क्लोराइड $CaCl_2$ एवं मैग्नीशियम क्लोराइड $MgCl_2$ की अशुद्धि का कारण उनका प्रस्वेद्य (Deliquescent) होना है (अर्थात् ये सरलतापूर्वक वायुमंडल से नमी का अवशोषण करते हैं)। शुद्ध सोडियम क्लोराइड प्राप्त करने के लिए अपरिष्कृत लवण को जल की न्यूनतम मात्रा में घोला जाता है, जिसमें अविलेय अशुद्धियाँ पृथक् हो जाती हैं। जब विलयन को हाइड्रोजन क्लोराइड गैस से संतृप्त करते हैं, तब सोडियम क्लोराइड के क्रिस्टल पृथक् हो जाते हैं। कैल्सियम एवं मैग्नीशियम क्लोराइड सोडियम क्लोराइड से अधिक विलेय होने के कारण विलयन में ही रहते हैं।

सोडियम क्लोराइड का गलनांक 1081 K है। जल में इसकी विलेयता 273 K पर 36.0 g प्रति 100 g जल है। ताप बढ़ाने पर विलेयता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है।

उपयोग

(i) साधारण नमक के रूप में, तथा

(ii) Na_2O_2, NaOH एवं Na_2CO_3 बनाने में।

सोडियम हाइड्रॉक्साइड (कास्टिक सोडा), NaOH

औद्योगिक स्तर पर सोडियम हाइड्रॉक्साइड का उत्पादन कास्टनर-कैलनर सेल में सोडियम क्लोराइड के विद्युत्-अपघटन द्वारा किया जाता है। मर्करी कैथोड एवं कार्बन ऐनोड का उपयोग करके लवण-जल का विद्युत्-अपघटन सेल में किया जाता है। सोडियम धातु मर्करी कैथोड पर विसर्जित होकर मर्करी के साथ संयुक्त होकर सोडियम अमलगम बनाता है। ऐनोड पर क्लोरीन गैस मुक्त होती है।

कैथोड : $Na^+ + e^- \xrightarrow{Hg} Na^-$ अमलगम

ऐनोड : $Cl^- \rightarrow \frac{1}{2}Cl_2 + e^-$
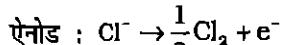
अमलगम जल से अभिक्रिया करके सोडियम हाइड्रॉक्साइड एवं हाइड्रोजन गैस देता है।

$$2Na\text{- अमलगम} + 2H_2O \rightarrow 2NaOH + 2Hg + H_2$$
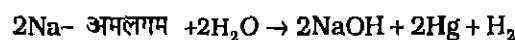
सोडियम हाइड्रॉक्साइड पारभासी श्वेत ठोस पदार्थ है। इसका गलनांक 591 K है। यह जल में शीघ्रता से विलेय होकर क्षारीय विलयन बनाता है। सोडियम हाइड्रॉक्साइड के क्रिस्टल प्रस्वेद्य (Deliquescent) होते हैं। सतह पर सोडियम हाइड्रॉक्साइड विलयन वायुमंडलीय CO_2 से अभिक्रिया करके Na_2CO_3 बनाता है।

उपयोग

(i) साबुन, कागज़, कृत्रिम रेशम तथा कई अन्य रसायनों के निर्माण में;
(ii) पेट्रोलियम के परिष्करण में;
(iii) बॉक्साइट के शुद्धिकरण में;
(iv) वस्त्र-उद्योग में सूती वस्त्रों के मर्सरीकरण में;
(v) शुद्ध वसा एवं तेलों के निर्माण में; तथा
(vi) प्रयोगशाला-अभिकर्मक के रूप में।

सोडियम हाइड्रोजन-कार्बोनेट (बेकिंग सोडा), $NaHCO_3$

सोडियम हाइड्रोजन कार्बोनेट को 'बेकिंग सोडा' भी कहा जाता है, क्योंकि यह गरम करने पर विघटित होकर कार्बन-डाइऑक्साइड के बुलबुले देता है। (इसीलिए पेस्ट्री, केक आदि में छोटे-छोटे छिद्र हो जाते हैं। फलतः वे हलके तथा परिफुल्लित (Fluffy) बन जाते हैं।)

सोडियम हाइड्रोजन-कार्बोनेट को सोडियम कार्बोनेट के विलयन में CO_2 गैस से संतृप्त करके बनाया जाता है। सोडियम हाइड्रोजनकार्बोनेट का श्वेत चूर्ण कम विलेय होने के कारण पृथक् हो जाता है।

$$Na_2CO_3 + H_2O + CO_2 \rightarrow 2NaHCO_3$$
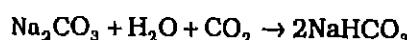
सोडियम हाइड्रोजन-कार्बोनेट चर्म रोगों में मंद पूतिराधी (Mild Antiseptic) के रूप में; साथ ही अग्निशमन यंत्र में भी होता है।

10.5 सोडियम एवं पोटैशियम की जैव उपयोगिता

70 किलो के वज़न वाले एक सामान्य व्यक्ति में लगभग 90 ग्राम सोडियम एवं 170 ग्राम पोटैशियम होता है, जबकि लोहा केवल 5 ग्राम तथा ताँबा 0.06 ग्राम होता है।

सोडियम आयन मुख्यतः अंतराकाशीय द्रव में उपस्थित रक्त प्लाज़्मा, जो कोशिकाओं को घेरे रहता है, में पाया जाता है। यह आयन शिरा-संकेतों के संचरण में भाग लेते हैं, जो कोशिका झिल्ली में जलप्रवाह को नियमित करते हैं तथा कोशिकाओं में शर्करा और एमीनो अम्लों के प्रवाह को भी नियंत्रित करते हैं। सोडियम एवं पोटैशियम रासायनिक रूप से समान होते हुए भी कोशिका झिल्ली को पार करने की क्षमता एवं एन्ज़ाइम को सक्रिय करने में मात्रात्मक रूप से भिन्न हैं। इसीलिए कोशिका द्रव में पोटैशियम धनायन बहुतायत में होते हैं। जहाँ ये एन्ज़ाइम को सक्रिय करते हैं तथा ग्लूकोज़ के ऑक्सीकरण से ATP बनने में भाग लेते हैं। सोडियम आयन शिरा-संकेतों के संचरण के लिए उत्तरदायी है।

कोशिका झिल्ली के अन्य हिस्सों में पाए जाने वाले सोडियम एवं पोटैशियम आयनों की सांद्रता में उल्लेखनीय भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए– रक्त प्लाज़्मा में लाल रक्त कोशिकाओं में सोडियम की मात्रा 143 m $molL^{-1}$ है, जबकि पोटैशियम का स्तर केवल 5 m $molL^{-1}$ है। यह सांद्रता 10 m $molL^{-1}$ (Na^+) एवं 105 m $molL^{-1}$(K^+) तक परिवर्तित हो सकती है। यह असाधारण आयनिक उतार-चढ़ाव, जिसे 'सोडियम पोटैशियम पंप' कहते हैं, सेल झिल्ली पर कार्य करता है, जो मनुष्य की विश्रामावस्था के कुल उपभोगित ATP की एक-तिहाई से ज़्यादा का उपयोग कर लेता है, जो मात्रा लगभग 15 किलो प्रति 24 घंटे तक हो सकती है।

10.6 वर्ग 2 के तत्त्वः क्षारीय मृदा धातुएँ

आवर्त सारणी के वर्ग 2 के तत्त्व हैं– बेरीलियम, मैग्नीशियम, कैल्सियम, स्ट्रॉन्शियम, बेरियम एवं रेडियम। बेरीलियम के अतिरिक्त अन्य तत्त्व संयुक्त रूप से 'मृदा धातुएँ' कहलाती हैं। प्रथम तत्त्व बेरीलियम वर्ग के अन्य तत्त्वों से भिन्नता दर्शाता है एवं ऐलुमीनियम के साथ विकर्ण संबंध (Diagonal Relationship) दर्शाता है। मृदा धातुओं के परमाण्वीय तथा भौतिक गुण सारणी 10.2 में दर्शाए गए हैं।

10.6.1 इलेक्ट्रॉनिक विन्यास

इन तत्त्वों के संयोजकता-कोश के s-कक्षक में 2 इलेक्ट्रॉन होते हैं (सारणी 10.2)। इनका सामान्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास [उत्कृष्ट गैस] ns^2 होता है। क्षार धातुओं के समान ही इनके भी यौगिक मुख्यतः आयनिक प्रकृति के होते हैं।

तत्त्व	प्रतीक	इलेक्ट्रॉनिक विन्यास
बेरीलियम	Be	$1s^22s^2$
मैग्नीशियम	Mg	$1s^22s^22p^63s^2$
कैल्सियम	Ca	$1s^22s^22p^63s^23p^64s^2$
स्ट्रॉन्शियम	Sr	$1s^22s^22p^63s^23p^63d^{10}4s^24p^65s^2$
बेरियम	Ba	$1s^22s^22p^63s^23p^63d^{10}4s^24p^6$ $4d^{10}5s^25p^66s^2$ या [Xe] $6s^2$
रेडियम	Ra	[Rn]$7s^2$

10.6.2 परमाण्वीय एवं आयनिक त्रिज्या

आवर्त सारणी के संगत आवर्तों में क्षार धातुओं की तुलना में क्षारीय मृदा धातुओं की परमाण्वीय एवं आयनिक त्रिज्याएँ छोटी होती हैं। इसका कारण इन तत्त्वों के नाभिकीय आवेशों में वृद्धि होना है।

10.6.3 आयनन एंथैल्पी

क्षारीय मृदा धातुओं के परमाणुओं के बड़े आकार के कारण इनकी आयनन एंथैल्पी के मान न्यून होते हैं। चूँकि वर्ग में आकार ऊपर से नीचे क्रमशः बढ़ता जाता है, अतः इनकी आयनन एंथैल्पी के मान कम होते जाते हैं (सारणी 10.2)। क्षारीय मृदा धातुओं के प्रथम आयनन एंथैल्पी का मान क्षार धातुओं के प्रथम आयनन एंथैल्पी के मानों की तुलना में अधिक है। यह इनकी क्षार धातुओं की संगत तुलनात्मक रूप से छोटे आकार होने के कारण होती है, परंतु यह देखना रुचिकर है कि इनके द्वितीय आयनन एंथैल्पी के मान क्षार धातुओं के द्वितीय आयनन एंथैल्पी के मानों की तुलना में कम हैं।

10.6.4 जलयोजन एंथैल्पी

क्षार धातुओं के समान इसमें भी वर्ग में ऊपर से नीचे आयनिक आकार बढ़ने पर इनकी जलयोजन एंथैल्पी के मान कम होते जाते हैं।

$Be^{2+} > Mg^{2+} > Ca^{2+} > Sr^{2+} > Ba^{2+}$

क्षारीय मृदा धातुओं की जलयोजन एंथैल्पी क्षार धातुओं की जलयोजन एंथैल्पी की तुलना में ज्यादा होती है। इसीलिए मृदा धातुओं के यौगिक क्षार धातुओं के यौगिकों की तुलना

सारणी 10.2 क्षारीय मृदा धातुओं के परमाण्वीय एवं भौतिक गुण
(Atomic and Physical Properties of the Alkaline Earth Metals)

गुण	बेरीलियम BE	मैग्नीशियम MG	कैल्सियम CA	स्ट्रॉन्शियम SR	बेरियम BA	रेडियम RA
परमाणु-क्रमांक	4	12	20	38	56	88
परमाणु द्रव्यमान/g mol^{-1}	9.01	24.31	40.08	87.62	137.33	226.03
इलेक्ट्रॉनिक-विन्यास	[He]$2s^2$	[Ne]$3s^2$	[Ar]$4s^2$	[Kr]$5s^2$	[Xe]$6s^2$	[Rn]$7s^2$
आयनन एंथैल्पी (I)/kJ mol^{-1}	899	737	590	549	503	509
आयनन एंथैल्पी (II)/kJ mol^{-1}	1757	1450	1145	1064	965	979
जलयोजन एंथैल्पी (kJ mol^{-1})	–2494	–1921	–1577	–1443	–1305	–
धात्विक त्रिज्या/pm	112	160	197	215	222	–
आयनिक त्रिज्या M^{2+}/pm	31	72	100	118	135	148
गलनांक/K	1560	924	1124	1062	1002	973
क्वथनांक/K	2745	1363	1767	1655	2078	(1973)
घनत्व/g cm^{-3}	1.84	1.74	1.55	2.63	3.59	(5.5)
मानक विभव $E^⊖/V(M^{2+}/M)$ के लिए	–1.97	–2.36	–2.84	–2.89	–2.92	–2.92
स्थलमंडल में प्राप्ति	2*	2.76**	4.6**	384*	390*	10^{-6}*

* पी.पी.एम ** भारात्मक प्रतिशत

में अधिक जलयोजित होते हैं। जैसे–$MgCl_2$ एवं $CaCl_2$ जलयोजित अवस्था $MgCl_2.6H_2O$ एवं $CaCl_2.6H_2O$ में पाए जाते हैं, जबकि NaCl एवं KCl ऐसे हाइड्रेट नहीं बनाते हैं।

10.6.5 भौतिक गुण

क्षारीय मृदा धातुएँ सामान्यतया चाँदी की भाँति सफेद, चमकदार एवं नरम, परंतु अन्य धातुओं की तुलना में कठोर होती हैं। बेरीलियम तथा मैग्नीशियम लगभग धूसर रंग (Greyish) के होते हैं। इनके गलनांक एवं क्वथनांक क्षार धातुओं की तुलना में उच्च होते हैं, क्योंकि इनका आकार छोटा होता है। फिर भी इनके गलनांकों तथा क्वथनांकों में कोई नियमित परिवर्तन नहीं दिखता है। निम्न आयनन एंथैल्पी के कारण ये प्रबल धन-विद्युतीय होते हैं। धन-विद्युतीय गुण ऊपर से नीचे Be से Ba तक बढ़ता है। कैल्सियम, स्ट्रॉन्शियम एवं बेरियम ज्वाला को क्रमशः ईंट जैसा लाल (Brick Red) रंग, किरमिजी लाल (Crimson Red) एवं हरा (Apple Green) रंग प्रदान करते हैं। ज्वाला में उच्च ताप पर वाष्प-अवस्था में क्षारीय मृदा धातुओं के बाह्यतम कोश के इलेक्ट्रॉन उत्तेजित होकर उच्च ऊर्जा-स्तर पर चले जाते हैं। ये उत्तेजित इलेक्ट्रॉन जब पुनः अपनी तलस्थ अवस्था में लौटते हैं, तब दृश्य प्रकाश के रूप में ऊर्जा उत्सर्जित होती है। फलतः ज्वाला रंगीन दिखने लगती है। बेरीलियम तथा मैग्नीशियम के बाह्यतम कोशों के इलेक्ट्रॉन इतनी प्रबलता से बँधे रहते हैं कि ज्वाला की ऊर्जा द्वारा इनका उत्तेजित होना कठिन हो जाता है। अतः ज्वाला में इन धातुओं का अपना कोई अभिलाक्षणिक रंग नहीं होता है। गुणात्मक विश्लेषण में Ca, Sr एवं Ba मूलकों की पुष्टि ज्वाला-परीक्षण के आधार पर की जाती है तथा इनकी सांद्रता का निर्धारण ज्वाला प्रकाशमापी द्वारा किया जाता है। क्षारीय मृदा धातुओं की क्षार धातुओं की तरह वैद्युत् एवं ऊष्मीय चालकता उच्च होती है। यह इनका अभि-लाक्षणिक गुण होता है।

10.6.6 रासायनिक गुण

क्षारीय मृदा धातुएँ क्षार धातुओं से कम क्रियाशील होती हैं। इन तत्त्वों की अभिक्रियाशीलता वर्ग के ऊपर से नीचे जाने पर बढ़ती है।

(i) वायु एवं जल के प्रति अभिक्रियाशीलता : बेरीलियम एवं मैग्नीशियम गतिकीय रूप से ऑक्सीजन तथा जल के प्रति निष्क्रिय हैं, क्योंकि इन धातुओं के पृष्ठों पर ऑक्साइड की फिल्म जम जाती है। फिर भी, बेरीलियम चूर्ण रूप में वायु में जलने पर BeO एवं Be_3N_2 बना लेता है। मैग्नीशियम अधिक धनविद्युतीय है, जो वायु में अत्यधिक चमकीले प्रकाश के साथ जलते हुए MgO तथा Mg_3N_2 बना लेता है। कैल्सियम, स्ट्रॉन्शियम एवं बेरियम वायु से शीघ्र अभिक्रिया करके ऑक्साइड तथा नाइट्राइड बनाते हैं। ये जल से और भी अधिक तीव्रता से अभिक्रिया करते हैं; यहाँ तक कि ठंडे जल से अभिक्रिया कर हाइड्रॉक्साइड बनाते हैं।

(ii) हैलोजन के प्रति अभिक्रियाशीलता : सभी क्षारीय मृदा धातुएँ हैलोजेन के साथ उच्च ताप पर अभिक्रिया करके हैलाइड बना लेती हैं–

$$M + X_2 \rightarrow MX_2 (X = F, Cl, Br, I)$$
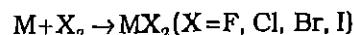
BeF_2 बनाने की सबसे सरल विधि $(NH_4)_2BeF_4$ का तापीय अपघटन है, जबकि $BeCl_2$, ऑक्साइड से सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है–

$$BeO + C + Cl_2 \xrightarrow{600-800K} BeCl_2 + CO$$
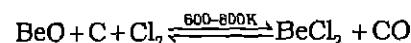
(iii) हाइड्रोजन के प्रति अभिक्रियाशीलता : बेरीलियम के अतिरिक्त सभी क्षारीय मृदा धातुएँ गरम करने पर हाइड्रोजन से अभिक्रिया करके हाइड्राइड बनाती हैं। BeH_2 को $BeCl_2$ एवं $LiAlH_4$ की अभिक्रिया से बनाया जा सकता है–

$$2BeCl_2 + LiAlH_4 \rightarrow 2BeH_2 + LiCl + AlCl_3$$
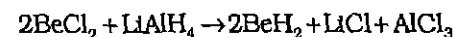
(iv) अम्लों के प्रति अभिक्रियाशीलता : क्षारीय मृदा धातुएँ शीघ्र ही अम्लों से अभिक्रिया कर हाइड्रोजन गैस मुक्त करती हैं।

$$M + 2HCl \rightarrow MCl_2 + H_2$$
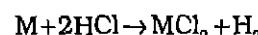
(v) अपचायक प्रकृति : प्रथम वर्ग की धातुओं के समान क्षारीय मृदा धातुएँ प्रबल अपचायक हैं। इसका बोध इनके अधिक ऋणात्मक अपचयन विभव के मानों से होता है (सारणी 10.2), यद्यपि इनकी अपचयन-क्षमता क्षार धातुओं की तुलना में कम होती है। बेरीलियम के अपचयन विभव का मान अन्य क्षारीय मृदा धातुओं से कम ऋणात्मक होता है। फिर भी इसकी अपचयन-क्षमता का कारण Be^{2+} आयन के छोटे आकार, इसकी उच्च जलयोजन ऊर्जा एवं धातु की उच्च परमाण्वीय-करण एंथैल्पी का होना है।

(vi) द्रव अमोनिया में विलयन : क्षार धातुओं की भाँति क्षारीय मृदा धातुएँ भी द्रव अमोनिया में विलेय होकर गहरे नीले काले रंग का विलयन बना लेती हैं। इस विलयन से धातुओं के अमोनीकृत आयन प्राप्त होते हैं–

$$M + (x+y)NH_3 \rightarrow [M(NH_3)_x]^{2+} + 2[e(NH_3)_y]^-$$

इन विलयनों से पुनः अमोनिएट्स (Ammoniates) $[M(NH_3)_6]^{2+}$ प्राप्त किए जा सकते हैं।

10.6.7 उपयोग

बेरीलियम का उपयोग मिश्रधातु के निर्माण में होता है। Cu-Be मिश्रधातु का उपयोग उच्च शक्ति के स्प्रिंग बनाने में होता है। धात्विक बेरीलियम का उपयोग एक्स-किरण नली में वातायन (window) के लिए किया जाता है। मैग्नीशियम ऐलुमीनियम, जिंक, मैंगनीज एवं टिन के साथ मिश्रधातु बनाता है। Mg-Al मिश्रधातु हलकी होने के कारण वायुयानों के निर्माण में प्रयुक्त होती है। मैग्नीशियम (चूर्ण एवं फीता) का उपयोग चमकीले पाउडर तथा बल्ब, तापदीप्त बमों (Incendiary Bombs) और संकेतकों (Signals) में होता है। जल में मैग्नीशियम हाइड्रॉक्साइड के निलंबन (जिसे 'मिल्क ऑफ मैग्नीशियम' कहते हैं) का उपयोग ऐन्टाएसिड (Antacid) दवा के रूप में होता है। मैग्नीशियम कार्बोनेट किसी भी टूथपेस्ट का मुख्य घटक है। कैल्सियम का उपयोग ऑक्साइडों से उन धातुओं के निष्कर्षण में होता है, जिन्हें कार्बन द्वारा अपचयित करना संभव नहीं है। चूँकि कैल्सियम तथा बेरियम उच्च ताप पर ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन से अभिक्रिया करते हैं, अतः इस गुण का उपयोग निर्वात् नली से वायु-निष्कासन करने में किया जाता है। रेडियम के लवणों का उपयोग विकिरण चिकित्सा (उदाहरणार्थ- कैन्सर के उपचार) में किया जाता है।

10.7 क्षारीय मृदा धातुओं के यौगिकों के सामान्य अभिलक्षण

वर्ग 2 के तत्त्वों की द्विधनीय ऑक्सीकरण अवस्था (M^{2+}) इनकी प्रमुख संयोजकता है। क्षारीय मृदा धातुओं के यौगिक प्रायः आयनिक होते हैं, लेकिन यह क्षार धातुओं के संगत यौगिकों की तुलना में कम आयनिक प्रकृति के होते हैं। इसका कारण इनका अधिक नाभिकीय आवेश एवं छोटा आकार है। बेरीलियम एवं मैग्नीशियम के ऑक्साइड तथा अन्य यौगिक इस वर्ग के भारी और बड़े आकार वाले अन्य तत्त्वों (Ca, Sr, Ba) के ऑक्साइडों एवं अन्य यौगिकों की तुलना में अधिक सहसंयोजी होते हैं। क्षारीय मृदा धातुओं के यौगिकों के सामान्य अभिलक्षण यहाँ बताए जा रहे हैं।

(i) ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड : क्षारीय मृदा धातु वायु में जलकर मोनोऑक्साइड (MO) बनाते हैं, जिनकी संरचना BeO को छोड़कर, रॉक-साल्ट (Rock-Salt) जैसी होती है। BeO आवश्यक रूप से सहसंयोजक प्रकृति का होता है। इन यौगिकों की संभवन ऊष्माएँ उच्च होती हैं। यही कारण है कि ये ऊष्मा के प्रति अति स्थायी होते हैं। BeO उभयधर्मी है, जबकि अन्य तत्त्वों के आक्सॉइड क्षारीय प्रकृति के होते हैं, जो जल से अभिक्रिया कर अल्प विलेय हाइड्रॉक्साइड बनाते हैं।

$$MO + H_2O \rightarrow M(OH)_2$$
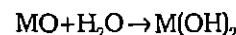
इन हाइड्रॉक्साइडों की विलेयता, तापीय स्थायित्व एवं क्षारीय प्रकृति $Mg(OH)_2$ से $Ba(OH)_2$ तक परमाणु क्रमांक बढ़ने पर बढ़ती है। क्षारीय मृदा धातुओं के हाइड्रॉक्साइड क्षार धातुओं के संगत हाइड्रॉक्साइडों की तुलना में कम स्थायी होते हैं। बेरीलियम हाइड्रॉक्साइड प्रकृति में उभयधर्मी है, क्योंकि यह अम्ल तथा क्षार दोनों से अभिक्रिया करता है।

$$Be(OH)_2 + 2OH^- \rightarrow [Be(OH_4)]^{2-}$$

बेरीलेट आयन

$$Be(OH)_2 + 2HCl + 2H_2O \rightarrow [Be(OH)_4]Cl_2$$
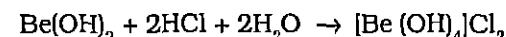
(ii) हैलाइड : बेरीलियम हैलाइड के अतिरिक्त अन्य धातुओं के हैलाइडों की प्रकृति आयनिक होती है। बेरीलियम हैलाइड मुख्य रूप से सहसंयोजक होते हैं एवं कार्बनिक विलायकों में विलेय होते हैं। बेरीलियम क्लोराइड की ठोस अवस्था में शृंखला-संरचना होती है, जैसाकि नीचे दर्शाया गया है-

वाष्प-अवस्था में $BeCl_2$ क्लोरो-सेतु (Chloro-Bridged) द्विलक बनाता है, जो 1200K के उच्च ताप पर रेखीय एकलक में वियोजित हो जाता है। वर्ग में ऊपर से नीचे हैलाइड हाइड्रेट बनाने की प्रवृत्ति कम होती जाती है। Ca, Sr एवं Ba के जलयोजित क्लोराइड, ब्रोमाइड एवं आयोडाइडों का निर्जलीकरण इन्हें गरम करके किया जा सकता है, जबकि Be एवं Mg के संगत जलयोजित हैलाइड का जल-अपघटन हो जाता है। उदाहरणार्थ- $MgCl_2 . 8H_2O$, $CaCl_2, 6H_2O$, $SrCl_2, 6H_2O$ एवं $BaCl_2.2H_2O$) उच्च जालक ऊर्जा के कारण फ्लुओराइड क्लोराइड की तुलना में कम विलेय होते हैं।
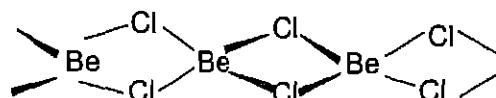
(iii) ऑक्सो-अम्लों के लवण : क्षारीय मृदा धातुएँ ऑक्सो-अम्लों के लवण भी बनाती हैं। इनमें से कुछ मुख्य निम्नलिखित हैं-

कार्बोनेट : क्षारीय मृदा धातुओं के कार्बोनेट जल में अविलेय होते हैं, जिन्हें इन तत्त्वों के विलेय लवणों के विलयन में

सोडियम या अमोनियम कार्बोनेट विलयन मिलाकर अवक्षेपित किया जा सकता है। तत्त्व के परमाणु क्रमांक बढ़ने पर कार्बोनेटों की जल में विलेयता बढ़ती है। सभी कार्बोनेट गरम करने पर कार्बन डाइऑक्साइड एवं ऑक्साइड में वियोजित हो जाते हैं। बेरीलियम कार्बोनेट अस्थायी होता है, जिसे केवल CO_2 के वातावरण में रखा जा सकता है। कार्बोनेटों का तापीय स्थायित्व धनायन का आकार बढ़ने पर बढ़ता है।

सल्फेट : क्षारीय मृदा धातुओं के सल्फेट श्वेत एवं ठोस होते हैं तथा ताप के प्रति स्थायी होते हैं। $BeSO_4$ एवं $MgSO_4$ शीघ्रता से जल में विलेय हो जाते हैं। $CaSO_4$ से $BaSO_4$ तक विलेयता कम होती जाती है। Be^{2+} एवं Mg^{2+} आयनों की जलयोजन एंथैल्पी इनके जालक एंथैल्पी की तुलना में अधिक होती है। अत: इनके सल्फेट जल में विलेय होते हैं।

नाइट्रेट : इन धातुओं के कार्बोनेटों को तनु नाइट्रिक अम्ल में घोलकर इनके नाइट्रेट प्राप्त किए जाते हैं। मैग्नीशियम नाइट्रेट जल के छ: अणुओं के साथ क्रिस्टलित होता है, जबकि बेरियम नाइट्रेट निर्जल लवण के रूप में क्रिस्टलित होता है। यह फिर बढ़ते आकार के साथ घटती जलयोजन एंथैल्पी के कारण कम जलयोजित लवण बनाने की प्रवृत्ति को पुन: दर्शाता है। लीथियम नाइट्रेट के समान सभी नाइट्रेट गरम करने पर अपघटित होकर ऑक्साइड बनाते हैं।

$$2M(NO_3)_2 \rightarrow 2MO + 4NO_2 + O_2$$

$(M = Be, Mg, Ca, Sr, Ba)$

उदाहरण 10.4

क्षारीय मृदा धातुओं के हाइड्रॉक्साइडों की जल में विलेयता वर्ग में नीचे जाने पर क्यों बढ़ती है?

हल

क्षारीय मृदा धातुओं में ऋणायन समान हों, तो धनायन की त्रिज्या जालक एंथैल्पी को प्रभावित करती है। चूँकि बढ़ती हुई आयनिक त्रिज्या के साथ जलयोजन एंथैल्पी की तुलना में ऋणात्मक एंथैल्पी तेजी से कम होती है, अत: वर्ग में नीचे जाने पर विलेयता बढ़ती है।

उदाहरण 10.5

क्षारीय मृदा धातुओं के कार्बोनेटों एवं सल्फेटों की जल में विलेयता वर्ग में ऊपर से नीचे क्यों घटती है?

हल

ऋणायन का आकार धनायन की तुलना में बहुत अधिक है एवं जालक एंथैल्पी वर्ग में लगभग स्थिर रहती है। चूँकि वर्ग में जलयोजन ऊर्जा का मान ऊपर से नीचे घटता है, अत: धातु कार्बोनेटों एवं सल्फेटों की विलेयता वर्ग में ऊपर से नीचे जाने पर घटती जाती है।

10.8 बेरीलियम का असंगत व्यवहार

वर्ग 2 का प्रथम तत्त्व बेरीलियम वर्ग में मैग्नीशियम तथा अन्य तत्त्वों के साथ असंगत व्यवहार दिखलाता है। यह ऐलुमीनियम से विकर्ण भी दर्शाता है, जो तदंतर विवेचित किए जाएँगे।

(i) बेरीलियम का परमाण्वीय एवं आयनिक आकार असाधारण रूप से छोटा होता है, जिसकी तुलना वर्ग के अन्य तत्त्वों से नहीं की जा सकती है। उच्च आयनन एंथैल्पी तथा लघु परमाणु आकार के कारण बेरीलियम के यौगिक बृहद् रूप से सहसंयोजी होते हैं तथा आसानी से जल अपघटित हो जाते हैं।

(ii) बेरीलियम की उपसहसंयोजन संख्या (Co-ordination Number) चार से अधिक नहीं होती है, क्योंकि इसके संयोजी-कोश में केवल चार कक्षक हैं। वर्ग के अन्य सदस्यों की उपसहसंयोजन संख्या छ: हो सकती है, क्योंकि ये d कक्षकों का उपयोग करते हैं।

(iii) अन्य सदस्यों के ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड के विपरीत बेरीलियम के ऑक्साइड तथा हाइड्रॉक्साइड का स्वभाव उभयधर्मी (Amphoteric) होता है।

10.8.1 बेरीलियम एवं ऐलुमीनियम में विकर्ण संबंध

Be^{2+} की अनुमानित आयनिक त्रिज्या 31 pm है। इसका आवेश/त्रिज्या अनुपात Al^{3+} आयन के लगभग समान है। अत: बेरीलियम कुछ मामलों में ऐलुमीनियम के समान है। कुछ समानताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) ऐलुमीनियम के समान बेरीलियम शीघ्रता से अम्लों से प्रभावित नहीं होता है, क्योंकि धातु की सतह पर ऑक्साइड फिल्म की उपस्थिति होती है।

(ii) क्षार की अधिकता में बेरीलियम हाइड्रॉक्साइड घुल जाता है और बेरिलेट (Beryllate) आयन $[Be(OH_4)]^{2-}$ देता है। ठीक इसी प्रकार ऐलुमीनियम हाइड्रॉक्साइड ऐलुमिनेट (Aluminate) आयन $[Al(OH)_4]^-$ देता है।

(iii) बेरीलियम एवं ऐलुमीनियम के क्लोराइड वाष्प प्रावस्था में सेतुबंधित क्लोराइड (Bridged Chloride) की रचना करते हैं। दोनों ही क्लोराइड कार्बनिक विलायकों

में विलेय होते हैं एवं प्रबल लूइस अम्ल हैं। इनका उपयोग फ्रीडेल-क्राफ्ट के उत्प्रेरक (Friedel Craft Catalyst) के रूप में होता है।

(iv) बेरीलियम एवं ऐलुमीनियम आयन जटिल यौगिक (Complexes) बनाने की प्रबल प्रवृत्ति रखते हैं जैसे– BeF_4^{2-}, AlF_6^{3-} ।

10.9 कैल्सियम के कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिक

कैल्सियम के महत्त्वपूर्ण यौगिक कैल्सियम ऑक्साइड, कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड, कैल्सियम सल्फेट, कैल्सियम कार्बोनेट एवं सीमेन्ट हैं। ये औद्योगिक रूप से महत्त्वपूर्ण यौगिक हैं। वृहद् स्तर पर इनका विरचन एवं इनके उपयोग नीचे वर्णित किए जा रहे हैं।

कैल्सियम ऑक्साइड या बिना बुझा चूना, CaO

इसका वाणिज्यिक निर्माण घूर्णित भट्ठी (Rotary Kiln) में चूने के पत्थर ($CaCO_3$) को लगभग 1070-1270 K पर गरम करके किया जाता है।

$$CaCO_3 \xrightleftharpoons{\text{उष्मा}} CaO + CO_2$$
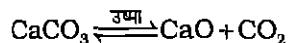
CO_2 को अभिक्रिया से शीघ्रताशीघ्र हटाते रहते हैं, ताकि अभिक्रिया अग्र दिशा में पूर्ण हो सके। कैल्सियम ऑक्साइड एक श्वेत अक्रिस्टलीय ठोस पदार्थ है, जिसका गलनांक 2870 K है। वायुमंडल में खुला छोड़ने पर यह वायुमंडल से नमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित कर लेता है।

$$CaO + H_2O \rightarrow Ca(OH)_2$$

$$CaO + CO_2 \rightarrow CaCO_3$$
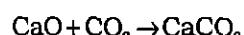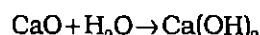
सीमित मात्रा में जल मिलाने पर चूने के पिंडक (Lumps) टूट जाते हैं। इस प्रक्रम को चूना बुझाने (Slaking of lime) की प्रक्रिया कहते हैं। बिना बुझे चूने को जब सोडा द्वारा बुझाया जाता है, तब सोडा लाइम (Soda Lime) प्राप्त होता है। यह क्षारीय ऑक्साइड होने के कारण उच्च ताप अम्लीय ऑक्साइडों से संयोग करता है।

$$CaO + SiO_2 \rightarrow CaSiO_3$$

$$6CaO + P_4O_{10} \rightarrow 2Ca_3(PO_4)_2$$
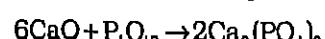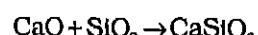
उपयोग

(i) सीमेंट के निर्माण के लिए प्राथमिक पदार्थ के रूप में तथा क्षार के सबसे सस्ते रूप में;

(ii) कास्टिक सोडा से सोडियम कार्बोनेट बनाने में; और

(iii) शर्करा के शुद्धिकरण में एवं रंजकों (Dye Stuffs) के निर्माण में।

कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड अर्थात् बुझा चूना, $Ca(OH)_2$

कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड का निर्माण बिना बुझे चूने में जल मिलाकर किया जाता है। यह श्वेत पाउडर है। यह जल में अल्प विलेय है। इसके जलीय विलयन [चूने का पानी (Lime Water)] में जब कार्बन डाइऑक्साइड गैस प्रवाहित की जाती है, तब कैल्सियम कार्बोनेट के विचरन के कारण चूने का पानी दूधिया हो जाता है।

$$Ca(OH)_2 + CO_2 \rightarrow CaCO_3 + H_2O$$
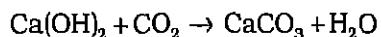
कार्बन डाइऑक्साइड को अधिकता में प्रवाहित करने पर अवक्षेपित कैल्सियम कार्बोनेट जल में विलेय कैल्सियम हाइड्रोजन-कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाता है।

$$CaCO_3 + CO_2 + H_2O \rightarrow Ca(HCO_3)_2$$
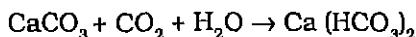
चूने का पानी क्लोरीन से अभिक्रिया कर हाइपोक्लोराइट (Hypochlorite) बना लेता है, जो विरजंक चूर्ण (ब्लीचिंग पाउडर) का एक अवयव है।

$$2Ca(OH)_2 + 2Cl_2 \rightarrow CaCl_2 + \underset{\text{ब्लीचिंग पाउडर}}{Ca(OCl)_2} + 2H_2O$$
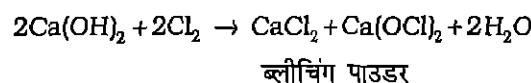
उपयोग

(i) बृहद् स्तर पर चूना-लेप (Mortar) के रूप में भवन-निर्माण में;

(ii) रोगाणुनाशी (Disinfactant) प्रकृति के कारण सफेदी (White Wash) के रूप में; और

(iii) काँच के उत्पादन, चर्मशोधन उद्योग, विरंजक चूर्ण के उत्पादन एवं शर्करा-शोधन में।

कैल्सियम कार्बोनेट ($CaCO_3$)

प्रकृति में कई रूपों, जैसे– चूना-पत्थर, खड़िया (Chalk), संगमरमर (Marble) आदि के रूप में चूना पाया जाता है। बुझे चूने पर कार्बन डाइऑक्साइड गैस प्रवाहित कर या कैल्सियम क्लोराइड में सोडियम कार्बोनेट को मिलाकर इसे बनाया जाता है।

$$Ca(OH)_2 + CO_2 \rightarrow CaCO_3 + H_2O$$

$$CaCl_2 + Na_2CO_3 \rightarrow CaCO_3 + 2NaCl$$
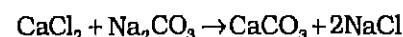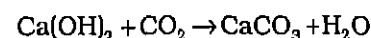
इस अभिक्रिया में कार्बन डाइऑक्साइड के आधिक्य से बचना चाहिए, क्योंकि इसकी अधिकता में जल में घुलनशील कैल्सियम हाइड्रोजन-कार्बोनेट बन सकता है।

कैल्सियम कार्बोनेट श्वेत रवेदार पाउडर होता है। यह

जल में लगभग अविलेय होता है। 1200 K पर गरम करने पर यह विघटित होकर कार्बन डाइऑक्साइड देता है।

$$CaCO_3 \xrightarrow{1200K} CaO + CO_2$$
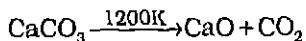
यह तनु अम्लों से अभिक्रिया करके कार्बन डाइऑक्साइड मुक्त करता है।

$$CaCO_3 + 2HCl \rightarrow CaCl_2 + H_2O + CO_2$$

$$CaCO_3 + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4 + H_2O + CO_2$$
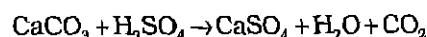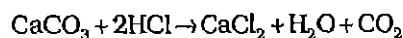
उपयोग

- संगमरमर के रूप में भवन-निर्माण में;
- बुझे चूने के निर्माण में;
- कैल्सियम कार्बोनेट को मैग्नीशियम कार्बोनेट के साथ लोहे जैसी धातुओं के निष्कर्षण में फ्लक्स (Flux) के रूप में;
- विशेष रूप से अवक्षेपित $CaCO_3$ के प्रयोग से बृहद् रूप में उच्च गुणवत्ता वाले कागज के निर्माण में; और
- ऐन्टासिड, टूथपेस्ट में अपघर्षक के रूप में, च्यूइंगम के संघटक एवं सौंदर्य प्रसाधनों में पूरक के रूप में।

कैल्सियम सल्फेट (प्लास्टर ऑफ पेरिस) $CaSO_4 \cdot 1/2\, H_2O$
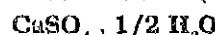
यह कैल्सियम सल्फेट का अर्ध हाइड्रेट (Hemihydrate) है। इसे जिप्सम ($CaSO_4 \cdot 2H_2O$) को 393K पर गरम करके प्राप्त किया जाता है।

$$2(CaSO_4.2H_2O) \rightarrow 2(CaSO_4).H_2O + 3H_2O$$
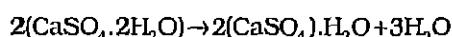
393 K से उच्च ताप पर क्रिस्टलीय जल नहीं बचता है एवं शुष्क कैल्सियम सल्फेट ($CaSO_4$) बनता है। इसे 'मृत तापित प्लास्टर' (Dead Burnt Plaster) कहा जाता है। जल के साथ जमने की इसकी विशेष प्रकृति होती है। पर्याप्त मात्रा में जल मिलाने पर यह प्लास्टिक जैसा एक द्रव्य बनाता है, जो 5 से 15 मिनट में जमकर कठोर और ठोस हो जाता है।

उपयोग

प्लास्टर ऑफ पेरिस का बृहत्तर उपयोग भवन-निर्माण उद्योग के साथ-साथ टूटी हुई हड्डियों के प्लास्टर में भी होता है। इसका उपयोग दंत-चिकित्सा, अलंकरण-कार्य एवं मूर्तियों तथा अर्ध-प्रतिमाओं को बनाने में भी होता है।

सीमेन्ट

सीमेन्ट एक महत्त्वपूर्ण भवन-निर्माण सामग्री है। इसका उपयोग सर्वप्रथम ब्रिटेन में सन् 1824 में जोसेफ एस्पिडन ने किया था। इसे 'पोर्टलैंड सीमेन्ट' भी कहा जाता है, क्योंकि यह ब्रिटेन के पोर्टलैंड टापू पर प्राप्त प्राकृतिक चूने के पत्थर से मिलता-जुलता है। यह एक ऐसा उत्पाद है, जो चूने के आधिक्य वाले पदार्थ CaO को अन्य पदार्थ (जैसे–मिट्टी, जिसमें सिलिका, SiO_2 एवं ऐलुमिनियम, लोहा तथा मैग्नेशियम के ऑक्साइड होते हैं) को मिलाकर बनाया जाता है। पोर्टलैंड सीमेन्ट का औसत संघटन है : CaO, 50-60%, SiO_2, 20-25%, Al_2O_3, 5-10%, MgO, 2-3%, Fe_2O_3, 1-2% एवं SO_3 1-2%। एक अच्छी गुणवत्ता वाले सीमेन्ट में सिलिका (SiO_2) एवं ऐलुमिना (Al_2O_3) का अनुपात 2.5 से 4 के मध्य होना चाहिए एवं चूने (CaO) तथा अन्य कुल ऑक्साइडों, SiO_2 और Al_2O_3 का अनुपात यथासंभव 2 के आस-पास होना चाहिए।

सीमेन्ट के निर्माण में कच्चे माल के रूप में चूने के पत्थर (Limestone) एवं चिकनी मिट्टी का उपयोग होता है। जब इन दोनों को तेजी से गरम किया जाता है तब ये संगलित होकर अभिक्रिया कर सीमेन्ट क्लिंकर (Cement Clinker) बनाते हैं। इस क्लिंकर में 2-3% (भारात्मक) जिप्सम ($CaSO_4.2H_2O$) मिश्रित कर सीमेन्ट बनाया जाता है। इस प्रकार पोर्टलैंड सीमेन्ट के मुख्य घटक डाइकैल्सियम सिलिकेट (Ca_2SiO_4) 26%, ट्राइकैल्सियम सिलिकेट (Ca_3SiO_5) 51% तथा ट्राइकैल्सियम ऐलुमिनेट ($Ca_3Al_2O_6$) 11% हैं।

सीमेन्ट का जमना

जल मिलाने पर सीमेन्ट जमकर कठोर हो जाता है। इसका कारण घटकों के अणुओं का जलयोजन एवं पुनः व्यवस्थित होना है। जिप्सम मिलाने का कारण सीमेन्ट के जमने के प्रक्रम को धीमा करना है ताकि यह पूरी तरह ठोस हो सके।

उपयोग

लोहा तथा स्टील के पश्चात् सीमेन्ट ही एक ऐसा पदार्थ है, जो किसी राष्ट्र की उपयोगी वस्तुओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसका उपयोग कंक्रीट (Concrete), प्रबलित कंक्रीट (Reinforced Concrete), प्लास्टरिंग, पुल-निर्माण, भवन-निर्माण आदि में किया जाता है।

10.10 मैग्नीशियम व कैल्सियम की जैव महत्ता

एक वयस्क व्यक्ति में करीब 25 ग्राम मैग्नीशियम एवं 1200 ग्राम कैल्सियम होता है, जबकि लोहा मात्र 5 ग्राम एवं ताँबा 0.06 ग्राम होता है। मानव-शरीर में इनकी दैनिक आवश्यकता 200-300 mg अनुमानित की गई है।

समस्त एन्ज़ाइम, जो फॉस्फेट के संचरण में ATP का उपयोग करते हैं, मैग्नीशियम का उपयोग सह-घटक के रूप में करते हैं। पौधों में प्रकाश-अवशोषण के लिए मुख्य रंजक (Pigment) क्लोरोफिल में भी मैग्नीशियम होता है। शरीर में कैल्सियम का 99% दाँतों तथा हड्डियों में होता है। यह अंतरतांत्रिकीय पेशीय कार्यप्रणाली, अंतरतांत्रिकीय प्रेषण, कोशिका झिल्ली अखंडता (Cell Membrane Integrity) तथा रक्त-स्कंदन (Blood-coagulation) में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्लाज़्मा में कैल्सियम की सांद्रता लगभग 100 mgL^{-1} होती है। दो हॉर्मोन कैल्सिटोनिन एवं पैराथायराइड इसे बनाए रखते हैं। क्या आप जानते हैं कि हड्डी अक्रिय तथा अपरिवर्तनशील पदार्थ नहीं है, यह किसी मनुष्य में लगभग 400 mg प्रतिदिन के हिसाब से विलेयित और निक्षेपित होती है। इसका सारा कैल्सियम प्लाज़्मा में से ही गुजरता है।

सारांश

वर्ग 1 की क्षार धातुएँ तथा **वर्ग 2** की क्षारीय मृदा धातुएँ संयुक्त रूप से आवर्त सारणी के **s-ब्लॉक** तत्त्वों की रचना करती हैं। इन्हें 'क्षार धातुएँ' कहने का कारण यह है कि इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड क्षारीय प्रकृति के होते हैं। क्षार धातुओं तथा क्षारीय मृदा धातुओं की पहचान उनके परमाणुओं के संयोजी कोशों में क्रमशः एक s-इलेक्ट्रॉन एवं दो s-इलेक्ट्रॉन के आधार पर होती है। ये अत्यंत अभिक्रियाशील धातुएँ हैं, जो क्रमशः एक धनीय **(M^+)** एवं द्विधनीय **(M^{2+})** आयन बनाती हैं।

क्षार धातुओं के बढ़ते हुए परमाणु-क्रमांक के साथ इनके भौतिक एवं रासायनिक गुणों में एक नियमित प्रवृत्ति पाई जाती है। वर्ग में ऊपर से नीचे व्यवस्थित क्रम में **परमाण्वीय** एवं **आयनिक** आकार में वृद्धि होती जाती है तथा **आयनन एंथैल्पी** घटती जाती है। क्षारीय मृदा धातुओं के गुणों में भी लगभग इसी प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है।

इन वर्गों में प्रत्येक वर्ग का प्रथम तत्त्व वर्ग 1 में लीथियम एवं वर्ग 2 में बेरीलियम अपने ठीक बाद वाले वर्ग के दूसरे तत्त्व से समानताएँ प्रदर्शित करता है। आवर्त सारणी में इस प्रकार की समानताओं को **विकर्ण संबंध** की संज्ञा दी जाती है। इन वर्गों के प्रथम तत्त्व अपने ही वर्ग के अन्य तत्त्वों से असमानताएँ प्रदर्शित करते हैं। क्षार धातुएँ रजत श्वेत (Silver White), मुलायम एवं निम्न गलनांकी होती हैं। ये अत्यंत अभिक्रियाशील होती हैं। क्षार धातुओं के यौगिक मुख्य रूप से आयनिक होते हैं। इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड जल में विलेय होते हैं तथा प्रबल क्षार बनाते हैं। सोडियम के प्रमुख यौगिकों में सोडियम कार्बोनेट, सोडियम क्लोराइड, सोडियम हाइड्रॉक्साइड एवं सोडियम हाइड्रोजन कार्बोनेट हैं। सोडियम हाइड्रॉक्साइड का निर्माण **कास्टनर-कैलनर** विधि एवं सोडियम कार्बोनेट का निर्माण **साल्वे विधि** के अनुसार किया जाता है।

क्षारीय मृदा धातुओं का रसायन अधिकांशतः क्षार धातुओं के समान है। क्षारीय मृदा धातुओं के छोटे परमाण्वीय तथा आयनिक आकार एवं बढ़े हुए धनायनिक आवेश के कारण कुछ असमानताएँ उत्पन्न होती हैं। इनके ऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्साइड, क्षार धातुओं के ऑक्साइड हाइड्रॉक्साइड की तुलना में कम क्षारीय होते हैं। कैल्सियम की औद्योगिक महत्ता के यौगिकों में कैल्सियम ऑक्साइड (चूना), कैल्सियम हाइड्रॉक्साइड (बुझा चूना), कैल्सियम सल्फेट (**प्लास्टर ऑफ पेरिस**), कैल्सियम कार्बोनेट (चूना-पत्थर) तथा सीमेन्ट प्रमुख हैं। **पोर्टलैंड सीमेन्ट** एक महत्त्वपूर्ण निर्माण-सामग्री है। चूना-पत्थर एवं चिकनी मिट्टी के चूर्ण-मिश्रण को घूर्णी भट्ठी में गरम करने के उपरांत इसका निर्माण किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त क्लिंकर में जिप्सम की कुछ मात्रा (2-3%) मिलाकर सीमेन्ट का महीन पाउडर प्राप्त किया जाता है। ये सभी पदार्थ विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रकार के उपयोग दर्शाते हैं।

एकल संयोजी सोडियम एवं पोटैशियम आयन तथा द्विसंयोजी मैग्नीशियम एवं कैल्सियम आयन **जैव तरलों** (Biological Fluids) में उच्च अनुपातों में पाए जाते हैं। ये आयन कई जैव क्रियाओं, जैसे–आयन-संतुलन का निर्वाह, शिरा-आवेग संचरण (Nerve Impulse Conduction) आदि में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अभ्यास

10.1 क्षार धातुओं के सामान्य भौतिक तथा रासायनिक गुण क्या हैं?

10.2 क्षारीय मृदा धातुओं के सामान्य अभिलक्षण एवं गुणों में आवर्तिता की विवेचना कीजिए।

10.3 क्षार धातुएँ प्रकृति में क्यों नहीं पाई जाती हैं?

10.4 Na_2O_2 में सोडियम की ऑक्सीकरण अवस्था ज्ञात कीजिए।

10.5 पोटैशियम की तुलना में सोडियम कम अभिक्रियाशील क्यों है? बताइए।

10.6 निम्नलिखित के संदर्भ में क्षार धातुओं एवं क्षारीय मृदा धातुओं की तुलना कीजिए–
(क) आयनन एंथैल्पी, (ख) ऑक्साइडों की क्षारकता, (ग) हाइड्रॉक्साइडों की विलेयता।

10.7 लीथियम किस प्रकार मैग्नीशियम से रासायनिक गुणों में समानताएँ दर्शाता है?

10.8 क्षार धातुएँ तथा क्षारीय मृदा धातुएँ रासायनिक अपचयन विधि से क्यों नहीं प्राप्त किए जा सकते हैं? समझाइए।

10.9 प्रकाश वैद्युत सेल में लीथियम के स्थान पर पोटैशियम एवं सीजियम क्यों प्रयुक्त किए जाते हैं?

10.10 जब एक क्षार धातु को द्रव अमोनिया में घोला जाता है, तब विलयन विभिन्न रंग प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के रंग-परिवर्तन का कारण बताइए।

10.11 ज्वाला को बेरीलियम एवं मैग्नीशियम कोई रंग नहीं प्रदान करते हैं, जबकि अन्य क्षारीय मृदा धातुएँ ऐसा करती हैं। क्यों?

10.12 साल्वे प्रक्रम में होने वाली विभिन्न अभिक्रियाओं की विवेचना कीजिए।

12.13 पोटैशियम कार्बोनेट साल्वे विधि द्वारा नहीं बनाया जा सकता है। क्यों?

10.14 Li_2CO_3 कम ताप पर एवं Na_2CO_3 उच्च ताप पर क्यों विघटित होता है?

10.15 क्षार धातुओं के निम्नलिखित यौगिकों की तुलना क्षारीय मृदा धातुओं के संगत यौगिकों से विलेयता एवं तापीय स्थायित्व के आधार पर कीजिए– (क) नाइट्रेट (ख) कार्बोनेट (ग) सल्फेट।

10.16 सोडियम क्लोराइड से प्रारंभ करके निम्नलिखित को आप किस प्रकार बनाएँगे?
(i) सोडियम धातु
(ii) सोडियम हाइड्रॉक्साइड
(iii) सोडियम परॉक्साइड
(iv) सोडियम कार्बोनेट

10.17 क्या होता है, जब–
(i) मैग्नीशियम को हवा में जलाया जाता है।
(ii) बिना बुझे चूने को सिलीका के साथ गरम किया जाता है।
(iii) क्लोरीन बुझे चूने से अभिक्रिया करती है।
(iv) कैल्सियम नाइट्रेट को गरम किया जाता है।

10.18 निम्नलिखित में से प्रत्येक के दो-दो उपयोग बताइए–
(i) कास्टिक सोडा
(ii) सोडियम कार्बोनेट
(iii) बिना बुझा चूना

10.19 निम्नलिखित की संरचना बताइए– (i) $BeCl_2$ (वाष्प), (ii) $BeCl_2$ (ठोस)

10.20 सोडियम एवं पोटैशियम के हाइड्रॉक्साइड एवं कार्बोनेट जल में विलेय हैं, जबकि मैग्नीशियम एवं कैल्सियम के संगत लवण जल में अल्प विलेय हैं। समझाइए।

10.21 निम्नलिखित की महत्ता बताइए–

(i) चूना-पत्थर (ii) सीमेन्ट (iii) प्लास्टर ऑफ पेरिस

10.22 लीथियम के लवण साधारणतया जलयोजित होते हैं, जबकि अन्य क्षार-धातुओं के लवण साधारणतया निर्जलीय होते हैं। क्यों?

10.23 LiF जल में लगभग अविलेय होता है, जबकि LiCl न सिर्फ जल में, बल्कि ऐसीटोन में भी विलेय होता है। कारण बताइए?

10.24 जैव द्रवों में सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम एवं कैल्सियम की सार्थकता बताइए।

10.25 क्या होता है, जब–

(i) सोडियम धातु को जल में डाला जाता है।

(ii) सोडियम धातु को हवा की अधिकता में गरम किया जाता है।

(iii) सोडियम परॉक्साइड को जल में घोला जाता है।

10.26 निम्नलिखित में से प्रत्येक प्रेक्षण पर टिप्पणी लिखिए–

(क) जलीय विलयनों में क्षार धातु आयनों की गतिशीलता $Li^+ < Na^+ < K^+ < Rb^+ < Cs^+$ क्रम में होती है।

(ख) लीथियम ऐसी एकमात्र क्षार धातु है, जो नाइट्राइड बनाती है।

(ग) $M^{2+}(aq) + 2e^- \longrightarrow M(S)$ हेतु $E^\ominus$ (जहाँ M = Ca, Sr या Ba) लगभग स्थिरांक है।

10.27 समझाइए कि क्यों–

(क) Na_2CO_3 का विलयन क्षारीय होता है।

(ख) क्षार धातुएँ उनके संगलित क्लोराइडों के वैद्युत-अपघटन से प्राप्त की जाती हैं।

(ग) पोटैशियम की तुलना में सोडियम अधिक उपयोगी है।

10.28 निम्नलिखित के मध्य क्रियाओं के संतुलित समीकरण लिखिए–

(क) Na_2CO_3 एवं जल

(ख) KO_2 एवं जल

(ग) Na_2O एवं CO_2

10.29 आप निम्नलिखित तथ्यों को कैसे समझाएँगे–

(क) BeO जल में अविलेय है, जबकि $BeSO_4$ विलेय है।

(ख) BaO जल में विलेय है, जबकि $BaSO_4$ अविलेय है।

(ग) ईथानॉल में LiI, KI की तुलना में अधिक विलेय है।

10.30 इनमें से किस क्षार-धातु का गलनांक न्यूनतम है?

(क) Na (ख) K (ग) Rb (घ) Cs

10.31 निम्नलिखित में से कौन सी क्षार-धातु जलयोजित लवण देती है?

(क) Li (ख) Na (ग) K (घ) Cs

10.32 निम्नलिखित में कौन सी क्षारीय मृदा धातु कार्बोनेट ताप के प्रति सबसे अधिक स्थायी है?

(क) $MgCO_3$ (ख) $CaCO_3$ (ग) $SrCO_3$ (घ) $BaCO_3$

p-ब्लॉक तत्त्व
THE p-BLOCK ELEMENTS

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप–

- p-ब्लॉक के तत्त्वों के रसायन की सामान्य प्रवृत्तियों की विवेचना कर सकेंगे;
- समूह 13 तथा 14 के तत्त्वों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों की प्रवृत्तियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- बोरॉन तथा कार्बन के असंगत व्यवहार को समझ सकेंगे;
- कार्बन के अपररूपों की व्याख्या कर सकेंगे;
- बोरॉन, कार्बन तथा सिलिकॉन के कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिकों के रसायन को जान सकेंगे;
- समूह 13 तथा 14 के तत्त्व एवं उनके यौगिकों के महत्त्वपूर्ण उपयोगों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।

गुरुतर तत्त्वों के आंतरिक क्रोड में d– तथा f– इलेक्ट्रॉनों के प्रभाव के कारण p-ब्लॉक के तत्त्वों के गुणों में भिन्नता उनके रसायन को रुचिकर बनाती है।

p– ब्लॉक के तत्त्वों में अंतिम इलेक्ट्रॉन बाह्यतम p-कक्षक में प्रवेश करता है। जैसा हम जानते हैं, p-कक्षकों की संख्या तीन होती है। अतः p-कक्षकों के एक समुच्चय में अधिकतम छः इलेक्ट्रॉन समाहित हो सकते हैं। परिणामतः आवर्त सारणी में p–ब्लॉक के 13 से 18 तक छः समूह हैं। बोरॉन, कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, फ्लुओरीन तथा हीलियम इन समूहों के शीर्ष हैं। हीलियम के अतिरिक्त इनका संयोजी कोश **इलेक्ट्रॉनिक विन्यास** ns^2np^{1-6} है, हालाँकि इनके इलेक्ट्रॉनिक विन्यास का आंतरिक क्रोड भिन्न हो सकता है। यह भिन्नता इनके भौतिक गुणों (जैसे–परमाण्वीय एवं आयनिक त्रिज्या, आयनन एंथैल्पी आदि) के साथ-साथ रासायनिक गुणों को भी अत्यधिक प्रभावित करती है। परिणामतः p–ब्लॉक के तत्त्वों के गुणों में अत्यधिक भिन्नता परिलक्षित होती है। p–ब्लॉक के एक तत्त्व द्वारा दर्शाई जाने वाली **अधिकतम ऑक्सीकरण अवस्था** उसके संयोजी इलेक्ट्रॉन (अर्थात् s– तथा p-इलेक्ट्रॉन का योग) की संख्या के समान होती है। स्पष्टतः आवर्त सारणी में दाईं ओर बढ़ने पर संभावित ऑक्सीकरण अवस्थाएँ बढ़ती जाती हैं। इसके अतिरिक्त तथाकथित **समूह ऑक्सीकरण अवस्था** के साथ-साथ p–ब्लॉक के तत्त्व अन्य ऑक्सीकरण अवस्थाएँ भी दर्शाते हैं, जो सामान्यतः (परंतु आवश्यक नहीं) कुल संयोजी इलेक्ट्रॉन से दो इकाई कम होती हैं। p–ब्लॉक के तत्त्वों द्वारा दर्शाई जाने वाली महत्त्वपूर्ण ऑक्सीकरण अवस्थाओं को सारणी 11.1 में दर्शाया गया है। बोरॉन, कार्बन तथा नाइट्रोजन परिवार में हलके तत्त्वों के लिए समूह ऑक्सीकरण अवस्था अधिकतम स्थायी होती है। समूह ऑक्सीकरण अवस्था से दो इकाई कम ऑक्सीकरण अवस्था प्रत्येक समूह में गुरुतर तत्त्वों के लिए क्रमिक रूप से स्थायी होती जाती है। समूह ऑक्सीकरण अवस्था से दो इकाई कम ऑक्सीकरण अवस्था की प्राप्ति को **अक्रिय युग्म प्रभाव** (inert pair effect)

सारणी 11.1 *p*–ब्लॉक के तत्त्वों का सामान्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास एवं ऑक्सीकरण अवस्थाएँ

समूह	13	14	15	16	17	18
सामान्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास	ns^2np^1	ns^2np^2	ns^2np^3	ns^2np^4	ns^2np^5	ns^2np^6 (He के लिए $1s^2$)
समूह का प्रथम सदय	B	C	N	O	F	He
समूह ऑक्सीकरण अवस्था	+3	+4	+5	+6	+7	+8
अन्य ऑक्सीकरण अवस्थाएँ	+1	+2,– 4	+3– 3	+4, +2, – 2	+5, +3, +1, –1	+6, +4, +2

कहा जाता है। इन दो ऑक्सीकरण अवस्थाओं (समूह ऑक्सीकरण अवस्था तथा समूह ऑक्सीकरण अवस्था से दो इकाई कम) के सापेक्ष स्थायित्व समूहवार परिवर्तित होते हैं, जिसकी व्याख्या उपयुक्त स्थान पर की जाएगी।

यह देखना रुचिकर है कि अधातु एवं उपधातु आवर्त सारणी के केवल *p*–ब्लॉक में होते हैं। समूह में नीचे जाने पर अधात्विक गुण कम होता जाता है। वास्तव में प्रत्येक *p*–ब्लॉक के समूह में सबसे गुरुतर तत्त्व सर्वाधिक धात्विक प्रकृति का होता है। अधात्विक से धात्विक गुणों में इस प्रकार परिवर्तन इन तत्त्वों के रसायन में विविधता लाता है। यह परिवर्तन उस तत्त्व से संबंधित समूह पर निर्भर करता है।

सामान्यत: धातुओं की तुलना में अधातुओं की उच्च विद्युत् आयनन एंथैल्पी तथा उच्च विद्युत् ऋणात्मकता होती है। अत: धातुओं के विपरीत जो आसानी से धनायन बनाते हैं, अधातुएँ ऋणायन बनाती हैं। अत्यधिक सक्रिय धातु से अत्यधिक सक्रिय अधातु द्वारा बना यौगिक सामान्यत: आयनिक प्रकृति का होता है, क्योंकि इनकी विद्युत् ऋणात्मकताओं में अधिक अंतर होता है, वहीं दूसरी ओर अधातुओं के स्वयं के मध्य बनाए गए *यौगिक अधिकांशत: सहसंयोजी होते हैं, क्योंकि उनकी विद्युत्* ऋणात्मकता में बहुत कम अंतर होता है। अधात्विक से धात्विक गुण में परिवर्तन को इनके द्वारा बनाए गए ऑक्साइड की प्रकृति के आधार पर समझाया जा सकता है। अधात्विक ऑक्साइड उदासीन अथवा अम्लीय होते हैं, जबकि धात्विक ऑक्साइड क्षारीय प्रकृति के होते हैं।

p–ब्लॉक में प्रत्येक समूह का पहला सदस्य अन्य सदस्यों से दो कारणों से भिन्न है। इनमें पहला कारण इनका छोटा आकार तथा दूसरा कारण वे सभी गुण हैं, जो आकार पर निर्भर करते हैं। अत: *s*–ब्लॉक के हलके तत्त्व लीथियम एवं बेरीलियम की भाँति *p*–ब्लॉक के भी सबसे हलके तत्व भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। केवल *p*–ब्लॉक के तत्त्वों पर लागू दूसरी महत्त्वपूर्ण भिन्नता, गुरुतर तत्त्वों (तृतीय आवर्त के उपरांत के तत्त्व) के संयोजी कोश में *d*–कक्षकों की उपस्थिति है, जो द्वितीय आवर्त तक के तत्त्वों में नहीं होते हैं। *p*-ब्लॉक में द्वितीय आवर्त के तत्त्व, जो बोरॉन से प्रारंभ होते हैं, की अधिकतम संयोजकता चार (एक $2s$ तथा तीन $2p$ कक्षकों का उपयोग करते हुए) तक सीमित रहती है। इसके विपरीत *p*-समूह के तृतीय आवर्त के तत्त्व (जिनका इलेक्ट्रॉनिक विन्यास $3s^23p^n$ होता है) में रिक्त $3d$ कक्षक उपस्थित होते हैं, जो $3p$ तथा $4s$ ऊर्जा-स्तर के मध्य होते हैं। इन *d*–कक्षकों का उपयोग करते हुए तृतीय आवर्त के तत्त्व अपनी संयोजकता को चार से अधिक बढ़ा सकते हैं। जैसे–जहाँ बोरॉन केवल $[BF_4]^-$ आयन बनाता है, वहीं ऐलुमीनियम $[ALF_6]^{3-}$ आयन देता है। इन *d*–कक्षकों की उपस्थिति गुरुतर तत्त्वों (Heavier Elements) के रसायन को कई अन्य प्रकार से प्रभावित करती है। *आकार एवं d–कक्षकों की उपलब्धता का* संयुक्त प्रभाव इन तत्त्वों की π बंध बनाने की क्षमता को प्रभावित करता है। समूह का प्रथम सदस्य अन्य गुरुतर सदस्यों से स्वयं के साथ (उदाहरणार्थ–C=C, C≡C, N≡N) एवं अन्य दूसरे वर्ग के तत्त्वों (उदाहरणार्थ–C=O, C=N, C≡N, N=O) के साथ $p\pi$- $p\pi$ बहुबंध बनाने की क्षमता में अंतर रखता है। गुरुतर तत्त्व

भी π बंध बनाते हैं, परंतु इनमें d-कक्षक ($d\pi - p\pi$ अथवा $d\pi - d\pi$) सम्मिलित होते हैं। चूँकि d-कक्षकों की ऊर्जा p-कक्षकों की ऊर्जा से अधिक होती है, अतः द्वितीय पंक्ति के तत्त्वों के $p\pi$-$p\pi$ बंधन की तुलना में d-कक्षकों का स्थायित्व में योगदान कम होता है, हालाँकि समान ऑक्सीकरण अवस्था वाले प्रथम सदस्य की तुलना में गुरुतर तत्त्वों की उपसहसंयोजक संख्या अधिक हो सकती है। उदाहरणार्थ– +5 ऑक्सीकरण अवस्था में P तथा N दोनों ऑक्सो ऋणायन NO_3^- (π–बंध के साथ तीन उपसहसंयोजन में सम्मिलित करते हुए नाइट्रोजन के एक p-कक्षक को) तथा PO_4^{3-} (s, p एवं d कक्षकों को π– बंध में सम्मिलित करते हुए) बनाते हैं। इस एकक में हम आवर्त सारणी के समूह 13 तथा 14 के तत्त्वों के रसायन का अध्ययन करेंगे।

11.1 समूह 13 के तत्त्व : बोरॉन परिवार

गुणों में इस समूह के तत्त्व बृहत्त भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। बोरॉन (B) एक प्रारूपिक अधातु है, ऐलुमीनियम (Al) धातु है, परंतु इसके अनेक रासायनिक गुणधर्म बोरॉन के समान हैं, जबकि गैलियम (Ga), इंडियम (In) तथा थैलियम (Tl) गुणधर्मों में लगभग पूर्णतः धातु हैं।

उपस्थिति– बोरॉन एक दुर्लभ तत्त्व है। यह मुख्यतः आर्थोबोरिक अम्ल (H_3BO_3), बोरेक्स ($Na_2B_4O_7 \cdot 10H_2O$) तथा करनाइट ($Na_2B_4O_7 \cdot 4H_2O$) के रूप में प्राप्त होता है। हमारे देश में बोरेक्स पूगा घाटी (लद्दाख) तथा सांभर झील (राजस्थान) में मिलता है। भू-पर्पटी (Earth Crust) में बोरॉन की बाहुल्यता 0.0001% (भारात्मक) से भी कम है। बोरॉन के दो समस्थानिक रूप ^{10}B (19%) तथा ^{11}B (81%) मिलते हैं। ऐलुमीनियम की भू-पर्पटी में बाहुल्यता (8.3%) सर्वाधिक है। भारात्मक रूप से यह भू-पर्पटी पर ऑक्सीजन (45.5%) तथा सिलिकन (27.7%) के पश्चात् सर्वाधिक पाया जाने वाला तत्व है। ऐलुमीनियम के प्रमुख बॉक्साइट (Al_2O_3, $2H_2O$) तथा क्रायोलाइट (Na_3AlF_6) अयस्क हैं। हमारे देश में यह मुख्यतः मध्य प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा तथा जम्मू में अभ्रक (Mica) के रूप में मिलता है। गैलियम, इंडियम तथा थैलियम प्रकृति में यह बहुत कम मात्रा में मिलते हैं।

सारणी 11.2 समूह 13 के तत्त्वों के परमाणवीय एवं भौतिक गुण

गुण		बोरॉन B	ऐलुमीनियम Al	गैलीयम Ga	इंडियम In	थैलियम Tl
परमाणु क्रमांक		5	13	31	49	81
परमाणु द्रव्यमान/g mol^{-1}		10.81	26.98	69.72	114.82	204.38
इलेक्ट्रॉनिक विन्यास		[He]$2s^22p^1$	[Ne]$3s^23p^1$	[Ar]$3d^{10}4s^24p^1$	[Kr]$4d^{10}5s^25p^1$	[Xe]$4f^{14}5d^{10}6s^26p^1$
परमाण्वीय त्रिज्या/pm^a		(85)	143	135	167	170
आयनिक त्रिज्या M^{3+}/pm^b		(27)	53.5	62.0	80.0	88.5
आयनिक त्रिज्या M^+/pm		-	-	120	140	150
आयनन एंथैल्पी (kJ mol^{-1})	Δ_iH_1	801	577	579	558	589
	Δ_iH_2	2427	1816	1979	1820	1971
	Δ_iH_3	3659	2744	2962	2704	2877
विद्युत् ऋणात्मकता^{c}		2.0	1.5	1.6	1.7	1.8
घनत्व /g cm^{-3} 298 K पर		2.35	2.70	5.90	7.31	11.85
गलनांक / K		2453	933	303	430	576
क्वथनांक/ K		3923	2740	2676	2353	1730
$E^\ominus$/V, M^{3+}/M के लिए		-	–1.66	–0.56	–0.34	+1.26
$E^\ominus$/V, M^+/M के लिए		-	+0.55	-0.79 (अम्ल) –1.39 क्षारक)	–0.18	–0.34

^{a}*धात्विक त्रिज्या* ^{b} *6-उपसहसंयोजन,* ^{c} *पॉलिंग स्केल*

समूह 13 के तत्त्वों के परमाण्वीय, भौतिक तथा रासायनिक गुण निम्नलिखित हैं–

11.1.1 इलेक्ट्रॉनिक विन्यास

समूह–13 के तत्त्वों का बाह्य इलेक्ट्रॉनिक विन्यास ns^2np^1 होता है। अत: इस समूह के तत्त्वों के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास प्रथम दो समूहों के तत्त्वों की तुलना में (जैसे एकक–10 में विवेचित किया गया है) अधिक जटिल होते हैं। इलेक्ट्रॉनिक विन्यास में यही अंतर इस समूह के तत्त्वों के अन्य गुणों तथा इन तत्त्वों के रसायन को प्रभावित करता है।

11.1.2 परमाण्वीय त्रिज्या

समूह में नीचे जाने पर प्रत्येक क्रमागत सदस्य में इलेक्ट्रॉनों का एक कोश जुड़ता है। अत: परमाण्वीय त्रिज्या की वृद्धि संभावित होने के बावजूद विचलन देखा जा सकता है। Ga की परमाण्वीय त्रिज्या Al की परमाण्वीय त्रिज्या से कम है। आंतरिक क्रोड के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास से यह देखा जा सकता है कि गैलियम में उपस्थित अतिरिक्त 10 d इलेक्ट्रॉन बढ़े हुए नाभिकीय आवेश की तुलना में बाह्य इलेक्ट्रॉनों पर दुर्बल परिरक्षण प्रभाव डालते हैं (एकक–3 देखें)। परिणामत: गैलियम की परमाण्वीय त्रिज्या (135 pm) ऐलुमीनियम (143pm) की तुलना में कम होती है।

11.1.3 आयनन एंथैल्पी

आयनन एंथैल्पी, जैसा सामान्य प्रवृत्ति से आशा की जाती है, समूह में ऊपर से नीचे सामान्य रूप से नहीं घटती है। B से Al में कमी, आकार-वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है। Al एवं Ga के मध्य तथा In व Tl के मध्य आयनन एंथैल्पी की प्रेक्षित अनिरंतरता d एवं f इलेक्ट्रॉनों के कारण है, जिनका परिरक्षण प्रभाव बढ़े हुए नाभिकीय प्रभाव की क्षतिपूर्ति करने के लिए कम होता है।

आयनन एंथैल्पी का क्रम $\Delta_i H_1 < \Delta_i H_2 < \Delta_i H_3$ है, जैसाकि अपेक्षित है। प्रत्येक तत्त्व की प्रथम तीन एंथैल्पियों का योग उच्च होता है। यह इनके रासायनिक गुणों के अध्ययन में परिलक्षित होगा।

11.1.4 विद्युत् ऋणात्मकता

समूह–13 के तत्त्वों की विद्युत् ऋणात्मकता वर्ग में ऊपर से नीचे जाने पर B से Al तक घटती है। तत्पश्चात् आंशिक वृद्धि होती है। ऐसा परमाण्वीय आकार में अनियमित वृद्धि के कारण होता है।

11.1.5 भौतिक गुणधर्म

बोरॉन प्रकृति में अधात्विक तत्त्व है। यह काले रंग का अत्यधिक कठोर पदार्थ है। इसके अनेक अपररूप मिलते हैं। क्रिस्टलीय जालक संरचना के कारण बोरॉन का गलनांक असाधारण रूप से उच्च होता है। इस समूह के अन्य तत्त्व निम्न गलनांक एवं उच्च वैद्युतचालकता वाले मुलायम ठोस होते है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि गैलियम का गलनांक बहुत कम (303 K) होता है। अत: गर्मियों के दिनों में यह द्रव अवस्था में मिलता है। इसका उच्च क्वथनांक (2676 K) उच्च तापों के मापन के लिए इसे उपयोगी पदार्थ बनाता है। समूह–13 के तत्त्वों का घनत्व वर्ग में नीचे जाने पर बोरॉन से थैलियम तक बढ़ता जाता है।

11.1.6 रासायनिक गुणधर्म

ऑक्सीकरण अवस्था एवं रासायनिक अभिक्रियाशीलता की प्रवृत्ति

छोटे आकार के कारण बोरॉन की प्रथम तीन आयनन एंथैल्पियों का योग बहुत उच्च होता है। यह इसे न सिर्फ +3 ऑक्सीकरण अवस्था में आने से रोकता है, बल्कि केवल सहसंयोजक यौगिक बनाने के लिए बाध्य भी करता है। परंतु जब हम B से Al तक जाते हैं, तब Al की प्रथम तीन आयनन एंथैल्पियों का योग उल्लेखनीय रूप से घट जाता है। इस प्रकार यह Al^{3+} आयन बनने की सामर्थ्य रखता है। यथार्थ में Al एक उच्च धनविद्युती तत्त्व है।

फिर भी वर्ग में नीचे d एवं f कक्षकों के दुर्बल परिरक्षण प्रभाव के कारण, बढ़ा हुआ नाभिकीय आवेश ns इलेक्ट्रॉनों को मजबूती से बाँधे रखता है (जो अक्रिय युग्म प्रभाव के लिए उत्तरदायी है)। इस प्रकार बंधन में इनकी सहभागिता को नियंत्रित करता है। परिणामस्वरूप बंधन में केवल p–कक्षक भाग लेते है। यथार्थ में Ga, In एवं Tl में +1 तथा +3 दोनों ऑक्सीकरण अवस्थाएँ प्रेक्षित होती हैं। गुरुतर तत्त्वों के लिए +1 ऑक्सीकरण अवस्था का स्थायित्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है: Al < Ga < In < Tl *थैलियम में +1 ऑक्सीकरण अवस्था स्थायी है*, जबकि +3 ऑक्सीकरण अवस्था प्रकृति में उच्च ऑक्सीकारक है। ऊर्जा संबंधी कारणों से अपेक्षित +1 ऑक्सीकरण अवस्था वाले यौगिक +3 ऑक्सीकरण अवस्था की तुलना में अधिक आयनिक होते हैं।

इन तत्त्वों के त्रिसंयोजी अवस्था में अणुओं में केंद्रीय परमाणु के चारों ओर इलेक्ट्रॉनों की संख्या 6 होती है (उदाहरणार्थ–BF_3 में बोरॉन)। ऐसे इलेक्ट्रॉन न्यून अणु स्थायी

इलेक्ट्रॉनिक विन्यास प्राप्त करने के लिए एक इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण करके लूइस अम्ल के समान व्यवहार करते हैं।

समूह में ऊपर से नीचे जाने पर आकार में वृद्धि के कारण लूइस अम्ल के समान व्यवहार करने की प्रवृत्ति कम होती जाती है। बोरॉन ट्राइक्लोराइड सरलतापूर्वक अमोनिया से एक एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण कर $BCl_3.NH_3$ उपसहसंयोजक यौगिक बनाता है।

$$Cl_2B-Cl + NH_3 \longrightarrow Cl_3B-NH_3$$
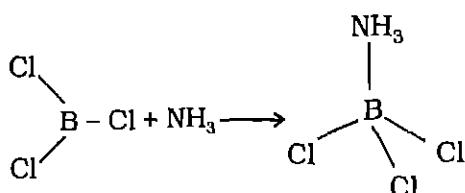
इसी प्रकार $AlCl_3$ चतुष्फलकीय द्विलक बनाकर स्थायी हो जाता है।
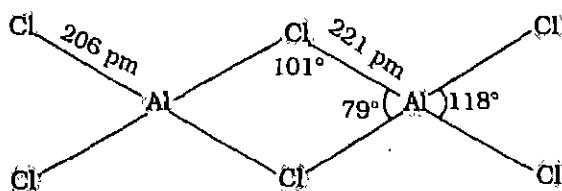
चूँकि त्रिसंयोजी अवस्था में अधिकांश यौगिक सहसंयोजक होते हैं, अत: वे जल-अपघटित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ– धात्विक ट्राइक्लोराइड जल अपघटन पर चतुष्फलकीय स्पीशीज़ $[M(OH)_4]^-$ बनाते हैं, जहाँ M की संकरण अवस्था sp^3 होती है। ऐलुमीनियम क्लोराइड अम्लीय जल-अपघटन करने पर अष्टफलकीय आयन $[Al(H_2O)_6]^{3+}$ आयन बनाता है। इस संकुल आयन में Al के 3d कक्षक भाग लेते हैं। इसमें Al की संकरण अवस्था sp^3d^2 है।

उदाहरण 11.1

Al^{3+}/Al एवं Tl^{3+}/Tl के लिए मानक इलेक्ट्रोड विभव $E^\ominus$ क्रमश: –1.66 V एवं + 1.26 V हैं। विलयन में M^{3+} आयन बनने का अनुमान लगाइए एवं दोनों धातुओं के धनविद्युती गुण की तुलना कीजिए।

हल

दोनों अर्धसेलों के मानक इलेक्ट्रॉड विभव बताते हैं कि ऐलुमीनियम में Al^{3+} (aq) आयन बनाने की प्रवृत्ति अधिक रहती है, जबकि Tl^{3+} विलयम में न सिर्फ अस्थायी है, बल्कि प्रबल ऑक्सीकारक भी है। अत: विलयन में Tl^{3+} की तुलना में Al^{3+} अधिक स्थायी है। +3 आयन बनाने के कारण ऐलुमीनियम थैलियम की तुलना में अधिक धनविद्युती है।

(i) वायु के प्रति अभिक्रियाशीलता

क्रिस्टलीय स्वरूप में बोरॉन अक्रियाशील है। वायु के संपर्क में आने पर ऐलुमीनियम की सतह पर ऑक्साइड की पतली परत बन जाती है, जो और अधिक क्षय होने से धातु को रोकती है। अक्रिस्टलीय बोरॉन तथा ऐलुमीनियम वायु के संपर्क में गरम किए जाने पर क्रमश: B_2O_3 तथा Al_2O_3 बनाते हैं। उच्च ताप पर ये डाइनाइट्रोजन के साथ क्रिया कराने पर नाइट्राइड बनाते हैं।

$$2E(s) + 3O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 2E_2O_3(s)$$

$$2E(s) + N_2(g) \xrightarrow{\Delta} 2EN(s) \quad (E = \text{तत्त्व})$$
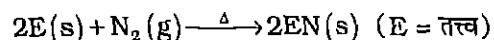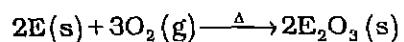
समूह में नीचे जाने पर इनके ऑक्साइड की प्रकृति परिवर्तित होती जाती है। बोरॉन ट्राइऑक्साइड अम्लीय प्रकृति का होता है तथा क्षारकीय (धात्विक) ऑक्साइड से क्रिया करके धात्विक बोरेट बनाता है। ऐलुमीनियम तथा गैलियम के ऑक्साइड उभयधर्मी प्रकृति के होते हैं, जबकि इंडियम तथा थैलियम के ऑक्साइड गुणधर्मों में क्षारकीय प्रकृति के होते हैं।

(ii) अम्ल एवं क्षार के प्रति अभिक्रियाशीलता

बोरॉन अम्ल एवं क्षार के साथ कोई क्रिया नहीं करता है, परंतु ऐलुमीनियम खनिज अम्लों तथा जलीय क्षारों में घुल जाता है। फलत: ऐलुमीनियम उभयधर्मी गुण प्रदर्शित करता है। ऐलुमीनियम तनु HCl में घुलकर डाइहाड्रोजन निष्कासित करता है।

$$2Al(s) + 6HCl(aq) \rightarrow 2Al^{3+}(aq) + 6Cl^-(aq) + 3H_2(g)$$
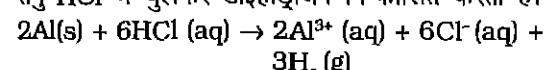
सांद्र नाइट्रिक अम्ल Al की सतह पर ऑक्साइड की सतह बनाकर उसे निष्क्रिय कर देता है। ऐलुमीनियम जलीय क्षारों से क्रिया करके डाइहाइड्रोजन विसर्जित करता है।

$$2Al(s) + 2NaOH(aq) + 6H_2O(l) \downarrow 2Na^+[Al(OH)_4]^-(aq) + 3H_2(g)$$

सोडियम ट्रेट्राहाइड्रॉक्सो ऐलुमिनेट (III) आयन

(iii) हैलोजेनों के प्रति अभिक्रियाशीलता

TlI_3 को छोड़कर समूह-13 के तत्त्व हैलोजेन से क्रिया करके ट्राइहैलाइड बनाते हैं।

$$2E(s) + 3X_2(g) \rightarrow 2EX_3(s) \quad (X = F, Cl, Br, I)$$
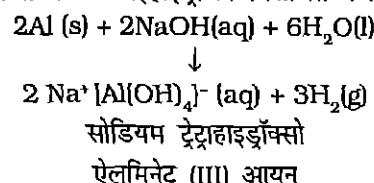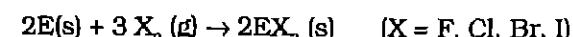
उदाहरण 11.2

निर्जलीय ऐलुमीनियम क्लोराइड की बोतल के चारों ओर श्वेत धूम बन जाते हैं। इसका कारण बताइए।

हल

निर्जलीय ऐलुमीनियम क्लोराइड वायुमंडलीय नमी के साथ आंशिक रूप से जल अपघटित होकर HCl गैस विसर्जित करता है। यह नमीयुक्त HCl श्वेत धूम के रूप में दिखाई देती है।

11.2 बोरॉन की प्रवृत्ति तथा असंगत व्यवहार

समूह-13 के तत्त्वों के रासायनिक व्यवहार का अध्ययन करने पर कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं। इस समूह के सभी तत्त्वों के ट्राइक्लोराइड, ब्रोमाइड एवं आयोडाइड सहसंयोजक प्रकृति के होने के कारण जल-अपघटित हो जाते हैं। बोरॉन के अतिरिक्त अन्य सभी तत्त्वों की चतुष्फलकीय स्पीशीज़ $[M(OH)_4]^-$ तथा अष्टफलकीय $[M(H_2O)_6]^{3+}$ स्पीशीज़ जलीय विलयन में उपस्थित रहते हैं।

तत्त्वों के एकलक (Monomerl) ट्राइहैलाइड, इलेक्ट्रॉन न्यून होने के कारण प्रबल लूइस अम्ल के समान व्यवहार करते हैं। लूइस क्षार (जैसे–NH_3 आदि) एक इलेक्ट्रॉन युग्म प्रदान कर ऐसे यौगिकों के केंद्रीय परमाणु का अष्टक पूर्ण करते हैं।

$$F_3B + :NH_3 \longrightarrow F_3B \leftarrow NH_3$$
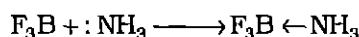
बोरॉन में d-कक्षक अनुपस्थित रहते हैं। फलतः इसकी अधिकतम संयोजकता 4 हो सकती है। चूँकि Al तथा अन्य तत्त्वों में d कक्षक उपस्थित होते हैं, अतः इनकी अधिकतम संयोजकता 4 से अधिक हो सकती है। अधिकांश अन्य धातु हैलाइड (उदाहरणार्थ–$AlCl_3$) सेतुबंध हैलोजेन परमाणु द्वारा द्विफलकीय हो जाते हैं (Al_2Cl_6)। इन धातु यौगिकों में सेतुबंध हैलोजेन अणुओं से इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर अपना अष्टक पूर्ण करते हैं।

उदाहरण 11.3

बोरॉन BF_6^{3-} आयन नहीं बना सकता है। इसकी व्याख्या कीजिए।

हल

बोरॉन में d-कक्षक की अनुपस्थिति के कारण यह अपने अष्टक का प्रसार करने में असमर्थ होता है। अतः इसकी अधिकतम संयोजकता 4 से अधिक नहीं हो सकती है।

11.3 बोरॉन के कुछ महत्त्वपूर्ण यौगिक

बोरॉन के कुछ उपयोगी यौगिक बोरेक्स, ऑर्थोबोरिक अम्ल तथा डाइबोरेन हैं। इनके रसायन का अध्ययन हम संक्षेप में करेंगे।

11.3.1 बोरेक्स

यह बोरॉन का महत्त्वपूर्ण यौगिक है। यह श्वेत क्रिस्टलीय ठोस है, जिसका सूत्र $Na_2B_4O_7.10H_2O$ होता है। तथ्यात्मक रूप से इसमें चतुष्केंद्रीय इकाइयाँ $[B_4O_5(OH)_4]^{2-}$ होती हैं। अतः इसका उपयुक्त सूत्र $Na_2[B_4O_5(OH)_4].8H_2O$ होता है। बोरेक्स जल में घुलकर क्षारीय विलयन बनाता है।

$$Na_2B_4O_7 + 7H_2O \rightarrow 2NaOH + \underset{\text{आर्थोबोरिक अम्ल}}{4H_3BO_3}$$
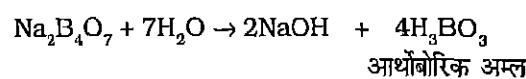
गरम किए जाने पर बोरेक्स पहले जल के अणु का निष्कासन करता है तथा फूल जाता है। पुनः गरम किए जाने पर यह एक पारदर्शी द्रव में परिवर्तित हो जाता है, जो काँच के समान एक ठोस में परिवर्तित हो जाता है। उसे **बोरेक्स मनका** (Borax Bead) कहते हैं–

$$Na_2B_4O_7.10H_2O \xrightarrow{\Delta} Na_2B_4O_7 \xrightarrow{\Delta} \underset{\text{सोडियम मेटाबोरेट}}{2NaBO_2} + \underset{\text{बोरिक ऐनहाइड्राइड}}{B_2O_3}$$
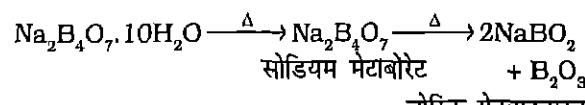
विभिन्न संक्रमण तत्त्वों के मेटाबोरेट का विशिष्ट रंग होता है, जिसके आधार पर इन तत्त्वों की पहचान में बोरेक्स मनका परीक्षण (Borax Bead Test) का उपयोग प्रयोगशालाओं में होता है। उदाहरणार्थ–जब बोरेक्स को कोबाल्ट ऑक्साइड (CoO) के साथ बुन्सन बर्नर पर गरम किया जाता है, तब नीले रंग का मनका $[Co(BO_2)_2]$ बनता है।

11.3.2 आर्थोबोरिक अम्ल

आर्थोबोरिक अम्ल H_3BO_3 एक श्वेत क्रिस्टलीय ठोस होता है, जिसका साबुनी स्पर्श होता है। यह जल में अल्पविलेय, परंतु गरम जल में पूर्ण विलेय होता है। इसे **बोरेक्स के** जलीय विलयन को अम्लीकृत करके बनाया जा सकता **है।**

$$Na_2B_4O_7 + 2HCl + 5H_2O \rightarrow 2NaCl + 4B(OH)_3$$
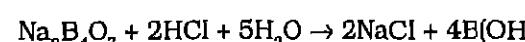
इसे बोरॉन के अधिकांश यौगिकों (जैसे–हैलाइड, हाइड्राइड

आदि) के जल-अपघटन द्वारा (जल तथा दुर्बल अम्ल से क्रिया करके) बनाया जा सकता है। इसकी परतीय संरचना होती है, जहाँ BO_3 की इकाइयाँ हाइड्रोजन बंध द्वारा जुड़ी रहती हैं (चित्र 11.1)।
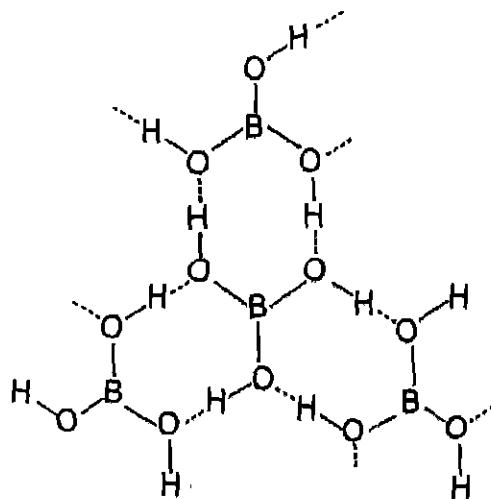
चित्र 11.1 बोरिक अम्ल की संरचना में बिंदुकृत रेखाएँ हाइड्रोजन आबंध को प्रदर्शित करती हैं

बोरिक अम्ल एक दुर्बल क्षारीय अम्ल है। यह प्रोटोनी अम्ल नहीं है, परंतु हाइड्रॉक्सिल आयनों से एक इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण करने के कारण लूइस अम्ल की भाँति व्यवहार करता है।

$$B(OH)_3 + 2HOH \rightarrow [B(OH)_4]^- + H_3O^+$$
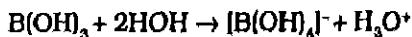
370 K से अधिक ताप पर गरम किए जाने पर आर्थोबोरिक अम्ल मेटाबोरिक अम्ल (HBO_2) बनाता है, जो और अधिक गरम करने पर बोरिक ऑक्साइड (B_2O_3) में परिवर्तित हो जाता है।

$$H_3BO_3 \xrightarrow{\Delta} HBO_2 \xrightarrow{\Delta} B_2O_3$$

उदाहरण 11.4

बोरिक अम्ल को एक दुर्बल अम्ल क्यों माना गया है?

हल

बोरिक अम्ल को एक दुर्बल अम्ल इसलिए माना गया है, क्योंकि यह अपने प्रोटॉन का निष्कासन नहीं करता है। यह जल के अणु से हाइड्रॉक्सिल आयन (OH^-) ग्रहण करके अपना अष्टक पूर्ण करता है तथा H^+ निष्कासित करता है।

11.3.3 डाइबोरेन, B_2H_6

बोरॉन का ज्ञात सरलतम हाइड्राइड डाइबोरेन है। इसे डाइएथिल ईथर की उपस्थिति में बोरॉन ट्राइफ्लुओराइड की $LiAlH_4$ से क्रिया करके बनाया जाता है।

$$4BF_3 + 3\,LiAlH_4 \rightarrow 2B_2H_6 + 3LiF + 3AlF_3$$

प्रयोगशाला में डाइबोरेन बनाने हेतु सोडियम बोरोहाइड्राइड का ऑक्सीकरण आयोडीन के साथ किया जाता है।

$$2NaBH_4 + I_2 \rightarrow B_2H_6 + 2NaI + H_2$$
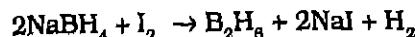
औद्योगिक रूप से डाइबोरेन बोरॉन ट्राइफ्लुओराइड तथा सोडियम हाइड्राइड की क्रिया द्वारा बनाया जाता है।

$$2BF_3 + 6NaH \xrightarrow{450K} B_2H_6 + 6NaF$$
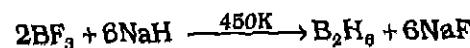
डाइबोरेन अत्यंत जहरीली रंगहीन गैस है, जिसका क्वथनांक 180 K है। यह वायु के संपर्क में आने पर स्वयं जल उठती है। यह ऑक्सीजन की उपस्थिति में अत्यधिक ऊर्जा का उत्सर्जन करते हुए जलता है।

$$B_2H_6 + 3O_2 \rightarrow B_2O_3 + 3H_2O;$$
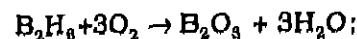
$$\Delta_cH^{\ominus} = -1976\ kJ\ mol^{-1}$$

अधिकांश उच्च बोरेन भी वायु के संपर्क में आने पर स्वयं जलने लगते हैं। बोरेन जल के साथ तेजी से जल-अपघटित होकर बोरिक अम्ल देते हैं।

$$B_2H_6\,(g) + 6H_2O(l) \rightarrow 2B(OH)_3(aq) + 6H_2(g)$$
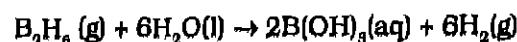
डाइबोरेन लूइस क्षारों (L) के साथ विदलन अभिक्रिया पर एक बोरेन योगोत्पाद ($BH_3.L$) देता है।

$$B_2H_6 + 2\,NMe_3 \rightarrow 2BH_3\,.NMe_3$$

$$B_2H_6 + 2\,CO \rightarrow 2BH_3\,.\,CO$$
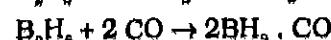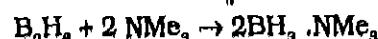
डाइबोरेन पर अमोनिया की अभिक्रिया से प्रारंभ में $B_2H_6.2NH_3$ बनता है, जिसे सूत्र $[BH_2(NH_3)_2^+][BH_4]^-$ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह और अधिक गरम करने पर $B_3N_3H_6$ देता है। इसे एकांतर BH एवं NH समूहों के साथ वलय-संरचना के परिप्रेक्ष्य में अकार्बनिक बेंजीन (Inorganic Benzene) के रूप में जाना जाता है।

$$3B_2H_6 + 6NH_3 \rightarrow 3[BH_2(NH_3)_2]^+$$

$$[BH_4]^- \xrightarrow{Heat} 2B_3N_3H_6 + 12H_2$$
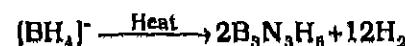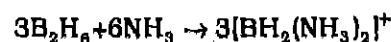
डाइबोरेन की संरचना को चित्र 11.2 (क) द्वारा दर्शाया गया है। इसमें सिरेवाले चार हाइड्रोजन परमाणु तथा दो बोरॉन परमाणु एक ही तल में होते हैं। इस तल के ऊपर तथा नीचे दो सेतुबंध (Bridging) हाइड्रोजन परमाणु होते

हैं। सिरेवाले चार B – H बंध सामान्य द्विकेंद्रीय-द्विइलेक्ट्रॉन (Two Centre-two Electron) बंध बनाते हैं, जबकि दो सेतुबंध (B – H – B) बंध भिन्न प्रकार के होते हैं, जिन्हें 'त्रिकेंद्रीय द्विइलेक्ट्रॉन बंध' कहते हैं। चित्र 11.2 (ख)।
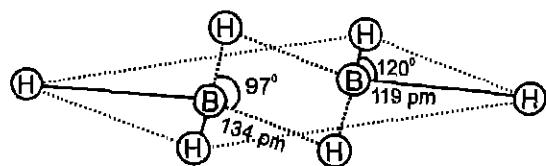
चित्र 11.2 (क) डाइबोरेन की (B_2H_6) संरचना
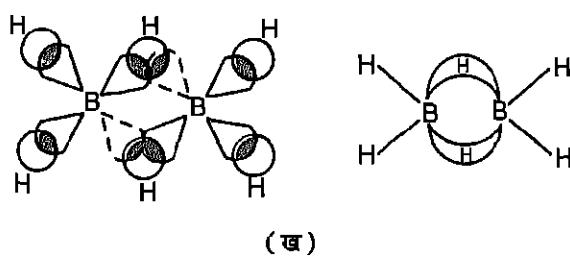
(ख)

चित्र 11.2 (ख) डाइबोरेन में बंधन। *डाइबोरेन में प्रत्येक बोरॉन परमाणु sp^3 संकरित होता है। इन चार sp^3 संकरित कक्षकों में से एक इलेक्ट्रॉनरहित होता है, जिसे बिंदुकृत रेखाओं (Dotted Lines) द्वारा दर्शाया गया है। सिरेवाले B – H सामान्य द्विकेंद्रीय-द्विइलेक्ट्रॉन (2c – 2e) बंधे हैं, जबकि दो सेतुबंध (B – H – B) त्रिकेंद्रीय-द्विइलेक्ट्रॉन (3c – 2e) है। इसे 'केलाबंध' (Banana Bond) भी कहते हैं।*

बोरॉन, हाइड्राइडोबोरेट की एक शृंखला का निर्माण करता है, जिसमें चतुष्फलकीय $[BH_4]^-$ आयन प्रमुख है। विभिन्न धातुओं के टेट्राहाइड्राइडोबोरेट ज्ञात हैं। लीथियम तथा सोडियम के टेट्राहाइड्राइडोबोरेट को **बोरोहाइड्राइड** भी कहते हैं। इन्हें धातु हाइड्राइड की डाइऐथिलईथर की उपस्थिति में डाइबोरेन से अभिक्रिया करके बनाया जा सकता है।

$$2MH + B_2H_6 \rightarrow 2\,M^+ [BH_4]^-$$
(M = Li अथवा Na)
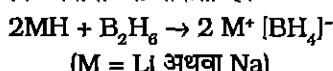
कार्बनिक संश्लेषणों में दोनों $LiBH_4$ तथा $NaBH_4$ का उपयोग अपचायक के रूप में होता है। अन्य धात्विक बोराहाइड्राइड बनाने में इन्हें प्रारंभिक पदार्थ (Starting Material) के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

11.4 बोरॉन, ऐलुमीनियम तथा इनके यौगिकों के उपयोग

उच्च गलनांक, निम्न घनत्व, निम्न वैद्युतचालकता तथा अत्यधिक कठोर (Refractory) होने के कारण बोरॉन के अनेक अनुप्रयोग हैं। बोरॉन तंतुओं (Fibers) का उपयोग बुलेटप्रूफ जैकेट बनाने में तथा वायुयानों के हलके सघन पदार्थों के निर्माण में होता है। बोरॉन-10 (^{10}B) समस्थानिक में न्यूट्रॉन-अवशोषण की अत्यधिक क्षमता होती है। अत: नाभिकीय उद्योगों में धात्विक बोराइडों का उपयोग परिरक्षण कवच (Protective Shield) तथा नियंत्रक छड़ों (Control Rods) के रूप में होता है। बोरेक्स तथा बोरिक अम्ल का मुख्य औद्योगिक उपयोग उच्च ताप सह काँच (Heat Resistant Glasses), जैसे–पाइरेक्स (Pyrex), ग्लासवुल तथा फाइबर ग्लास बनाने में होता है। बोरेक्स का उपयोग धातुओं के टाँका लगाने (Soldering) के लिए गालक (Flux) के रूप में; ऊष्मा, धब्बा (Strain) तथा खरोंच-प्रतिरोधी मिट्टी के बरतन बनाने में एवं औषधकृत साबुन में घटक के रूप में होता है। बोरिक अम्ल के जलीय विलयन का उपयोग सामान्यत: मंद पूतिरोधी के रूप होता है।

ऐलुमीनियम रजत श्वेत (Silvery White) रंग की एक चमकीली धातु है, जिसमें उच्च तनन सामर्थ्य (Tensile Strength) होती है। इसकी वैद्युत एवं ऊष्मीय चालकता उच्च होती है। भार से भार आधार (Weight to Weight Basis) पर ऐलुमीनियम की चालकता कॉपर से दुगुनी होती है। दैनिक जीवन तथा उद्योगों में ऐलुमीनियम का अत्यधिक उपयोग होता है। यह Cu, Mn, Mg, Si तथा Zn के साथ मिश्रधातु का निर्माण करता है। ऐलुमीनियम तथा इसकी मिश्रधातुओं को विशिष्ट आकृति (जैसे–पाइप, ट्यूब, छड़, पन्नी, तार, प्लेट आदि) दी जा सकती है। इससे इसका उपयोग बरतन बनाने के कार्य, निर्माण, पैकिंग, हवाई जहाज तथा यातायात उद्योगों में होता है। चूँकि ऐलुमीनियम की प्रकृति विषैली (Toxic Nature) होती है। अत: घरेलू कार्यों में ऐलुमीनियम तथा इसके यौगिकों का उपयोग कम होने लगा है।

11.5 समूह-14 के तत्त्व : कार्बन परिवार

कार्बन (C), सिलिकन (Si), जर्मेनियम (Ge), टिन (Sn) तथा लेड (Pb) समूह 14 के तत्त्व हैं। कार्बन भू-पर्पटी में पाया जानेवाला सत्रहवाँ अतिबाहुल्य (Most Abundant) तत्त्व है। यह प्रकृति में स्वतंत्र एवं संयुक्त अवस्था में बहुतायत से पाया जाता है। तत्त्व अवस्था में यह कोयला, ग्रेफाइट तथा हीरा में मिलता है, जबकि संयुक्त अवस्था में यह धातु कार्बोनेट, हाइड्रोकार्बन तथा वायु में कार्बन डाइऑक्साइड गैस (0.03%)

के रूप में मिलता है। यह कहा जा सकता है कि कार्बन संसार का सबसे चंचल तत्त्व है, जो अन्य तत्त्वों (जैसे–डाइहाइड्रोजन, डाइऑक्सीजन, क्लोरीन, सल्फर आदि) से योग करके जीवित ऊतकों से दवाओं एवं प्लास्टिक तक का निर्माण करता है। कार्बनिक रसायन विज्ञान कार्बन के यौगिकों पर ही आधारित है। यह जीवित प्राणियों का आवश्यक घटक है। प्राकृतिक रूप से कार्बन के दो स्थायी समस्थानिक ^{12}C तथा ^{13}C मिलते हैं। इसके *अतिरिक्त एक अन्य समस्थानिक* ^{14}C *भी उपस्थित* रहता है। यह एक रेडियोऐक्टिव समस्थानिक है, जिसकी अर्धायु 5770 वर्ष है। इसका उपयोग रेडियो कार्बन अंकन (Radio Carbon Dating) में होता है। सिलिकन भू-पर्पटी में बाहुल्यता से पाया जानेवाला (27.7% भार में) द्वितीय तत्त्व है। यह प्रकृति में सिलिका तथा सिलिकेट के रूप में उपस्थित रहता है। यह सिलिकन, सिरेमिक, काँच तथा सीमेन्ट का महत्त्वपूर्ण घटक है। जर्मेनियम अति सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित रहता है। मुख्यतः टिन स्टोन (केसिटेराइट), SnO_2 टिन से तथा गैलेना (PbS) अयस्क से लेड प्राप्त किया जाता है। जर्मेनियम तथा सिलिकन की शुद्धतम अवस्था का उपयोग ट्रांजिस्टर तथा अर्धचालक युक्ति (Semi Conductor Device) बनाने में होता है।

समूह-14 के तत्त्वों के महत्त्वपूर्ण परमाण्वीय एवं भौतिक गुण तथा उनके इलेक्ट्रॉनिक विन्यास सारणी 11.2 में दिए गए हैं। कुछ परमाण्वीय, भौतिक एवं रासायनिक गुणों की व्याख्या नीचे की जा रही है।

11.5.1 इलेक्ट्रॉनिक विन्यास

समूह-14 के तत्त्वों का संयोजकता कोश इलेक्ट्रॉनिक विन्यास $ns^2\ np^2$ होता है। इस समूह के इलेक्ट्रॉनिक विन्यास में भी आंतरिक क्रोड भिन्न होता है।

11.5.2 सहसंयोजक त्रिज्या

कार्बन से सिलिकन की सहसंयोजक त्रिज्या में उल्लेखनीय वृद्धि तब होती है, जब Si से Pb तक सहसंयोजक त्रिज्या में आंशिक वृद्धि होती है। *d*- तथा *f*- कक्षकों के पूर्णपूरित होने के कारण ऐसा होता है।

सारणी 11.3 समूह 14 के तत्त्वों के परमाण्वीय एवं भौतिक गुण

गुण		कार्बन C	सिलिकन Si	जर्मेनियम Ge	टिन Sn	लेड Pb
परमाणु क्रमांक		6	14	32	50	82
परमाणु द्रव्यमान/g mol^{-1}		12.01	28.09	72.60	118.71	207.2
इलेक्ट्रॉनिक विन्यास		$[He]2s^22p^2$	$[Ne]3s^23p^2$	$[Ar]3d^{10}4s^24p^2$	$[Kr]4d^{10}5s^25p^2$	$[Xe]4f^{14}5d6s^26p^2$
सहसंयोजक त्रिज्या/pm[a]		77	118	122	140	146
आयनिक त्रिज्या M^{4+}/pm[b]		–	40	53	69	78
आयनिक त्रिज्या M^{2+}/pm[b]		–	–	73	118	119
आयनन एंथैल्पी/ kJ mol^{-1}	Δ_iH_1	1086	786	761	708	715
	Δ_iH_2	2352	1577	1537	1411	1450
	Δ_iH_3	4620	3228	3300	2942	3081
	Δ_iH_4	6220	4354	4409	3929	4082
विद्युत् ऋणात्मकता[c]		2.5	1.8	1.8	1.8	1.9
घनत्व[d]/g cm^{-3}		3.51[e]	2.34	5.32	7.26[f]	11.34
गलनांक/K		4373	1693	1218	505	600
क्वथनांक/K		–	3550	3123	2896	2024
विद्युत्-प्रतिरोधकता /ohm cm (293 K)		10^{14}–10^{16}	50	50	10^{-5}	2×10^{-5}

[a]M^{IV} ऑक्सीकरण अवस्था के लिए; [b] 6-उपसहसंयोजक; [c] पॉलिंग मापक्रम; [d] *293 K*; [e] हीरा के लिए; ग्रेफाइट का घनत्व *2.22* है; [f] *β*-रूप (कमरे के ताप पर स्थायी)।

11.5.3 आयनन एंथैल्पी

समूह-14 के तत्त्वों की प्रथम आयनन एंथैल्पी के मान समूह-13 के संगत तत्त्वों की अपेक्षा अधिक होते हैं।

यहाँ पर भी आंतरिक क्रोड इलेक्ट्रॉनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। सामान्यतया समूह में नीचे जाने पर आयनन एंथैल्पी घटती है। *Si से Ge, Ge से Sn तक अल्प न्यूनता एवं Sn* से Pb तक अल्पवृद्धि, मध्यवर्ती d तथा f इलेक्ट्रॉनों के दुर्बल परिरक्षण प्रभाव एवं परमाणु के बढ़े आकार का परिणाम है।

11.5.4 विद्युत् ऋणात्मकता

छोटे आकार के कारण समूह-14 के तत्त्वों की विद्युत् ऋणात्मकता का मान समूह-13 के संगत तत्त्वों की विद्युत् ऋणात्मकता के मान से थोड़ा सा अधिक होता है। Si से Pb तक तत्त्वों की विद्युत् ऋणात्मकता का मान लगभग समान होता है।

11.5.5 भौतिक गुणधर्म

समूह-14 के सभी तत्त्व ठोस हैं। कार्बन-सिलिकन अधातु और जर्मेनियम उपधातु है, जबकि टिन तथा लेड कम गलनांक वाली मुलायम धातु है। समूह-14 के तत्त्वों के गलनांक एवं क्वथनांक समूह-13 के तत्त्वों के गलनांक एवं क्वथनांक की तुलना में अधिक होते हैं।

11.5.6 रासायनिक गुणधर्म

ऑक्सीकरण अवस्था तथा रासायनिक अभिक्रियाशीलता की प्रवृत्ति

समूह-14 के तत्त्वों के बाह्यतम कोश में चार इलेक्ट्रॉन होते हैं। इन तत्त्वों द्वारा सामान्यतः +4 तथा +2 ऑक्सीकरण अवस्था दर्शाई जाती है। कार्बन ऋणात्मक ऑक्सीकरण अवस्था भी प्रदर्शित करता है। चूँकि प्रथम चार आयनन एंथैल्पी का योग अति उच्च होता है, अतः +4 ऑक्सीकरण अवस्था में अधिकतर यौगिक सहसंयोजक प्रकृति के होते हैं। इस समूह के गुरुतर तत्त्वों में Ge < Sn < Pb क्रम में +2 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। सहसंयोजक कोश में ns^2 इलेक्ट्रॉन के बंधन में भाग नहीं लेने के कारण यह होता है। इन दो ऑक्सीकरण अवस्थाओं का सापेक्षिक स्थायित्व वर्ग में परिवर्तित होता है। कार्बन तथा सिलिकन मुख्यतः +4 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करते हैं। जर्मेनियम की +4 ऑक्सीकरण अवस्था स्थायी होती है, जबकि कुछ यौगिकों में +2 ऑक्सीकरण अवस्था भी मिलती है। टिन ऐसी दोनों अवस्थाओं में यौगिक बनाता है (+2 ऑक्सीकरण अवस्था में टिन अपचायक के रूप में कार्य करता है)। +2 ऑक्सीकरण अवस्था में लेड के यौगिक स्थायी होते हैं, जबकि इसकी +4 अवस्था प्रबल ऑक्सीकारक है। चतुःसंयोजी अवस्था में अणु के केंद्रीय परमाणु पर आठ इलेक्ट्रॉन होते हैं [उदाहरणार्थ- (CCl_4)]। इलेक्ट्रॉन परिपूर्ण अणु होने के कारण सामान्यतया इलेक्ट्रॉनग्राही या इलेक्ट्रॉनदाता स्पीशीज़ की अपेक्षा इनसे नहीं की जाती है। यद्यपि कार्बन अपनी सहसंयोजकता +4 का अतिक्रमण नहीं कर सकता है, परंतु समूह के अन्य तत्त्व ऐसा करते हैं। यह उन तत्त्वों में d-कक्षकों की उपस्थिति के कारण होता है। यही कारण है कि ऐसे तत्त्वों के हैलाइड जल अपघटन के उपरांत दाता स्पीशीज़ (Donar Species) से इलेक्ट्रॉन ग्रहण करके संकुल बनाते हैं। उदाहरणार्थ–कुछ स्पीशीज़ [जैसे–(SiF_6^{2-}, $GeCl_6$])$^{2-}$, [$Sn(OH)_6$]$^{2-}$] ऐसी होती हैं, जिनके केंद्रीय परमाणु sp^3d^2 संकरित होते हैं।

(i) ऑक्सीजन के प्रति अभिक्रियाशीलता

इस समूह के सभी सदस्य ऑक्सीजन की उपस्थिति में गरम किए जाने पर ऑक्साइड बनाते हैं। ये मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–मोनोऑक्साइड तथा डाइऑक्साइड। इनके सूत्र क्रमशः MO तथा MO_2 हैं। SiO का अस्तित्व केवल उच्च ताप पर होता है। उच्च ऑक्सीकरण अवस्था वाले ऑक्साइड निम्न ऑक्सीकरण अवस्था वाले ऑक्साइड की तुलना में अम्लीय प्रकृति के होते हैं। डाइऑक्साइड (जैसे–CO_2, SiO_2 तथा GeO_2) अम्लीय हैं, जबकि SnO_2 तथा PbO_2 उभयधर्मी प्रकृति के होते हैं। मोनोऑक्साइड में CO उदासीन तथा GeO अम्लीय हैं, जबकि SnO तथा PbO उभयधर्मी हैं।

उदाहरण 11.5

समूह-14 में से उन सदस्य (या सदस्यों) को चुनिए, जो

(i) सबसे अधिक अम्लीय डाइऑक्साइड बनाता है;
(ii) सामान्यतः +2 ऑक्सीकरण अवस्था में मिलता है;
(iii) अर्द्धचालक (या अर्द्धचालकों) के रूप में प्रयोग में आता है।

हल

(i) कार्बन (ii) लेड (iii) सिलिकन तथा जर्मेनियम

(ii) जल के प्रति क्रियाशीलता

कार्बन, सिलिकन तथा जर्मेनियम जल के द्वारा प्रभावित नहीं होते हैं। टिन, भाप को वियोजित कर डाइऑक्साइड बनाता है तथा डाइहाइड्रोजन गैस देता है–

$$Sn + 2H_2O \xrightarrow{\Delta} SnO_2 + 2H_2$$
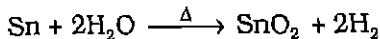
लेड जल से अप्रभावित रहता है। ऐसा शायद ऑक्साइड की रक्षण फिल्म (Protection film) बनने के कारण होता है।

(iii) हैलोजेन के प्रति अभिक्रियाशीलता

समूह-14 के तत्त्व MX_2 तथा MX_4 (X = F, Cl, Br, I) प्रकार के हैलाइड बनाते हैं। कार्बन के अतिरिक्त अन्य सभी सदस्य उपयुक्त परिस्थितियों में हैलोजेन से क्रिया करके सीधे हैलाइड बनाते हैं। अधिकांश MX_4 सहसंयोजक प्रकृति के होते हैं। इन हैलाइडों में केंद्रीय परमाणु sp^3 संकरित अवस्था में तथा अणु चतुष्फलकीय आकृति में होता है। SnF_4 तथा PbF_4 अपवाद हैं। ये आयनिक प्रकृति के होते हैं। PbI_4 का अस्तित्व नहीं है, क्योंकि Pb – I बंध (जो प्रारंभ में बनता है) इतनी ऊर्जा उत्पन्न नहीं कर पाता है कि इससे $6s^2$ इलेक्ट्रॉन का वियुग्मन हो सके तथा एक इलेक्ट्रॉन के उच्च कक्षक में उत्तेजन से चार अयुग्मित इलेक्ट्रॉन प्राप्त हो सकें। इस समूह के Ge से Pb तक के उच्चतर सदस्य MX_2 प्रकार के हैलाइड बनाने की भी प्रवृत्ति रखते हैं। रासायनिक एवं ऊष्मीय स्थायित्व के आधार पर GeX_2 की तुलना में GeX_4 अधिक स्थायी है, जबकि PbX_4 की तुलना में PbX_2 अधिक स्थायी होता है। CCl_4 के अतिरिक्त अन्य सभी टेट्राहेलाइड आसानी से जल अपघटित हो जाते हैं, क्योंकि केंद्रीय परमाणु जल के ऑक्सीजन परमाणु से *d*- कक्षक में एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण कर सकते हैं।

$SiCl_4$ का उदाहरण लेकर जल-अपघटन प्रक्रिया को समझा जा सकता है। यदि Si के *d*- कक्षक में जल से एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण कर $SiCl_4$ प्रारंभिक तौर पर जल अपघटित होता है, तो अंतत: $SiCl_4$, इस प्रकार $Si(OH)_4$ में जल अपघटित हो जाता है–

$$SiCl_4 + H_2\ddot{O} \xrightarrow{-HCl} Si(OH)Cl_3$$

$$Si(OH)Cl_3 \xrightarrow[-3HCl]{+3H_2O} Si(OH)_4$$

सिलिसिक अम्ल
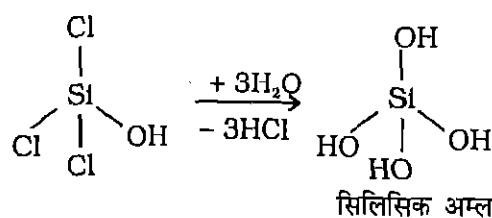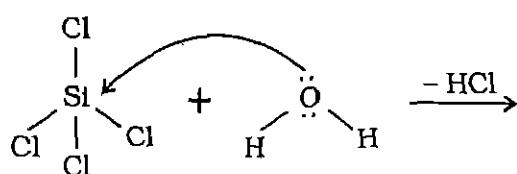
उदाहरण 11.6

$[SiF_6]^{2-}$ ज्ञात है, जबकि $[SiCl_6]^{2-}$ अज्ञात है। इसके संभावित कारण दीजिए।

हल

इसके मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

(i) सिलिकन परमाणु का आकार छोटा होने के कारण इसके चारों ओर क्लोरीन के छ: बड़े आकार वाले परमाणु व्यवस्थित नहीं हो पाते हैं।

(ii) क्लोरीन परमाणु के एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म तथा सिलिकन परमाणु के मध्य अन्योन्य क्रिया अधिक प्रबल नहीं होती है।

11.6 कार्बन की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ एवं असामान्य व्यवहार

अन्य समूहों के प्रथम सदस्यों की भाँति इस समूह का प्रथम सदस्य कार्बन अपने समूह के अन्य सदस्यों से भिन्न व्यवहार प्रदर्शित करता है। इसके छोटे आकार, उच्च विद्युत् ऋणात्मकता, उच्च आयनन एंथैल्पी तथा *d*-कक्षकों की अनुपलब्धता के कारण ऐसा होता है।

कार्बन में केवल *s*– तथा *p*–कक्षक ही बंधन के लिए उपलब्ध रहते हैं। अत: यह अपने चारों ओर केवल चार इलेक्ट्रॉन युग्म ही समायोजित (accommodate) कर सकता है। यही कारण है कि इसकी अधिकतम संयोजकता चार होती है, जबकि अन्य सदस्य *d*-कक्षकों की उपलब्धता के कारण अपनी संयोजकता में वृद्धि कर लेते हैं।

कार्बन में स्वयं से अथवा छोटे आकार एवं उच्च विद्युत् ऋणात्मकता वाले अन्य परमाणु से $p\pi - p\pi$ बहुबंध बनाने की अद्वितीय क्षमता (unique ability) होती है। C=C, C≡C, C=O, C=S, C≡N आदि इसके कुछ उदाहरण हैं। इस समूह के उच्चतर सदस्य $p\pi - p\pi$ बंध नहीं बनाते हैं, क्योंकि बड़े तथा विसरित (diffused) परमाण्वीय कक्षक होने के कारण इनमें प्रभावी अतिव्यापन नहीं होता है।

कार्बन में अन्य परमाणुओं के साथ सहसंयोजक बंध द्वारा जुड़कर लंबी शृंखला या वलय बनाने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रवृति को **शृंखलन** (catenation) कहते हैं। C-C बंध अधिक मजबूत होने के कारण यह होता है। वर्ग में ऊपर से नीचे जाने पर बढ़ता हुआ आकार तथा घटती हुई विद्युत् ऋणात्मकता के कारण शृंखलन की प्रवृत्ति घटती जाती है। इसे बंध एंथैल्पी मान से स्पष्टत: समझा जा सकता है। समूह-14 में शृंखलन का क्रम C>>Si>Ge≈Sn होता है। लेड शृंखलन नहीं दर्शाता है।

बंध	बंध एंथैल्पी / kJ mol^{-1}
C—C	348
Si—Si	297
Ge—Ge	260
Sn—Sn	240

श्रृंखलन तथा $p\pi - p\pi$ बंध-निर्माण के कारण कार्बन विभिन्न अपररूप दर्शाता है।

11.7 कार्बन के अपररूप

कार्बन के क्रिस्टलीय और अक्रिस्टलीय-दोनों ही अपररूप होते हैं। हीरा तथा ग्रेफाइट कार्बन के दो प्रमुख क्रिस्टलीय रूप हैं। एच. डब्ल्यू. क्रोटो, ई. स्मैले तथा आर. एफ. कर्ल (H.W. Kroto, E. Smalley and R.F. Curl) ने सन् 1985 में कार्बन के एक अन्य रूप **फुलरीन** की खोज की। इस खोज के कारण इन्हें सन् 1996 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।
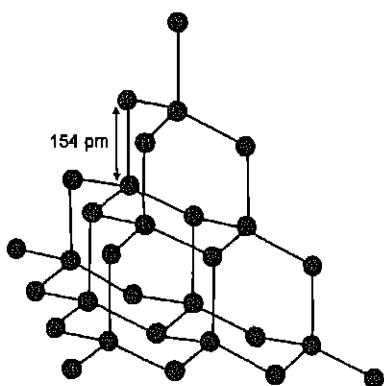
चित्र 11.3 हीरा की संरचना

11.7.1 हीरा

हीरा में क्रिस्टलीय जालक होता है। इसमें प्रत्येक परमाणु sp^3 संकरित होता है तथा चतुष्फलकीय ज्यामिति से अन्य चार कार्बन परमाणुओं से जुड़ा रहता है। इसमें कार्बन-कार्बन बंध लंबाई 154 pm होती है। कार्बन परमाणु दिक (space) में दृढ़ त्रिविमीय जालक (rigid three dimensional network) का निर्माण करते हैं। इस संरचना (चित्र 11.3) में संपूर्ण जालक में दिशात्मक सहसंयोजक बंध उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार विस्तृत सहसंयोजक बंधन को तोड़ना कठिन कार्य होता है। अत: हीरा पृथ्वी पर पाया जाने वाला सर्वाधिक कठोर पदार्थ है। इसका उपयोग धार तेज करने के लिए अपघर्षक (abrasive) के रूप में, रूपदा (Dies) बनाने में तथा विद्युत्-प्रकाश लैम्प में टंगस्टन तंतु (filament) बनाने में होता है।

उदाहरण 11.7

हीरा में सहसंयोजन होने के उपरांत भी गलनांक उच्च होता है। क्यों?

हल

हीरा में मजबूत C—C बंधयुक्त त्रिविमीय संरचना होती है, जिसे तोड़ना काफी कठिन होता है। अत: इसका गलनांक उच्च होता है।

11.7.2 ग्रेफाइट

ग्रेफाइट परतीय की संरचना (layered structure) होती है। ये परतें वान्डरवाल बल द्वारा जुड़ी रहती हैं। दो परतों के मध्य की दूरी 340 pm होती है। प्रत्येक परत में कार्बन परमाणु षट्कोणीय वलय (Hexagonal rings) के रूप में व्यवस्थित होते हैं, जिसमें C-C बंध लंबाई 141.5 pm होती है। षट्कोणीय वलय में प्रत्येक कार्बन परमाणु (sp^2) संकरित होता है। प्रत्येक कार्बन परमाणु तीन निकटवर्ती कार्बन परमाणुओं से तीन सिग्मा बंध बनाता है। इसका चौथा इलेक्ट्रॉन p-बंध बनाता हैं। संपूर्ण परत में इलेक्ट्रॉन विस्थानीकृत होते हैं। इलेक्ट्रॉन गतिशील होते हैं, अत: ग्रेफाइट विद्युत् का सुचालक होता है। ग्रेफाइट को परतों के तल में आसानी से तोड़ा जा सकता है। यही कारण है कि ग्रेफाइट मुलायम (soft) तथा चिकना (slippery) होता है। उच्च ताप पर जिन मशीनों में तेल का प्रयोग स्नेहक (lubricant) के रूप में नहीं हो सकता है, उनमें ग्रेफाइट शुष्क स्नेहक का कार्य करता है।
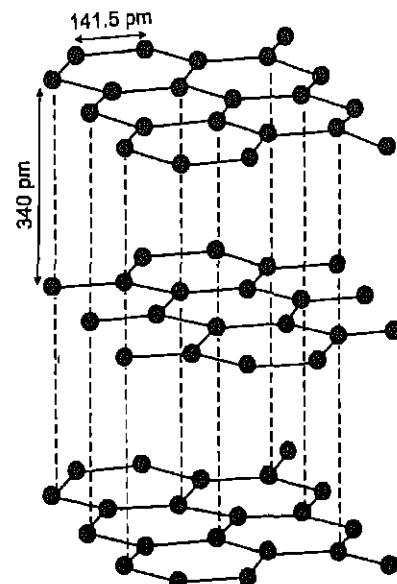
चित्र 11.4 ग्रेफाइट की संरचना

11.7.3 फुलरीन्स

हीलियम, ऑर्गन आदि अक्रिय गैसों की उपस्थिति में जब ग्रेफाइट को विद्युत् आर्क (electric arc) में गरम किया जाता है, तब फुलरीन का निर्माण होता है। वाष्पित लघु C^n अणुओं को संघनित करने पर प्राप्त कज्जली पदार्थ (sooty material) में मुख्य रूप से C_{60} कुछ अंश C_{70} तथा अति सूक्ष्म मात्रा में 350 या अधिक समसंख्या में कार्बन फुलरीन में पाए गए। फुलरीन कार्बन का शुद्धतम रूप है, क्योंकि फुलरीन में किसी प्रकार का झूलता बंध (dangling bonds) नहीं होता है। फुलरीन की संरचना पिंजरानुमा होती है। (C_{60}) अणु की आकृति सॉकर बॉल के समान होती है। इसे **बकमिन्स्टर फुलरीन** (Buckminster fulerene) कहते हैं (चित्र 11.5)।
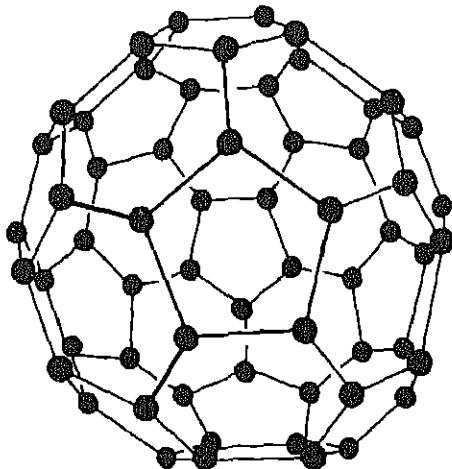
चित्र 11.5 (C_{60}) बकमिन्स्टर फुलरीन की संरचना: अणु की आकृति सॉकर बॉल (फुटबॉल) की तरह होती है

इसमें छ: सदस्यीय बीस वलय तथा पाँच सदस्यीय बारह वलय होती हैं। एक छ: सदस्यीय वलय छ: अथवा पाँच सदस्यीय वलय के साथ संगलित (Fused) रहती है, जबकि पाँच सदस्यीय वलय केवल छ: सदस्यीय वलय के साथ संगलित अवस्था में रहती है। सभी कार्बन परमाणु समान होते हैं तथा (sp^2) संकरित होते हैं। प्रत्येक कार्बन परमाणु अन्य तीन कार्बन परमाणुओं के साथ तीन आबंध बनाता है। चौथा इलेक्ट्रॉन पूरे अणु पर विस्थानीकृत रहता है, जो अणु को ऐरोमैटिक गुण प्रदान करता है। इस गेंदनुमा अणु में 60 उदग्र (vertices) होते हैं। प्रत्येक उदग्र पर एक कार्बन परमाणु होता है। इस पर दोनों एकल तथा द्विबंध होते हैं, जिसकी C-C की लंबाई क्रमश: 143.5 pm तथा 138.3 pm होती है। गोलाकार फुलरीन को 'बकी बॉल' (Bucky ball) भी कहते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ऊष्मागतिक रूप से कार्बन का सर्वाधिक स्थायी अपररूप ग्रेफाइट है। अत: ग्रेफाइट के $\Delta_f H^\ominus$ को शून्य माना जाता है। हीरा तथा फुलरीन के $\Delta_f H^\ominus$ के मान क्रमश: 1.90 तथा 38.1 kJ mol^{-1} होते हैं। कार्बन तत्त्व के अन्य रूप (जैसे–कार्बन ब्लैक, कोक, चारकोल आदि) ग्रेफाइट तथा फुलरीन के अशुद्ध रूप हैं। वायु की सीमित मात्रा में हाइड्रोकार्बन को जलाने पर कार्बन ब्लैक प्राप्त होता है। वायु की अनुपस्थिति में लकड़ी अथवा कोयला को गरम करने पर चारकोल तथा कोक प्राप्त होते हैं।

11.7.4 कार्बन के उपयोग

प्लास्टिक पदार्थ में अंत:स्थापित ग्रेफाइट तंतु उच्च सामर्थ्य वाली हलकी वस्तुएँ बनाते हैं। इन वस्तुओं का उपयोग मछली पकड़ने की छड़ (fishing rods), टेनिस रैकेट, वायुयान तथा डोंगी (canoes) बनाने में होता है। विद्युत् का अच्छा प्रचालक होने के कारण ग्रेफाइट का उपयोग बैटरी के इलेक्ट्रोड बनाने में तथा औद्योगिक विद्युत्-अपघटन में होता है। ग्रेफाइट द्वारा निर्मित क्रूसिबिल तनु अम्लों तथा क्षारों के प्रति अक्रिय होती हैं। अत्यधिक सरंध्र सक्रिय चारकोल का उपयोग जहरीली गैसों को अधिशोषित करने में होता है। इसका उपयोग जल–छनित्र (water-filter) में कार्बनिक अशुद्धियों को दूर करने तथा वातानुकूलन में गंध को नियंत्रित करने में होता है। कार्बन स्याह (carbon black) का उपयोग कृष्णरंजक बनाने में तथा स्वचालित वाहनों के टायर में पूरक के रूप में और कोक का उपयोग मुख्यत: धातुकर्म में अपचायक के रूप में तथा ईंधन के रूप में होता है। हीरा एक मूल्यवान पत्थर है, जिसका उपयोग आभूषणों में होता है। इसे कैरेट (एक कैरेट = 200 mg) में मापा जाता है।

11.8 कार्बन तथा सिलिकन के प्रमुख यौगिक

कार्बन के ऑक्साइड

कार्बन के दो महत्त्वपूर्ण ऑक्साइड–कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) तथा कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) हैं।

11.8.1 कार्बन मोनोऑक्साइड

ऑक्सीजन अथवा वायु की सीमित मात्रा में वायु के सीधे ऑक्सीकरण पर कार्बन मोनोऑक्साइड प्राप्त होती है–

$$2C(s) + O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 2CO(g)$$
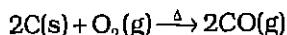
सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल 373 K पर फॉर्मिक अम्ल के द्वारा निर्जलीकरण कराने पर अल्प मात्रा में शुद्ध कार्बन मोनोऑक्साइड प्राप्त होती है–

$$HCOOH \xrightarrow[\text{सांद्र } H_2SO_4]{373K} H_2O + CO$$
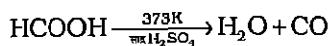
औद्योगिक रूप से इसे कोक पर भाप (Steam) प्रवाहित करके बनाया जाता है। इस प्रकार CO तथा H_2 का प्राप्त मिश्रण **'वाटर गैस'** अथवा **'संश्लेषण गैस' (synthesis gas)** कहलाता है।

$$C(s) + H_2O_{(g)} \xrightarrow{473-1273} \underbrace{CO_{(g)} + H_{2(g)}}_{\text{वाटर गैस}}$$
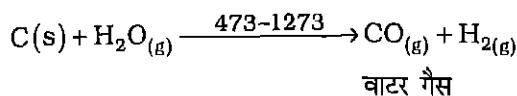
जब भाप के स्थान पर वायु का प्रयोग किया जाता है, तब CO तथा N_2 का मिश्रण प्राप्त होता है। इसे **प्रोड्यूसर गैस** कहते हैं।

$$2C(s) + O_2(g) + 4N_2(g) \xrightarrow{1273K} \underbrace{2CO(g) + 4N_2(g)}_{\text{प्रोड्यूसर गैस}}$$
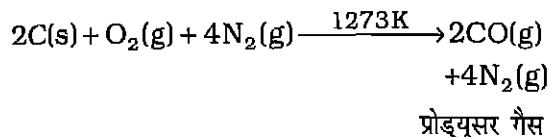
वाटर गैस तथा प्रोड्यूसर गैस एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक ईंधन हैं। इन दोनों में उपस्थित कार्बन मोनोऑक्साइड के अधिक दहन पर कार्बन डाइऑक्साइड गैस प्राप्त होती है तथा ऊष्मा बाहर निकलती है। कार्बन मोनोऑक्साइड जल में लगभग अविलेय रंगहीन तथा गंधहीन गैस है। यह एक प्रबल अपचायक है। यह क्षारीय धातु 'क्षारीय मृदा धातु' ऐलुमीनियम तथा कुछ संक्रमण तत्त्वों के ऑक्साइड के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों के ऑक्साइड को अपचयित कर देती है। कार्बन मोनोऑक्साइड के इस गुण का प्रयोग विभिन्न धातुओं के ऑक्साइड अयस्क (ore) से धातु-निष्कर्षण (extraction) में होता है–

$$Fe_2O_3(s) + 3CO(g) \xrightarrow{\Delta} 2Fe(s) + 3CO_2(g)$$

$$ZnO(s) + CO(g) \xrightarrow{\Delta} Zn(s) + CO_2(g)$$
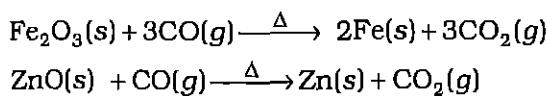
CO : $C \equiv O$: अणु में कार्बन तथा ऑक्सीजन के मध्य एक σ तथा दो π बंध है। कार्बन परमाणु पर एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म की उपस्थिति के कारण कार्बन मोनोऑक्साइड दाता (doner) के समान व्यवहार करती है तथा कई धातुओं के साथ गरम किए जाने पर **धातु कार्बोनिल** बनाती है। CO की अत्यंत विषैली प्रकृति हीमोग्लोबीन के साथ एक संकुल बनाने की इसकी योग्यता के कारण होती है, जो ऑक्सीजन-हीमोग्लोबीन संकुल से 300 गुना अधिक स्थायी होती है। यह लाल रक्त कणिकाओं में उपस्थित हीमोग्लोबीन को शरीर में ऑक्सीजन-प्रवाह से रोकती है। अंततः इसका परिणाम मृत्यु के रूप में होता है।

11.8.2 कार्बन डाइऑक्साइड

वायु की अधिकता में यह कार्बन या कार्बनयुक्त ईंधन के पूर्ण दहन पर प्राप्त होती है।

$$C(s) + O_2(g) \xrightarrow{\Delta} CO_2(g)$$

$$CH_4(g) + 2O_2(g) \xrightarrow{\Delta} CO_2(g) + 2H_2O(g)$$
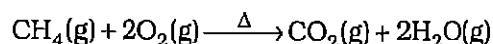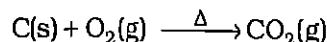
प्रयोगशाला में इसे कैल्सियम कार्बोनेट पर तनु HCl की अभिक्रिया द्वारा बनाया जा सकता है।

$$CaCO_3(s) + 2HCl(aq) \rightarrow CaCl_2(aq) + CO_2(g) + H_2O(l)$$
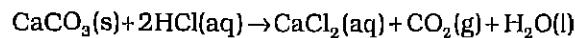
औद्योगिक रूप में चूना-पत्थर (lime stone) को गरम करके यह बनाया जाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड एक रंगहीन तथा गंधहीन गैस है। जल में इसकी अल्पविलेयता इसके जैव रासायनिक (chemical) तथा भू-रासायनिक (geo-chemical) महत्त्व को बताती है। जल के साथ यह कार्बोनिक अम्ल बनाती है, जो एक दुर्बल द्विक्षारकीय अम्ल है। वे निम्नलिखित दो पदों से वियोजित होते हैं–

$$H_2CO_3(aq) + H_2O(l) \rightleftharpoons HCO_3^-(aq) + H_3O^+(aq)$$

$$HCO_3^-(aq) + H_2O(l) \rightleftharpoons CO_3^{2-}(aq) + H_3O^+(aq)$$
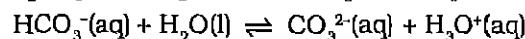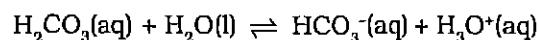
H_2CO_3/HCO_3^- का बफर विलयन रक्त की pH को 7.26 से 7.42 के मध्य अनुरक्षित रखता है। अम्लीय प्रकृति होने के कारण क्षारों के साथ क्रिया कर धातु-कार्बोनेट बनाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में ~0.03% (आयतन से) उपस्थित रहता है, जिसका उपयोग **प्रकाश-संश्लेषण** (photosynthesis) प्रक्रिया में होता है। इस प्रक्रिया में हरे पौधे वायुमंडलीय CO_2 को कार्बोहाइड्रेट (जैसे–ग्लूकोस) में परिवर्तित कर देते हैं। इस प्रक्रिया में रासायनिक परिवर्तन को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{क्लोरोफिल}]{h\nu} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$
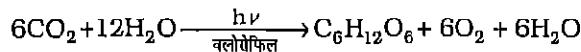
इस प्रक्रिया द्वारा पौधे जंतुओं, मनुष्यों तथा स्वयं के लिए भोजन बनाते हैं। कार्बन मोनोऑक्साइड के विपरीत यह विषैली प्रकृति की नहीं होती है, परंतु जीवाश्म ईंधन (fossil fuels) के बढ़ते दहन तथा सीमेन्ट-निर्माण के लिए चूना-पत्थर (lime stone) के विघटन के कारण वायुमंडल में CO_2 की मात्रा

बढ़ती है, जिससे वायुमंडल के ताप में वृद्धि हो रही है। इसे **हरित गृह-प्रभाव** (Green House Effect) कहते हैं। इसके अनेक दुष्परिणाम सामने आए हैं।

द्रवित CO_2 का प्रसार शीघ्रता से होने के कारण कार्बन डाइऑक्साइड गैस को शुष्क बर्फ (dry ice) के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। शुष्क बर्फ का उपयोग आइसक्रीम तथा हिमशीतित भोजन (frozen food) के लिए प्रशीतक के रूप में तथा गैसीय CO_2 का उपयोग कार्बोनीकृत मृदु पेय (soft drinks) में, वायु से भारी तथा दहन में सहायक नहीं होने के कारण इसका उपयोग अग्निशामक (fire extinguisher) के रूप में होता है। CO_2 का उपयोग बृहद् मात्रा में यूरिया के निर्माण में होता है।

CO_2 अणु में कार्बन परमाणु *sp* संकरित होता है। कार्बन परमाणु दो *sp* संकरित कक्षक, ऑक्सीजन परमाणु के दो *p*-कक्षकों के साथ अतिव्यापन करके दो सिग्मा बंध बनाते हैं, जबकि कार्बन परमाणु के शेष दो इलेक्ट्रॉन ऑक्सीजन परमाणु के साथ $p\pi - p\pi$ बंध बनाते हैं। फलत: इसकी आकृति रेखीय होती है, जिसमें दोनों C—O बंधों की लंबाई एक समान (115 pm) रहती है। इसमें कोई द्विध्रुव आघूर्ण नहीं होता है। CO_2 की अनुनादी संरचनाओं को इस प्रकार प्रदर्शित कर सकते हैं–

$$\overset{-}{:\ddot{O}}-C\equiv\overset{+}{O:} \longleftrightarrow :\ddot{O}=C=\ddot{O}: \longleftrightarrow \overset{+}{:O}\equiv C-\overset{-}{\ddot{O}:}$$
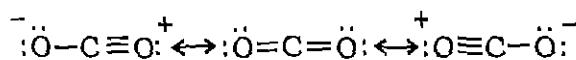
कार्बन डाइऑक्साइड की अनुनादी संरचना

11.8.3 सिलिकन डाइऑक्साइड (SiO_2)

भू-पर्पटी का 95% भाग सिलिका एवं सिलिकेट से बना है। सिलिकन डाइऑक्साइड, जिसे सामान्यत: 'सिलिका' नाम से जाना जाता है, अनेक क्रिस्टल संरचनात्मक (Crystallographic) रूप में मिलता है। सिलिका के कुछ रूप क्वार्ट्ज (quartz), क्रिस्टलोबेलाइट (Cristobalite) तथा ट्राइडाइमाइट (Tridymite) हैं, जो उचित ताप पर अंतरपरिवर्तनीय होती हैं। सिलिकन डाइऑक्साइड एक सहसंयोजक त्रिविमीय जालकयुक्त ठोस है, जिसमें सिलिकन परमाणु चतुष्फलकीय रूप में चार ऑक्सीजन परमाणुओं से सहसंयोजित बंधित रहता है। प्रत्येक ऑक्सीजन परमाणु विपरीतत: दूसरे सिलिकन परमाणु से जुड़ा रहता है, जैसा चित्र 11.6 में दर्शाया गया है। प्रत्येक कोना दूसरे चतुष्फलक से साझित रहता है। संपूर्ण क्रिस्टल को एक ऐसे बृहद् अणु के रूप में माना जा सकता है, जिसमें सिलिकन तथा ऑक्सीजन परमाणुओं की एकांतर क्रम में आठ सदस्यीय वलय बनती है।
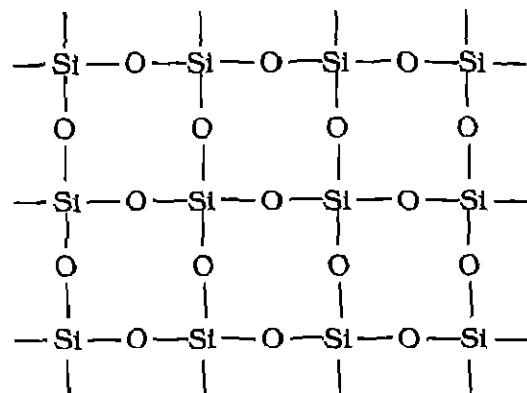
चित्र 11.6 : SiO_2 की त्रिविमीय संरचना

सिलिका अपने सामान्य रूप में अति उच्च Si – O बंध एंथैल्पी होने के कारण अक्रियाशील होता है। उच्च ताप पर सिलिका, हैलोजेन, डाइहाइड्रोजन, अधिकांश अम्लों तथा धातुओं के प्रहार को प्रतिरोपित करता है, हालाँकि HF तथा NaOH से क्रिया करता है।

$$SiO_2 + 2NaOH \rightarrow Na_2SiO_3 + H_2O$$

$$SiO_2 + 4HF \rightarrow SiF_4 + 2H_2O$$
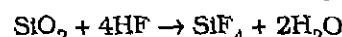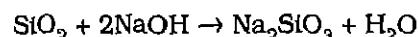
क्वार्ट्ज का विस्तृत उपयोग दाब-विद्युत् (Piezoelectric) पदार्थ बनाने में होता है। इससे अतियथार्थ घड़ियाँ, आधुनिक रेडियो, दूरदर्शन-प्रसारण, गतिशील रेडियो संचार व्यवस्था आदि का निर्माण संभव हो सका। सिलिका जैल का उपयोग शुष्कन कर्मक (Drying agent), वर्णलेखी पदार्थ (Chromatographic material) के रूप में तथा उत्प्रेरक के रूप में होता है। सिलिका का एक अक्रिस्टलीय रूप (Amorphous form), कीसेलगुर (Kieselgur) का उपयोग छनित्र-संयत्र (Filtration plants) में होता है।

11.8.4 सिलिकॉन

यह कार्बन सिलिकॉन बहुलक का एक वर्ग है, जिसमें R_2SiO_2 एक पुनरावर्ती इकाई (Repeating unit) होती है। सिलिकॉन के निर्माण में प्रारंभिक पदार्थ ऐल्किल अथवा ऐरिल प्रतिस्थापी सिलिकन क्लोराइड, $R_nSiCl_{(4-n)}$ होता है, जिसमें R ऐल्किल अथवा ऐरिल समूह होता है। जब 573K ताप पर मेथिल क्लोराइड, कॉपर उत्प्रेरक की उपस्थिति में सिलिकन से क्रिया करता है, तो विभिन्न मेथिल प्रतिस्थायी क्लोरोसिलेन (जिनका सूत्र $MeSiCl_3$, Me_2SiCl_2, Me_3SiCl तथा सूक्ष्म मात्रा में Me_4Si बनते हैं) डाइमेथिल डाइक्लोरो सिलेन

$(CH_3)_2SiCl_2$ के जल-अपघटन के उपरांत संघनन बहुलकीकरण द्वारा शृंखला बहुलक प्राप्त होते हैं।

$$2CH_3Cl + Si \xrightarrow[570\,K]{Cu \text{ पाउडर}} (CH_3)_2SiCl_2 \xrightarrow[-2HCl]{+2H_2O} (CH_3)_2Si(OH)_2$$

$$HO-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{|}}{Si}-OH + HO-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{|}}{Si}-OH + HO-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{|}}{Si}-OH \xrightarrow[\text{बहुलीकरण}]{-H_2O} -O\left(\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-O\right)_n\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-$$
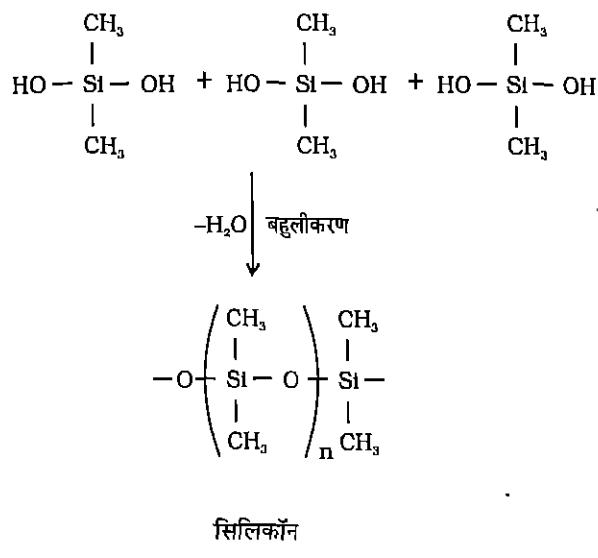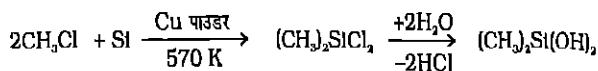
सिलिकॉन

$(CH_3)_3SiCl$ मिलाने से बहुलक की शृंखला की लंबाई को नियंत्रित किया जा सकता है, जो निम्नानुसार सिरे को बंद कर देता है–

$$n\,HO-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-OH + HO-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-CH_3 \xrightarrow[\text{बहुलीकरण}]{-H_2O} -O\left(\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-O\right)_n\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{Si}}-CH_3$$
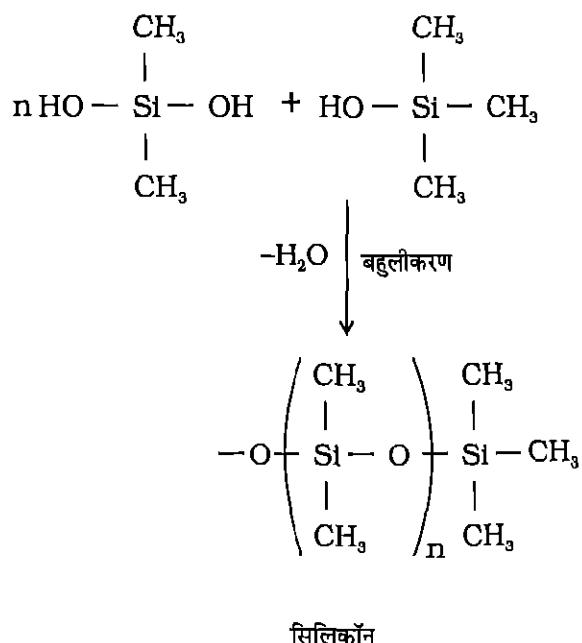
सिलिकॉन

अध्रुवीय ऐल्किल समूहों से घिरे रहने के कारण सिलिकॉन की जलप्रतिकर्षी (Water repelling) प्रकृति होती है। सामान्यतः इनमें उच्च ऊष्मीय स्थायित्व, उच्च परावैद्युत सामर्थ्य तथा रसायनों एवं ऑक्सीकरण के प्रति प्रतिरोधात्मकता का गुण होता है। इनके विस्तृत अनुप्रयोग हैं। इनका उपयोग सीलित ग्रीस (Sealent grease), विद्युत्रोधी (Electricinsulater) तथा जलसह-वस्त्र (Waterproof fabrics) और शल्यक्रिया प्रसाधन-संयंत्र बनाने में होता है।

उदाहरण 11.8

सिलिकॉन क्या है?

हल

सामान्यतः सिलिकॉन शृंखलायुक्त वे यौगिक होते हैं, जिनमें ऐल्किल अथवा फेनिल समूह सिलिकन परमाणु के शेष बंध स्थितियों पर होते हैं। ये जलविरोधी (Hydrophobic) प्रकृति के होते हैं।

11.8.5 सिलिकेट

प्रकृति में बड़ी मात्रा में सिलिकेट खनिज पाए जाते हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण खनिज हैं – फेल्डस्पार (feldspar), जीओलाइट (zeolite), श्वेत अभ्रक (mica) तथा ऐस्बेस्टस (asbestos)। सिलिकेट की मूल संरचनात्मक इकाई SiO_4^{4-} (चित्र 11.7), जिनमें सिलिकॉन परमाणु चार ऑक्सीजन परमाणुओं से चतुष्फलक रूप में बंधित रहता है। सिलिकेट में या तो एक विविक्त (Discrete) इकाई उपस्थित होती है अथवा इस प्रकार की कई इकाइयाँ प्रति सिलिकेट इकाई की 1, 2, 3 अथवा 4 ऑक्सीजन परमाणुओं के साथ साझित अवस्था में रहती है। जब सिलिकेट इकाइयाँ आपस में मिलती हैं, तो शृंखलित वलय, परत तथा त्रिविमीय संरचना बनाती है। सिलिकेट संरचना ऋणावेश में धनावेशित धातु-आयनों द्वारा उदासीन होता है। यदि चारों कोने अन्य चतुष्फलकीय इकाइयों के साथ साझित होते हैं, तो त्रिविम जालक का निर्माण होता है।

मनुष्य द्वारा निर्मित दो महत्त्वपूर्ण सिलिकेट काँच तथा सीमेन्ट हैं।

11.8.6 जीओलाइट

यदि सिलिकन डाइऑक्साइड के त्रिविमिक जालक में से कुछ सिलिकन परमाणु ऐलुमीनियम परमाणुओं द्वारा प्रतिस्थापित हो
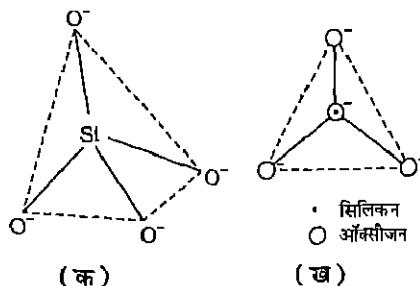
चित्र 11.7 : (क) SiO_4^{4-} *ऋणायन की चतुष्फलक संरचना*
(ख) SiO_4^{4-} *इकाई का निरूपण*

जाते हैं, तो प्राप्त संपूर्ण संरचना को 'ऐलुमिनोसिलिकेट' कह हैं, जिसपर एक ऋणावेश होता है। Na^+, K^+, Ca^{2+} आ धनायन इस ऋणावेश को संतुलित करते हैं। इसके उदाहर फेल्डस्पार तथा जीओलाइट हैं। पेट्रोरसायन उद्योगों में हाइड्रोकार्ब के भंजन तथा समावयवीकरण में जीओलाइट का विस्त उपयोग उत्प्रेरक के रूप में होता है। उदाहरणार्थ–ZSM – (एक जीओलाइट का प्रकार) का उपयोग ऐल्कोहॉल को सी गैसोलीन में परिवर्तित करने में होता है। जलयोजित जीओलाइ का उपयोग कठोर जल के मृदुकरण में काम आने वाले आय विनिमय रेजिन बनाने में होता है।

सारांश

आवर्त सारणी में **p-ब्लॉक** सभी प्रकार के तत्त्व, **धातु, अधातु** तथा **उपधातु** होने के कारण अद्वितीय हैं। आवर्त सारणी में *p*-ब्लॉक तत्त्वों का अंकन छः वर्गों में 13 से 18 तक किया गया है। हीलियम के अतिरिक्त इनका संयोजकता कोश इलेक्ट्रॉनिक विन्यास $ns^2 np^{1-6}$ होते हैं। इनके **आंतरिक क्रोड** में उपस्थित भिन्नता के कारण इनके भौतिक एवं रासायनिक गुण अत्यधिक प्रभावित होते हैं। फलतः इन तत्त्वों के गुणों में अत्यधिक भिन्नता मिलती है। **वर्ग ऑक्सीकरण अवस्था** (group oxidation state) के अतिरिक्त ये तत्त्व अन्य ऑक्सीकरण अवस्था भी प्रदर्शित करते हैं, जो संयोजकता इलेक्ट्रॉन से दो इकाई भिन्न होते हैं। वर्ग ऑक्सीकरण अवस्था हलके तत्त्वों के लिए स्थायी होती है, वहीं भारी तत्त्वों के लिए निम्न ऑक्सीकरण अवस्था स्थायी होती चली जाती है। आकार एवं *d*-कक्षक की उपलब्धता का संयुक्त प्रभाव इन तत्त्वों के π बंध बनाने की योग्यता को प्रभावित करता है। हलके तत्त्व $p\pi - p\pi$ बंध बनाते हैं। वहीं गुरुतर तत्त्व $d\pi - p\pi$ अथवा $d\pi - d\pi$ बंध बनाते हैं। द्वितीय आवर्त में *d*-कक्षक की अनुपस्थिति इनकी अधिकतम संयोजकता को चार पर सीमित करती है, वहीं गुरुतर तत्त्व इस सीमा को पार करते हैं।

समूह-13 में बोरॉन अधातु है, जबकि अन्य सदस्य धातु हैं। बंध-निर्माण में काम आनेवाले चार कक्षकों ($2s$, $2p_x$, $2p_y$ तथा $2p_z$) में केवल तीन संयोजी इलेक्ट्रॉन ($2s^22p^1$) की उपलब्धता के कारण बोरॉन के यौगिक इलेक्ट्रॉन न्यून होते हैं। यह न्यूनता बोरॉन यौगिक को उत्तम इलेक्ट्रॉनग्राही बना देती है। इस प्रकार बोरॉन यौगिक लूइस अम्ल की भाँति व्यवहार करते हैं। बोरॉन डाइहाइड्रोजन के साथ सहसंयोजी यौगिक बोरेन बनाते हैं। इसमें सरलतम **डाइबोरेन** B_2H_6 है। डाइबोरेन में दो बोरॉन परमाणुओं के मध्य सेतुबंध हाइड्रोजन परमाणु होते हैं। इस सेतुबंध को **त्रिकेंद्रीय-द्विइलेक्ट्रॉन बंध** माना गया है। डाइऑक्सीजन के साथ बोरॉन के महत्त्वपूर्ण यौगिक **बोरिक अम्ल** तथा **बोरेक्स** हैं। बोरिक अम्ल $B(OH)_3$ एक दुर्बल एकक्षारकीय अम्ल है। यह हाइड्रॉक्सिल आयन से इलेक्ट्रॉन ग्रहण कर लुइस अम्ल के समान व्यवहार करता है। बोरेक्स $Na_2[B_4O_5(OH)_4].8H_2O$ एक श्वेत क्रिस्टलीय ठोस है। यह **मनका परीक्षण संक्रमण** धातुओं के लिए चारित्रिक रंग देता है।

ऐलुमीनियम +3 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करता है। समूह में नीचे जाने पर भारी तत्त्वों की +1 ऑक्सीकरण अवस्था स्थायी होती जाती है। यह **अक्रिय युग्म प्रभाव** का परिणाम होता है।

कार्बन एक प्रारूपिक अधातु है, जो अपने चारों संयोजी इलेक्ट्रॉन ($2s^22p^2$) का उपयोग करके सहसंयोजक बंध बनाता है। यह शृंखला का गुण दर्शाता है। यह न केवल C-C एकल बंध के द्वारा, अपितु बहुबंध ($C{=}C$ अथवा $C\equiv C$) के द्वारा शृंखला या वलय बनाने की भी योग्यता रखता है। शृंखलन की प्रवृत्ति इस क्रम में घटती है $C >> Si > Ge \approx Sn > Pb$। अपररूपता प्रदर्शित करने वाले तत्त्व का उत्तम उदाहरण कार्बन है। इसके तीन महत्त्वपूर्ण अपररूप हीरा, ग्रेफाइट तथा फुलरीन्स हैं। कार्बन परिवार के सदस्य +4 तथा +2 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करते हैं। +4 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करने वाले यौगिक सामान्यतः सहसंयोजक प्रकृति के होते हैं। गुरुतर तत्त्वों के द्वारा +2 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। लेड की +2 ऑक्सीकरण अवस्था +4 ऑक्सीकरण अवस्था से अधिक स्थायी होती है। कार्बन ऋणात्मक ऑक्सीकरण अवस्था भी प्रदर्शित करता है। कार्बन

दो महत्त्वपूर्ण ऑक्साइड CO तथा CO_2 बनाता है। कार्बन मोनोऑक्साइड उदासीन है, जबकि कार्बन डाइऑक्साइड अम्लीय प्रवृत्ति की होती है। कार्बन मोनोऑक्साइड में कार्बन पर उपस्थित एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म के द्वारा यह धात्विक **कार्बोनिल** बनाता है। ऑक्सीहीमोग्लोबिन की तुलना में CO का हीमोग्लोबिन से बना संकुल अधिक स्थायी और अत्यंत विषैली होता है। कार्बन डाइऑक्साइड मूलतः विषैली नहीं होती है, परंतु चूना-पत्थर के बढ़ते अपघटन तथा जीवाश्म ईंधन के दहन के कारण वायुमंडल में CO_2 की बढ़ती मात्रा ने भयावह स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसे **हरित गृह-प्रभाव** कहते हैं। इससे वायुमंडल का ताप बढ़ जाता है तथा इससे गंभीर जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। **सिलिका**, **सिलिकॉन** तथा **सिलिकेट** महत्त्वपूर्ण यौगिक हैं, जिनका अनुप्रयोग उद्योग एवं तकनीक में होता है।

अभ्यास

11.1 (क) B से Tl तक तथा (ख) C से Pb तक की ऑक्सीकरण अवस्थाओं की भिन्नता के क्रम की व्याख्या कीजिए।

11.2 $TlCl_3$ की तुलना में BCl_3 के उच्च स्थायित्व को आप कैसे समझाएँगे?

11.3 बोरॉन ट्राइफ्लुओराइड लूइस अम्ल के समान व्यवहार क्यों प्रदर्शित करता है?

11.4 BCl_3 तथा CCl_4 यौगिकों का उदाहरण देते हुए जल के प्रति इनके व्यवहार के औचित्य को समझाइए।

11.5 क्या बोरिक अम्ल प्रोटोनी अम्ल है? समझाइए।

11.6 क्या होता है, जब बोरिक अम्ल को गरम किया जाता है?

11.7 BF_3 तथा BH_4^- की आकृति की व्याख्या कीजिए। इन स्पीशीज़ में बोरॉन के संकरण को निर्दिष्ट कीजिए।

11.8 ऐलुमीनियम के उभयधर्मी व्यवहार दर्शाने वाली अभिक्रियाएँ दीजिए।

11.9 इलेक्ट्रॉन न्यून यौगिक क्या होते हैं? क्या BCl_3 तथा $SiCl_4$ इलेक्ट्रॉन न्यून यौगिक हैं? समझाइए।

11.10 CO_3^{2-} तथा HCO_3^- की अनुनादी संरचनाएँ लिखिए।

11.11 (क) CO_3^{2-}, (ख) हीरा तथा (ग) ग्रेफाइट में कार्बन की संकरण-अवस्था क्या होती है?

11.12 संरचना के आधार पर हीरा तथा ग्रेफाइट के गुणों में निहित भिन्नता को समझाइए।

11.13 निम्नलिखित कथनों को युक्तिसंगत कीजिए तथा रासायनिक समीकरण दीजिए–

(क) लेड (II) क्लोराइड Cl_2 से क्रिया करके $PbCl_4$ देता है।

(ख) लेड (IV) क्लोराइड ऊष्मा के प्रति अत्यधिक अस्थायी है।

(ग) लेड एक आयोडाइड PbI_4 नहीं बनाता है।

11.14 BF_3 में तथा BF_4^- में बंध लंबाई क्रमशः 130pm तथा 143pm होने के कारण बताइए।

11.15 B-Cl आबंध द्विध्रुव आघूर्ण रखता है, किन्तु BCl_3 अणु का द्विध्रुव आघूर्ण शून्य होता है। क्यों?

11.16 निर्जलीय HF में ऐलुमीनियम ट्राइफ्लुओराइड अविलेय है, परंतु NaF मिलाने पर घुल जाता है। गैसीय BF_3 को प्रवाहित करने पर परिणामी विलयन में से ऐलुमीनियम ट्राइफ्लुओराइड अवक्षेपित हो जाता है। इसका कारण बताइए।

11.17 CO के विषैली होने का एक कारण बताइए।

11.18 CO_2 की अधिक मात्रा भूमंडलीय तापवृद्धि के लिए उत्तरदायी कैसे है?

11.19 डाइबोरेन तथा बोरिक अम्ल की संरचना समझाइए।

11.20 क्या होता है, जब–

(क) बोरेक्स को अधिक गरम किया जाता है।

(ख) बोरिक अम्ल को जल में मिलाया जाता है।

(ग) ऐलुमिनियम की तनु NaOH से अभिक्रिया कराई जाती है।

(घ) BF_3 की क्रिया अमोनिया से की जाती है।

11.21 निम्नलिखित अभिक्रियाओं को समझाइए–

(क) कॉपर की उपस्थिति में उच्च ताप पर सिलिकन को मेथिल क्लोराइड के साथ गरम किया जाता है।

(ख) सिलिकॉन डाइऑक्साइड की क्रिया हाइड्रोजन फ्लुओराइड के साथ की जाती है।

(ग) CO को ZnO के साथ गरम किया जाता है।

(घ) जलीय ऐलुमिना की क्रिया जलीय NaOH के साथ की जाती है।

11.22 कारण बताइए–

(क) सांद्र HNO_3 का परिवहन ऐलुमीनियम के पात्र द्वारा किया जा सकता है।

(ख) तनु NaOH तथा ऐलुमीनियम के टुकड़ों के मिश्रण का प्रयोग अपवाहिका खोलने के लिए किया जाता है।

(ग) ग्रेफाइट शुष्क स्नेहक के रूप में प्रयुक्त होता है।

(घ) हीरा का प्रयोग अपघर्षक के रूप में होता है।

(ङ) वायुयान बनाने में ऐलुमीनियम मिश्रधातु का उपयोग होता है।

(च) जल को ऐलुमीनियम पात्र में पूरी रात नहीं रखना चाहिए।

(छ) संचरण केबल बनाने में ऐलुमीनियम तार का प्रयोग होता है।

11.23 कार्बन से सिलिकॉन तक आयनीकरण एंथैल्पी में प्रघटनीय कमी होती है। क्यों?

11.24 Al की तुलना में Ga की कम परमाण्वीय त्रिज्या को आप कैसे समझाएँगे?

11.25 अपररूप क्या होता है? कार्बन के दो महत्त्वपूर्ण अपररूप हीरा तथा ग्रेफाइट की संरचना का चित्र बनाइए। इन दोनों अपररूपों के भौतिक गुणों पर संरचना का क्या प्रभाव पड़ता है?

11.26 (क) निम्नलिखित ऑक्साइड को उदासीन, क्षारीय तथा उभयधर्मी ऑक्साइड के रूप में वर्गीकृत कीजिए–

$CO, B_2O_3, SiO_2, CO_2, Al_2O_3, PbO_2, Tl_2O_3$

(ख) इनकी प्रकृति को दर्शाने वाली रासायनिक अभिक्रिया लिखिए।

11.27 कुछ अभिक्रियाओं में थैलियम, ऐलुमीनियम से समानता दर्शाता है, जबकि अन्य में यह समूह–1 के धातुओं से समानता दर्शाता है। इस तथ्य को कुछ प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करें।

11.28 जब धातु X की क्रिया सोडियम हाइऑक्साइड के साथ की जाती है, तो श्वेत अवक्षेप (A) प्राप्त होता है, जो NaOH के आधिक्य में विलेय होकर विलेय संकुल (B) बनाता है। यौगिक (A) तनु HCl में घुलकर यौगिक (C) बनाता है। यौगिक (A) को अधिक गरम किए जाने पर यौगिक (D) बनता है, जो एक निष्कर्षित धातु के रूप में प्रयुक्त होता है। X, A, B, C तथा D को पहचानिए तथा इनकी पहचान के समर्थन में उपयुक्त समीकरण दीजिए।

11.29 निम्नलिखित से आप क्या समझते हैं?

(क) अक्रिय युग्म प्रभाव (ख) अपररूप (ग) शृंखलन

11.30 एक लवण X निम्नलिखित परिणाम देता है–

(क) इसका जलीय विलयन लिटमस के प्रति क्षारीय होता है।

(ख) तीव्र गरम किए जाने पर यह काँच के समान ठोस में स्वेदित हो जाता है।

(ग) जब X के गरम विलयन में सांद्र H_2SO_4 मिलाया जाता है, तो एक अम्ल Z का श्वेत क्रिस्टल बनता है।

उपरोक्त अभिक्रियाओं के समीकरण लिखिए और X,Y तथा Z को पहचानिए।

11.31 संतुलित समीकरण दीजिए–

(क) $BF_3 + LiH \rightarrow$ (ख) $B_2H_6 + H_2O \rightarrow$

(ग) $NaH + B_2H_6 \rightarrow$ (घ) $H_3BO_3 \xrightarrow{\Delta}$

(ङ) $Al + NaOH \rightarrow$ (च) $B_2H_6 + NH_3 \rightarrow$

11.32 CO तथा CO_2 प्रत्येक के संश्लेषण के लिए एक प्रयोगशाला तथा एक औद्योगिक विधि दीजिए।

11.33 बोरेक्स के जलीय विलयन की प्रकृति कौन सी होती है–

(क) उदासीन (ख) उभयधर्मी (ग) क्षारीय (घ) अम्लीय

11.34 बोरिक अम्ल के बहुलकीय होने का कारण –

(क) इसकी अम्लीय प्रकृति है। (ख) इसमें हाइड्रोजन बंधों की उपस्थित है।

(ग) इसकी एकक्षारीय प्रकृति है। (घ) इसकी ज्यामिति है।

11.35 डाइबोरेन में बोरॉन का संकरण कौन सा होता है–

(क) *sp* (ख) sp^2 (ग) sp^3 (घ) dsp^2

11.36 ऊष्मागतिकीय रूप से कार्बन का सर्वाधिक स्थायी रूप कौन सा है–

(क) हीरा (ख) ग्रेफाइट (ग) फुलरीन्स (घ) कोयला

11.37 निम्नलिखित में से समूह-14 के तत्त्वों के लिए कौन सा कथन सत्य है?

(क) +4 ऑक्सीकरण प्रदर्शित करते हैं।

(ख) +2 तथा +4 ऑक्सीकरण अवस्था प्रदर्शित करते हैं।

(ब) M^{2-} तथा M^{4+} आयन बनाते हैं।

(घ) M^{2+} तथा M^{4-} आयन बनाते हैं।

11.38 यदि सिलिकॉन-निर्माण में प्रारंभिक पदार्थ $RSiCl_3$ है, तो बनने वाले उत्पाद की संरचना बताइए।

कार्बनिक रसायन : कुछ आधारभूत सिद्धांत तथा तकनीकें
ORGANIC CHEMISTRY: SOME BASIC PRINCIPLES & TECHNIQUES

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप –

- कार्बन की चतुर्संयोजकता तथा कार्बनिक अणुओं की आकृतियों को समझ सकेंगे;
- कार्बनिक अणुओं की संरचनाओं को विभिन्न प्रकार से लिख सकेंगे;
- कार्बनिक यौगिकों का वर्गीकरण कर सकेंगे;
- नामांकरण की IUPAC पद्धति के अनुसार यौगिकों को नाम दे सकेंगे तथा उन नामों के आधार पर उनकी संरचना लिख सकेंगे;
- कार्बनिक अभिक्रियाओं की क्रियाविधि की धारणा को समझ सकेंगे;
- कार्बनिक यौगिकों की संरचना तथा अभिक्रियाशीलता पर इलेक्ट्रॉन-विस्थापन के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे;
- कार्बनिक अभिक्रियाओं के प्रकार को पहचान सकेंगे;
- कार्बनिक यौगिकों के शुद्धिकरण की तकनीकों को सीख सकेंगे;
- कार्बनिक यौगिकों के गुणात्मक विश्लेषण में सम्मिलित रासायनिक अभिक्रियाओं को लिख सकेंगे;
- कार्बनिक यौगिकों के मात्रात्मक विश्लेषण में सम्मिलित सिद्धांतों को समझ सकेंगे।

पिछले एकक में आपने सीखा कि कार्बन का एक अद्वितीय गुण होता है, जिसे **'शृंखलन'** (Catenation) कहते हैं। इस कारण यह अन्य कार्बन परमाणुओं के साथ सहसंयोजक आबंध बनाता है। यह अन्य तत्त्वों, जैसे–हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस तथा हैलोजेनों के परमाणुओं के साथ भी सहसंयोजक आबंध बनाता है। इस प्रकार के यौगिकों का अध्ययन रसायन शास्त्र की एक अलग शाखा के अंतर्गत किया जाता है, जिसे **कार्बनिक रसायन** कहते हैं। इस एकक में कुछ आधारभूत सिद्धांत तथा विश्लेषण-तकनीकें सम्मिलित हैं, जो कार्बनिक यौगिकों के विरचन तथा गुणों को समझने के लिए आवश्यक हैं।

12.1 सामान्य प्रस्तावना

पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने के लिए कार्बनिक यौगिक अनिवार्य हैं। इसके अंतर्गत जटिल अणु हैं, जैसे–आनुवांशिक सूचना वाले डीऑक्सी राइबोन्यूक्लीक अम्ल (डी.एन.ए.) तथा प्रोटीन, जो हमारे रक्त, माँसपेशी एवं त्वचा के आवश्यक यौगिक बनाते हैं। कार्बनिक रसायन कपड़ों, ईंधनों, बहुलकों, रंजकों, दवाओं आदि पदार्थों में होते हैं। इन यौगिकों के अनुप्रयोगों के ये कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं।

कार्बनिक रसायन का विज्ञान लगभग 200 वर्ष पुराना है। सन् 1780 के आसपास रसायनज्ञों ने पादपों तथा जंतुओं से प्राप्त कार्बनिक यौगिकों एवं खनिज स्रोतों से विरचित अकार्बनिक यौगिकों के बीच विभेदन करना आरंभ कर दिया था। स्वीडिश वैज्ञानिक बर्जिलियस ने प्रतिपादित किया कि 'जैवशक्ति' (Vital force) कार्बनिक यौगिकों के निर्माण के लिए उत्तरदायी है, जब सन् 1828 में एफ. वोलर ने कार्बनिक यौगिक यूरिया का संश्लेषण अकार्बनिक यौगिक अमोनियम सायनेट से किया, तब यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई।

$$NH_4CNO \xrightarrow{\text{गरम करने पर}} NH_2CONH_2$$
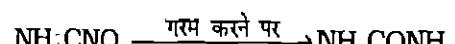
अमोनियम सायनेट   यूरिया

कोल्बे (सन् 1845) द्वारा ऐसिटिक अम्ल तथा बर्थलोट (सन् 1856) द्वारा मेथैन के नवीन संश्लेषण के परिणामस्वरूप दर्शाया गया कि कार्बनिक यौगिकों को अकार्बनिक स्रोतों से प्रयोगशाला में संश्लेषित किया जा सकता है।

सहसंयोजक आबंधन के इलेक्ट्रॉनिक सिद्धांत के विकास ने कार्बनिक रसायन को आधुनिक रूप दिया।

12.2 कार्बन की चतुर्संयोजकता : कार्बनिक यौगिकों की आकृतियाँ

12.2.1 कार्बनिक यौगिकों की आकृतियाँ

आण्विक संरचना की मौलिक अवधारणाओं का ज्ञान कार्बनिक यौगिकों के गुणों को समझने और उनकी प्रागुक्ति करने में सहायक होता है। संयोजकता सिद्धांत एवं आण्विक संरचना को आप एकक-4 में समझ चुके हैं। आप यह भी जानते हैं कि कार्बन की चतुर्संयोजकता तथा इसके द्वारा सहसंयोजक आबंध-निर्माण को इलेक्ट्रॉनीय विन्यास तथा *s* और *p* कक्षकों के संकरण (Hybridisation) के आधार पर समझाया जा सकता है। आपको यह याद होगा कि मेथैन (CH_4), एथीन (C_2H_4) तथा एथाइन (C_2H_2) के समान अणुओं की आकृतियों को कार्बन परमाणुओं द्वारा निर्मित क्रमशः sp^3, sp^2 तथा *sp* संकर कक्षकों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

संकरण किसी कार्बनिक यौगिक में आबंध लंबाई तथा आबंध एंथैल्पी (आबंध-सामर्थ्य) को प्रभावित करता है। *sp* संकरित कक्षक में *s* गुण अधिक होने के कारण यह नाभिक के समीप होता है। अतः *sp* संकरित कक्षक द्वारा निर्मित आबंध sp^3 संकरित कक्षक द्वारा निर्मित आबंध की अपेक्षा अधिक निकट तथा अधिक सामर्थ्यवान होता है। sp^2 संकरित कक्षक *sp* तथा sp^3 संकरित कक्षक के मध्यवर्ती होता है। अतः इससे बनने वाले आबंध की लंबाई तथा एंथैल्पी-दोनों के मध्यवर्ती होती हैं। संकरण का परिवर्तन कार्बन की विद्युत् ऋणात्मकता को प्रभावित करता है। कार्बन पर स्थित संकरित कक्षक की *s* प्रकृति बढ़ने पर उसकी विद्युत् ऋणात्मकता में वृद्धि हो जाती है। अतः *sp* संकरित कक्षक (जिसमें *s*-प्रकृति 50% है) sp^2 तथा sp^3 संकरित कक्षकों की अपेक्षा अधिक विद्युत् ऋणात्मक होते हैं। संकरित कक्षकों की अपेक्षित विद्युत् ऋणात्मकता का प्रभाव कार्बनिक यौगिकों के भौतिक तथा रासायनिक गुणों पर भी पड़ता है, जिनका वर्णन आगामी एककों में किया गया है।

12.1.2 π आबंधों के कुछ अभिलक्षण

π (पाइ) आबंध के निर्माण में दो निकटवर्ती परमाणुओं के *p* कक्षकों का समानांतर अभिविन्यास समुचित पार्श्व अतिव्यापन के लिए आवश्यक है। अतः $CH_2{=}CH_2$ अणु में सभी परमाणु एक ही तल में होने चाहिए। इस अणु के प्रत्येक कार्बन पर उपस्थित *p*- कक्षक समानांतर तथा अणु के तल के लंबवत होते हैं। एक CH_2 को दूसरे के सापेक्ष में घुमाने पर *p*- कक्षकों के अधिकतम अतिव्यापन में बाधा उत्पन्न होती है। फलतः (C=C) कार्बन-कार्बन द्विआबंध के चारों ओर घूर्णन प्रतिबंधित हो जाता है। π आबंध का इलेक्ट्रॉन आवेशअभ्र आबंधित परमाणुओं के तल के ऊपर एवं नीचे स्थित होता है। सामान्यतः π आबंध बहुआबंधयुक्त यौगिकों में मुख्य सक्रिय केंद्र उपलब्ध कराते हैं। यह आक्रामक अभिकर्मकों के लिए इलेक्ट्रॉनों को आसानी से उपलब्ध कराता है।

उदाहरण 12.1

निम्नलिखित अणुओं में से प्रत्येक में कितने σ तथा π आबंध हैं?

(क) $H-C\equiv C-\overset{H}{\overset{|}{C}}=CH-CH_3$

(ख) $CH_2=C=CH\ CH_3$

हल

(क) σ C-C: 4; σ C-H: 6; π C = C:1; πC ≡ C:2

(ख) σ C-C:3; σ C-H: 6; π C = C;2

उदाहरण 12.2

निम्नलिखित यौगिकों में प्रत्येक कार्बन की संकरण अवस्था क्या है?

(क) CH_3Cl, (ख) $(CH_3)_2CO$, (ग) CH_3CN, (घ) $HCONH_2$, (ङ) $CH_3\ CH{=}CHCN$

हल

(क) sp^3, (ख) sp^3, sp^2, (ग) sp^3, *sp*, (घ) sp^2, (ङ) sp^3, sp^2, sp^2, *sp*

उदाहरण 12.3

निम्नलिखित यौगिकों में कार्बन की संकरण अवस्था एवं अणुओं की आकृतियाँ क्या हैं?

(क) $H_2C=O$, (ख) CH_3F, (ग) $HC\equiv N$

हल

(क) sp^2 संकरित कार्बन, त्रिकोणीय समतल, (ख) sp^3 संकरित कार्बन, चतुष्फलकीय, (ग) sp^3 संकरित कार्बन, रैखीय।

12.3 कार्बनिक यौगिक का संरचनात्मक निरूपण

12.3.1 पूर्ण संघनित तथा आबंध-रेखा संरचनात्मक सूत्र

कार्बनिक यौगिकों के संरचनात्मक सूत्र लिखने की कई विधियाँ हैं। इनमें कुछ विधियाँ लूइस-संरचना अथवा बिंदु-संरचना, लघु आबंध संरचना (Dash structure), संघनित संरचना (Condensed structure) तथा आबंध रेखा संरचना है। लघु रेखा (–) द्वारा इलेक्ट्रॉन-युग्म सहसंयोजक आबंध को दर्शाकर लूइस संरचना सरल की जा सकती है। आबंध बनाने वाले इलेक्ट्रॉनों पर ऐसे संरचनात्मक सूत्र केंद्रित होते हैं। एकल आबंध, द्विआबंध तथा त्रिआबंध को क्रमशः एक लघु रेखा (–), द्विलघु रेखा (=) तथा त्रिलघु रेखा (≡) द्वारा दर्शाया जाता है। विषम परमाणुओं (जैसे–ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर, हैलोजेन आदि) पर उपस्थित एकाकी इलेक्ट्रॉन–युग्म को दो बिंदुओं (..) द्वारा दर्शाया जाता है, परंतु कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता है। अतः एथेन (C_2H_6), एथीन (C_2H_4), एथाइन (C_2H_2) तथा मेथेनॉल (CH_3OH) के संरचनात्मक सूत्रों को निम्नलिखित प्रणाली द्वारा निरूपित किया जाता है। ऐसे संरचनात्मक निरूपणों को 'पूर्ण संरचनात्मक सूत्र' (Complete structure formula) कहा जाता है।

$$\begin{array}{c} H\quad H \\ |\quad\ | \\ H-C-C-H \\ |\quad\ | \\ H\quad H \end{array} \qquad \begin{array}{c} H \qquad\quad H \\ \diagdown\quad\ \diagup \\ C=C \\ \diagup\quad\ \diagdown \\ H \qquad\quad H \end{array}$$

एथेन एथीन

$$H-C\equiv C-H \qquad \begin{array}{c} H \\ | \\ H-C-\ddot{\underset{..}{O}}-H \\ | \\ H \end{array} \text{ अथवा } \begin{array}{c} H \\ | \\ H-C-O-H \\ | \\ H \end{array}$$

एथाइन मेथेनॉल
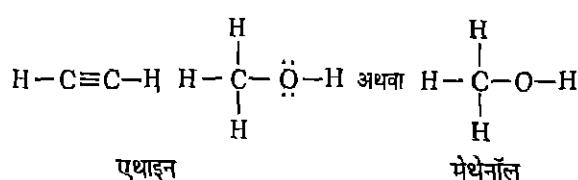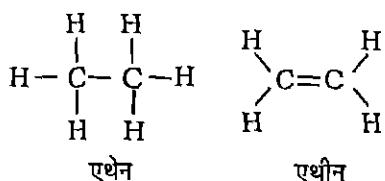
इन संरचना–सूत्रों को कुछ या सारे सहसंयोजक आबंधों को हटाकर तथा एक परमाणु से जुड़े समान समूह को कोष्ठक में लिखकर उनकी संख्या को पादांक में प्रदर्शित कर, संक्षिप्त किया जा सकता है। इन संक्षिप्त सूत्रों को 'संघनित संरचनात्मक सूत्र' (Condenstructural formula) कहते हैं। अतः एथेन, एथीन, एथाइन तथा मेथेनॉल को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

CH_3CH_3	$H_2C{=}CH_2$	$HC{\equiv}CH$	CH_3OH
ऐथेन	ऐथीन	ऐथाइन	मेथेनॉल
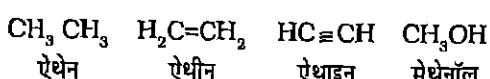
इस प्रकार, $CH_3CH_2CH_2CH_2CH_2CH_2CH_2CH_3$ को और भी संघनित रूप $CH_3(CH_2)_6CH_3$ द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे और सरल बनाने के लिए कार्बनिक रसायनज्ञों ने संरचनाओं को निरूपित करने हेतु केवल रेखाओं का उपयोग किया। इसे **आबंध-रेखा संरचनात्मक सूत्र** (bond-line structural) में कार्बन तथा हाइड्रोजन परमाणुओं को नहीं लिखा जाता, बल्कि कार्बन-कार्बन आबंधों को टेढ़ी-मेढ़ी (जिग-जैग) रेखाओं द्वारा दर्शाया जाता है। केवल ऑक्सीजन, क्लोरीन, नाइट्रोजन इत्यादि परमाणुओं को विशेष रूप से लिखा जाता है। सिरे पर स्थित रेखा मेथिल (—CH_3) समूह इंगित करती है (जब तक किसी क्रियात्मक समूह द्वारा नहीं दर्शाया गया हो)। आंतरिक रेखाएँ उन कार्बन परमाणुओं को इंगित करती हैं, जो अपनी संयोजकता को पूर्ण करने के लिए आवश्यक हाइड्रोजन से आबंधित होते हैं। जैसे–

(i) 3–मेथिलऑक्टेन को निम्नलिखित रूपों में दर्शाया जा सकता है–

(क) $\begin{array}{l} CH_3CH_2\underset{\displaystyle CH_3}{\underset{|}{C}H}CH_2CH_2CH_2CH_2CH_3 \end{array}$

(ख) [आबंध-रेखा सूत्र]

सिरे वाली रेखाएँ मेथिल समूह दर्शाती हैं।
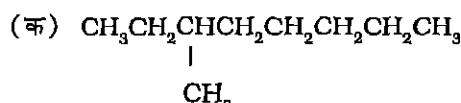
(ii) 3–ब्रोमोब्यूटेन को दर्शाने के विभिन्न तरीके :

(क) $CH_3CH\,BrCH_2CH_3$

(ख) $\begin{array}{l} CH_3 \quad\ CH_2 \\ \quad \diagdown \diagup \quad \diagdown \\ \quad CH \qquad CH_3 \\ \quad | \\ \quad Br \end{array}$
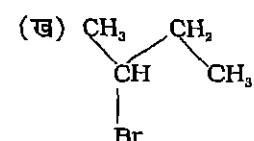
(ग) [आबंध-रेखा सूत्र, Br]

चक्रीय यौगिकों में आबंध-रेखा सूत्रों को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

$$\begin{array}{c} CH_2 \\ \diagup\ \diagdown \\ H_2C - CH_2 \end{array} \equiv \triangle \equiv \text{[पंचभुज]}$$

साइक्लोप्रोपेन

$$\begin{array}{c} CH_2 \\ H_2C \quad\quad CH_2 \\ H_2C - CH_2 \end{array} \equiv$$

साइक्लोपेंटेन

$$\begin{array}{c} CH_2 \\ H_2C \quad\quad CHCl \\ H_2C \quad\quad CH_2 \\ CH_2 \end{array} \equiv$$

Cl
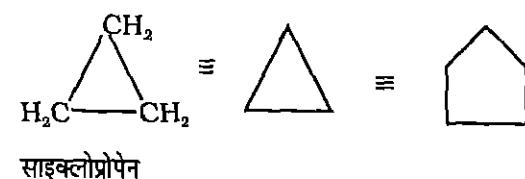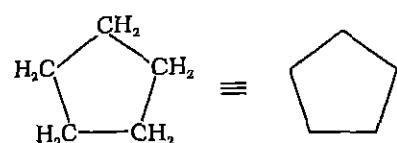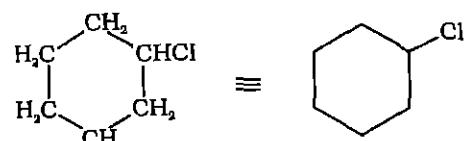
क्लोरोसाइक्लोहेक्सेन

उदाहरण 12.4

निम्नलिखित संघनित सूत्रों को पूर्ण संरचनात्मक सूत्रों में लिखिए–

(क) $CH_3CH_2COCH_2CH_3$

(ख) $CH_3CH{=}CH(CH_2)_3CH_3$

हल

(क)
$$\begin{array}{ccccccccccc} & & H & & H & & O & & H & & H & \\ & & | & & | & & \| & & | & & | & \\ H & - & C & - & C & - & C & - & C & - & C & - H \\ & & | & & | & & & & | & & | & \\ & & H & & H & & & & H & & H & \end{array}$$

(ख)
$$\begin{array}{ccccccccccccccc} & & H & & H & & & & H & & H & & H & & H & \\ & & | & & | & & & & | & & | & & | & & | & \\ H & - & C & - & C & = & C & - & C & - & C & - & C & - & C & - H \\ & & | & & & & | & & | & & | & & | & & | & \\ & & H & & & & H & & H & & H & & H & & H & \end{array}$$
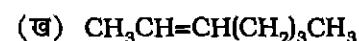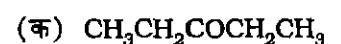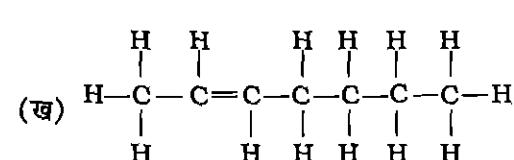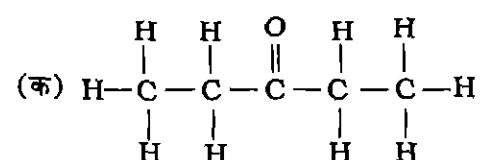
उदाहरण 12.5

निम्नलिखित यौगिकों का संरचना–सूत्र संघनित रूप में लिखिए तथा उनका आबंध-रेखा सूत्र भी दीजिए–

(क) $HOCH_2\ CH_2CH_2CH\ (CH_3)\ CH\ (CH_3)\ CH_3$

(ख)
$$\begin{array}{c} OH \\ | \\ N{\equiv}C - CH - C{\equiv}N \end{array}$$

हल

संघनित सूत्रः

(क) $HO(CH_2)_3\ CHCH_3\ CH(CH_3)_2$

(ख) $HOCH(CN)_2$

आबंध रेखा सूत्र

(क) HO

(ख) OH, NC, CN
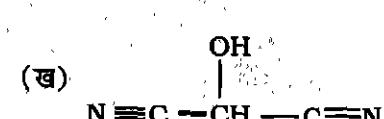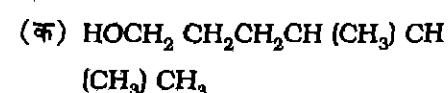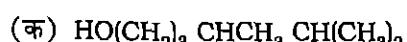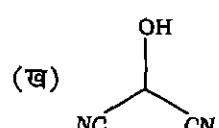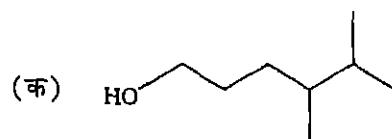
उदाहरण 12.6

निम्नलिखित आबंध रेखा-सूत्रों को विस्तारित रूप में कार्बन तथा हाइड्रोजन सहित सभी परमाणुओं को दर्शाते हुए लिखिए–

(क)

(ख)

(ग) OH

(घ)

हल

(क) $C_6H_{11}-CH(CH_3)_2$ (वलय के प्रत्येक C पर H सहित; H, C, CH_3, C–H, CH_3)

(ख)
$$\begin{array}{c} H\ H\ H\ H\ H\ H\ H\ H \\ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ | \\ H-C-C-C-C-C-C-C-C-H \\ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ |\ \ | \\ H\ H\ H\ H\ H\ H\ H\ H \end{array}$$

(ग)
$$\begin{array}{c} \quad\quad\quad H\ \ H\ \ H \\ \quad\quad\quad |\ \ \ |\ \ \ | \\ H-C{\equiv}C-C-C-C-H \\ \quad\quad\quad |\ \ \ |\ \ \ | \\ \quad\quad\quad H\ OH\ H \end{array}$$

(घ) $(H_3C)_2CH-CH(CH_3)_2$

```
   H₃C      CH₃
      \    /
(घ) H—C——C—H
      /    \
   H₃C      CH₃
```
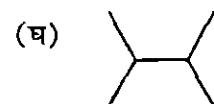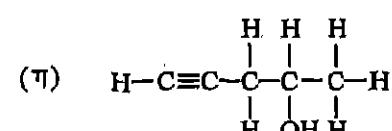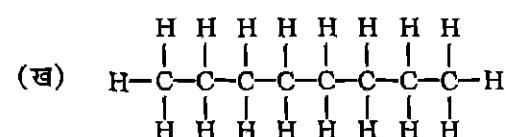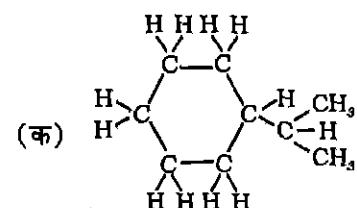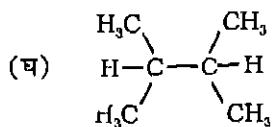
12.3.2 कार्बनिक यौगिकों का त्रिविमी सूत्र

कागज पर कार्बनिक यौगिकों के त्रिविमी (3D) सूत्र में कुछ पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ–द्विविमी संरचना को त्रिविमी संरचना में देखने के लिए ठोस तथा डैश वेज सूत्र का उपयोग किया जाता है। इन सूत्रों में ठोस वेज उस आबंध को दर्शाता है, जो कागज के तल से दर्शक की ओर प्रक्षेपी है और डैश वेज विपरीत दिशा में, अर्थात् दर्शक के दूर जाने वाले आबंध को दर्शाता है। कागज के तल में स्थित आबंध को साधारण रेखा (–) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। चित्र 12.1 में मेथैन अणु का त्रिविमी सूत्र दर्शाया गया है।

टूटी रेखा
(आबंध दर्शक से दूर)
कागज के तल
पर आबंध
H
C
H
H
H
ठोस रेखा
(आबंध दर्शक की ओर)
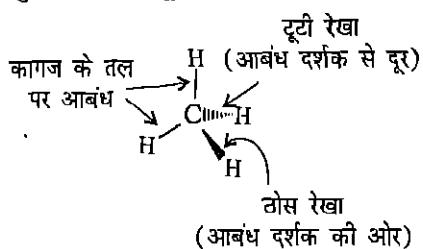
चित्र 12.1 CH_4 के वेज तथा डैश सूत्र प्रदर्शन

12.4 कार्बनिक यौगिकों का वर्गीकरण

कार्बनिक यौगिकों की वर्तमान बड़ी संख्या और बढ़ती हुई संख्या के कारण इन्हें संरचनाओं के आधार पर वर्गीकृत करना आवश्यक हो गया है। कार्बनिक यौगिकों को मोटे तौर पर इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है–
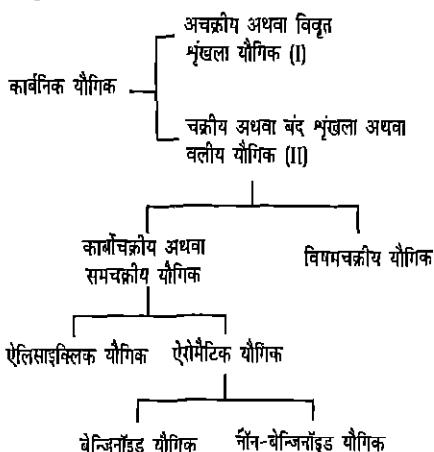
आण्विक मॉडल

कार्बनिक अणुओं की त्रिविमी आकृति आण्विक मॉडलों की सहायता से भली-भाँति समझी जा सकती है। लकड़ी या प्लास्टिक या धातु के बने ये मॉडल बाज़ार में उपलब्ध होते है। सामान्यत: तीन प्रकार के आण्विक मॉडलों का उपयोग किया जाता है– (1) फ्रेमवर्क, अर्थात् ढाँचागत मॉडल, (2) बॉल तथा स्टिक, अर्थात् गेंद और छड़ी मॉडल तथा (3) स्पेस फिलिंग, अर्थात् स्थानीय पूरक मॉडल। फ्रेमवर्क मॉडल अणु में केवल आबंधों को दर्शाता है। इसमें परमाणु नहीं दिखाए जाते। यह मॉडल अणु के परमाणुओं के आकार की अनदेखी करते हुए आबंधों का प्रारूप दर्शाता है। बॉल तथा स्टिक मॉडल में आबंध तथा परमाणु–दोनों को दर्शाया जाता है। बॉल परमाणु को दर्शाते हैं, जबकि स्टिक आबंध को दर्शाती है। असंतृप्त अणुओं (जैसे C=C) को दर्शाने के लिए स्टिक के स्थान पर स्प्रिंग प्रयुक्त की जाती है। स्पेस-फिलिंग मॉडल में प्रत्येक परमाणु का आपेक्षिक आकार प्रदर्शित किया जाता है, जो उसकी वांडरवाल्स त्रिज्या पर आधारित होता है। इस मॉडल में आबंध नहीं दर्शाए जाते हैं। यह अणु में प्रत्येक परमाणु द्वारा घेरे गए आयतन को प्रदर्शित करता है। इन मॉडलों के अतिरिक्त आण्विक मॉडल के लिए कंप्यूटर ग्राफिक्स का उपयोग किया जा सकता है।
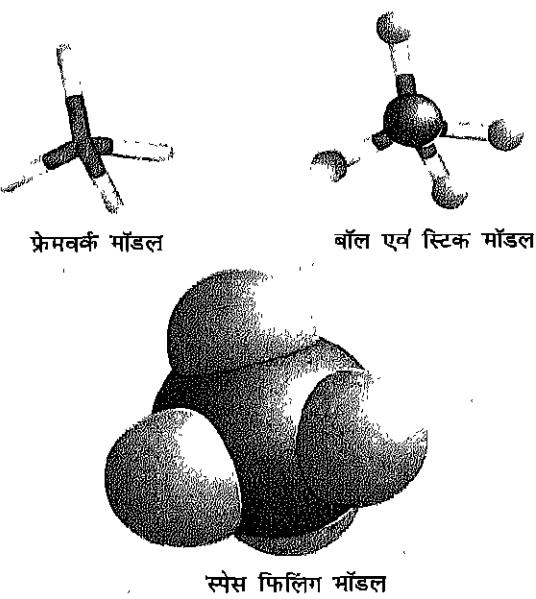
चित्र 12.2

I अचक्रीय अथवा विवृत शृंखला यौगिक

इन यौगिकों को **ऐलिफेटिक** (वसीय यौगिक) भी कहा जाता है, जिनमें सीधा या शाखित शृंखला यौगिक होते हैं। जैसे–

CH_3CH_3

एथेन

$$\begin{array}{c} CH_3 \\ | \\ CH_3—CH—CH_3 \end{array}$$

आइसोब्यूटेन

$$\begin{array}{c} O \\ \| \\ CH_3—C—H \end{array}$$

ऐसीटैल्डिहाइड

$$\begin{array}{c} O \\ \| \\ CH_3—C—OH \end{array}$$

ऐसीटिक अम्ल
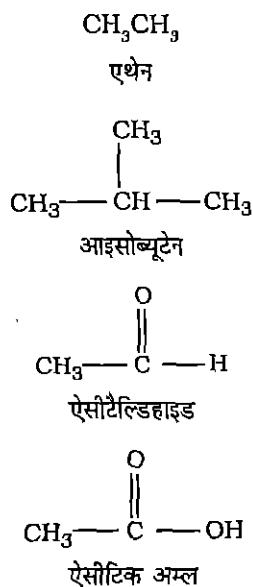
II ऐलिसाइक्लिक यौगिक या बंद शृंखला या वलय यौगिक

ऐलिसाइक्लिक (ऐलिफेटिक चक्रीय) यौगिकों में कार्बन परमाणु जुड़कर एक समचक्रीय (Homocyclic) वलय बनाते हैं। कभी कभी वलय में कार्बन परमाणु के अलावा अन्य परमाणु जुड़कर विषमचक्रीय वलय बनाते हैं। इस प्रकार के यौगिकों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–
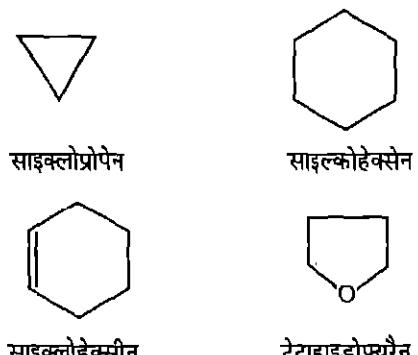
ये एलिफेटिक यौगिकों के समान कुछ गुणधर्म प्रदर्शित करते हैं।

ऐरोमैटिक यौगिक

ऐरोमैटिक यौगिक एक विशेष प्रकार के यौगिक हैं, जिनके विषय में आप एकक 13 में विस्तार से अध्ययन करेंगे। इनमें बेंज़ीन तथा अन्य संबंधित चक्रीय यौगिक (बेन्ज़िनॉइड) सम्मिलित हैं। ऐलिसाइक्लिक यौगिक के समान ऐरोमैटिक यौगिकों की वलय में विषम परमाणु हो सकते हैं। ऐसे यौगिकों को 'विषमचक्रीय ऐरोमैटिक यौगिक' कहा जाता है। इन यौगिकों के कुछ उदाहरण ये हैं–

बेन्ज़िनॉइड ऐरोमैटिक यौगिक
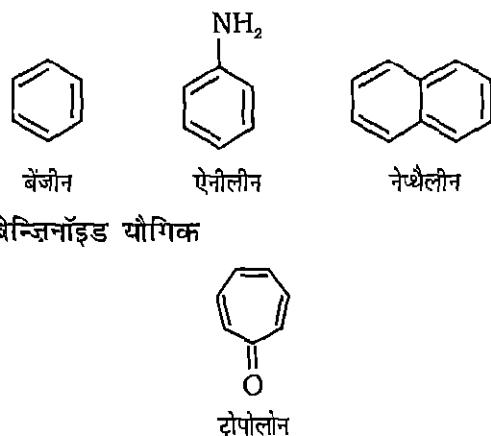
विषमचक्रीय ऐरौमेटिक यौगिक

कार्बनिक यौगिकों को क्रियात्मक समूहों के आधार पर सजातीय श्रेणियों (Honologous series) में वर्गीकृत किया जाता है।

क्रियात्मक समूह

किसी कार्बनिक यौगिक में विशिष्ट प्रकार से जुड़ा परमाणु या परमाणुओं का समूह, जो कार्बनिक यौगिकों में अभिलाक्षणिक रासायनिक गुणों के लिए उत्तरदायी होता है, **क्रियात्मक समूह** (Functional Group) कहलाता है। उदाहरणार्थ– हाइड्रॉक्सिल समूह (- OH) ऐल्डिहाइड समूह (- CHO) कार्बोक्सिलिक अम्ल-समूह (- COOH) आदि।

सजातीय श्रेणियाँ

कार्बनिक यौगिकों के समूह अथवा ऐसी श्रेणी, जिसमें एक विशिष्ट क्रियात्मक समूह हो, **सजातीय श्रेणी** बनाते हैं। इसके सदस्यों को 'सजात' (Homologous) कहते हैं। सजातीय श्रेणी के सदस्यों को एक सामान्य सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसके क्रमागत सदस्यों के अणुसूत्रों में मध्य - CH_2 इकाई का अंतर होता है। कार्बनिक यौगिकों की कई सजातीय श्रेणियाँ

हैं। इनमें से कुछ हैं–ऐल्केन, ऐल्कीन, ऐल्काइन, ऐल्किल हैलाइड, ऐल्केनॉल, ऐल्कनैल, ऐल्केनोन, ऐल्केनॉइक अम्ल, ऐमीन इत्यादि।

12.5 कार्बनिक यौगिकों की नामपद्धति

कार्बनिक रसायन लाखों कार्बनिक यौगिकों से संबंधित है। उनकी स्पष्ट पहचान के लिए यौगिकों के नामांकन की एक सुव्यवस्थित विधि विकसित की गई है, जिसे **आई.यू.पी.ए.सी. (IUPAC Internatinal Union of Pure And Applied Chemistry)** विधि कहते हैं। इस सुव्यवस्थित नामांकन प्रणाली में यौगिकों के नाम को उसकी संरचना से सहसंबंधित किया गया है, जिससे पढ़ने या सुनने वाला व्यक्ति यौगिक के नाम के आधार पर उसकी संरचना उत्पन्न कर सके।

आई.यू.पी.ए.सी. पद्धति से पूर्व कार्बनिक यौगिकों का नाम उनके स्रोत अथवा किसी गुण के आधार पर दिया जाता था। उदाहरणार्थ– सिट्रिक अम्ल का नाम उसके सिट्रस फलों में पाए जाने के कारण दिया गया है। लाल चींटी में पाए जाने वाले अम्ल का नाम 'फॉर्मिक अम्ल' दिया गया है, क्योंकि चींटी के लिए लैटिन शब्द 'फार्मिका' (Formica) है। यह नाम पारंपरिक है। ये रूढ़ (trivial) अथवा सामान्य (Common) नाम कहलाते हैं। वर्तमान समय में भी कुछ यौगिकों को सामान्य नाम दिए जाते हैं। उदाहरणार्थ– कुछ वर्ष पूर्व प्राप्त कार्बन के एक नवीन रूप C_{60} गुच्छे (क्लस्टर) का नाम 'बकमिंस्टर फुलेरीन' (Buckminster fullerene) रखा गया, क्योंकि इसकी आकृति अल्पांतरी गुंबदों (Geodesic Domes) से मिलती-जुलती है। प्रसिद्ध अमेरिकी वास्तुशिल्पी आर. बुकमिंस्टर फुलेर (R. Buckminster fuller) ने इन्हें लोकप्रिय बनाया था। कुछ यौगिकों के संबंध में आई.यू.पी.ए.सी. नाम अधिक लंबे अथवा जटिल होते हैं। इस कारण भी उनका सामान्य नाम रखना आवश्यक हो जाता है। कुछ कार्बनिक यौगिकों के सामान्य नाम सारणी 12.1 में दिए गए हैं।

12.5.1 आई.यू.पी.ए.सी. नामकरण

किसी कार्बनिक यौगिक को सुव्यवस्थित नाम देने के लिए मूल हाइड्रोकार्बन तथा उससे जुड़े क्रियात्मक समूहों की पहचान करनी होती है। नीचे दिए गए उदाहरण को देखिए।

जनक हाइड्रोकार्बन के नाम में उपयुक्त पूर्वलग्न, अंतर्लग्न तथा अनुलग्न को संयुक्त करके वास्तविक यौगिक का नाम प्राप्त किया जा सकता है। केवल कार्बन तथा हाइड्रोजन युक्त यौगिक **'हाइड्रोकार्बन'** कहलाते हैं। कार्बन-कार्बन एकल आबंधवाले हाइड्रोकार्बन को 'संतृप्त हाइड्रोकार्बन' कहते हैं। ऐसे यौगिकों की सजातीय श्रेणी के सुव्यवस्थित IUPAC नाम को ऐल्केन (alkane) कहते हैं। इनका पूर्व नाम 'पैराफिन' (लैटिन : लिटिल, ऐफिनिटी, अर्थात् कम क्रियाशील) था। असंतृप्त हाइड्रोकार्बन में कम से कम एक कार्बन-कार्बन द्विआबंध या त्रिआबंध होता है।
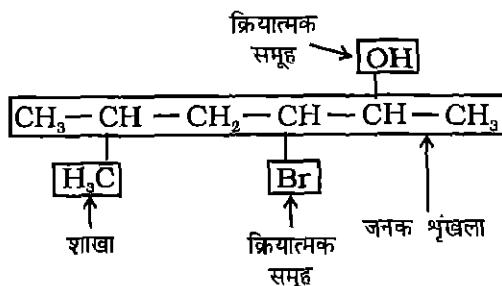
12.5.2 ऐल्केनों की IUPAC नामपद्धति

सीधी श्रृंखलायुक्त हाइड्रोकार्बन : मेथैन और ब्यूटेन के अतिरिक्त शेष यौगिकों के नाम सीधी श्रृंखला-संरचना पर आधारित है, जिनके पश्चलग्न में 'ऐन' (ane) तथा इससे पूर्व श्रृंखला में उपस्थित कार्बन परमाणु की संख्या से संगित किया जाता है। कुछ संतृप्त सीधी श्रृंखला हाइड्रोकार्बनों के IUPAC

सारणी 12.1 कुछ कार्बनिक यौगिकों के सामान्य अथवा रूढ़ नाम

यौगिक	सामान्य नाम	यौगिक	सामान्य नाम
CH_4	मेथैन	$CHCl_3$	क्लोरोफार्म
$H_3CCH_2CH_2CH_3$	*n*–ब्यूटेन	CH_3COOH	ऐसीटिक अम्ल
$(H_3C)_2\ CH\ CH_3$	आइसोब्यूटेन	C_6H_6	बेंज़ीन
$(H_3C)_4C$	निओपेन्टेन	$C_6H_5OCH_3$	ऐनीसॉल
$H_3CCH_2CH_2OH$	*n*–प्रोपिल ऐल्कोहॉल	$C_6H_5NH_2$	ऐनिलीन
HCHO	फार्मेल्डिहाइड	$C_6H_5COCH_3$	ऐसीटोफीनोन
$(H_3C)_2\ CO$	ऐसीटोन	$CH_3OCH_2CH_3$	एथिल मेथिल ईथर

नाम सारणी 12.2 में दिए गए हैं। इस सारणी में दिए गए ऐल्केनों के दो क्रमागत सदस्यों के मध्य केवल CH_2 समूह का अंतर है। ये ऐल्केन श्रेणी के सजात (Homologues) हैं।

सारणी 12.2

नाम	अणुसूत्र	नाम	अणुसूत्र
मेथैन	CH_4	हेप्टेन	C_7H_{16}
एथेन	C_2H_6	ओक्टेन	C_8H_{18}
प्रोपेन	C_3H_8	नोनेन	C_9H_{20}
ब्यूटेन	C_4H_{10}	डीकेन	$C_{10}H_{22}$
पेन्टेन	C_5H_{12}	आईकोसेन	$C_{20}H_{42}$
हेक्सेन	C_6H_{14}	ट्राईकोन्टेन	$C_{30}H_{62}$

शाखित शृंखलायुक्त हाइड्रोकार्बन

शाखित शृंखला (Branced Chain) से युक्त यौगिकों में कार्बन परमाणुओं की छोटी शृंखलाएँ जनक के शृंखला एक या कई कार्बनों के साथ जुड़ी रहती हैं। ये छोटी कार्बन-शृंखला (शाखाएँ) 'एल्काइल समूह' कहलाती हैं। उदाहरणार्थ–

(क) $CH_3-CH(CH_3)-CH_2-CH_3$

(ख) $CH_3-CH(CH_2CH_3)-CH_2-CH(CH_3)-CH_3$
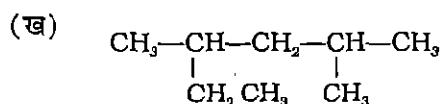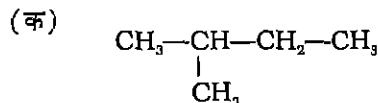
ऐसे यौगिक का नाम देने के लिए ऐल्किल समूह का नाम पूर्वलग्न के रूप में जनक ऐल्केन के नाम के साथ संयुक्त कर देते हैं। संतृप्त हाइड्रोकार्बन के कार्बन से एक हाइड्रोजन परमाणु हटाने पर ऐल्किल समूह प्राप्त होता है। इस प्रकार CH_4 से $-CH_3$ प्राप्त होता है। इसे 'मेथिल समूह' कहा जाता है। ऐल्किल समूह का नाम प्राप्त करने के लिए संबंधित ऐल्केन के नाम से ऐन (ane) को (इल) (yl) द्वारा विस्थापित करते हैं। कुछ ऐल्किल समूहों के नाम सारणी 12.3 में दिए गए हैं।

सारणी 12.3 कुछ ऐल्किल समूह

ऐल्केन		ऐल्किल-समूह	
अणुसूत्र	ऐल्केन का नाम	संरचना-सूत्र	ऐल्किल समूह का नाम
CH_4	मेथिल	$-CH_3$	मेथैन
C_2H_6	एथिल	$-CH_2CH_3$	एथेन
C_3H_8	प्रोपिल	$-CH_2CH_2CH_3$	प्रोपेन
C_4H_{10}	ब्यूटिल	$-CH_2CH_2CH_2CH_3$	ब्यूटेन
$C_{10}H_{22}$	डेकिल	$-CH_2(CH_2)_8CH_3$	डेकेन

कुछ ऐल्किल समूहों के नाम लघु रूप में भी लिखे जाते हैं। जैसे– मेथिल को Me, एथिल को Et, प्रोपिल को Pr तथा ब्यूटिल को Bu लिखते हैं। ऐल्किल समूह शाखित भी होती है, जैसा नीचे दिखाया गया है। साधारण शाखित समूहों के विशिष्ट रूढ़ नाम होते हैं। उदाहरणार्थ– ब्यूटिल समूहों के नाम द्वितीयक (*sec*)-ब्यूटिल, आइसोब्यूटिल तथा तृतीयक(*tert*)-ब्यूटिल हैं। $-CH_2C(CH_3)_3$ संरचना के लिए 'नियोपेंटिल समूह' नाम का प्रयुक्त किया जाता है।

$CH_3-CH(CH_3)-$ आइसोप्रोपिल

$CH_3-CH_2-CH(CH_3)-$ *sec*-ब्यूटिल

$CH_3-CH(CH_3)-CH_2-$ आइसो ब्यूटिल

$CH_3-C(CH_3)_2-$ *tert*-ब्यूटिल

$CH_3-C(CH_3)_2-CH_2-$ निओपेंटिल
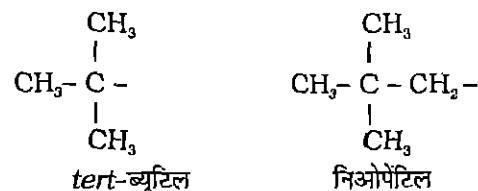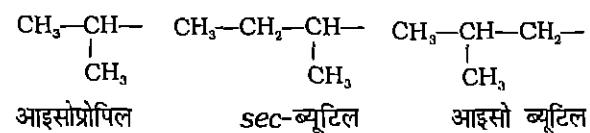
शाखित शृंखला ऐल्केनों का नामकरण

हमें शाखित शृंखला वाले ऐल्केन बड़ी संख्या में मिलते हैं। उनके नामकरण के नियम निम्नलिखित हैं–

1. सर्वप्रथम अणु में दीर्घतम कार्बन शृंखला का चयन किया जाता है। अग्रलिखित उदाहरण (I) में दीर्घतम शृंखला में नौ कार्बन हैं। यही जनक शृंखला (Parent Chain) है। संरचना II में प्रदर्शित जनक शृंखला का चयन सही नहीं है, क्योंकि इसमें केवल आठ ही कार्बन हैं।

$$\overset{1}{C}H_3-\overset{2}{C}H(CH_3)-\overset{3}{C}H_2-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_2-\overset{6}{C}H(CH_2-CH_3)-\overset{7}{C}H_2-\overset{8}{C}H_2-\overset{9}{C}H_3$$

I

$$\overset{1}{C}H_3-\overset{2}{C}H(CH_3)-\overset{3}{C}H_2-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_2-\overset{6}{C}H(\overset{7}{C}H_2-\overset{8}{C}H_3)-CH_2-CH_2-CH_3$$

II
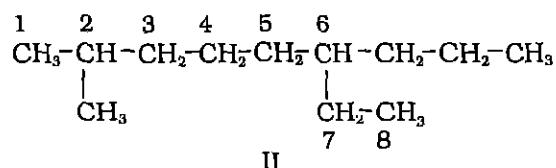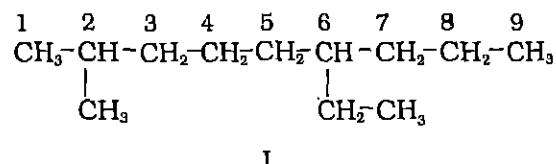
2. जनक ऐल्केन को पहचानने के लिए जनक शृंखला के कार्बन परमाणुओं का अंकन किया जाता है तथा हाइड्रोजन परमाणु को प्रतिस्थापित करने वाले ऐल्किल समूह के कारण शाखित होनेवाले कार्बन परमाणु के स्थान का पता लगाया जाता है। क्रमांकन उस छोर से प्रारंभ करते हैं,

जिससे शाखित कार्बन परमाणुओं को लघुतम अंक मिले। अतः उपर्युक्त उदाहरण में क्रमांकन बाईं से दाईं ओर होना चाहिए (कार्बन 2 और 6 पर शाखन), न कि दाईं से बाईं ओर (जब शाखित कार्बन परमाणुओं को 4 और 8 संख्या मिलेंगी)।

```
1  2  3  4  5  6  7  8  9
C—C—C—C—C—C—C—C—C
   |           |
   C           C-C

9  8  7  6  5  4  3  2  1
C—C—C—C—C—C—C—C—C
   |           |
   C           C-C
```
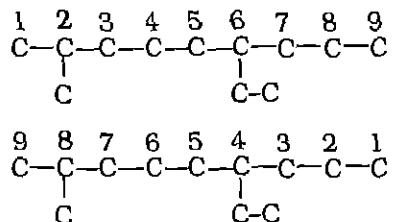
3. मूल ऐल्केन के नाम में शाखा के रूप में ऐल्किल समूहों के नाम पूर्वलग्न के रूप में संयुक्त करते हैं और प्रतिस्थापी समूहों की स्थिति को उचित संख्या द्वारा दर्शाते हैं। भिन्न ऐल्किल-समूहों के नामों को अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम में लिखा जाता है। अतः उपर्युक्त यौगिक का नाम 6-एथिल-2-मेथिलनोनेन होगा। (ध्यान देने योग्य बात यह है कि समूह तथा संख्या के मध्य संयोजक-रेखा (Hyphen) तथा मेथिल और नोनेन को साथ मिलाकर लिखा जाता है।)

4. यदि दो या दो से अधिक समान प्रतिस्थापी समूह हों, तो उनकी संख्याओं के मध्य अल्पविराम (,) लगाया जाता है। समान प्रतिस्थापी समूहों के नाम को दुबारा न लिखकर उचित पूर्वलग्न, जैसे– डाइ (2 के लिए), ट्राइ (3 के लिए), टेट्रा (4 के लिए), पेंटा (5 के लिए), हेक्सा (6 के लिए) आदि प्रयुक्त करते हैं, परंतु नाम लिखते समय प्रतिस्थापी समूहों के नामों को अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम में लिखते हैं। निम्नलिखित उदाहरण इन नियमों को स्पष्ट करते हैं–

```
 CH3       CH3                 CH3   CH3
  |         |                   |     |
CH3-CH-CH2-CH-CH3         CH3-C-CH2-CH-CH3
                                |
                               CH3
```

2, 4-डाइमेथिलपेन्टेन   2, 2, 4-ट्राइमेथिलपेन्टेन

```
          H3C H2C  CH3
               |    |
CH3-CH2-CH-C-CH2-CH2-CH3
                |
               CH3
```

3-एथिल-4, 4-डाइमेथिलहेप्टेन
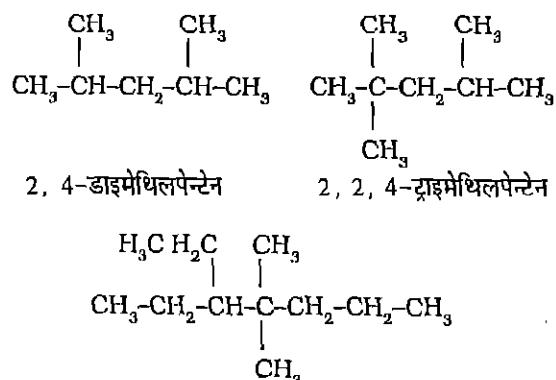
5. यदि दो प्रतिस्थापियों की स्थितियाँ तुल्य हों, तो अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम में पहले आनेवाले अक्षर को लघु अंक दिया जाता है। अतः निम्नलिखित यौगिक का सही नाम 3-एथिल-6-मेथिलऑक्टेन है, न कि 6-एथिल-3-मेथिलऑक्टेन।

```
 1     2    3     4     5     6     7     8
CH3—CH2—CH—CH2—CH2—CH—CH2—CH3
              |                |
            CH2CH3            CH3
```
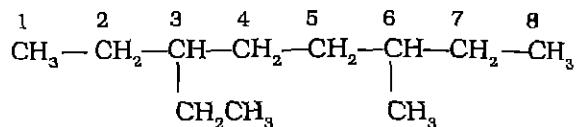
6. शाखित ऐल्किल समूह का नाम उपर्युक्त नियमों की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है, परंतु शाखित शृंखला का कार्बन परमाणु, जो जनक शृंखला से बंधित होता है, को इस उदाहरण की तरह संख्या 1 दी जाती है।

```
 4    3    2    1
CH3-CH-CH2-CH-
     |        |
    CH3      CH3
```

1, 3-डाइमेथिलब्यूटिल
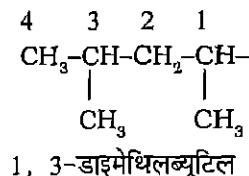
ऐसे शाखित शृंखला समूह के नाम को कोष्ठक में लिखा जाता है। प्रतिस्थापी समूहों के रूढ़ नाम वर्णमाला-क्रम में लिखते समय **आइसो (iso) और निओ (neo) पूर्वलग्नों को मूल ऐल्किल समूह के नाम का भाग माना जाता है। परंतु द्वितीयक (sec-) तथा तृतीयक (tert-) पूर्वलग्नों को मूल ऐल्किल समूह के नाम का भाग नहीं माना जाता।** आइसो और अन्य संबंधित पूर्वलग्नों का उपयोग आई.यू.पी.ए.सी. पद्धति में भी किया जाता है, लेकिन तभी तक, जब तक ये और आगे शाखित न हों। बहुप्रतिस्थापित यौगिकों में निम्नलिखित नियमों को आप याद रखें–

- यदि समान संख्या की दो शृंखलाएँ हों, तो अधिक पार्श्व शृंखलाओं वाली शृंखला का चयन करना चाहिए।
- शृंखला के चयन के बाद क्रमांकन उस छोर से आरंभ करना चाहिए, जिस छोर से प्रतिस्थापी समीप हो।

```
                                  CH2CH3
10   9    8    7    6    5          |
CH3-CH2-CH2-CH2-CH2-CH-CH2-CH-CH2-CH3
                       4|  1    2   3    4
                       CH2
                       3|
                    CH3-C-CH3
                        |
                       CH2CH3
                        2   1
```
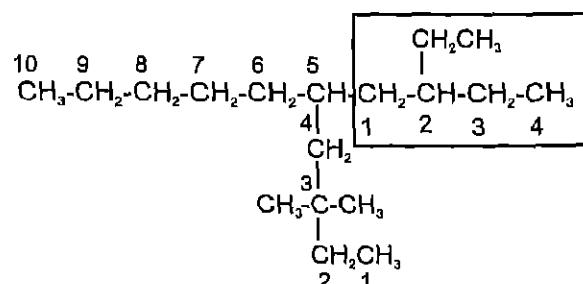
उपर्युक्त यौगिक का नाम 5-(2-एथिलब्यूटिल)-3, 3-डाइमेथिलडेकेन हैं,

न कि 5-(2,2-डाइमेथिलब्यूटिल)- 3-ऐथिलडेकेन

$$\begin{array}{l} \qquad\qquad\quad CH(CH_3)_2 \\ 1 \quad 2 \quad 3 \quad 4| \quad 5 \quad 6 \quad 7 \quad 8 \quad 9 \quad 10 \\ CH_3-CH_2-CH_2-CH-CH-CH_2-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3 \\ \qquad\qquad\qquad\quad | \\ \qquad\qquad CH_3-CH-CH_2-CH_3 \end{array}$$

5-sec-ब्यूटिल-4-आइसोप्रोपिल डेकेन

$$\begin{array}{l} 1 \quad 2 \quad 3 \quad 4 \quad 5 \quad 6 \quad 7 \quad 8 \quad 9 \\ CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-CH-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3 \\ \qquad\qquad\qquad\quad | \\ \qquad\qquad\qquad {}^{1}CH_2 \\ \qquad\qquad\qquad {}^{2}| \\ \qquad\qquad CH_3-C-CH_3 \\ \qquad\qquad\qquad {}^{3}| \\ \qquad\qquad\qquad CH_3 \end{array}$$
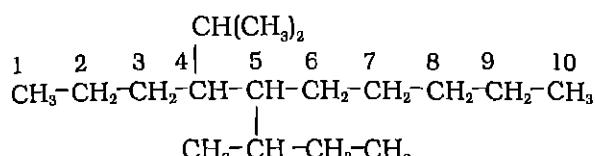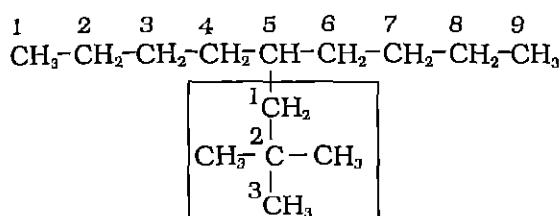
5-(2, 2-डाइमेथिलप्रोपिल)-नोनेन

चक्रीय यौगिक : एकलचक्रीय संतृप्त यौगिक का नाम संबंधित विवृत–शृंखला ऐल्केन के नाम के प्रारंभ में 'साइक्लो' पूर्वलग्न लगाकर प्राप्त करते हैं। यदि पार्श्व–शृंखलाएँ उपस्थित हों, तो उपर्युक्त नियमों का पालन हम करते हैं। कुछ चक्रीय यौगिकों के नाम नीचे दिए गए हैं–
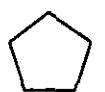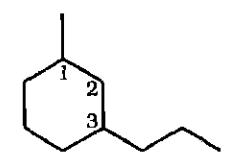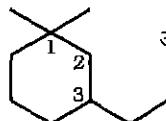
3-एथिल-1, 1-डाइमेथिलसाइक्लोहेक्सेन

(1-एथिल-3, 3-डाइमेथिलसाइक्लोहेक्सेन गलत है)

उदाहरण 12.7

कुछ हाइड्रोकार्बनों के IUPAC नाम तथा संरचनाएँ नीचे दी गई हैं। कारणसहित बताइए कि कोष्ठक में दिए गए नाम अशुद्ध क्यों हैं–

$$\begin{array}{l} (क)\ CH_3-CH-CH_2-CH_2-CH-CH-CH_2-CH_3 \\ \qquad\quad | \qquad\qquad\qquad\quad | \quad\ | \\ \qquad\ CH_3 \qquad\qquad\quad CH_3\ CH_3 \end{array}$$

2, 5, 6, ट्राइमेथिलऑक्टेन

[3, 4, 7-ट्राइमेथिलऑक्टेन गलत है]

$$\begin{array}{l} (ख)\ CH_3-CH_2-CH-CH_2-CH-CH_2-CH_3 \\ \qquad\qquad\qquad | \qquad\quad\ | \\ \qquad\qquad CH_2CH_3\ \ CH_3 \end{array}$$

3-एथिल-5-मेथिलहेप्टेन
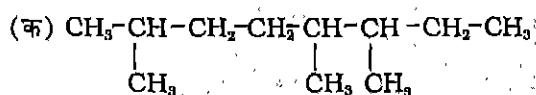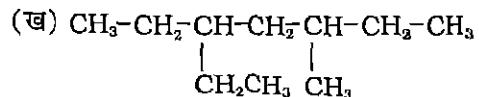
[5-एथिल-3-मेथिलहेप्टेन गलत है]

हल

(क) 2, 5, 6 लघुतम अंक 3, 5, 7 की अपेक्षा न्यून है।

(ख) प्रतिस्थापी समूह तुल्य स्थितियों में हैं। इस दशा में क्रमांकन उस छोर से आरंभ करते हैं, जिस छोर से वर्णमाला क्रम में पहले आने वाले समूह को न्यून अंक मिले।

12.5.3 क्रियात्मक समूह से युक्त कार्बनिक यौगिकों की नामपद्धति

किसी कार्बनिक यौगिक में परमाणु अथवा परमाणुओं का समूह, जिसके कारण वह यौगिक विशिष्ट रासायनिक अभिक्रियाशीलता प्रदर्शित करता है, 'क्रियात्मक समूह' (Functional Group) कहलाता है। समान क्रियात्मक समूहवाले यौगिक समान अभिक्रियाएँ देते हैं। उदाहरणार्थ– CH_3OH, CH_3CH_2OH तथा $(CH_3)_2CHOH$ इन सभी में –OH क्रियात्मक समूह है, जिसके कारण वे सभी सोडियम धातु के साथ अभिक्रिया करके हाइड्रोजन मुक्त करते हैं। क्रियात्मक समूह की उपस्थिति के कारण कार्बनिक यौगिकों को क्रमानुसार विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ क्रियात्मक समूह उनके पूर्वलग्न और अनुलग्न तथा कुछ कार्बनिक यौगिकों के नाम, जिनमें वे उपस्थित हैं, सारणी 12.4 में दिए गए हैं।

सर्वप्रथम उपस्थित क्रियात्मक समूह की पहचान की जाती है, ताकि उपयुक्त अनुलग्न का चयन हो सके। क्रियात्मक समूह की स्थिति दर्शाने के लिए दीर्घतम शृंखला का क्रमांकन उस छोर से करते हैं, ताकि उस कार्बन जिससे क्रियात्मक समूह बंधित है को न्यूनतम अंक मिले। सारणी 2.4 में दिए गए अनुलग्न का उपयोग करके यौगिक का नाम प्राप्त कर लिया जाता है।

बहुक्रियात्मक समूह वाले यौगिकों में उनमें से एक क्रियात्मक समूह को मुख्य क्रियात्मक समूह मान लिया जाता है और उस आधार पर यौगिक का नाम दिया जाता है। उचित पूर्वलग्नों का उपयोग करके बचे हुए क्रियात्मक समूहों को प्रतिस्थापी के रूप में नाम दिया जाता है। मुख्य क्रियात्मक समूह

सारणी 12.4 कुछ क्रियात्मक समूह तथा कार्बनिक यौगिकों के वर्ग

यौगिक का वर्ग	क्रियात्मक समूह की संरचना	IUPAC समूह पूर्वलग्न	IUPAC अनुलग्न	उदाहरण
ऐल्केन	-	-	-ऐन	ब्यूटेन $CH_3(CH_2)_2CH_3$
ऐल्कीन	$>C=C<$	-	-ईन	ब्यूट-1-ईन $CH_2=CHCH_2CH_3$
ऐल्काइन	$-C\equiv C-$	-	-आइन	ब्यूट-1आइन $CH\equiv CCH_2CH_3$
ऐरीन	-	-	-	बेंजीन
हैलाइड	-X (X=F,Cl,Br,I)	हैलो-	-इल हैलाइड	1-ब्रोमोब्यूटेन $CH_3(CH_2)_2CH_2Br$
ऐल्कोहॉल	-OH	हाइड्रॉक्सी-	-ऑल	ब्यूटेन-2-ऑल $CH_3CH_2CHOHCH_3$
एल्डिहाइड	-CHO	फार्मिल या ऑक्सो	-एल	ब्यूटेनल $CH_3(CH_2)_2CHO$
कीटोन	$>C=O$	ऑक्सो	-ओन	ब्यूटेन-2-ऑन $CH_3CH_2COCH_3$
नाइट्राइल	$-C\equiv N$	सायनो	नाइट्राइल	पेंटेन नाइट्राइल $CH_3CH_2CH_2CH_2CN$
ईथर	-R-O-R-	एल्कॉक्सी	-	एथॉक्सीऐथेन $CH_3CH_2OCH_2CH_3$
कार्बोक्सिलिक अम्ल	-COOH	कार्बोक्सी	-ओइक अम्ल	ब्यूटेनोइक अम्ल $CH_3(CH_2)_2CO_2H$
कार्बोक्सिलेट आयन	$-COO^-$	-	-ओएट	सोडियम ब्यूटेनोएट $CH_3(CH_2)_2CO_2^- Na^+$
ऐस्टर	-COOR	एल्कसीकार्बोनिल	-ओएट	मिथइल प्रोपेनोएट $H_3CCH_2COOCH_3$
ऐसिल हैलाइड	-COX (X=F,Cl,Br,I)	हैलोकार्बोनिल	-ऑयल हैलाइड	ब्यूटेनॉयल क्लोराइड $CH_3(CH_2)_2COCl$
ऐमीन	$-NH_2$, >NH, >N-	एमीनो	-एमाइन	2-ब्यूटेनेमीन $CH_3CHNH_2CH_2CH_3$
ऐमाइड	$-CONH_2$, -CONHR, $-CONR_2$	कार्बाइल	-एमाइड	ब्यूटेनेमाइड $CH_3(CH_2)_2CONH_2$
नाइट्रो	$-NO_2$	नाइट्रो	–	1-नाइट्रोब्यूटेन $CH_3(CH_2)_3NO_2$

का चयन प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है। कुछ क्रियात्मक समूहों का घटता हुआ प्राथमिकता क्रम इस प्रकार है– –COOH, $-SO_3H$, –COOR (R = ऐल्किल समूह), –COCl, $-CONH_2$, –CN, –HC = O, >C = O, –OH, $-NH_2$, >C = C<, –C ≡ C–

R, C_6H_5–, हैलोजेन (F, Cl, Br, I), NO_2, ऐल्कॉक्सी (OR) आदि को हमेशा प्रतिस्थापी पूर्वलग्न के रूप में लिखा जाता है। अतः यदि किसी यौगिक में ऐल्कोहॉल और कीटो समूह–दोनों हों, तो उसे 'हाइड्रोक्सीएल्केनोन' नाम ही दिया जाएगा, क्योंकि हाइड्रॉक्सी समूह की अपेक्षा कीटो समूह को उच्च प्राथमिकता प्राप्त है।

उदाहरणार्थ–HO CH_2 $(CH_2)_3$ CH_2 CO CH_3 का नाम 7- हाइड्रॉक्सीहेप्टेन-2-ओन होगा, न कि 2-ओक्सोहेप्टेन-7-ऑल हैं। इसी प्रकार Br CH_2 CH = CH_2 का सही नाम 3-ब्रोमोप्रोप -1-ईन है, न कि 1-ब्रोमोप्रोप -2-ईन।

यदि एक ही प्रकार के क्रियात्मक समूहों की संख्या एक से अधिक हो, तो उनकी संख्या दर्शाने के लिए उपयुक्त पूर्वलग्न, डाइ, ट्राई आदि वर्ग-अनुलग्न के पूर्व लिखा जाता है। ऐसे में वर्ग-अनुलग्न के पूर्व मूल ऐल्केन का पूर्ण नाम लिखते हैं। उदाहरणार्थ-CH_2(OH) CH_2(OH) का नाम एथेन-1, 2 डाइऑल है, परंतु एक से अधिक द्विआबंध या त्रिआबंध होने पर ऐल्केन का 'न' प्रयुक्त नहीं किया जाता है। जैसे–CH_2 = CH – CH = CH_2 का नाम ब्यूटा -1, 3- डाइईन है।

उदाहरण 12.8

निम्नलिखित यौगिकों (i-iv) के IUPAC नाम लिखिए–

(i)
$$\overset{1}{CH_3}-\overset{2}{CH_2}-\overset{3}{\underset{OH}{\underset{|}{CH}}}-\overset{4}{CH_2}-\overset{5}{CH_2}-\overset{6}{\underset{CH_3}{\underset{|}{CH}}}-\overset{7}{CH_2}-\overset{8}{CH_3}$$
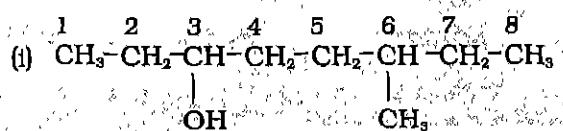
हल

[हाइड्रॉक्सी (OH) क्रियात्मक समूह होने के कारण अनुलग्न ऑल होगा।

दीर्घतम शृंखला में आठ कार्बन हैं। अतः मूल हाइड्रोकार्बन ऑक्टेन है।

OH कार्बन-संख्या 3 पर है। एक अन्य प्रतिस्थापी मेथिल समूह कार्बन -6 पर है। अतः यौगिक का नाम 6-मेथिलऑक्टेन -3- ऑल है।]

(ii)
$$\underset{6}{CH_3}-\underset{5}{CH_2}-\underset{4}{\overset{O}{\overset{\|}{C}}}-\underset{3}{CH_2}-\underset{2}{\overset{O}{\overset{\|}{C}}}-\underset{1}{CH_3}$$
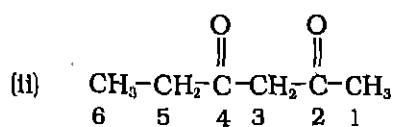
हल

क्रियात्मक समूह कीटोन (> C = O) होने के कारण अनुलग्न 'ओन' होगा। दो कीटो-समूह होने के कारण 'डाइओन' अनुलग्न प्रयुक्त करेंगे। कीटो समूहों की स्थितियाँ 2 और 4 हैं। दीर्घतम शृंखला में 6 कार्बन परमाणु होने के कारण मूल ऐल्केन हेक्सेन है। अतः सही नाम हेक्सेन-2, 4- डाइओन है।]

(iii)
$$\underset{6}{CH_3}-\underset{5}{\overset{O}{\overset{\|}{C}}}-\underset{4}{CH_2}-\underset{3}{CH_2}-\underset{2}{CH_2}-\underset{1}{COOH}$$
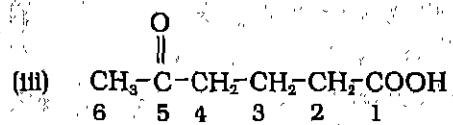
हल

[इसमें दो क्रियात्मक समूह (कीटो तथा कार्बोक्सी) हैं, जिनमें कॉर्बोक्सी-समूह मुख्य क्रियात्मक समूह है। अतः मूल शृंखला में अनुलग्न 'ओइक' अम्ल लगेगा। शृंखला का क्रमांकन उस कार्बन से आरंभ होगा, जिसमें-COOH क्रियात्मक समूह है। कार्बन-संख्या 5 पर स्थित कीटो को 'ऑक्सो' नाम दिया जाता है। दीर्घतम शृंखला, जिसमें क्रियात्मक समूह है, में 6 कार्बन परमाणु हैं। फलतः इसके मूल हाइड्रोकार्बन का नाम 'हैक्सेन' है। अतः यौगिक का नाम 5-ऑक्सोहेक्सोनोइक अम्ल है।]

(iv)
$$\underset{6}{CH}\equiv\underset{5}{C}-\underset{4}{CH}=\underset{3}{CH}-\underset{2}{CH}=\underset{1}{CH_2}$$
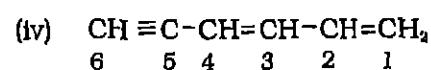
हल

दो क्रियात्मक समूह C=C कार्बन 1 तथा 3 पर हैं, जबकि C≡C समूह-स्थिति कार्बन-संख्या 5 पर है। इसके लिए क्रमशः डाइईन तथा 'आइन' अनुलग्न प्रयुक्त करेंगे। दीर्घतम शृंखला में 6 कार्बन हैं। इसलिए इसका मूल हाइड्रोकार्बन हेक्सेन है। अतः नाम हैक्सा-1, 3-डाइईन-5-आइन होगा।

उदाहरण 12.9

निम्नलिखित की संरचनाएँ लिखिए–

(i) 2-क्लोरोहेक्सेन,

(ii) पेंट-4-ईन-2-ऑल

(iii) 3-नाइट्रोसाइक्लोहेक्सीन,

$$CH_3-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}}-CH_3$$

नीओपेंटेन

(2, 2-डाइमेथिलप्रोपेन)
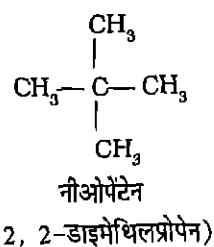
12.6.1 संरचनात्मक समावयवता

यौगिक, जिनके अणुसूत्र समान होते हैं, किंतु संरचना (अर्थात् परमाणुओं का अणु के अंदर परस्पर आबंधित होने का क्रम) भिन्न होती है, उन्हें संरचनात्मक समावयवों में वर्गीकृत किया जाता है। विभिन्न प्रकार की संरचनात्मक समावयवों का उदाहरणसहित वर्णन यहाँ दिया जा रहा है–

(i) **शृंखला समावयवता :** समान अणुसूत्र एवं भिन्न कार्बन ढाँचे वाले दो या दो से अधिक यौगिक शृंखला समावयव बनाते हैं। इस परिघटना को 'शृंखला समावयवता' कहते हैं। उदाहरणार्थ– C_5H_{12} के निम्नलिखित तीन शृंखला समावयव हैं–

$CH_3CH_2CH_2CH_2CH_3$
पेंटेन

$$CH_3-\underset{}{\overset{CH_3}{\overset{|}{C}H}}CH_2CH_3$$

आइसोपेंटेन

(2-मेथिलब्यूटेन)

$$CH_3-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{\underset{|}{\overset{|}{C}}}}-CH_3$$

नीओपेंटेन

(2,2 डाईमेथिलप्रोपेन)
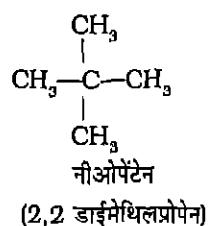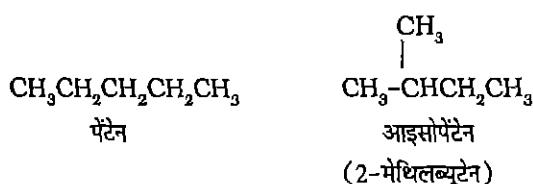
(ii) **स्थिति-समावयवता :** यदि समावयवों में भिन्नता प्रतिस्थापी परमाणु या समूह की स्थिति-भिन्नता के कारण होती है, तो उन्हें 'स्थिति-समावयव' तथा इस परिघटना को 'स्थिति-समावयवता' (Position Isomerism) कहते हैं। उदाहरणार्थ–C_3H_8O अणुसूत्र से निम्नलिखित दो 'स्थिति-समावयव' ऐल्कोहॉल संभव हैं–

$CH_3CH_2CH_2OH$
प्रोपेन -1- ऑल

$$CH_3-\overset{OH}{\overset{|}{C}H}-CH_3$$

प्रोपेन -2- ऑल
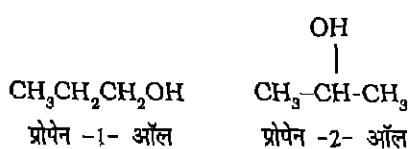
(iii) **क्रियात्मक समूह समावयवता :** यदि दो या दो से अधिक यौगिकों के अणुसूत्र समान हों, परंतु क्रियात्मक समूह भिन्न-भिन्न हों, तो ऐसे समावयवियों को 'क्रियात्मक समूह समावयव' कहते हैं और यह परिघटना 'क्रियात्मक समूह समावयवता' (Functional group isomerism) कहलाती है। उदाहरण के लिए– C_3H_6O अणुसूत्र निम्नलिखित ऐल्डिहाइड तथा कीटोन प्रदर्शित करता है–

$$CH_3-\overset{O}{\overset{||}{C}}-CH_3$$

प्रोपेनोन

$$CH_3-CH_2-\overset{H}{\overset{|}{C}}=O$$

प्रोपेनैल
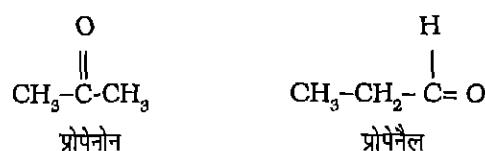
(iv) **मध्यावयवता :** क्रियात्मक समूह से लगी भिन्न ऐल्किल शृंखलाओं के कारण यह समावयवता उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ– $C_4H_{10}O$ मध्यावयवी मेथॉक्सीप्रोपेन (CH_3–O–C_3H_7) और एथॉक्सीएथेन (C_2H_5–O–C_2H_5) प्रदर्शित करता है।

12.6.2 त्रिविम समावयवता

त्रिविम समावयव वे यौगिक हैं, जिनमें संरचना एवं परमाणुओं के आबंधन का क्रम तो समान रहता है, परंतु उनके अणुओं में परमाणुओं अथवा समूहों की त्रिविम स्थितियाँ भिन्न रहती हैं। यह विशिष्ट प्रकार की समावयवता 'त्रिविम समावयवता' (Stereoisomerism) कहलाती है। इसे **ज्यामितीय** एवं **प्रकाशीय समावयवता** में वर्गीकृत किया जाता है।

12.7 कार्बनिक अभिक्रियाओं की क्रियाविधि में मूलभूत संकल्पनाएँ

किसी कार्बनिक अभिक्रिया में कार्बनिक अणु (जो 'क्रियाधारक' भी कहलाता है) किसी उचित अभिकर्मक से अभिक्रिया करके पहले एक या अधिक मध्यवर्ती और अंत में एक या अधिक उत्पाद देता है।

एक सामान्य अभिक्रिया को इस रूप में प्रदर्शित किया जाता है–

$$\underset{\text{(क्रियाधारक)}}{\text{कार्बनिक अणु}} \xrightarrow[\text{अभिकर्मक}]{\text{आक्रमणकारी}} [\text{मध्यवर्ती}] \rightarrow \text{उत्पाद}$$

↓ उप-उत्पाद
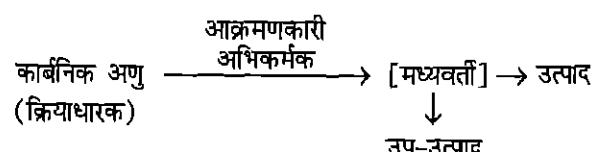
नए आबंध में कार्बन की आपूर्ति करनेवाला 'अभिकारक क्रियाधारक' (substrate) और दूसरा 'अभिकारक अभिकर्मक'

(reagent) कहलाता है। यदि दोनों अभिकारक नए आबंध में कार्बन की आपूर्ति करते हैं, तो यह चयन किसी भी तरीके से किया जा सकता है। इस स्थिति में मुख्य अणु 'क्रियाधारक' कहलाता है।

ऐसी अभिक्रिया में दो कार्बन परमाणुओं अथवा एक कार्बन और एक अन्य परमाणु के बीच सहसंयोजक आबंध टूटकर एक नया आबंध बनता है। **किसी अभिक्रिया में इलेक्ट्रॉनों का संचलन, आबंध-विदलन और आबंध-निर्माण के समय की ऊर्जिकी तथा उत्पाद बनने के समय की विस्तृत जानकारी और क्रमबद्ध अध्ययन उस अभिक्रिया की क्रियाविधि (Mechanism) कहलाती है।** क्रियाविधि की सहायता से यौगिकों की क्रियाशीलता को समझने में तथा नवीन कार्बनिक यौगिकों के संश्लेषण की रूपरेखा तैयार करने में सहायता मिलती है।

निम्नलिखित भागों में इन अभिक्रियाओं से संबंधित अवधारणाओं की व्याख्या की गई है।

12.7.1 सहसंयोजक आबंध का विदलन

सहसंयोजक आबंध का विदलन (cleavage) दो प्रकार से संभव है– (i) विषमांश विदलन तथा (ii) समांश विदलन।

विषमांश विदलन में विदलित होने वाले आबंध के दोनों इलेक्ट्रॉन उनमें से किसी एक परमाणु पर चले जाते हैं, जो अभिकारक से आबंधित थे।

विषमांशन के पश्चात् एक परमाणु पर षष्टक तथा धनावेश होता है और दूसरे का पूर्ण अष्टक एवं कम से कम एक एकाकी युग्म तथा ऋणावेश होता है। अत: ब्रोमोमेथैन के विषमांश-विदलन से $^{+}CH_3$ तथा Br^- प्राप्त होता है।

$$H_3C-Br \longrightarrow H_3\overset{+}{C} + \overset{-}{Br}$$
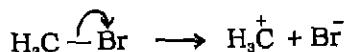
धनावेशित स्पीशीज़, जिसमें कार्बन पर षष्टक होता है, 'कार्बधनायन' कहलाती है (इसे पहले 'कार्बोनियम आयन' कहा जाता था)। $^{+}CH_3$ आयन को 'मेथिल धनायन' अथवा 'मेथिल कार्बोनियम आयन' कहते हैं। धनावेशित कार्बन के साथ बंधित कार्बन परमाणुओं की संख्या के आधार पर कार्बधनायनों को प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक में वर्गीकृत किया जा सकता है। कार्बधनायनों के कुछ उदाहरण हैं– $CH_3\overset{+}{C}H_2$ (एथिल धनायन–एक प्राथमिक कार्बधनायन), $(CH_3)_2\overset{+}{C}H$ आइसोप्रोपिल धनायन (एक द्वितीयक कार्बधनायन) एवं $(CH_3)_3\overset{+}{C}$ (ब्यूटिल धनायन–एक तृतीयक कार्बधनायन)। कार्बधनायन अत्यधिक अस्थायी तथा क्रियाशील स्पीशीज़ हैं। धनावेशित कार्बन के साथ आबंधित ऐल्किल समूह कार्बधनायन के स्थायित्व में प्रेरणिक प्रभाव और अतिसंयुग्मन द्वारा वृद्धि करते हैं, जिसके विषय में आप भाग 12.7.5 और 12.7.9 में अध्ययन करेंगे। कार्बधनायन के स्थायित्व का क्रम इस प्रकार है– $^{+}CH_3 < CH_3\overset{+}{C}H_2 < (CH_3)_2\overset{+}{C}H < (CH_3)_3\overset{+}{C}$। इन कार्बधनायनों की आकृति त्रिफलकीय समतल होती है, जिसमें धनावेशित कार्बन की संकरण-अवस्था sp^2 होती है। अतः $\overset{+}{C}H_3$ में कार्बन के तीन (sp^2) संकरित कक्षक हाइड्रोजन के 1s कक्षकों के साथ अतिव्यापित होकर $C(sp^2)$ –H (1s) सिग्मा आबंध बनाते हैं। असंकरित कार्बन कक्षक इस तल के लंबवत रहता है। इसमें कोई इलेक्ट्रॉन नहीं होता (चित्र 12.3)।
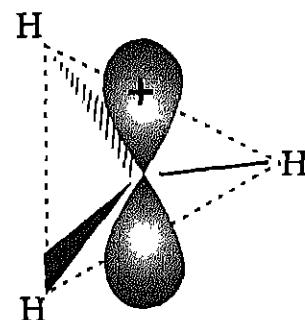
चित्र 12.3 मेथिल धनायन की आकृति

विषमांश विदलन से ऐसी स्पीशीज निर्मित हो सकती है, जिसमें कार्बन को सहभाजित इलेक्ट्रॉन युग्म प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ–जब कार्बन से आबंधित Z समूह बिना इलेक्ट्रॉन युग्म लिये पृथक् होता है, तब मेथिल ऋणायन $[H_3C^{-}:]$ बनता है।

$$CH_3-Z \longrightarrow H_3\overset{-}{C}: + \overset{+}{Z}$$

ऐसी स्पीशीज़, जिसमें कार्बन पर ऋणावेश होता है, कार्बऋणायन (Carbanion) कहलाती है। कार्बऋणायन भी अस्थायी और क्रियाशील स्पीशीज़ होती हैं। ऐसी कार्बनिक अभिक्रियाएँ, जिनमें विषमांश विदलन होता है, आयनी अथवा विषम ध्रुवीय अथवा ध्रुवीय अभिक्रियाएँ कहलाती हैं।

समांश विदलन में सहभाजित युग्म का एक-एक इलेक्ट्रॉन उन दोनों परमाणुओं पर चला जाता है, जो अभिकारक में आबंधित होते हैं। अतः समांश विदलन में इलेक्ट्रॉन युग्म के स्थान पर एक ही इलेक्ट्रॉन का संचलन होता है। एक इलेक्ट्रॉन के संचलन को अर्ध-शीर्ष तीर (फिशहुक, fish hook) द्वारा दर्शाते हैं। इस विदलन के फलस्वरूप उदासीन स्पीशीज

(परमाणु अथवा समूह) बनती हैं, जिन्हें 'मुक्त मूलक' (free radicals) कहते हैं। कार्बधनायन एवं कार्बऋणायन की भाँति मुक्त मूलक भी अतिक्रियाशील होते हैं। कुछ समांश विदलन नीचे दिखाए गए हैं–

$$R-X \xrightarrow{\text{ताप एवं प्रकाश}} \dot{R} + \dot{X}$$
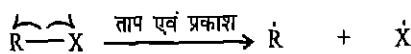
ऐल्किल मुक्त मूलकों को प्राथमिक, द्वितीयक अथवा तृतीयक में वर्गीकृत किया जा सकता है। ऐल्किल मुक्त मूलक प्राथमिक से तृतीयक की ओर बढ़ने पर ऐल्किल मूलक का स्थायित्व बढ़ता है।

$$\dot{C}H_3 < \dot{C}H_2CH_3 < \dot{C}H(CH_3)_2 < \dot{C}(CH_3)_3$$

मेथिल मुक्त मूलक, एथिल मुक्त मूलक, आइसोप्रोपिल मुक्त मूलक, तृतीय क-ब्यूटिल मुक्त मूलक
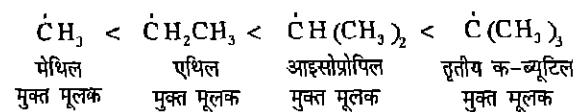
समांश विदलन द्वारा होने वाली कार्बनिक अभिक्रियाएँ मुक्त मूलक या समध्रुवीय या अध्रुवीय अभिक्रियाएँ कहलाती हैं।

12.7.2 नाभिकस्नेही और इलेक्ट्रॉनस्नेही

इलेक्ट्रॉन युग्म प्रदान करनेवाला अभिकर्मक 'नाभिकस्नेही' (Nucleophile, Nu:) (अर्थात् नाभिक खोजने वाला) कहलाता है, तथा अभिक्रिया 'नाभिकस्नेही अभिक्रिया' कहलाती है। इलेक्ट्रॉन युग्म ले जानेवाले अभिकर्मक को इलेक्ट्रॉनस्नेही (Electrophile, E^+), अर्थात् 'इलेक्ट्रॉन चाहने वाला' कहते हैं और अभिक्रिया 'इलेक्ट्रॉनस्नेही अभिक्रिया' कहलाती है।

ध्रुवीय कार्बनिक अभिक्रियाओं में क्रियाधारक के इलेक्ट्रॉनस्नेही केंद्र पर नाभिकस्नेही आक्रमण करता है। यह क्रियाधारक का विशिष्ट परमाणु अथवा इलेक्ट्रॉन न्यून भाग होता है। इसी प्रकार क्रियाधारकों के इलेक्ट्रॉनधनी नाभिकस्नेही केंद्र पर इलेक्ट्रॉनस्नेही आक्रमण करता है। अतः आबंधन अन्योन्य क्रिया के फलस्वरूप इलेक्ट्रॉनस्नेही नाभिकस्नेही से इलेक्ट्रॉन-युग्म प्राप्त करता है। नाभिकस्नेही से इलेक्ट्रॉनस्नेही की ओर इलेक्ट्रॉनों का संचलन वक्र तीर द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। हाइड्रॉक्साइड (OH^-), सायनाइड आयन (NC^-) तथा कार्बऋणायन (R_3C^-:) कुछ उदाहरण हैं। उदासीन अणु (जैसे– $H_2\ddot{O}:, R_3\ddot{N}:, R_2\ddot{O}:$ आदि) भी एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म की उपस्थिति के कारण नाभिकस्नेही की भाँति कार्य करते हैं। इलेक्ट्रॉनस्नेही के उदाहरणों में कार्बधनायन ($\overset{+}{C}H_3$) और कार्बोनिल समूह (> C = O) अथवा ऐल्किल हैलाइड (R_3 C–X, X = हैलोजेन परमाणु) वाले उदासीन अणु सम्मिलित हैं। कार्बधनायन का कार्बन केवल षष्टक होने के कारण इलेक्ट्रॉन-न्यून होता है तथा नाभिकस्नेही से इलेक्ट्रॉन-युग्म ग्रहण कर सकता है। ऐल्किल हैलाइड का कार्बन आबंध ध्रुवता के कारण इलेक्ट्रॉनस्नेही-केंद्र बन जाता है, जिसपर नाभिकस्नेही आक्रमण कर सकता है।

उदाहरण 12.11

निम्नलिखित अणुओं में सहसंयोजी आबंध के विषमांश विदलन से सक्रिय मध्यवर्ती का निर्माण वक्र तीर की सहायता से प्रदर्शित कीजिए।

(क) $CH_3 - SCH_3$,

(ख) $CH_3 - CN$,

(ग) $CH_3 - Cu$

हल

(क) $CH_3 - SCH_3 \longrightarrow \overset{+}{C}H_3 + \overset{-}{S}CH_3$

(ख) $CH_3 - CN \longrightarrow \overset{+}{C}H_3 + \overset{-}{C}N$

(ग) $CH_3 - Cu \longrightarrow \overset{-}{C}H_3 + \overset{+}{C}u$
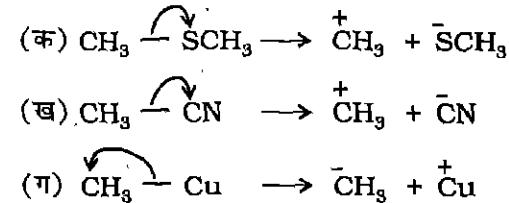
उदाहरण 12.12

कारण स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित को नाभिकस्नेही तथा इलेक्ट्रॉनस्नेही में वर्गीकृत कीजिए–

$HS^-, BF_3, C_2H_5O^-, (CH_3)_3N:,$

$\overset{+}{Cl}, CH_3\overset{+}{C}=O, H_2N^-:, \overset{+}{N}O_2$

हल

नाभिकस्नेही : $HS^-, C_2H_5O^-, (CH_3)_3N:, H_2N^-$;
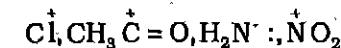
इन स्पीशीज़ पर एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म हैं, जो इलेक्ट्रॉनस्नेही द्वारा प्रदान किए जा सकते हैं।

इलेक्ट्रॉनस्नेही : $BF_3, Cl^+, CH_3\overset{+}{C}=O, \overset{+}{N}O_2$: इनपर इलेक्ट्रॉनों का केवल षष्टक है, जिसके कारण ये नाभिकस्नेही से इलेक्ट्रॉन युग्म ग्रहण कर सकते हैं।

उदाहरण 12.13

निम्नलिखित में इलेक्ट्रॉनस्नेही केंद्र इंगित कीजिए।

$CH_3CH = O, CH_3CN$ एवं CH_3I

हल

तारांकित कार्बन इलेक्ट्रॉनस्नेही केंद्र हैं, क्योंकि आबंध

ध्रुवता के कारण इनपर आंशिक धनावेश उत्पन्न हो जाता है।

$$CH_3\dot{C}H=O, H_3C\dot{C}\equiv N \text{ एवं } H_3\dot{C}-I$$
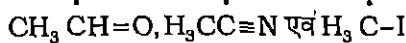
12.7.3 कार्बनिक अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉन संचलन

कार्बनिक अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉनों का संचलन (Movement) मुड़े हुए तीरों (Curved Anows) द्वारा दर्शाया जा सकता है। अभिक्रिया में इलेक्ट्रॉनों के पुनर्वितरण के कारण होने वाले आबंधन परिवर्तनों को यह दर्शाता है। इलेक्ट्रॉन युग्म की स्थिति में परिवर्तन को दिखाने के लिए तीर उस इलेक्ट्रॉनयुग्म से आरंभ होता है, जो अभिक्रिया में उस स्थिति से संचलन कर रहा है। जहाँ यह युग्म संचलित हो जाता है, वहाँ तीर का अंत होता है।

इलेक्ट्रॉनयुग्म के विस्थापन इस प्रकार होते हैं–
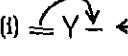
(i) $=Y\ddot{-} \longleftrightarrow -Y=$ π आबंध से निकटवर्ती आबंध स्थिति पर
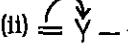
(ii) $=\ddot{Y}- \longleftrightarrow -\ddot{Y}-$ π आबंध से निकटवर्ती परमाणु पर
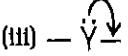
(iii) $-\ddot{Y}\ddot{-} \longleftrightarrow -Y=$ परमाणु से निकटवर्ती आबंध स्थिति पर

एक इलेक्ट्रॉन के संचलन को अर्ध-शीर्ष तीर (Single Barbed Half Headed) 'फिश हुक' द्वारा दर्शाया जाता है। उदाहरणार्थ–हाइड्रॉक्साइड से एथेनॉल प्राप्त होने में और क्लोरो-मेथैन के विघटन में मुड़े तीरों का उपयोग करके इलेक्ट्रॉन के संचलन को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

$$H\ddot{\underset{..}{O}}:^- + CH_3-\ddot{\underset{..}{Br}}: \longrightarrow CH_3OH + :\ddot{\underset{..}{Br}}:^-$$

$$CH_3-Cl \longrightarrow \dot{C}H_3 + \dot{C}l$$
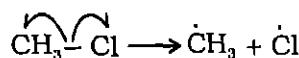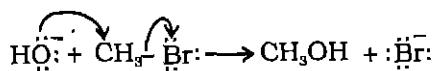
12.7.4 सहसंयोजी आबंधों में इलेक्ट्रॉन विस्थापन के प्रभाव

कार्बनिक अणु में इलेक्ट्रॉन का विस्थापन या तो परमाणु से प्रभावित तलस्थ अवस्था अथवा प्रतिस्थापी समूह अथवा उपयुक्त आक्रमणकारी अभिकर्मक की उपस्थिति में हो सकता है। किसी अणु में किसी परमाणु अथवा प्रतिस्थापी समूह के प्रभाव से इलेक्ट्रॉन का स्थानांतरण आबंध में स्थायी ध्रुवणता उत्पन्न करता है। प्रेरणिक प्रभाव (Inductive effect) एवं अनुनाद प्रभाव (Resonance effect) इस प्रकार के इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण के उदाहरण हैं। अभिकर्मक की उपस्थिति में किसी अणु में उत्पन्न अस्थायी इलेक्ट्रॉन-प्रभाव को हम ध्रुवणता-प्रभाव भी कहते हैं। इस प्रकार के इलेक्ट्रॉन स्थानांतरण को 'इलेक्ट्रोमेरी प्रभाव' कहते हैं। हम निम्नलिखित खंडों में इन इलेक्ट्रॉन स्थानांतरणों का अध्ययन करेंगे।

12.7.5 प्रेरणिक प्रभाव

भिन्न विद्युत्-ऋणात्मकता के दो परमाणुओं के मध्य निर्मित सहसंयोजक आबंध में इलेक्ट्रॉन असमान रूप से सहभाजित होते हैं। इलेक्ट्रॉन घनत्व उच्च विद्युत् ऋणात्मकता के परमाणु की ओर अधिक होता है। इस कारण सहसंयोजक आबंध ध्रुवीय हो जाता है। आबंध ध्रुवता के कारण कार्बनिक अणुओं में विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ–क्लोरोएथेन (CH_3CH_2Cl) में C–Cl बंध ध्रुवीय है। इसकी ध्रुवता के कारण कार्बन क्रमांक–1 पर आंशिक धनावेश (δ^+) तथा क्लोरीन पर आंशिक ऋणावेश (δ^-) उत्पन्न हो जाता है। आंशिक आवेशों को दर्शाने के लिए δ (डेल्टा) चिह्न प्रयुक्त करते हैं। आबंध में इलेक्ट्रॉन-विस्थापन दर्शाने के लिए तीर (→) का उपयोग किया जाता है, जो δ^+ से δ^- की ओर आमुख होता है।

$$\underset{2}{\overset{\delta\delta^+}{CH_3}} \longrightarrow \underset{1}{\overset{\delta^+}{CH_2}} \longrightarrow \overset{\delta^-}{Cl}$$
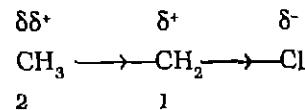
कार्बन–1 अपने आंशिक धनावेश के कारण पास के C–C आबंध के इलेक्ट्रॉनों को अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। फलस्वरूप कार्बन–2 पर भी कुछ धनावेश ($\delta\delta^+$) उत्पन्न हो जाता है। C–1 पर स्थित धनावेश की तुलना में $\delta\delta^+$ अपेक्षाकृत कम धनावेश दर्शाता है। दूसरे शब्दों में, C–Cl की ध्रुवता के कारण पास के आबंध में ध्रुवता उत्पन्न हो जाती है। समीप के σ आबंध के कारण अगले σ– आबंध के ध्रुवीय होने की प्रक्रिया **प्रेरणिक प्रभाव** (Inductive Effect) कहलाती है। यह प्रभाव आगे के आबंधों तक भी जाता है, लेकिन आबंधों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ यह प्रभाव कम होता जाता है और तीन आबंधों के बाद लगभग लुप्त हो जाता है। प्रेरणिक प्रभाव का संबंध प्रतिस्थापी से बंधित कार्बन परमाणु को इलेक्ट्रॉन प्रदान करने अथवा अपनी ओर आकर्षित कर लेने की योग्यता से है। इस योग्यता के आधार पर प्रतिस्थापियों को हाइड्रोजन के सापेक्ष इलेक्ट्रॉन-आकर्षी (Electron-withdrawing) या इलेक्ट्रॉनदाता समूह के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। हैलोजेन तथा कुछ अन्य समूह, जैसे–नाइट्रो

($-NO_2$), सायनो (-CN), कार्बोक्सी (-COOH), एस्टर (-COOR) ऐरिलॉक्सी (-OAr) इलेक्ट्रॉन-आकर्षी समूह हैं, जबकि ऐल्किल समूह, जैसे- मेथिल (CH_3), एथिल ($-CH_2-CH_3$) आदि इलेक्ट्रॉनदाता-समूह हैं।

उदाहरण 12.14

इन युग्मों में कौन-सा आबंध अधिक ध्रुवीय है?

(क) H_3C-H, H_3C-Br

(ख) H_3C-NH_2, H_3C-OH

(ग) H_3C-OH, H_3C-SH

हल

(क) H_3C-Br, क्योंकि H की अपेक्षा Br अधिक विद्युत्ऋणी है।

(ख) C-O,

(ग) C-O

उदाहरण 12.15

$CH_3-CH_2-CH_2-Br$ के किस आबंध में ध्रुवता न्यूनतम होगी?

हल

जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है, वैसे-वैसे प्रेरणिक प्रभाव की तीव्रता कम होती जाती है। इसलिए कार्बन 3 एवं हैलोजेन आबंध के मध्य ध्रुवता सबसे कम होगी।

12.7.6 अनुनाद-संरचना

ऐसे अनेक कार्बनिक यौगिक हैं, जिनका व्यवहार केवल एक लूइस संरचना के द्वारा नहीं समझाया जा सकता है। इसका एक उदाहरण बेंज़ीन है। एकांतर C–C तथा C=C आबंधयुक्त बेंज़ीन की चक्रीय संरचना इसके विशिष्ट गुणों की व्याख्या करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

उपर्युक्त निरूपण के अनुसार, बेंज़ीन में एकल C–C तथा C=C द्विआबंधों के कारण दो भिन्न आबंध लंबाइयाँ होनी चाहिए, लेकिन प्रयोगात्मक निर्धारण से यह पता चला कि बेंज़ीन में समान C – C समान आबंध लंबाई 139pm है, जो एकल C–C आबंध (154pm) और द्विआबंध (C = C) का मध्यवर्ती मान है। अत: बेंज़ीन की संरचना उपर्युक्त संरचना द्वारा प्रदर्शित नहीं की जा सकती। बेंज़ीन को निम्नलिखित I तथा II समान ऊर्जा-संरचनाओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

I ⟷ II
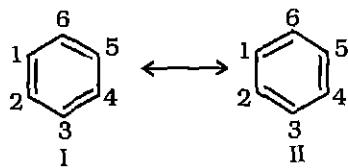
अत: अनुनाद सिद्धांत (एकक 4) के अनुसार बेंज़ीन की वास्तविक संरचना को उपरोक्त दोनों में से किसी एक संरचना द्वारा हम पूर्ण रूप से प्रदर्शित नहीं कर सकते। वास्तविक तौर पर यह दो संरचनाओं (I तथा II) की संकर (Hybrid) होती है, जिन्हें 'अनुनाद-संरचनाएँ' (Resonance Structures) कहते हैं। **अनुनाद-संरचनाएँ (केनोनिकल संरचना या योगवान करनेवाली संरचना) काल्पनिक हैं। ये वास्तविक संरचना का प्रतिनिधित्व अकेले नहीं कर सकती हैं। ये अपने स्थायित्व-अनुपात के आधार पर वास्तविक संरचना में योगवान करती हैं।**

अनुनाद का एक अन्य उदाहरण नाइट्रोमेथैन में मिलता है, जिसे दो लूइस संरचनाओं (I व II) द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इन संरचनाओं में दो प्रकार के N–O आबंध हैं।

$CH_3-\overset{+}{N}(=\ddot{O}:)(-\ddot{O}:^-)$ (I) ⟷ $CH_3-\overset{+}{N}(-\ddot{O}:^-)(=\ddot{O}:)$ (II)
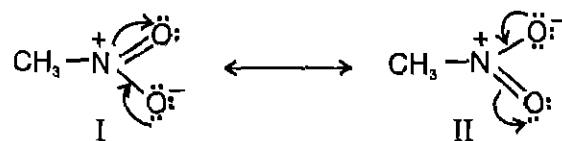
परंतु यह ज्ञात है कि दोनों N–O आबंधों की लंबाइयाँ समान हैं, (जो N–O एकल आबंध तथा N=O द्विआबंध की मध्यवर्ती हैं)। अत: नाइट्रोमेथैन की वास्तविक संरचना दो केनोनिकल रूपों I व II की अनुनाद संकर है।

वास्तविक अणु (अनुनाद संकर) की ऊर्जा किसी भी केनोनिकल संरचना से कम होती है। वास्तविक संरचना तथा न्यूनतम ऊर्जावाली अनुनाद-संरचना की ऊर्जा के अंतर को 'अनुनाद-स्थायीकरण ऊर्जा' (Resonance Stabilisation Energy) या 'अनुनाद ऊर्जा' कहते हैं। अनुनादी संरचनाएँ जितनी अधिक होंगी, उतनी ही अधिक अनुनाद ऊर्जा होगी। समतुल्य ऊर्जा वाली संरचनाओं के लिए अनुनाद विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

अनुनाद-संरचनाओं को लिखते समय निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाता है-

(i) अनुनाद-संरचनाओं में नाभिक की स्थिति समान रहती है।

(ii) अनुनाद संरचनाओं में अयुग्मित इलेक्ट्रॉनों की संख्या समान रहती है।

अनुनाद-संरचनाओं में वह संरचना अधिक स्थायी होती हैं, जिसमें अधिक सहसंयोजी आबंध होते हैं। इसमें सारे परमाणु इलेक्ट्रानों के अष्टक (हाइड्रॉजन परमाणु को छोड़कर, जिसमें दो इलेक्ट्रॉन होते हैं)। विपरीत आवेश का पृथक्करण कम होता है। यदि ऋणात्मक आवेश है, तो अधिक विद्युत्ऋणी तत्त्व पर होता है। धनात्मक आवेश यदि है, तो वह अधिक विद्युत्धनी धनी तत्त्व पर होता है तथा अधिक आवेश प्रसार होता है।

उदाहरण 12.16

CH_3COO^- की अनुनाद-संरचनाएँ लिखें और वक्र तीरों द्वारा इलेक्ट्रॉन का संचलन दर्शाएँ।

हल

सर्वप्रथम संरचना लिखकर उपयुक्त परमाणुओं पर असहभाजित इलेक्ट्रॉन तथा इलेक्ट्रॉन का संचलन तीर द्वारा दर्शाइए।

$$CH_3-C(=\ddot{O}:)(-\ddot{O}:^-) \longleftrightarrow CH_3-C(-\ddot{O}:^-)(=\ddot{O}:)$$
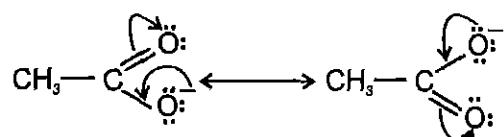
उदाहरण 12.17

$CH_2=CH-CHO$ की अनुनाद-संरचनाएँ लिखें तथा विभिन्न अनुनाद-संरचनाओं के आपेक्षिक स्थायित्व को दर्शाएँ।

हल

$$\underset{I}{CH_2=CH-\overset{:O:}{\overset{\|}{C}}-H} \leftrightarrow \underset{II}{\overset{+}{C}H_2-CH=\overset{:\ddot{O}:^-}{\overset{|}{C}}-H}$$

$$\leftrightarrow \underset{III}{:\overset{-}{C}H_2-CH=\overset{:O:^+}{\overset{|}{C}}-H}$$
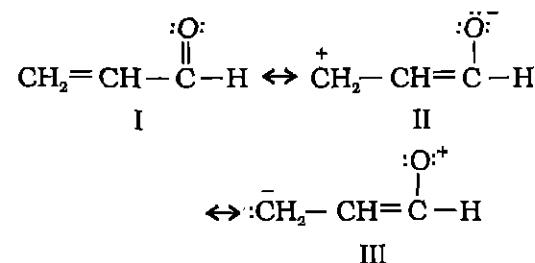
स्थायित्व : I > II > III

I : सर्वाधिक स्थायी है, क्योंकि प्रत्येक कार्बन तथा ऑक्सीजन का अष्टक पूर्ण है तथा कार्बन और ऑक्सीजन पर विपरीत आवेशों का पृथक्करण नहीं है।

II : ऋणावेश अधिक ऋणविद्युती परमाणु पर तथा धनावेश अधिक धनविद्युती परमाणु पर है।

III : न्यूनतम स्थायी है, क्योंकि धनावेश अधिक ऋणविद्युती परमाणु पर उपस्थित है, जबकि अधिक धनविद्युती कार्बन पर ऋणावेश उपस्थित है।

उदाहरण 12.18

निम्नलिखित संरचनाएँ (I तथा II) CH_3COOCH_3 की वास्तविक संरचना में कोई विशेष योगदान क्यों नहीं करती हैं?

$$\underset{I}{CH_3-\underset{+}{\overset{:\ddot{O}:^-}{\overset{|}{C}}}-\ddot{O}-CH_3} \longleftrightarrow \underset{II}{CH_3-\overset{:\ddot{O}:^-}{\overset{|}{C}}=\overset{+}{\ddot{O}}-CH_3}$$
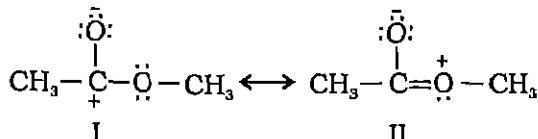
हल

दोनों संरचनाओं का विशेष योगदान नहीं होगा, क्योंकि इनमें विपरीत आवेशों का पृथक्करण है। इसके अतिरिक्त संरचना I में कार्बन का अष्टक पूर्ण नहीं है।

12.7.7 अनुनाद-प्रभाव

दो π-आबंधों की अन्योन्य क्रिया अथवा π-बंध एवं समीप के परमाणु पर उपस्थित एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म के बीच अन्योन्य क्रिया के कारण अणु में उत्पन्न ध्रुवता को 'अनुनाद-प्रभाव' (Resonance Effect) कहा जाता है। यह प्रभाव शृंखला में संचारित होता है। दो प्रकार के अनुनाद अथवा मेसोमेरिक प्रभाव होते हैं, जिन्हें 'R प्रभाव' अथवा 'M प्रभाव' कहा जाता है।

(i) धनात्मक अनुनाद-प्रभाव (+R प्रभाव)

इस प्रभाव में इलेक्ट्रॉन विस्थापन संयुग्मित अणु में बंधित परमाणु यह प्रतिस्थापी समूह से दूर होता है। इस इलेक्ट्रॉन-विस्थापन के कारण अणु में कुछ स्थितियाँ उच्च इलेक्ट्रॉन घनत्व की हो जाती हैं। ऐनिलीन में इस प्रभाव को इस प्रकार दर्शाया जाता है–
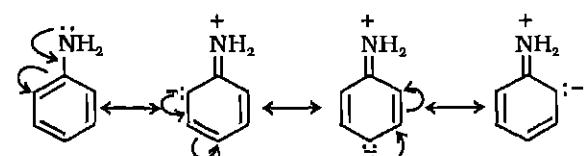
$\ddot{N}H_2$ ⟷ $\overset{+}{N}H_2$ ⟷ $\overset{+}{N}H_2$ ⟷ $\overset{+}{N}H_2$

(ii) ऋणात्मक अनुनाद-प्रभाव (–R प्रभाव)

यह प्रभाव तब प्रदर्शित होता है, जब इलेक्टॉन का विस्थापन संयुग्मित अणु में बंधित परमाणु अथवा प्रतिस्थापी समूह की ओर होता है। उदाहरणार्थ–नाइट्रोबेंज़ीन में इस इलेक्ट्रॉन- विस्थापन को इस प्रकार दर्शाया जाता है–

O N O ⟷ $^-$:Ö: N O ⟷ $^-$:Ö: N O ⟷ $^-$:Ö: N O
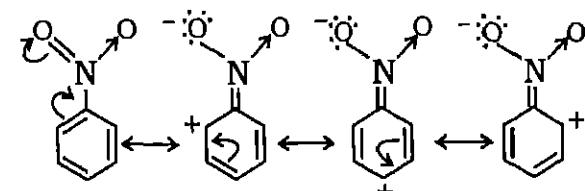
+R अथवा –R इलेक्ट्रॉन विस्थापन प्रभाव दर्शानेवाले परमाणु अथवा प्रतिस्थापी-समूह निम्नलिखित हैं–

+R :- हैलोजेन, OH, OR, OCOR, NH_2, NHR, NR_2, NHCOR

–R :- COOH, –CHO, >C = O, –CN, $-NO_2$

किसी विवृत शृंखला अथवा चक्रीय निकाय में एकांतरी एकल और द्विआबंधों की उपस्थिति को 'संयुग्मित निकाय' कहते हैं। ये बहुधा असामान्य व्यवहार दर्शाते हैं। 1, 3-ब्यूटाडाइईन, ऐनिलीन, नाइट्रोबेंज़ीन इत्यादि इसके उदाहरण हैं। ऐसे निकायों में π- इलेक्ट्रॉन विस्थापित (Delocalised) हो जाते हैं तथा ध्रुवता उत्पन्न होती है।

12.7.8 इलेक्ट्रोमेरी प्रभाव (E प्रभाव)

यह एक अस्थायी प्रभाव है। केवल आक्रमणकारी अभिकारकों की उपस्थिति में यह प्रभाव बहुआबंध (द्विआबंध अथवा त्रिआबंध) वाले कार्बनिक यौगिकों में प्रदर्शित होता है। इस प्रभाव में आक्रमण करनेवाले अभिकारक की माँग के कारण बहु-आबंध से बंधित परमाणुओं में एक सहभाजित π इलेक्ट्रॉन युग्म का पूर्ण विस्थापन होता है। अभिक्रिया की परिधि से आक्रमणकारी अभिकारक को हटाते ही यह प्रभाव शून्य हो जाता है। इसे E द्वारा दर्शाया जाता है, जबकि इलेक्ट्रॉन के संचलन को वक्र तीर (↷) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। स्पष्टत: दो प्रकार के इलेक्ट्रोमेरी प्रभाव होते हैं–

(i) **धनात्मक इलेक्ट्रोमेरी प्रभाव (+E प्रभाव)**: इस प्रभाव में बहुआबंध के π-इलेक्ट्रॉनों का स्थानांतरण उस परमाणु पर होता है, जिससे आक्रमणकारी अभिकर्मक बंधित होता है। उदाहरणार्थ–

$$>C=C< + H^+ \longrightarrow >\overset{+}{C}-\underset{\underset{H}{|}}{C}<$$
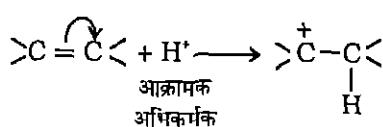
आक्रामक अभिकर्मक

(ii) **ऋणात्मक इलेक्ट्रोमेरी-प्रभाव (–E प्रभाव)**: इस प्रभाव में बहु-आबंध के π-इलेक्ट्रॉनों का स्थानांतरण उस परमाणु पर होता है, जिससे आक्रमणकारी अभिकर्मक बंधित नहीं होता है। इसका उदाहरण यह है–

$$>C=O< + \bar{C}N \longrightarrow >\underset{\underset{CN}{|}}{\overset{+}{C}}-\bar{C}<$$

आक्रामक अभिकर्मक
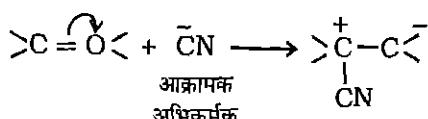
जब प्रेरणिक तथा इलेक्ट्रोमेरी प्रभाव एक-दूसरे की विपरीत दिशाओं में कार्य करते हैं, तब इलेक्ट्रोमेरिक प्रभाव प्रबल होता है।

12.7.9 अतिसंयुग्मन

अतिसंयुग्मन एक सामान्य स्थायीकरण अन्योन्य क्रिया है। इसमें किसी असंतृप्त निकाय के परमाणु से सीधे वांछित ऐल्किल समूह के C–H आबंध अथवा असहभाजित p कक्षक वाले परमाणु के σ इलेक्ट्रॉनों का विस्थानीकरण हो जाता है। ऐल्किल समूह के C-H, आबंध के σ इलेक्ट्रॉन निकटवर्ती असंतृप्त निकाय अथवा असहभाजित p कक्षक के साथ आंशिक संयुग्मन (Partial Conjugation) दर्शाते हैं। अतिसंयुग्मन एक स्थायी प्रभाव है।

अतिसंयुग्मन को समझने के लिए हम $CH_3\overset{+}{C}H_2$ (एथिल धनायन) का उदाहरण लेते हैं, जिसमें धनावेशित कार्बन पर एक रिक्त π कक्षक है। मेथिल समूह का एक C–H आबंध रिक्त π कक्षक के तल के सरेखण में हो जाता है, जिसके कारण C–H आबंध के इलेक्ट्रॉन रिक्त π कक्षक में विस्थानीकृत हो जाते हैं, जैसा चित्र 12.4 (क) में दर्शाया गया है।
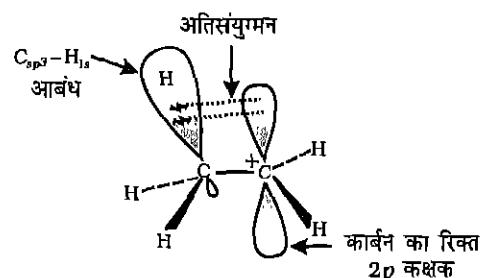
चित्र 12.4 (क) एथिल धनायन में अतिसंयुग्मन दर्शाता कक्षक आरेख

इस प्रकार के अतिव्यापन से कार्बधनायन का स्थायित्व बढ़ जाता है, क्योंकि निकटवर्ती σ आबंध धनावेश के विस्थानीकरण में सहायता करता है।

$$H-\underset{H}{\overset{H}{C}}-\underset{H}{\overset{H}{C^+}} \longleftrightarrow H-\underset{H}{C}=\underset{H}{\overset{H}{C}} \; \overset{+}{H} \longleftrightarrow \overset{+}{H}\; \underset{H}{\overset{H}{C}}=\underset{H}{\overset{H}{C}} \longleftrightarrow H-\overset{H}{C}=\underset{H}{\overset{H}{C}}\;H^+$$
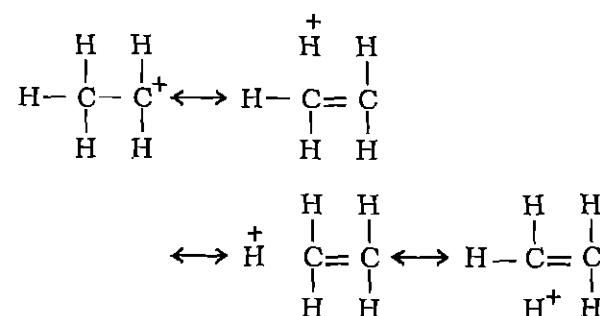
सामान्यतया धनावेशित कार्बन से संयुक्त ऐल्किल समूहों की संख्या बढ़ने पर अतिसंयुग्मन अन्योन्य क्रिया अधिक होती

है, जिसके कारण कार्बधनायन का स्थायित्व बढ़ता है। विभिन्न कार्बधनायन के स्थायित्व का क्रम इस प्रकार है–

$$CH_3-\overset{\overset{CH_3}{|}}{\underset{\underset{CH_3}{|}}{\overset{+}{C}}} > (CH_3)_2\overset{+}{C}H > CH_3\overset{+}{C}H_2 > \overset{+}{C}H_3$$
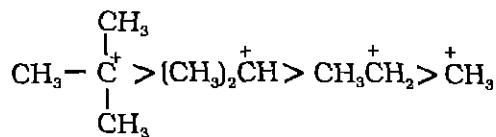
ऐल्कीनों तथा ऐल्किलऐरीनों में भी अतिसंयुग्मन संभव है। ऐल्कीनों में अतिसंयुग्मन द्वारा इलेक्ट्रॉनों का विस्थानीकरण इस चित्र (12.4 ख) में दर्शाया गया है।
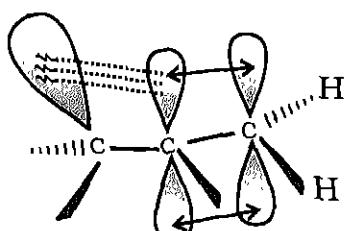
चित्र 12.4 (ख) प्रोपीन में अतिसंयुग्मन का कक्षक चित्र

अतिसंयुग्मन प्रभाव को समझने के कँई तरीके हैं। उनमें से एक तरीके में अनुनाद के कारण C–H आबंध में आंशिक आयनीकरण होना माना गया है।

$$H-\underset{\underset{H}{|}}{\overset{\overset{H}{|}}{C}}-\overset{\overset{H}{|}}{C}=\overset{\overset{H}{|}}{C}-H \longleftrightarrow$$

$$H-\overset{\overset{H}{|}}{C}=\overset{\overset{H}{|}}{C}-\overset{\overset{H}{|}}{\underset{\ddot{-}}{C}}-H \longleftrightarrow \quad H^+$$

$$\overset{+}{H}\quad \underset{\underset{H}{|}}{\overset{\overset{H}{|}}{C}}=\overset{\overset{H}{|}}{C}-\overset{\overset{H}{|}}{\underset{\ddot{-}}{C}}-H \longleftrightarrow$$

$$H-\underset{\underset{H}{|}}{\overset{\overset{+}{H}}{C}}=\overset{\overset{H}{|}}{C}-\overset{\overset{H}{|}}{\underset{\ddot{-}}{C}}-H \longleftrightarrow$$
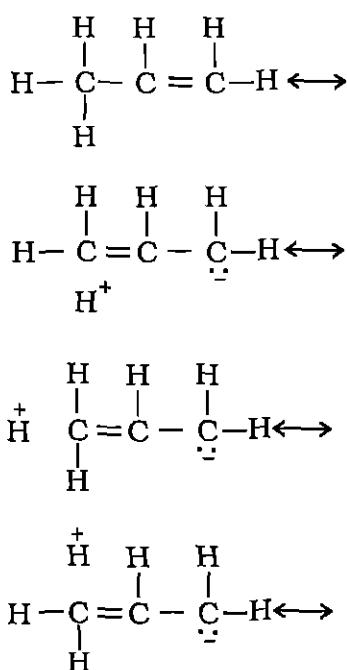
अतिसंयुग्मन आबंधरहित अनुनाद भी कहलाता है।

उदाहरण 12.19

$(CH_3)_3C^+$, $CH_3\overset{+}{C}H_2$ की अपेक्षा अधिक स्थायी क्यों है और $^+CH_3$ का स्थायित्व न्यूनतम क्यों है?

हल

$(CH_3)_3C^+$ में नौ (C–H) बंध होने के कारण उसमें अतिसंयुग्मन अन्योन्य क्रिया की मात्रा $CH_3\overset{+}{C}H_2$ की तुलना में काफी अधिक होती है। $^+CH_3$ में रिक्त p कक्षक C – H आबंध के तल के लंबवत होने के कारण इसके साथ अतिव्यापन नहीं कर सकते हैं। अतः $^+CH_3$ में अतिसंयुग्मन नहीं होता है।

12.7.10 कार्बनिक अभिक्रियाएँ और उनकी क्रियाविधियाँ

कार्बनिक अभिक्रियाओं को निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ
(ii) संकलन अभिक्रियाएँ
(iii) विलोपन अभिक्रियाएँ
(iv) पुनर्विन्यास अभिक्रियाएँ

आप इन अभिक्रियाओं के बारे में इस पुस्तक के एकक-13 एवं कक्षा XII में पढ़ेंगे।

12.8 कार्बनिक यौगिकों के शोधन की विधियाँ

किसी प्राकृतिक स्रोत से निष्कर्षण (Extraction) अथवा प्रयोगशाला में संश्लेषण के पश्चात् कार्बनिक यौगिक का शोधन (Purification) आवश्यक होता है। शोधन के लिए प्रयुक्त विभिन्न विधियों का चुनाव यौगिक की प्रकृति तथा उसमें उपस्थित अशुद्धियों के अनुसार किया जाता है।

शोधन के लिए साधारणतः निम्नलिखित विधियाँ उपयोग में लाई जाती हैं–

(i) ऊर्ध्वपातन (Sublimation)
(ii) क्रिस्टलन (Crystallisation)
(iii) आसवन (Distillation)
(iv) विभेदी निष्कर्षण (Differential Extraction) तथा
(v) वर्णलेखन (क्रोमेटोग्राफी, Chromotography)

अंततः यौगिक का गलनांक अथवा क्वथनांक ज्ञात करके उसकी शुद्धता की जाँच की जाती है। अधिकांश शुद्ध यौगिकों का गलनांक या क्वथनांक सुस्पष्ट, अर्थात् तीक्ष्ण होता है। शुद्धता की जाँच की नवीन विधियाँ विभिन्न प्रकार के वर्णलेखन तथा स्पेक्ट्रमिकी तकनीकों पर आधारित हैं।

12.8.1 ऊर्ध्वपातन

आपने पूर्व में सीखा है कि कुछ ठोस पदार्थ गरम करने पर बिना द्रव अवस्था में आए, वाष्प में परिवर्तित हो जाते हैं। उपरोक्त सिद्धांत पर आधारित शोधन तकनीक को 'ऊर्ध्वपातन' कहते हैं। इसका उपयोग ऊर्ध्वपातनीय यौगिक का दूसरे विशुद्ध यौगिकों (जो ऊर्ध्वपातनीय नहीं होते) से पृथक् करने में होता है।

12.8.2 क्रिस्टलन

यह ठोस कार्बनिक पदार्थों के शोघन की प्रायः प्रयुक्त विधि है। यह विधि कार्बनिक यौगिक तथा अशुद्धि की किसी उपयुक्त विलायक में इनकी विलेयताओं में निहित अंतर पर आधारित होती है। अशुद्ध यौगिक को किसी ऐसे विलायक में घोलते हैं, जिसमें यौगिक सामान्य ताप पर अल्प-विलेय (Sparingly Soluble) होता है, परंतु उच्चतर ताप पर यथेष्ट मात्रा में वह घुल जाता है। तत्पश्चात् विलयन को इतना सांद्रित करते हैं कि वह लगभग संतृप्त (Saturate) हो जाए। विलयन को ठंडा करने पर शुद्ध पदार्थ क्रिस्टलित हो जाता है, जिसे निस्यंदन द्वारा पृथक् कर लेते हैं। निस्यंद (मात्र द्रव) में मुख्य रूप से अशुद्धियाँ तथा यौगिक की अल्प मात्रा रह जाती है। यदि यौगिक किसी एक विलायक में अत्यधिक विलेय तथा किसी अन्य विलायक में अल्प विलेय होता है, तब क्रिस्टलन उचित मात्रा में इन विलायकों की मिश्रण करके किया जाता है। सक्रियित काष्ठ कोयले (Achrated Charcoal) की सहायता से रंगीन अशुद्धियाँ निकाली जाती हैं। यौगिक तथा अशुद्धियों की विलेयताओं में कम अंतर होने की दशा में बार-बार क्रिस्टलन द्वारा शुद्ध यौगिक प्राप्त किया जाता है।

12.8.3 आसवन

इस महत्त्वपूर्ण विधि की सहायता से (i) वाष्पशील (Volatile) द्रवों को अवाष्पशील अशुद्धियों एवं (ii) ऐसे द्रवों, जिनके क्वथनांकों में पर्याप्त अंतर हो, को पृथक् कर सकते हैं। भिन्न क्वथनांकों वाले द्रव भिन्न ताप पर वाष्पित होते हैं। वाष्पों को ठंडा करने से प्राप्त द्रवों को अलग-अलग एकत्र कर लेते हैं। क्लोरोफार्म (क्वथनांक 334K) और ऐनिलीन (क्वथनांक 457K) को आसवन विधि द्वारा आसानी से पृथक् कर सकते हैं (चित्र 12.5)। द्रव-मिश्रण को गोल पेंदे वाले फ्लास्क में लेकर हम सावधानीपूर्वक गरम करते हैं। उबालने पर कम
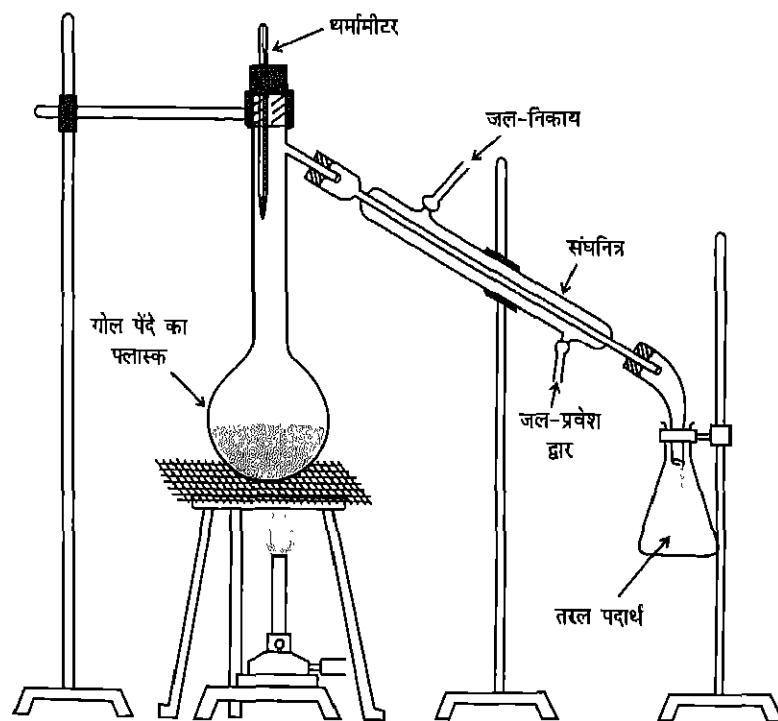
चित्र 12.5 साधारण आसवन। पदार्थ की वाष्प को संघनित कर द्रव के शंक्वाकार फ्लास्क में एकत्र किया जाता है।

क्वथनांक वाले द्रव की वाष्प पहले बनती है। वाष्प को संघनित्र की सहायता से संघनित करके प्राप्त द्रव को ग्राही में एकत्र कर लेते हैं। उच्च क्वथनांक वाले घटक के वाष्प बाद में बनते हैं। इनमें संघनन से प्राप्त द्रव को दूसरे ग्राही में एकत्र कर लेते हैं।

प्रभाजी आसवन : दो द्रवों के क्वथनांकों में पर्याप्त अंतर न होने की दशा में उन्हें साधारण आसवन द्वारा पृथक् नहीं किया जा सकता। ऐसे द्रवों के वाष्प इसी ताप परास में बन जाते हैं तथा साथ-साथ संघनित हो जाते हैं। ऐसी दशा में प्रभाजी आसवन की तकनीक का उपयोग किया जाता है। इस तकनीक में गोल पेंदे वाले फ्लास्क के मुख में लगे हुए प्रभाजी कॉलम से द्रव मिश्रण की वाष्प को प्रवाहित करते हैं (चित्र 12.6)।

उच्चतर क्वथनांक वाले द्रव के वाष्प निम्नतर क्वथनांक वाले द्रव के वाष्प की तुलना में पहले संघनित होती है। इस प्रकार प्रभाजी कॉलम में ऊपर उठने वाले वाष्प में अधिक वाष्पशील पदार्थ की मात्रा अधिक होती जाती है। प्रभाजी कॉलम के शीर्ष तक पहुँचते-पहुँचते वाष्प में मुख्यतः अधिक वाष्पशील अवयव ही रह जाता है। विभिन्न डिज़ाइन एवं आकार के प्रभाजी कॉलम चित्र 12.7 में दिखाए गए हैं। प्रभाजी कॉलम ऊपर उठती वाष्प तथा नीचे गिरते द्रव के बीच ऊष्मा-विनिमय के लिए कई पृष्ठ (Surface) उपलब्ध कराता है। प्रभाजी कॉलम में संघनित द्रव ऊपर उठती वाष्प से ऊष्मा लेकर पुनः वाष्पित हो जाता है। इस प्रकार वाष्प में कम क्वथनांक वाले द्रव की मात्रा बढ़ती जाती है। इस तरह की क्रमिक आसवन श्रेणी के उपरांत निम्नतर क्वथनांक वाले अवयव के शुद्ध वाष्प कॉलम के शीर्ष पर पहुँचते हैं। संघनित्र में संघनित होकर यह शुद्ध द्रव के रूप में ग्राही में एकत्र कर ली जाती है। क्रमिक आसवन श्रेणी के उपरांत आसवन फ्लास्क के शेष द्रव में उच्चतर क्वथनांक वाले द्रव की मात्रा बढ़ती जाती है। प्रत्येक क्रमिक संघनन तथा वाष्पन को **सैद्धांतिक प्लेट (Theoretical Plate)** कहते हैं। व्यापारिक स्तर पर उपयोग के लिए सैकड़ों प्लेटों वाले कॉलम उपलब्ध हैं।

प्रभाजी आसवन का एक तकनीकी उपयोग पेट्रोलियम उद्योग में कच्चे तेल के विभिन्न प्रभाजों को पृथक् करने में किया जाता है।

निम्न दाब पर आसवन : यह विधि उन द्रवों के शोधन के लिए प्रयुक्त की जाती है, जिनके क्वथनांक अति उच्च होते हैं
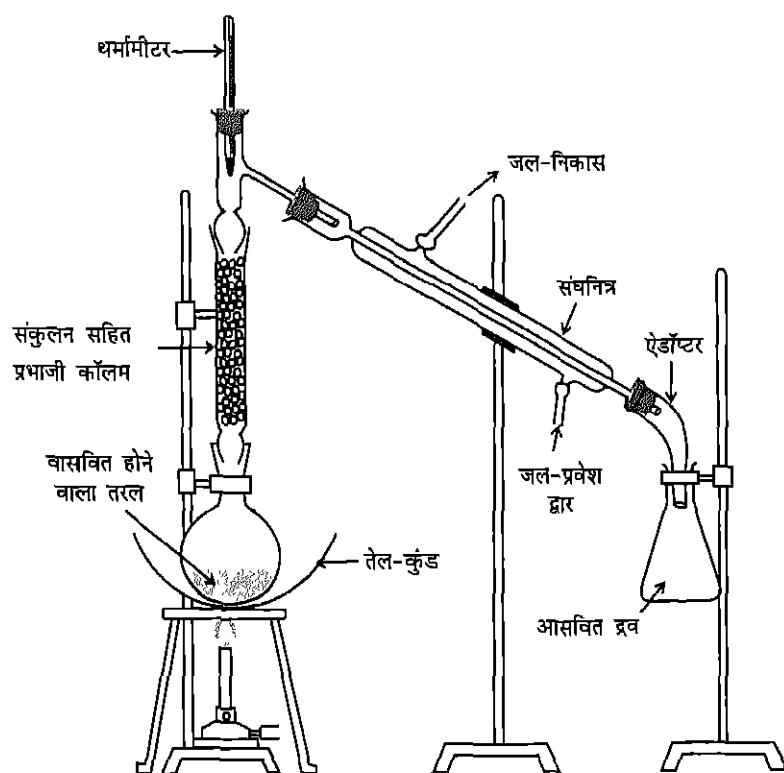
चित्र 12.6 प्रभाजी आसवन निम्न क्वथन प्रभाज की वाष्प कॉलम के शीर्ष तक पहले पहुँचती है। तत्पश्चात् उच्च क्वथन की वाष्प पहुँचती है।
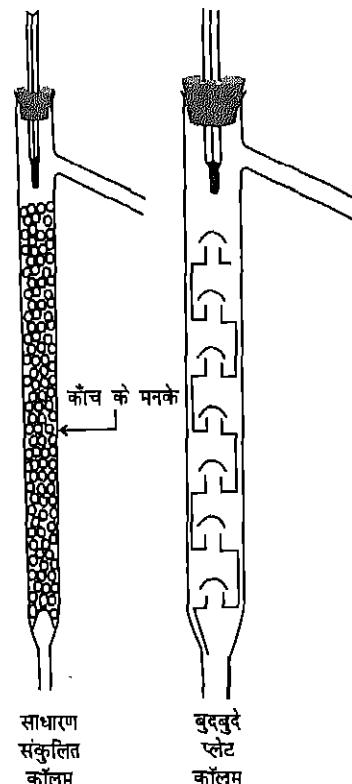
चित्र 12.7 विभिन्न प्रकार के प्रभाजी कॉलम

अथवा जो अपने क्वथनांक या उनसे भी कम ताप पर अपघटित हो जाते हैं। ऐसे द्रवों के पृष्ठ पर दाब कम करके उनके क्वथनांक से कम ताप पर उबाला जाता है। कोई भी द्रव उस ताप पर उबलता है, जिसपर उसका वाष्प दाब बाह्य दाब के समान होता है। दाब कम करने के लिए जल पंप अथवा निर्वात पंप का उपयोग किया जाता है (चित्र 12.8)। साबुन उद्योग में युक्त शेष लाई (Spent Lye) से ग्लिसरॉल पृथक् करने के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है।

भाप आसवन : यह तकनीक उन पदार्थों के शोधन के लिए प्रयुक्त की जाती है, जो भाप वाष्पशील हों, परंतु जल में अमिश्रणीय हों। भाप आसवन में अशुद्ध द्रव को फ्लास्क में गरम करते हुए इसमें भाप प्रवाहित की जाती है। भाप तथा वाष्पशील द्रव का मिश्रण संघनित कर एकत्र कर लिया जाता है। तत्पश्चात् द्रव तथा जल को पृथक्कारी कीप द्वारा पृथक् कर लेते हैं। भाप आसवन में कार्बनिक द्रव (p_1) तथा जल (p_2) के वाष्प दाब का योग वायुमंडलीय दाब (p) के समान होने पर द्रव उबलता है, अर्थात् $p = p_1 + p_2$। चूँकि p_1 का मान p से कम है, अत: द्रव अपने क्वथनांक की अपेक्षा निम्नतर ताप पर ही वाष्पित हो जाता है।

इस प्रकार जल तथा उसमें अविलेय पदार्थ का मिश्रण 373K के पास उससे निम्न ताप पर ही उबल जाता है। प्राप्त होने वाले पदार्थ तथा जल के मिश्रण को पृथक्कारी कीप की सहायता से अलग कर लेते हैं। ऐनिलीन को इस विधि की सहायता से ऐनिलीन जल के मिश्रण में से पृथक् किया जाता है (चित्र 12.9)।

12.8.4 विभेदी निष्कर्षण

इस विधि की सहायता से कार्बनिक यौगिक को उसके जलीय विलयन में से ऐसे कार्बनिक विलायक द्वारा निष्कर्षित किया जाता है, जिसमें कार्बनिक यौगिक की विलेयता जल की अपेक्षा अधिक होती है। जलीय विलयन तथा कार्बनिक विलायक अमिश्रणीय होने चाहिए, ताकि वे दो परत बना सकें, जिन्हें पृथक्कारी कीप द्वारा पृथक् किया जा सके। तत्पश्चात् यौगिक के विलयन में से कार्बनिक विलायक को आसवन द्वारा दूर करके शुद्ध यौगिक प्राप्त कर लिया जाता है। विभेदी निष्कर्षण एक पृथक्कारी कीप में किया जाता है, जैसा चित्र 12.10 में दर्शाया गया है। कार्बनिक विलायक में यौगिक की विलेयता अल्प होने की दशा में इस विधि में विलायक की काफी मात्रा की आवश्यकता पड़ेगी। इस दशा में एक परिष्कृत तकनीक का उपयोग हम करते हैं, जिसे **सतत निष्कर्षण (Continous Extraction)** कहते हैं। इस तकनीक से उसी विलायक का उपयोग बार-बार होता है।

12.8.5 वर्णलेखन (क्रोमेटोग्रैफी)

'वर्णलेखन' (क्रोमेटोग्रैफी) शोधन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तकनीक है, जिसका उपयोग यौगिकों का शोधन करने में, किसी मिश्रण के अवयवों को पृथक् करने तथा यौगिकों की शुद्धता की जाँच करने के लिए विस्तृत रूप से किया जाता है। क्रोमेटोग्रैफी विधि का उपयोग सर्वप्रथम पादपों में पाए जाने वाले रंगीन पदार्थों को पृथक् करने के लिए किया गया था। 'क्रोमेटोग्रैफी' शब्द ग्रीक शब्द 'क्रोमा' (Chroma) से बना है, जिसका अर्थ है 'रंग'। इस तकनीक में सर्वप्रथम यौगिकों के मिश्रण को स्थिर प्रावस्था (Stationary Phase) पर अधिशोषित कर दिया जाता है। स्थिर प्रावस्था ठोस अथवा द्रव हो सकती है। इसके पश्चात् स्थिर प्रावस्था में से उपयुक्त विलायक, विलायकों के मिश्रण अथवा गैस को धीरे-धीरे प्रवाहित किया जाता है। इस प्रकार मिश्रण के अवयव क्रमश: एक-दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। गति करनेवाली प्रावस्था को 'गतिशील प्रावस्था' (Mobile Phase) कहते हैं।

अंतर्ग्रस्त सिद्धांतों के आधार पर वर्णलेखन को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। इनमें से दो हैं–

(क) अधिशोषण-वर्णलेखन (Adsorption Chromatography)

(ख) वितरण-वर्णलेखन (Partition Chromatography)
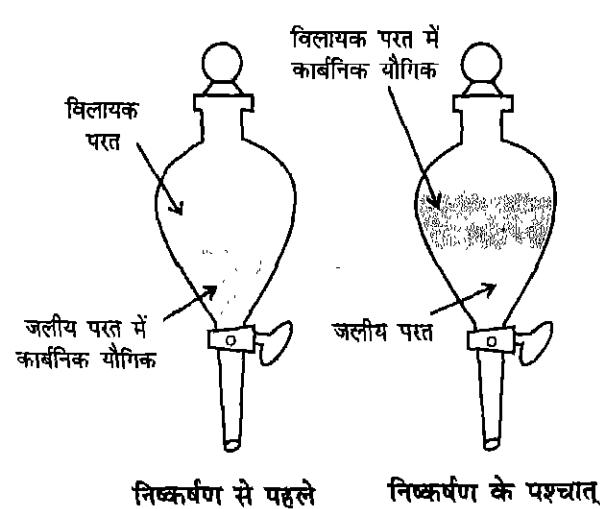
चित्र 12.10 विभेदी निष्कर्षण। अवयवों का पृथक्करण विलेयता में अंतर पर आधारित होता है।
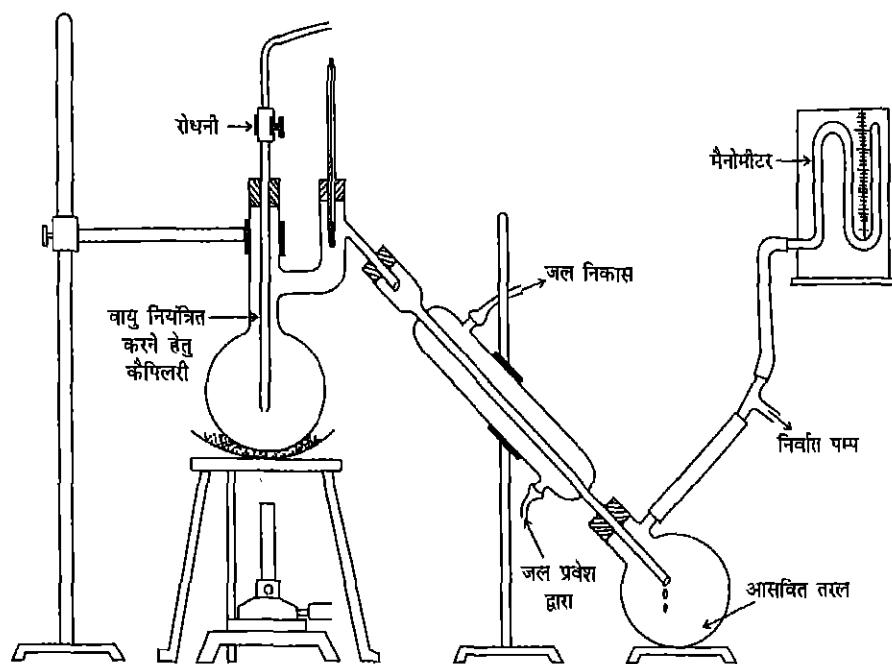
चित्र 12.8 कम दाब पर आसवन। निम्न दाब पर द्रव अपने क्वथनांक की अपेक्षा निम्न ताप पर उबलने लगता है।
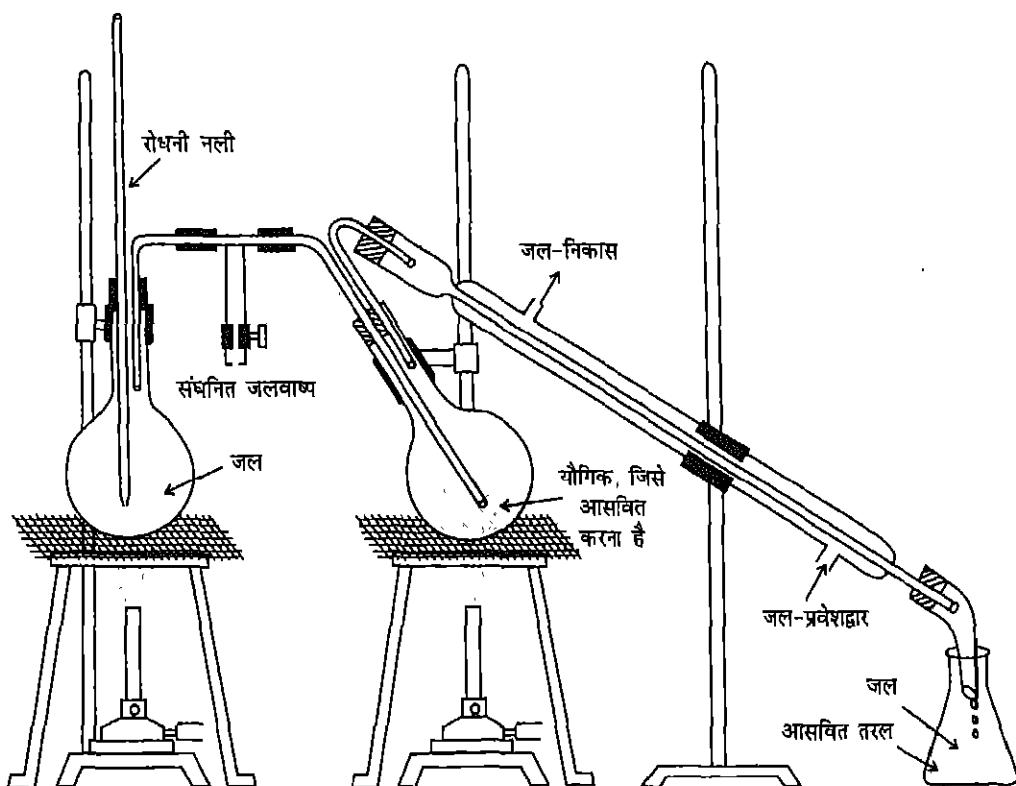
चित्र 12.9 भाप आसवन। भाप वाष्पशील अवयव वाष्पीकृत होकर संघनित्र में संघनित होता है। तब द्रव को शंक्वाकार फ्लास्क में एकत्र कर लिया जाता है।

(क) अधिशोषण-वर्णलेखन : यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि किसी विशिष्ट अधिशोषक (Adsorbent) पर विभिन्न यौगिक भिन्न अंशों में अधिशोषित होते हैं। साधारणत: ऐलुमिना तथा सिलिका जेल अधिशोषक के रूप में प्रयुक्त किए जाते हैं। स्थिर प्रावस्था (अधिशोषक) पर गतिशील प्रावस्था प्रवाहित करने के उपरांत मिश्रण के अवयव स्थिर प्रावस्था पर अलग-अलग दूरी तय करते हैं। निम्नलिखित दो प्रकार की वर्णलेखन-तकनीकें हैं, जो विभेदी-अधिशोषण सिद्धांत पर आधारित हैं-

(क) कॉलम-वर्णलेखन, अर्थात् स्तंभ-वर्णलेखन (Column Chromatography)

(ख) पतली परत वर्णलेखन (Thin Layer Chromatography)

कॉलम वर्णलेखन : इस तकनीक में काँच की एक लंबी नली में अधिशोषक (स्थिर प्रावस्था) भरा जाता है। नली के निचले सिरे पर रोधनी लगी रहती है (चित्र 12.11)। यौगिक के मिश्रण को उपयुक्त विलायक की न्यूनतम मात्रा में घोलकर कॉलम के ऊपरी भाग में अधिशोषित कर देते हैं। तत्पश्चात् एक उपयुक्त निक्षालक (जो द्रव या द्रवों का मिश्रण होता है) को कॉलम में धीमी गति से नीचे की ओर बहने दिया जाता है। विभिन्न यौगिकों के अधिशोषण की मात्रा के आधार पर उनका आंशिक या पूर्ण पृथक्करण हो जाता है। अधिक अधिशोषित यौगिक कॉलम के ऊपर अधिक सरलता से अधिशेष रह जाते हैं, जबकि अन्य यौगिक कॉलम में विभिन्न दूरियों तक नीचे आ जाते हैं (चित्र 12.11)।
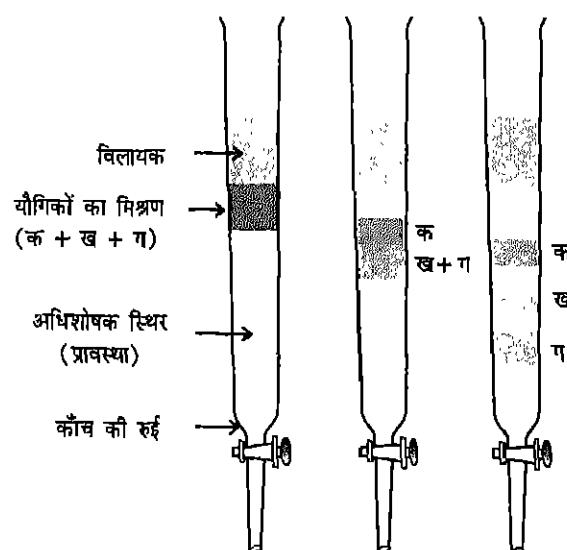
चित्र 12.11 कॉलम क्रोमेटोग्रैफी। किसी मिश्रण के अवयवों के पृथक्करण की विभिन्न स्थितियाँ।

पतली परत वर्णलेखन : पतली परत वर्णलेखन (थिन लेयर क्रोमेटोग्रैफी, टी.एल.सी.) एक अन्य प्रकार का अधिशोषण वर्णलेखन है। इसमें एक अधिशोषक की पतली परत पर मिश्रण के अवयवों का पृथक्करण होता है। इस तकनीक में काँच की उपयुक्त आमाप की प्लेट पर अधिशोषक (सिलिका जेल या ऐलुमिना) की पतली (लगभग 0.2 mm की) परत फैला दी जाती है। इसे 'पतली परत क्रोमेटोग्रैफी प्लेट' कहते हैं। मिश्रण के विलयन का छोटा-सा बिंदु प्लेट के एक सिरे से लगभग 2 cm ऊपर लगाते हैं। प्लेट को अब कुछ ऊँचाई तक विलायक से भरे एक बंद जार में खड़ा कर देते हैं। जिसे चित्र 12.12 (क)। निक्षालक जैसे-जैसे प्लेट पर आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे मिश्रण के अवयव भी निक्षालक के साथ-साथ प्लेट पर आगे बढ़ते हैं, परंतु अधिशोषण की तीव्रता के आधार पर ऊपर बढ़ने की उनकी गति भिन्न होती है। इस कारण वे पृथक् हो जाते हैं। विभिन्न यौगिकों के सापेक्ष अधिशोषण को धारण-गुणक (Retention Factor), अर्थात् R_f मान द्वारा प्रदर्शित किया जाता है (12.12 ख)।

$$R_f = \frac{\text{आधार-रेखा से यौगिक के बढ़ने की दूरी } (x)}{\text{आधार-रेखा से विलायक अग्रांत की दूरी } (y)}$$
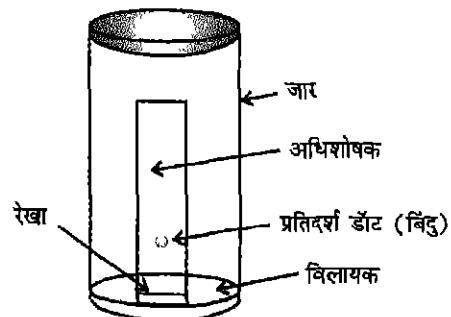
चित्र 12.12 (क) थिन लेयर क्रोमेटोग्रैफी में क्रोमेटोग्राम का विकसित होना।
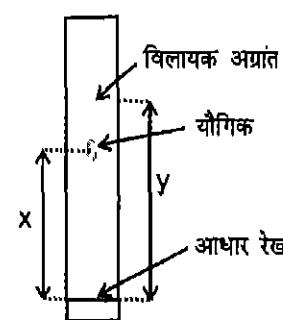
चित्र 12.12 (ख) विकसित क्रोमेटोग्राम

रंगीन यौगिकों के बिंदुओं को प्लेट पर बिना किसी कठिनाई के देखा जा सकता है। परंतु रंगहीन एवं प्रतिदीप्त (Fluoresce) होने वाले यौगिकों के बिंदुओं को प्लेट पर पराबैंगनी प्रकाश के नीचे रखकर देखा जा सकता है। एक अन्य तकनीक में जार में कुछ आयोडीन के क्रिस्टल रखकर भी रंगहीन बिंदुओं को देखा जा सकता है। जो यौगिक आयोडीन अवशोषित करते हैं, उनके बिंदु भूरे दिखाई देने लगते हैं। कभी-कभी उपयुक्त अभिकर्मक के विलयन को प्लेट पर छिड़ककर भी बिंदुओं को देखा जाता है। जैसे–ऐमीनो अम्लों के बिंदुओं को प्लेट पर निनहाइड्रिन विलयन छिड़ककर देखते हैं।

वितरण क्रोमेटोग्रैफी : वितरण क्रोमेटोग्रैफी स्थिर तथा गतिशील प्रावस्थाओं के मध्य मिश्रण के अवयवों के सतत विभेदी वितरण पर आधारित है। कागज़ वर्णलेखन (Paper Chromatography) इसका एक उदाहरण है। इसमें एक विशिष्ट प्रकार का क्रोमेटोग्रैफी कागज़ का इस्तेमाल किया जाता है। इस कागज़ के छिद्रों में जल-अणु पाशित रहते हैं, जो स्थिर प्रावस्था का कार्य करते हैं।

क्रोमेटोग्रैफी कागज़ की एक पट्टी (Strip) के आधार पर मिश्रण का बिंदु लगाकर उसे जार में लटका देते हैं (चित्र 12.13)। जार में कुछ ऊँचाई तक उपयुक्त विलायक अथवा विलायकों का मिश्रण भरा होता है, जो गतिशील प्रावस्था का कार्य करता है। केशिका क्रिया के कारण पेपर की पट्टी पर विलायक ऊपर की ओर बढ़ता है तथा बिंदु पर प्रवाहित होता है। विभिन्न यौगिकों का दो प्रावस्थाओं में वितरण भिन्न-भिन्न होने के कारण वे अलग-अलग दूरियों तक आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार विकसित पट्टी को 'क्रोमेटोग्राम' (Chromatogram) कहते हैं। पतली परत की भाँति पेपर की पट्टी पर विभिन्न बिंदुओं की स्थितियों को या तो पराबैंगनी प्रकाश के नीचे रखकर या उपयुक्त अभिकर्मक के विलयन को छिड़ककर हम देख लेते हैं।

12.9 कार्बनिक यौगिकों का गुणात्मक विश्लेषण

कार्बनिक यौगिकों में कार्बन तथा हाइड्रोजन उपस्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर, हैलोजेन तथा फॉस्फोरस भी उपस्थित हो सकते हैं।

12.9.1 कार्बन तथा हाइड्रोजन की पहचान

इसके लिए यौगिक को कॉपर (II) ऑक्साइड के साथ गरम किया जाता है। यौगिक में उपस्थित कार्बन तथा हाइड्रोजन क्रमशः कार्बन डाइऑक्साइड (जो चूने के पानी को दूधिया कर देती है) तथा जल (जो निर्जल कॉपर सल्फेट को नीला कर देता है) में परिवर्तित हो जाते हैं।

$$2H + CuO \xrightarrow{\Delta} Cu + H_2O$$

$$CO_2 + Ca(OH)_2 \rightarrow CaCO_3 + H_2O$$

$$5H_2O + CuSO_4 \rightarrow CuSO_4 \cdot 5H_2O$$

श्वेत नीला
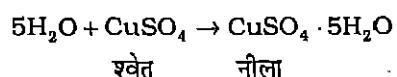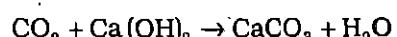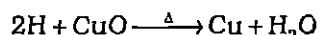
12.9.2 अन्य तत्त्वों की पहचान

किसी कार्बनिक यौगिक में उपस्थित नाइट्रोजन, सल्फर, हैलोजेन तथा फॉस्फ़ोरस की पहचान **'लैसें-परीक्षण' (Lassaigne's Test)** द्वारा की जाती है। यौगिक को सोडियम धातु के साथ संगलित करने पर ये तत्त्व सहसंयोजी रूप से
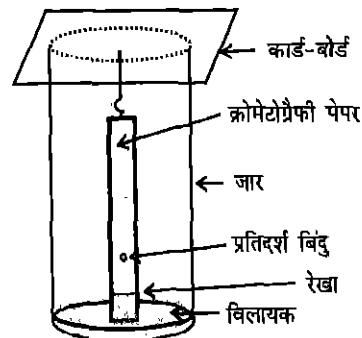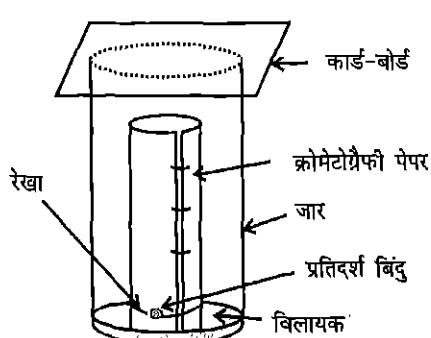
चित्र 12.13 कागज़ क्रोमेटोग्रैफी। दो भिन्न आकृतियों का क्रोमेटोग्रैफी पेपर।

आयनिक रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। इनमें निम्नलिखित अभिक्रियाएँ होती हैं–

$$Na + C + N \xrightarrow{\Delta} NaCN$$

$$2Na + S \xrightarrow{\Delta} Na_2S$$

$$Na + X \xrightarrow{\Delta} NaX$$
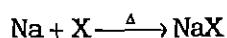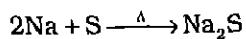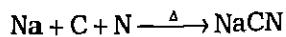
(X = Cl, Br अथवा I)

C, N, S तथा X कार्बनिक यौगिक में उपस्थित तत्त्व हैं। सोडियम संगलन से प्राप्त अवशेष को आसुत जल के साथ उबालने पर सोडियम सायनाइड सल्फाइड तथा हैलाइड जल में घुल जाते हैं। इस निष्कर्ष को 'सोडियम संगलन निष्कर्ष' (Sodium Fusion Extract) कहते हैं।

(क) नाइट्रोजन का परीक्षण

सोडियम संगलन निष्कर्ष को आयरन (II) सल्फेट के साथ उबालकर विलयन को सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा अम्लीकृत किया जाता है। प्रशियन ब्लू (Prussian Blue) रंग का बनना नाइट्रोजन की उपस्थिति निश्चित करता है। सोडियम सायनाइड आयरन (II) सल्फेट के साथ अभिक्रिया करके सोडियम हैक्सासायनोफैरेट (II) बनाता है। सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करने पर कुछ आयरन (II) आयरन (III) में ऑक्सीकृत हो जाता है। यह सोडियम हैक्सासायनोफेरेट (II) के साथ अभिक्रिया करके आयरन (III) हैक्सासायनोफैरेट (II) (फेरिफेरोसायनाइड) बनाता है, जिसका रंग प्रशियन ब्लू होता है।

$$6\,CN^- + Fe^{2+} \rightarrow [Fe(CN)_6]^{4-}$$

$$3[Fe(CN)_6]^{4-} + 4Fe^{3+} \longrightarrow \underset{\text{प्रशियन ब्लू}}{Fe_4[Fe(CN)_6]_3}$$
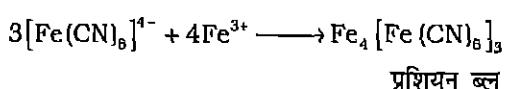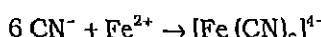
(ख) सल्फर का परीक्षण

(i) सोडियम संगलन निष्कर्ष को ऐसीटिक अम्ल द्वारा अम्लीकृत कर लैड ऐसीटेट मिलाने पर यदि लैड सल्फाइड का काला अवक्षेप बने, तो सल्फर की उपस्थिति की पुष्टि होती है।

$$S^{2-} + Pb^{2+} \rightarrow \underset{\text{काला}}{PbS}$$
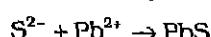
(ii) सोडियम संगलन निष्कर्ष को सोडियम नाइट्रोप्रुसाइड के साथ अभिकृत करने पर बैंगनी रंग का बनना भी सल्फर की उपस्थिति को दर्शाता है।

$$S^{2-} + [Fe(CN)_5NO]^{2-} \rightarrow \underset{\text{बैंगनी}}{[Fe(CN)_5NOS]^{4-}}$$
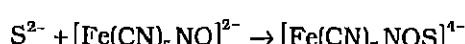
कार्बनिक यौगिक में नाइट्रोजन तथा सल्फर – दोनों ही जब उपस्थित हों, तब सोडियम थायोसायनेट बनता है, जो आयरन (II) सल्फेट के साथ गरम करने पर रक्त की भाँति लाल रंग उत्पन्न करता है। मुक्त सायनाइट आयनों की अनुपस्थिति होने के कारण प्रशियन ब्लू रंग नहीं बनता है।

$$Na + C + N + S \rightarrow NaSCN$$

$$Fe^{3+} + 3CN^- \rightarrow \underset{\text{रक्त की भाँति लाल}}{[Fe(SCN)]^{2+}}$$
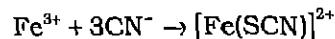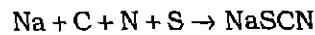
यदि सोडियम की अधिक मात्रा को सोडियम संगलन में लिया जाता है, तो सायनाइड तथा सल्फाइड आयनों में थायोसायनेट अपघटित हो जाता है। ये आयन अपने सामान्य परीक्षण देते हैं।

$$NaSCN + 2Na \rightarrow NaCN + Na_2S$$
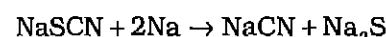
(ग) हैलोजेनों का परीक्षण

सोडियम संगलन निष्कर्ष को नाइट्रिक अम्ल द्वारा अम्लीकृत कर उसमें सिल्वर नाइट्रेट मिलाया जाता है। तब अमोनियम हाइड्रॉक्साइड में विलेय श्वेत अवक्षेप क्लोरीन की उपस्थिति को, अमोनियम हाइड्रॉक्साइड में अल्प-विलेय पीले अवक्षेप ब्रोमीन की उपस्थिति को तथा अमोनियम हाइड्रॉक्साइड में अविलेय पीले अवक्षेप आयोडीन की उपस्थिति को दर्शाता है।

$$X^- + Ag^+ \rightarrow AgX$$
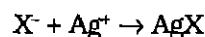
[X = Cl, Br या I]

यौगिक में नाइट्रोजन अथवा सल्फर की उपस्थिति होने की स्थिति में उपर्युक्त परीक्षण के पूर्व सोडियम संगलन निष्कर्ष को नाइट्रिक अम्ल के साथ उबाला जाता है, ताकि सायनाइड अथवा सल्फाइड विघटित हो जाएँ, अन्यथा ये आयन हैलोजेनों के सिल्वर नाइट्रेट परीक्षण में बाधा उत्पन्न करते हैं।

(घ) फ़ॉस्फोरस का परीक्षण

ऑक्सीकारक (सोडियम परॉक्साइड) के साथ गरम करने पर यौगिक में उपस्थित फ़ॉस्फोरस, फॉस्फेट में परिवर्तित हो जाता है। विलयन को नाइट्रिक अम्ल के साथ उबालकर अमोनियम मॉलिब्डेट मिलाने पर पीला रंग अथवा अवक्षेप बनता है, जो फ़ॉस्फोरस की उपस्थिति को निश्चित करता है।

$$Na_3PO_4 + 3HNO_3 \rightarrow H_3PO_4 + 3NaNO_3$$

$$H_3PO_4 + \underset{\text{अमोनियम मॉलिब्डेट}}{12(NH_4)_2MoO_4} + 2HNO_3 \rightarrow$$

$(NH_4)_3.PO_4.12\ MoO_3 + 21NH_4NO_3 + 12H_2O$
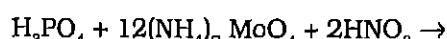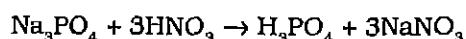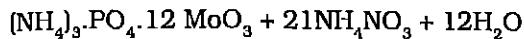
अमोनियम फ़ॉस्फोमॉलिब्डेट

12.10 मात्रात्मक विश्लेषण

कार्बनिक यौगिक में उपस्थित विभिन्न तत्त्वों के प्रतिशत-संयोजन का निर्धारण निम्नलिखित सिद्धांतों पर आधारित विधियों द्वारा किया जाता है।

12.10.1 कार्बन तथा हाइड्रोजन

कार्बन तथा हाइड्रोजन – दोनों तत्त्वों का आकलन एक ही प्रयोग द्वारा किया जाता है। कार्बनिक यौगिक की ज्ञात मात्रा को कॉपर (II) ऑक्साइड तथा ऑक्सीजन के आधिक्य में जलाने पर कार्बन और हाइड्रोजन क्रमश: कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल में ऑक्सीकृत हो जाते हैं।

$$C_xH_y + (x + y/4)O_2 \rightarrow x\,CO_2 + (y/2)\,H_2O$$
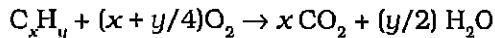
उत्पन्न जल की मात्रा ज्ञात करने के लिए मिश्रण को निर्जल कैल्सियम क्लोराइडयुक्त U नली में से प्रवाहित किया जाता है। इस श्रेणी में जुड़ी दूसरी U नली में सांद्र पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड विलयन लेते हैं, जिसमें कार्बन हाइड्रॉक्साइड अवशोषित होती है (चित्र 12.14)। कैल्सियम क्लोराइड तथा पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड विलेयनों के द्रव्यमानों में वृद्धि से क्रमश: जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड की मात्राएँ ज्ञात हो जाती हैं। इनसे कार्बन तथा हाइड्रोजन की प्रतिशतता की गणना की जा सकती है।

यदि कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान m ग्राम और बननेवाले जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड के द्रव्यमान क्रमश: m_1 तथा m_2 ग्राम हैं।

$$\text{कार्बन का प्रतिशत} = \frac{12 \times m_2 \times 100}{44 \times m}$$

$$\text{हाइड्रोजन का प्रतिशत} = \frac{2 \times m_1 \times 100}{18 \times m}$$

उदाहरण 12.20

0.246 g कार्बनिक यौगिक के पूर्ण दहन के फलस्वरूप 0.198 g कार्बन डाइऑक्साइड तथा 0.1014 g जल प्राप्त होते हैं। यौगिक में कार्बन तथा हाइड्रोजन की प्रतिशतताओं की गणना कीजिए।

हल

$$\text{कार्बन की प्रतिशत-मात्रा} = \frac{12 \times 0.198 \times 100}{44 \times 0.246}$$

$$= 21.95\%$$

$$\text{हाइड्रोजन की प्रतिशत-मात्रा} = \frac{2 \times 0.1014 \times 100}{18 \times 0.246}$$

$$= 4.58\%$$

12.10.2 नाइट्रोजन

नाइट्रोजन के आकलन की दो विधियाँ हैं–

(i) ड्यूमा विधि (Duma Method) तथा

(ii) कैल्डॉल विधि (Kjeldahl's Method)

(i) ड्यूमा विधि : नाइट्रोजनयुक्त कार्बनिक यौगिक को कार्बन डाइऑक्साइड के वातावरण में कॉपर ऑक्साइड के साथ गरम करने पर नाइट्रोजन मुक्त होती है। कार्बन तथा हाइड्रोजन क्रमश: कार्बन डाइऑक्साइड एवं जल में परिवर्तित हो जाते हैं।

$$C_xH_yN_z + [2x + y/2]CuO \rightarrow$$

$$xCO_2 + y/2H_2O + z/2N_2 + (2x + y/2)Cu$$
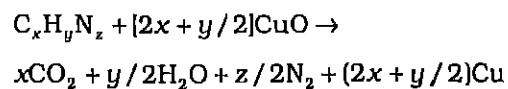
अल्प मात्रा में बने नाइट्रोजन ऑक्साइडों को गरम कॉपर तार पर प्रवाहित कर नाइट्रोजन में अपचयित कर दिया जाता है।

इस प्रकार प्राप्त गैसीय मिश्रण को हाइड्रॉक्साइड पोटैशियम के जलीय विलयन पर एकत्र कर लिया जाता है। कार्बन

चित्र 12.14 कार्बन तथा हाइड्रोजन का आकलन पदार्थ के ऑक्सीकरण के फलस्वरूप बना जल तथा कार्बन डाइऑक्साइड U नली में लिये गए क्रमश: निर्जल कैल्सियम क्लोराइड और पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड विलयन में अवशोषित किए जाते हैं।

डाइऑक्साइड पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड द्वारा अवशोषित हो जाती है। नाइट्रोजन अंशांकित नली (Graduated Tube) के ऊपरी भाग में एकत्र हो जाती है (चित्र 12.15)।

माना कि कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान = $m\,g$

एक नाइट्रोजन का आयतन = V_1mL

कक्ष का ताप = T_1 K

मानक ताप तथा दाब (STP) पर नाइट्रोजन का आयतन

$$= \frac{P_1 V_1 \times 273}{760 \times T_1}$$

(माना कि इसका मान V mL है)

P_1 तथा V_1 क्रमशः नाइट्रोजन के दाब तथा आयतन हैं। P_1 दाब, जिसपर नाइट्रोजन एकत्र की गई है, वायुमंडलीय दाब से भिन्न है। P_1 का मान इस संबंध द्वारा प्राप्त किया जाता है–

P_1 = वायुमंडलीय दाब-जलीय तनाव

STP पर 22400 mL N_2 का द्रव्यमान 28g है

अतः STP पर V mL N_2 का द्रव्यमान $= \frac{28 \times V}{22400} g$

नाइट्रोजन की प्रतिशतता $= \frac{28 \times V \times 100}{22400 \times m}$

उदाहरण 12.12

नाइट्रोजन अणुमापन की ड्यूमा विधि में 0.3 g कार्बनिक यौगिक 300K ताप तथा 715 mm दाब पर 50 mL नाइट्रोजन देता है। यौगिक में नाइट्रोजन के प्रतिशत की गणना कीजिए (300 K ताप पर जलीय तनाव = 15 mm)।

हल

300 K ताप तथा 715 mm पर एकत्र नाइट्रोजन का आयतन = 50 mL

वास्तविक दाब = 715 – 15 = 700 mm

STP पर नाइट्रोजन का आयतन $= \frac{273 \times 700 \times 50}{300 \times 760}$

= 41.9 mL

22400 mL नाइट्रोजन का STP पर भार = 28 g

अतः 41.9 mL का नाइट्रोजन का STP पर द्रव्यमान

$$= \frac{28 \times 41.9}{22400} g$$

नाइट्रोजन की प्रतिशतता

$$= \frac{28 \times 41.9 \times 100}{22400 \times 0.3} = 17.46\%$$
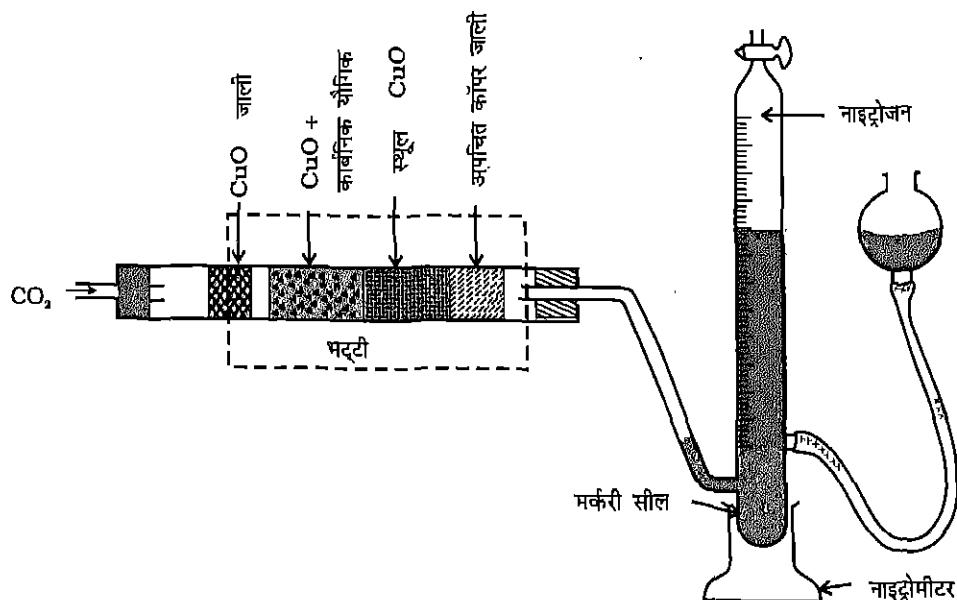
चित्र 12.15 ड्यूमा विधि। कार्बनिक यौगिक को CO_2 गैस की उपस्थिति में Cu(II) ऑक्साइड के साथ गरम करने पर नाइट्रोजन गैस उत्पन्न होती है। गैसों के मिश्रण को पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड विलयन में से प्रवाहित किया जाता है, जहाँ CO_2 अवशोषित हो जाती है तथा नाइट्रोजन का आयतन माप लिया जाता है।

(ii) कैल्डॉल विधि : इस विधि में नाइट्रोजनयुक्त यौगिक को सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम किया जाता है। फलस्वरूप यौगिक की नाइट्रोजन, अमोनियम सल्फेट में परिवर्तित हो जाती है। तब प्राप्त अम्लीय मिश्रण को सोडियम हाइड्रॉक्साइड के आधिक्य के साथ गरम करने पर अमोनिया मुक्त होती है, जिसे मानक सल्फ्यूरिक अम्ल विलयन के ज्ञात आयतन में अवशोषित कर लिया जाता है। तत्पश्चात् अवशिष्ट सल्फ्यूरिक अम्ल को क्षार के मानक विलयन द्वारा अनुमापित कर लिया जाता है। अम्ल की आरंभिक मात्रा और अभिक्रिया के बाद शेष मात्रा के बीच अंतर से अमोनिया के साथ अभिकृत अम्ल की मात्रा प्राप्त होती है।

कार्बनिक यौगिक $+ H_2SO_4 \longrightarrow (NH_4)_2SO_4$

$$\xrightarrow{2NaOH} Na_2SO_4 + 2NH_3 + 2H_2O$$

$2NH_3 + H_2SO_4 \rightarrow (NH_4)_2SO_4$
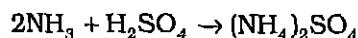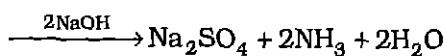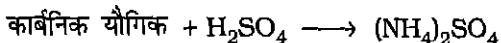
माना कि कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान = m g

M मोलरतावाले H_2SO_4 का लिया गया आयतन = V mL

अवशिष्ट H_2SO_4 के अनुमापन हेतु प्रयुक्त M मोलरता के NaOH का आयतन = V_1 mL

M मोलरता का V_1mL NaOH = M मोलरता का $V_1/2$mL H_2SO_4

M मोलरता का $(V - V_1/2)$mL H_2SO_4 = M मोलरता का $2(V - V_1/V_2)$ NH_3 विलयन

1M NH_3 विलयन के 1000 mL में उपस्थित NH_3 = 17 g या 14g नाइट्रोजन

1M NH_3 विलयन का $2(V - V_1/2)$ mL =

$$\frac{14 \times M \times 2\ (V - V_1/2)}{1000} g \text{ नाइट्रोजन}$$

$$\text{नाइट्रोजन की प्रतिशतता} = \frac{14 \times M \times 2\ (V - V_1/2)}{1000} \times \frac{100}{m}$$

$$= \frac{1.4 \times M \times 2\ (V - V_1/2)}{m}$$

नाइट्रोजनयुक्त नाइट्रो तथा ऐज़ो समूह और वलय में उपस्थित नाइट्रोजन (उदाहरणार्थ–पिरिडीन) में कैल्डॉल विधि लागू नहीं होती, क्योंकि इन परिस्थितियों में ये यौगिक नाइट्रोजन को अमोनियम सल्फेट में परिवर्तित नहीं कर सकते हैं।

उदाहरण 12.22

नाइट्रोजन आकलन की कैल्डॉल विधि में 0.5 g यौगिक में मुक्त अमोनिया 10 mL 1 M H_2SO_4 को उदासीन करती है। यौगिक में नाइट्रोजन की प्रतिशतता ज्ञात करें।

चित्र 12.16 कैल्डॉल विधि-नाइट्रोजनयुक्त यौगिक को सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करने पर अमोनियम सल्फेट बनता है, जो NaOH द्वारा अभिकृत करने पर अमोनिया मुक्त करता है। इसे मानक अम्ल के ज्ञात आयतन में अवशोषित किया जाता है।

हल

$1M\ 10\ mL\ H_2SO_4 \equiv 1M\ 20\ mL\ NH_3$

1000 mL 1M अमोनिया में उपस्थित नाइट्रोजन = 14g

अत: 20 mL 1M अमोनिया में उपस्थित नाइट्रोजन

$= \frac{14 \times 20}{1000}$ नाइट्रोजन

अतः नाइट्रोजन की प्रतिशतता

$= \frac{14 \times 20 \times 100}{1000 \times 0.5} = 56.0\%$

12.10.3 हैलोजेन

कैरिअस विधि : कार्बनिक यौगिक की निश्चित मात्रा को कैरिअस नली (कठोर काँच की नली) में लेकर सिल्वर नाइट्रेट की उपस्थिति में सधूम नाइट्रिक अम्ल के साथ भट्ठी में गरम किया जाता है (चित्र 12.17)। यौगिक में उपस्थित कार्बन तथा हाइड्रोजन इन परिस्थितियों में क्रमशः कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल में ऑक्सीकृत हो जाते हैं, जबकि हैलोजेन संगत सिल्वर हैलाइड (AgX) में परिवर्तित हो जाता है।
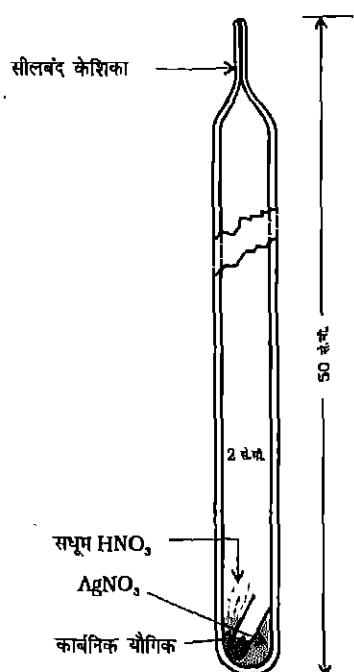
चित्र 12.17 केरीयस विधि-हैलोजेनयुक्त कार्बनिक यौगिक को सिल्वर नाइट्रेट की उपस्थिति में सधूम नाइट्रिक अम्ल के साथ गरम किया जाता है।

अवक्षेप को छानकर सुखाने के बाद तौल लिया जाता है।

माना कि यौगिक का द्रव्यमान = $m\,g$

प्राप्त AgX का द्रव्यमान = $m_1\,g$

1 मोल AgX में 1 मोल X की मात्रा उपलब्ध है।

$m_1\,g$ AgX में हैलोजेन का द्रव्यमान

$$= \frac{\text{X का परमाण्विक द्रव्यमान} \times m_1 g}{\text{AgX का आण्विक द्रव्यमान}}$$

हैलोजेन की प्रतिशतता

$$= \frac{\text{X का परमाण्विक द्रव्यमान} \times m_1 \times 100}{\text{AgX का आण्विक द्रव्यमान} \times m}$$

उदाहरण 12.3

हैलोजेन के आकलन की कैरिअस विधि में 0.15 g कार्बनिक यौगिक 0.12 g AgBr देता है। यौगिक में ब्रोमीन की प्रतिशतता ज्ञात कीजिए।

हल

AgBr का आण्विक द्रव्यमान = 108 + 80 = 188 g mol^{-1}

188 g AgBr में उपस्थित ब्रोमीन = 80 g

0.12 g AgBr में उपस्थित ब्रोमीन = $\frac{80 \times 0.12}{188} g$

ब्रोमीन की प्रतिशतता =

$\frac{80 \times 0.12 \times 100}{188 \times 0.15} = 42.55\%$

12.10.4 सल्फर

कैरिअस नली में कार्बनिक यौगिक की ज्ञात मात्रा को सधूम नाइट्रिक अम्ल अथवा सोडियम परॉक्साइड के साथ गरम करने पर सल्फ्यूरिक अम्ल में सल्फर ऑक्सीकृत हो जाता है, जिसे बेरियम क्लोराइड के जलीय विलयन का आधिक्य मिलाकर हम बेरियम सल्फेट के रूप में अवक्षेपित कर लेते हैं। अवक्षेप को छानने, धोने और सुखाने के पश्चात् तौल लेते हैं। बेरियम सल्फेट के द्रव्यमान से सल्फर की प्रतिशतता ज्ञात की जा सकती है।

माना कि लिये गए कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान = m g

अत: बेरियम सल्फेट का द्रव्यमान = m_1 g

1 मोल $BaSO_4$ = 233 g $BaSO_4$ = 32 g सल्फर

$BaSO_4$ m_1g में सल्फर की मात्रा $= \frac{32 \times m_1 g}{233}$

सल्फर की प्रतिशतता $= \frac{32 \times m_1 \times 100}{233 \times m}$

उदाहरण 12.24

सल्फर आकलन में 0.157 g कार्बनिक यौगिक से 0.4813 g बेरियम सल्फेट प्राप्त हुआ। यौगिक में सल्फर की प्रतिशतता क्या है?

हल

$BaSO_4$ का आण्विक द्रव्यमान = 137 + 32 + 64 = 233g

233g $BaSO_4$ में उपस्थित सल्फर = 32g

0.4813g $BaSO_4$ में उपस्थित सल्फर

$= \frac{32 \times 0.4813}{233} g$

सल्फर की प्रतिशतता $= \frac{32 \times 0.4813 \times 100}{233 \times 0.157}$

= 42.10%

12.10.5 फ़ॉस्फोरस

कार्बनिक यौगिक की एक ज्ञात मात्रा को सधूम नाइट्रिक अम्ल के साथ गरम करने पर उसमें उपस्थित फ़ॉस्फोरस, फ़ॉस्फोरिक अम्ल में ऑक्सीकृत हो जाता है। इसे अमोनिया तथा *अमोनियम मॉलिब्डेट मिलाकर अमोनियम फॉस्फ़ोमॉलिब्डेट*, $(NH_4)_3PO_4 \cdot 12MoO_3$ के रूप में हम अवक्षेपित कर लेते हैं, अन्यथा फ़ॉस्फ़ोरिक अम्ल में मेग्नेसिया मिश्रण मिलाकर $MgNH_4PO_4$ के रूप में अवक्षेपित किया जा सकता है, जिसके ज्वलन से $Mg_2P_2O_7$ प्राप्त होता है।

माना कि कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान = m g और अमोनियम फॉस्फ़ोमॉलिब्डेट = m_1 g

$(NH_4)_3 PO_4 \cdot 12 MoO_3$ का मोलर द्रव्यमान=1877 g है।

फॉस्फोरस की प्रतिशतता $= \frac{31 \times m_1 \times 100}{1877 \times m} \%$

यदि फॉस्फोरस का $Mg_2P_2O_7$ के रूप में आकलन किया जाए तो, फॉस्फोरस की प्रतिशतता $= \frac{62 \times m_1 \times 100}{222 \times m} \%$

जहाँ $Mg_2P_2O_7$ का मोलर द्रव्यमान 222 u, लिये गए कार्बनिक पदार्थ का द्रव्यमान m, बने हुए $Mg_2P_2O_7$ का द्रव्यमान m_1 तथा $Mg_2P_2O_7$ यौगिक में उपस्थित दो फ़ॉस्फोरस परमाणुओं का द्रव्यमान 62 है।

12.10.6 ऑक्सीजन

कार्बनिक यौगिक में ऑक्सीजन की प्रतिशतता की गणना कुल प्रतिशतता (100) में से अन्य तत्त्वों की प्रतिशतताओं के योग को घटाकर की जाती है। ऑक्सीजन का प्रत्यक्ष आकलन निम्नलिखित विधि से भी किया जा सकता है–

कार्बनिक यौगिक की एक निश्चित मात्रा नाइट्रोजन गैस के प्रवाह में गरम करके अपघटित की जाती हैं। ऑक्सीजन सहित उत्पन्न गैसीय मिश्रण को रक्त-तप्त कोक (Coke) पर प्रवाहित करने पर पूरी ऑक्सीजन कार्बन मोनोऑक्साइड में परिवर्तित हो जाती है। तत्पश्चात् गैसीय मिश्रण को ऊष्ण आयोडीन पेन्टाऑक्साइड (I_2O_5) में प्रवाहित करने पर कार्बन मोनोऑक्साइड कार्बन डाइऑक्साइड में ऑक्सीकृत हो जाती है और तब आयोडीन उत्पन्न होती है।

यौगिक $\xrightarrow{\text{ऊष्मा}}$ O_2 + अन्य गैसीय उत्पाद

$$2C + O_2 \xrightarrow{1373K} 2CO$$

$$I_2O_5 + 5CO \rightarrow I_2 + 5CO_2$$
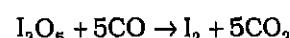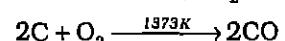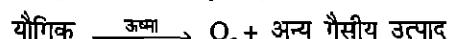
ऑक्सीजन की प्रतिशतता का आकलन मुक्त कार्बन डाइऑक्साइड *अथवा आयोडीन की मात्रा से किया जा सकता है।*

माना कि कार्बनिक यौगिक का द्रव्यमान = m g

कार्बन डाइऑक्साइड का द्रव्यमान = m_1 g

44g कार्बन डाइऑक्साइड में उपस्थित ऑक्सीजन = 32 g

m_1 g कार्बन डाइऑक्साइड में उपस्थित ऑक्सीजन $= \frac{32 \times m_1}{44} g$

ऑक्सीजन की प्रतिशतता $= \frac{32 \times m_1 \times 100}{44 \times m}$

आजकल कार्बनिक यौगिक में तत्त्वों का आकलन स्वचालित तकनीक की सहायता से पदार्थों की सूक्ष्म (माइक्रो) मात्रा लेकर करते हैं। यौगिकों में उपस्थित कार्बन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन तत्त्वों का आकलन CHN तत्त्व विश्लेषक (CHN Elemental Analyzer) से करते हैं। इस उपकरण में पदार्थ की माइक्रो मात्रा (1 – 3 mg) की आवश्यकता होती है तथा कुछ समय में इन तत्त्वों की प्रतिशतताएँ स्क्रीन पर आ जाती हैं। इन विधियों का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के स्तर से ऊपर है।

सारांश

सहसंयोजक आबंधन के कारण बने कार्बनिक यौगिकों की संरचना तथा क्रियाशीलता-संबंधी मूलभूत सिद्धांतों पर इस एकक में हमने विचार किया। कार्बनिक यौगिकों में सहसंयोजी आबंधों की प्रकृति को **कक्षक संकरण की अवधारणा** से स्पष्ट किया जा सकता है, जिसके अनुसार कार्बन की संकरण-अवस्था sp^3, sp^2 तथा sp हो सकती है। ये क्रमशः मेथेन, एथीन तथा एथाइन में उपस्थित होती हैं। इस अवधारणा के आधार पर मेथेन की चतुष्फलकीय, एथीन की समतल तथा एथाइन की रैखीय आकृति को स्पष्ट किया जा सकता है। कार्बन का sp^3 कक्षक हाइड्रोजन के 1*s* कक्षक के साथ अतिव्यापन करके कार्बन-हाइड्रोजन (C–H) एकल (सिग्मा) आबंध बनाता है। इसी तरह दो कार्बन के sp^3 कक्षक परस्पर अतिव्यापित होकर कार्बन-कार्बन σ आबंध निर्मित करते हैं। दो निकटवर्ती कार्बन के असंकरित p-कक्षक पार्श्व अतिव्यापन द्वारा पाई (π) आबंध बनाते हैं। कार्बनिक यौगिकों को कई संरचना-सूत्रों द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कार्बनिक यौगिक का त्रिविमीय सूत्र **'वैज'** एवं **'डेश'** द्वारा दर्शाया जाता है।

कार्बनिक यौगिकों को उनकी संरचना अथवा क्रियात्मक समूहों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। **क्रियात्मक समूह** एक विशिष्ट तरीके से बंधित एक परमाणु या परमाणुओं का समूह है, जो यौगिकों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों का निर्धारण करता है। कार्बनिक यौगिकों का नामांकरण IUPAC द्वारा बनाए गए नियमों के आधार पर किया जाता है। IUPAC नामांकरण में नाम और संरचना के बीच के सहसंबंध से पढ़ने वाले को संरचना बनाने में सहायता मिलती है।

क्रियाधारक अणु की संरचना, सहसंयोजक आबंध के विदलन, आक्रमणकारी अभिकर्मक, इलेक्ट्रॉन विस्थापन प्रभाव तथा अभिक्रिया की परिस्थितियों पर कार्बनिक अभिक्रियाओं की क्रियाविधि आधारित होती है। इन कार्बनिक अभिक्रियाओं में आबंध-विदलन तथा आबंध-निर्माण होता है। सहसंयोजक आबंध का विदलन **विषमांश** तथा **समांश** तरीके से हो सकता है। विषमांश विदलन से **कार्बधनायन** अथवा **कार्बऋणायन** प्राप्त होता है, जबकि समांश विदलन से **मुक्त मूलक** उत्पन्न होते हैं। विषमांश-विदलन के माध्यम से संपन्न कार्बनिक अभिक्रियाओं में इलेक्ट्रॉन देनेवाले **नाभिकस्नेही** तथा इलेक्ट्रॉन ग्रहण करने वाले **इलेक्ट्रॉनस्नेही** अभिकारक भाग लेते हैं। **प्रेरणिक, अनुनाव, इलेक्ट्रोमेरी** तथा **अतिसंयुग्मन प्रभाव** कार्बन-कार्बन अथवा अन्य परमाणु स्थितियों में ध्रुवणता उत्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे कार्बन परमाणु अथवा अन्य परमाणुओं पर निम्न अथवा उच्च इलेक्ट्रॉन घनत्व वाले स्थान बन जाते हैं। कार्बनिक अभिक्रियाओं के मुख्य प्रकार हैं – **प्रतिस्थापन अभिक्रिया, संकलन अभिक्रिया, विलोपन** तथा **पुनर्विन्यास अभिक्रिया**।

किसी कार्बनिक यौगिक की संरचना ज्ञात करने के लिए उसका शोधन और गुणात्मक तथा मात्रात्मक विश्लेषण किया जाता है। शोधन की विशिष्ट विधियाँ, जैसे– ऊर्ध्वपातन, आसवन और विभेदी निष्कर्षण यौगिकों के एक या अधिक भौतिक गुणों में अंतर पर आधारित हैं। यौगिकों के पृथक्करण तथा शोधन के लिए **क्रोमेटोग्रैफी** एक अत्यधिक उपयोगी तकनीक है। इसे दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है: अधिशोषण क्रोमेटोग्रैफी तथा वितरण क्रोमेटोग्रैफी। अधिशोषण क्रोमेटोग्रैफी अधिशोषक पर मिश्रण के अवयवों के भिन्न अधिशोषण पर आधारित है। वितरण क्रोमेटोग्रैफी में स्थिर प्रावस्था और गतिक प्रावस्था के मध्य मिश्रण के अवयवों का निरंतर वितरण होता है। यौगिक को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने के पश्चात् उसमें उपस्थित तत्त्वों के निर्धारण के लिए उसका गुणात्मक विश्लेषण किया जाता है। नाइट्रोजन, सल्फर, हैलोजेन तथा फ़ॉस्फोरस **लैंसे परीक्षण** द्वारा जाँचे जाते हैं। कार्बन तथा हाइड्रोजन की पहचान इन्हें क्रमशः कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल में परिवर्तित करके की जाती है। नाइट्रोजन का आकलन ड्यूमा और कैल्डॉल विधियों द्वारा तथा हैलोजेनों को कैरिअस विधि द्वारा किया जाता है। सल्फर तथा फ़ॉस्फोरस को क्रमशः सल्फ्यूरिक तथा फ़ॉस्फोरिक अम्ल में ऑक्सीकृत करके आकलित किया जाता है। ऑक्सीजन की प्रतिशतता कुल प्रतिशतता में से अन्य तत्त्वों की प्रतिशतताओं के योग को घटाकर प्राप्त की जाती है।

अभ्यास

12.1 निम्नलिखित यौगिकों में प्रत्येक कार्बन की संकरण अवस्था बताइए–

$CH_2 = C = O$, $CH_3CH = CH_2$, $(CH_3)_2CO$, $CH_2 = CH\,CN$, C_6H_6

12.2 निम्नलिखित अणुओं में σ तथा π आबंध दर्शाइए–

C_6H_6, C_6H_{12}, CH_2Cl_2, $CH_2 = C = CH_2$, $CH_3\,NO_2$, $HCONHCH_3$

12.3 निम्नलिखित यौगिकों के आबंध-रेखा-सूत्र लिखिए–

आइसोप्रोपिल ऐल्कोहॉल, 2, 3– डाइमेथिल ब्यूटेनैल, हेप्टेन-4-ओन
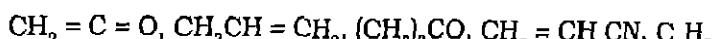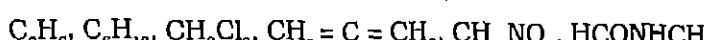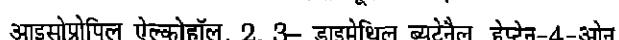
12.4 निम्नलिखित यौगिकों के IUPAC नाम लिखिए–

(ङ) (च) Cl_2CHCH_2OH
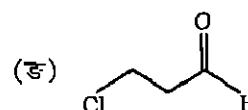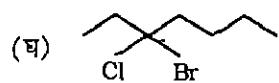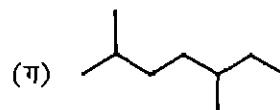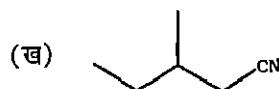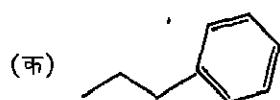
12.5 निम्नलिखित यौगिकों में से कौन सा नाम IUPAC पद्धति के अनुसार सही है?

(क) 2, 2-डाइएथिलपेंटेन अथवा 2-डाइमेथिलपेंटेन

(ख) 2, 4, 7-ट्राइमेथिलऑक्टेन अथवा 2, 5, 7-ट्राइमेथिलऑक्टेन

(ग) 2-क्लोरो-4-मेथिलपेंटेन अथवा 4-क्लोरो-2-मेथिलपेंटेन

(घ) ब्यूट-3-आइन-1-ऑल अथवा ब्यूट-4-ऑल-1-आइन

12.6 निम्नलिखित दो सजातीय श्रेणियों में से प्रत्येक के प्रथम पाँच सजातों के संरचना-सूत्र लिखिए–

(क) $H-COOH$ (ख) CH_3COCH_3 (ग) $H-CH=CH_2$

12.7 निम्नलिखित के संघनित और आबंध रेखा-सूत्र लिखिए तथा उनमें यदि कोई क्रियात्मक समूह हो, तो उसे पहचानिए–

(क) 2, 2, 4 – ट्राइमेथिलपेंटेन

(ख) 2-हाइड्रॉक्सी-1, 2, 3-प्रोपेनट्राइकार्बोक्सिलिक अम्ल

(ग) हेक्सेनडाइऐल

12.8 निम्नलिखित यौगिकों में क्रियात्मक समूह पहचानिए–

(ग)
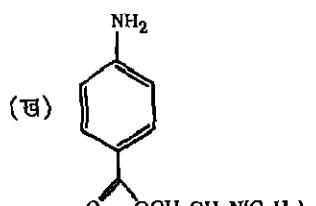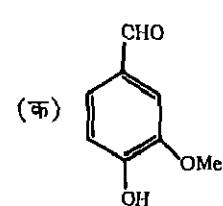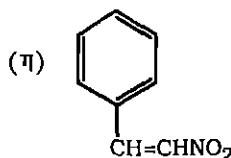
12.9 निम्नलिखित में से कौन अधिक स्थायी है तथा क्यों?

$O_2NCH_2CH_2O^-$ और $CH_3\,CH_2O^-$

12.10 π-निकाय से आबंधित होने पर ऐल्किल समूह इलेक्ट्रॉनदाता की तरह व्यवहार प्रदर्शित क्यों करते हैं? समझाइए।

12.11 निम्नलिखित यौगिकों की अनुनाद-संरचना लिखिए तथा इलेक्ट्रॉनों का विस्थापन मुड़े तीरों की सहायता से दर्शाइए–

(क) C_6H_5OH (ख) $C_6H_5NO_2$

(ग) $CH_3CH=CHCHO$ (घ) C_6H_5-CHO

(ङ) $C_6H_5-\overset{+}{C}H_2$ (च) $CH_3CH=CH\overset{+}{C}H_2$

12.12 इलेक्ट्रॉनस्नेही तथा नाभिकस्नेही क्या हैं? उदाहरणसहित समझाइए।

12.13 निम्नलिखित समीकरणों में मोटे अक्षरों में लिखे अभिकर्मकों को नाभिकस्नेही तथा इलेक्ट्रॉनस्नेही में वर्गीकृत कीजिए–

(क) $CH_3COOH + \mathbf{H\bar{O}} \rightarrow CH_3COO^- + H_2O$

(ख) $CH_3COCH_3 + \mathbf{^-CN} \rightarrow (CH_3)_2C(CN)(OH)$

(ग) $C_6H_5 + \mathbf{CH_3\overset{+}{C}O} \rightarrow C_6H_5COCH_3$

12.14 निम्नलिखित अभिक्रियाओं को वर्गीकृत कीजिए–

(क) $CH_3CH_2Br + HS^- \rightarrow CH_3CH_2SH + Br^-$

(ख) $(CH_3)_2C=CH_2 + HCl \rightarrow (CH_3)_2ClC-CH_3$

(ग) $CH_3CH_2Br + HO^- \rightarrow CH_2=CH_2 + H_2O + Br^-$

(घ) $(CH_3)_3C-CH_2OH + HBr \rightarrow (CH_3)_2CBr\,CH_2\,CH_3 + H_2O$

12.15 निम्नलिखित युग्मों में सदस्य-संरचनाओं के मध्य कैसा संबंध है? क्या ये संरचनाएँ संरचनात्मक या ज्यामितीय समावयव अथवा अनुनाद संरचनाएँ हैं?

(क) $CH_3CH_2COCH_2CH_3$ $CH_3CH_2CH_2COCH_3$

(ख) $\begin{matrix} D & & H \\ & C=C & \\ H & & D \end{matrix}$ $\begin{matrix} D & & D \\ & C=C & \\ H & & H \end{matrix}$

(ग) $H-\overset{^+OH}{\overset{\|}{C}}-OH$ $H-\overset{OH}{\overset{|}{C^+}}-OH$
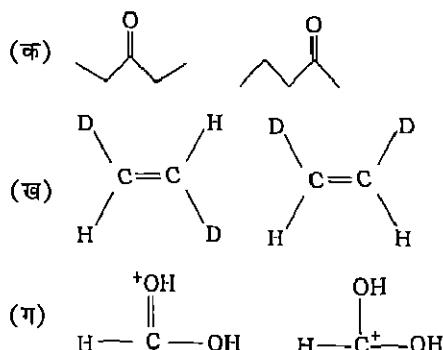
12.16 निम्नलिखित आबंध विदलनों के लिए इलेक्ट्रॉन-विस्थापन को मुड़े तीरों द्वारा दर्शाइए तथा प्रत्येक विदलन को समांश अथवा विषमांश में वर्गीकृत कीजिए। साथ ही निर्मित सक्रिय मध्यवर्ती उत्पादों में मुक्त-मूलक, कार्बधनायन तथा कार्बऋणायन पहचानिए–

(क) $CH_3O-OCH_3 \rightarrow CH_3\dot{O} + \dot{O}CH_3$

(ख) $>\!\!=O$ + $^-OH \longrightarrow$ $_->\!\!=O$ + H_2O

(ग) (CH₃)₃C–Br ⟶ (CH₃)₃C⁺ + Br^-

(घ) बेंज़ीन + E^+ ⟶ (E युक्त कार्बधनायन, +)

12.17 निम्नलिखित कार्बोक्सिलिक अम्लों की अम्लता का सही क्रम कौन सा इलेक्ट्रॉन-विस्थापन वर्णित करता है? प्रेरणिक तथा इलेक्ट्रोमेरी प्रभावों की व्याख्या कीजिए–

(क) $Cl_3CCOOH > Cl_2CHCOOH > ClCH_2COOH$

(ख) $CH_3CH_2COOH > (CH_3)_2CHCOOH > (CH_3)_3C.COOH$

12.18 प्रत्येक का एक उदाहरण देते हुए निम्नलिखित प्रक्रमों के सिद्धांतों का संक्षिप्त विवरण दीजिए–

(क) क्रिस्टलन (ख) आसवन (ग) क्रोमेटोग्रैफी

12.19 ऐसे दो यौगिकों, जिनकी विलेयताएँ विलायक s, में भिन्न हैं, को पृथक् करने की विधि की व्याख्या कीजिए।

12.20 आसवन, निम्न दाब पर आसवन तथा भाप आसवन में क्या अंतर है? विवेचना कीजिए।

12.21 लैंसे-परीक्षण का रसायन-सिद्धांत समझाइए।

12.22 किसी कार्बनिक यौगिक में नाइट्रोजन के आकलन की (i) ड्यूमा विधि तथा (ii) कैल्डॉल विधि के सिद्धांत की रूप-रेखा प्रस्तुत कीजिए।

12.23 किसी यौगिक में हैलोजेन, सल्फर तथा फ़ॉस्फोरस के आकलन के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।

12.24 पेपर क्रोमेटोग्रैफी के सिद्धांत को समझाइए।

12.25 'सोडियम संगलन निष्कर्ष' में हैलोजेन के परीक्षण के लिए सिल्वर नाइट्रेट मिलाने से पूर्व नाइट्रिक अम्ल क्यों मिलाया जाता है?

12.26 नाइट्रोजन, सल्फर तथा फ़ॉस्फोरस के परीक्षण के लिए सोडियम के साथ कार्बनिक यौगिक का संगलन क्यों किया जाता है?

12.27 कैल्सियम सल्फेट तथा कपूर के मिश्रण के अवयवों को पृथक् करने के लिए एक उपयुक्त तकनीक बताइए।

12.28 भाप-आसवन करने पर एक कार्बनिक द्रव अपने क्वथनांक से निम्न ताप पर वाष्पीकृत क्यों हो जाता है?

12.29 क्या CCl_4 सिल्वर नाइट्रेट के साथ गरम करने पर AgCl का श्वेत अवक्षेप देगा? अपने उत्तर को कारण सहित समझाइए।

12.30 किसी कार्बनिक यौगिक में कार्बन का आकलन करते समय उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने के लिए पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड विलयन का उपयोग क्यों किया जाता है?

12.31 सल्फर के लेड ऐसीटेट द्वारा परीक्षण में 'सोडियम संगलन निष्कर्ष' को ऐसीटिक अम्ल द्वारा उदासीन किया जाता है, न कि सल्फ्यूरिक अम्ल द्वारा। क्यों?

12.32 एक कार्बनिक यौगिक में 69% कार्बन, 4.8% हाइड्रोजन तथा शेष ऑक्सीजन है। इस यौगिक के 0.20 g के पूर्ण दहन के फलस्वरूप उत्पन्न कार्बन डाइऑक्साइड तथा जल की मात्राओं की गणना कीजिए।

12.33 0.50 g कार्बनिक यौगिक को कैल्डॉल विधि के अनुसार उपचारित करने पर प्राप्त अमोनिया को 0.5 M H_2SO_4 के 50 mL में अवशोषित किया गया। अवशिष्ट अम्ल के उदासीनीकरण के लिए 0.5 M NaOH के 50 mL की आवश्यकता हुई। यौगिक में नाइट्रोजन प्रतिशतता की गणना कीजिए।

12.34 कैरिअस आकलन में 0.3780 g कार्बनिक क्लोरो यौगिक से 0.5740 g सिल्वर क्लोराइड प्राप्त हुआ। यौगिक में क्लोरीन की प्रतिशतता की गणना कीजिए।

12.35 कैरिअस विधि द्वारा सल्फर के आकलन में 0.468 g सल्फरयुक्त कार्बनिक यौगिक से 0.668 g बेरियम सल्फेट प्राप्त हुआ। दिए गए कार्बन यौगिक में सल्फर की प्रतिशतता की गणना कीजिए।

12.36 $CH_2=CH-CH_2-CH_2-C\equiv CH$, कार्बनिक यौगिक में C_2-C_3 आबंध किन संकरित कक्षकों के युग्म से निर्मित होता है?

(क) $sp-sp^2$ (ख) $sp-sp^3$ (ग) sp^2-sp^3 (घ) sp^3-sp^3

12.37 किसी कार्बनिक यौगिक में लैंसे-परीक्षण द्वारा नाइट्रोजन की जाँच में प्रशियन ब्लू रंग निम्नलिखित में से किसके कारण प्राप्त होता है?

(क) $Na_4[Fe(CN)_6]$ (ख) $Fe_4[Fe(CN)_6]_3$

(ग) $Fe_2[Fe(CN)_6]$ (घ) $Fe_3[Fe(CN)_6]_4$

12.38 निम्नलिखित कार्बधनायनों में से कौन सा सबसे अधिक स्थायी है?

(क) $(CH_3)_3C\overset{+}{C}H_2$ (ख) $(CH_3)_3\overset{+}{C}$

(ग) $CH_3CH_2\overset{+}{C}H_2$ (घ) $CH_3\overset{+}{C}HCH_2CH_3$

12.39 कार्बनिक यौगिकों के पृथक्करण और शोधन की सर्वोत्तम तथा आधुनिकतम तकनीक कौन-सी है?

(क) क्रिस्टलन (ख) आसवन (ग) ऊर्ध्वपातन (घ) क्रोमेटोग्रैफी

12.40 $CH_3CH_2I + KOH\ (aq) \rightarrow CH_3CH_2OH + KI$ अभिक्रिया को नीचे दिए गए प्रकार में वर्गीकृत कीजिए–

(क) इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन (ख) नाभिकस्नेही प्रतिस्थापन

(ग) विलोपन (घ) संकलन

हाइड्रोकार्बन
HYDROCARBON

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के पश्चात् आप :

- नामकरण की आई.यू.पी.ए.सी. पद्धति के अनुसार हाइड्रोकार्बनों का नाम बता सकेंगे;
- ऐल्केन, एल्कीन, एल्काइन तथा ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन के समावयवों की पहचान कर सकेंगे तथा उनकी संरचना लिख सकेंगे;
- हाइड्रोकार्बन के विरचन की विभिन्न विधियों के बारे में सीखेंगे;
- भौतिक एवं रासायनिक गुणधर्म के आधार पर ऐल्केन, एल्कीन, एल्काइन तथा ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बनों में विभेद कर सकेंगे;
- एथेन के विभिन्न संरूपणों (कॉन्फॉर्मेशनों) के आरेख बनाकर उनमें विभेद कर सकेंगे;
- हाइड्रोकार्बन की भूमिका का ऊर्जा के स्रोत के रूप में तथा अन्य औद्योगिक अनुप्रयोगों में महत्त्व बता सकेंगे;
- इलेक्ट्रॉनिक क्रियाविधि के आधार पर असममित एल्कीनों तथा एल्काइनों के संकलन उत्पादों के बनने का अनुमान कर सकेंगे;
- बेंजीन की संरचना का वर्णन, ऐरोमैटिकता एवं इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन-अभिक्रियाओं की क्रियाविधि की व्याख्या कर सकेंगे;
- एकल प्रतिस्थापी बेंजीन वलय पर प्रतिस्थापियों के निर्देशात्मक प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे; तथा
- कैन्सरजन्यता तथा विषाक्तता के विषय में सीख सकेंगे।

हाइड्रोकार्बन ऊर्जा के प्रमुख स्रोत है।

हाइड्रोकार्बन पद स्वत: स्पष्ट है, जिसका अर्थ केवल कार्बन तथा हाइड्रोजन के यौगिक है। हमारे दैनिक जीवन में हाइड्रोकार्बन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आप एलपीजी, सीएनजी आदि संक्षिप्त शब्दों से परिचित होंगे, जो ईंधन के रूप में उपयोग में लाए जाते हैं। एलपीजी द्रवित पेट्रोलियम गैस का, जबकि सीएनजी संघनित प्राकृतिक गैस का संक्षिप्त रूप है। आजकल दूसरा संक्षिप्त शब्द एलएनजी (द्रवित प्राकृतिक गैस) प्रचलन में है। यह भी ईंधन है, जो प्राकृतिक गैस के द्रवीकरण से प्राप्त होता है। पेट्रोलियम, जो भू-पर्पटी के नीचे पाया जाता है, के प्रभावी आसवन (fractional distillation) से पेट्रोल, डीजल तथा कैरोसिन प्राप्त होते हैं। कोल गैस, कोल के भंजक आसवन (destructive distillation) से प्राप्त होती है। प्राकृतिक गैसें तेल के कुओं की खुदाई के दौरान ऊपरी स्तर में पाई जाती है। संपीडन के पश्चात् प्राप्त गैसों को 'संपीडित प्राकृतिक गैस' कहते हैं। एलपीजी का उपयोग घरेलू ईंधन के रूप में होता है, जो सबसे कम प्रदूषण वाली गैस है। कैरोसिन का भी उपयोग घरेलू ईंधन के रूप में किया जाता है, लेकिन इससे कुछ प्रदूषण फैलता है। स्वचालित वाहनों को ईंधन के रूप में पेट्रोल, डीजल तथा सीएनजी की आवश्यकता होती है। पेट्रोल तथा सीएनजी से चलने वाले स्वचालित वाहन कम प्रदूषण फैलाते हैं। ये सभी ईंधन हाइड्रोकार्बन के मिश्रण होते हैं, जो ऊर्जा के स्रोत हैं। हाइड्रोकार्बन का उपयोग पॉलिथीन, पॉलिप्रोपेन, पॉलिस्टाइरीन आदि बहुलकों के निर्माण में किया जाता है। उच्च अणुभार वाले हाइड्रोकार्बनों का उपयोग पेन्ट में विलायक के रूप में और रंजक तथा औषधियों के निर्माण में प्रारंभिक पदार्थ के रूप में भी किया जाता है।

अब आप दैनिक जीवन में हाइड्रोकार्बन के महत्त्वपूर्ण उपयोग को अच्छी तरह समझ गए हैं। इस एकक में हाइड्रोकार्बनों के बारे में और अधिक जानेंगे।

13.1 वर्गीकरण

हाइड्रोकार्बन विभिन्न प्रकार के होते हैं। कार्बन-कार्बन आबंधों की प्रकृति के आधार पर इन्हें मुख्यतः तीन समूहों में वर्गीकृत किया गया है- (1) संतृप्त, (2) असंतृप्त तथा (3) ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन। संतृप्त हाइड्रोकार्बन में कार्बन-कार्बन तथा कार्बन-हाइड्रोजन एकल आबंध होते हैं। यदि विभिन्न कार्बन परमाणु आपस में एकल आबंध से जुड़कर विवृत शृंखला बनाते हैं, तो उन्हें 'ऐल्केन' कहते हैं, जैसाकि आप एकक-12 में पढ़ चुके हैं। दूसरी ओर यदि कार्बन परमाणु संवृत शृंखला या वलय का निर्माण करते हैं, तो उन्हें 'साइक्लोऐल्केन' कहा जाता है। असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों में कार्बन-कार्बन बहुआबंध जैसे द्विआबंध, त्रिआबंध या दोनों उपस्थित होते हैं। ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन संवृत यौगिकों का एक विशेष प्रकार है। आप कार्बन की चतुर्संयोजकता तथा हाइड्रोजन की एकल संयोजकता को ध्यान में रखते हुए (विवृत शृंखला या संवृत शृंखला) अनेक अणुओं के मॉडल बना सकते हैं। ऐल्केनों के मॉडल बनाने के लिए आबंधों के लिए टूथपिक तथा परमाणुओं के लिए प्लास्टिक की गेंदों का उपयोग हम कर सकते हैं। एल्कीन, एल्काइन तथा ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बनों के लिए स्प्रिंग मॉडल बनाए जा सकते हैं।

13.2 ऐल्केन

जैसा पहले बताया जा चुका है, ऐल्केन कार्बन-कार्बन एकल आबंधयुक्त संतृप्त विवृत शृंखला वाले हाइड्रोकार्बन है। मेथैन (CH_4) इस परिवार का प्रथम सदस्य है। मेथैन एक गैस है, जो कोयले की खानों तथा दलदली क्षेत्रों में पाई जाती है। अगर आप मेथैन के एक हाइड्रोजन परमाणु को कार्बन के द्वारा प्रतिस्थापित कर तथा हाइड्रोजन परमाणु की आवश्यक संख्या जोड़कर दूसरे कार्बन की चतुर्संयोजकता को संतुष्ट करते हैं, तो आपको क्या प्राप्त होगा? आपको C_2H_6 प्राप्त होगा। वह हाइड्रोकार्बन, जिसका अणुसूत्र C_2H_6 है, एथेन कहलाती है। अतः आप CH_4 के एक हाइड्रोजन परमाणु को $-CH_3$ समूह द्वारा प्रतिस्थापित करके C_2H_6 के रूप में प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार हाइड्रोजन को मेथिल (CH_3) समूह द्वारा प्रतिस्थापित करके आप अन्य कई ऐल्केन बना सकते हैं। इस प्रकार प्राप्त अणु C_3H_8, C_4H_{10} इत्यादि होंगे।

$$\begin{matrix} & H & \\ & | & \\ H- & C & -H \\ & | & \\ & H & \end{matrix} \xrightarrow{\text{किसी } H \text{ का } CH_3 \text{ से विस्थापन}} \begin{matrix} & H & H & \\ & | & | & \\ H- & C- & C & -H \\ & | & | & \\ & H & H & \end{matrix}$$
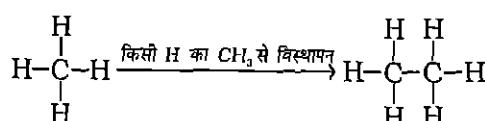
ये हाइड्रोकार्बन सामान्य अवस्थाओं में निष्क्रिय होते हैं क्योंकि ये अम्लों और अन्य अभिकर्मकों से अभिक्रिया नहीं करते। अतः प्रारंभ में इन्हें पैराफिन (Parum=कम Affinis=क्रियाशील) कहते थे। क्या आप ऐल्केन परिवार या सजातीय श्रेणी (homologous series) के सामान्य सूत्र के बारे में कुछ अनुमान लगा सकते हैं। ऐल्केन का सामान्य सूत्र C_nH_{2n+2} है, जहाँ n कार्बन परमाणुओं को तथा 2n + 2 हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या को प्रदर्शित करते हैं। क्या आप मेथैन की संरचना का स्मरण कर सकते हैं? संयोजकता कोश इलेक्ट्रॉन युग्म प्रतिकर्षण सिद्धांत (VSEPR) के अनुसार (एकक- 4 देखिए) मेथैन की चतुष्फलीय संरचना होती है (चित्र 13.1) जो बहुसमतलीय है जिसमें कार्बन परमाणु केंद्र में तथा चार हाइड्रोजन परमाणु समचतुष्फलक के चारों कोनों पर स्थित हैं। इस प्रकार प्रत्येक H-C का बंध कोण 109.5° होता है।
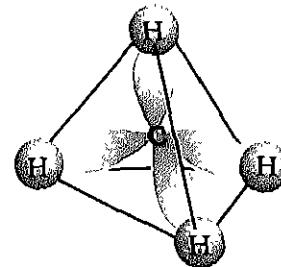
चित्र 13.1 मेथैन (CH_4) की चतुष्फलक संरचना

ऐल्केनों के चतुष्फलक आपस में जुड़े रहते हैं, जिनमें C-C तथा C-H आबंधों की लंबाइयाँ क्रमशः 154 pm और 112 pm होती हैं (एकक-12 देखिए)। आप पहले अध्ययन कर चुके हैं कि C-C तथा C-Hσ (सिग्मा) आबंध का निर्माण कार्बन परमाणु के संकरित sp^3 तथा हाइड्रोजन परमाणुओं के 1s के समाक्षीय अतिव्यापन से होता है।

13.2.1 नाम पद्धति तथा समावयवता

एकक-12 में आप विभिन्न कार्बनिक यौगिकों की श्रेणियों की नाम पद्धति की बारे में अध्ययन कर चुके हैं। ऐल्केन में नाम पद्धति तथा समावयवता को कुछ और उदाहरणों द्वारा समझा जा सकता है। साधारण नाम कोष्ठक में दिए गए हैं। प्रथम तीन सदस्य मेथैन, एथेन तथा प्रोपेन में केवल एक संरचना पाई जाती है, जबकि उच्च ऐल्केनो में एक से अधिक संरचना भी हो सकती है। C_4H_{10} की संरचना लिखने पर चार कार्बन परमाणु आपस में सतत् शृंखला अथवा शाखित शृंखला के द्वारा जुड़े रहते हैं।
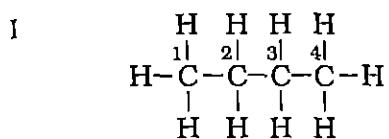
I
```
   H  H  H  H
   1| 2| 3| 4|
H— C— C— C— C—H
   |  |  |  |
   H  H  H  H
```
ब्यूटेन (*n*- ब्यूटेन) (क्वथनांक 237 K) और
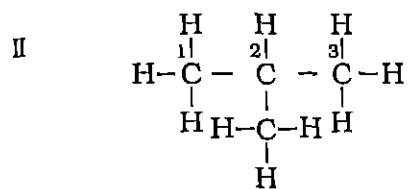
II
```
   H     H     H
   1|    2|    3|
H— C  —  C  —  C—H
   |     |     |
   H  H— C—H   H
         |
         H
```
2-मेथिलप्रोपेन (आइसोब्यूटेन)
(क्वथनांक 261K)

C_5H_{12} में आप किस प्रकार पाँच कार्बन तथा बारह हाइड्रोजन परमाणुओं को जोड़ सकते हैं? इन्हें तीन प्रकार से व्यवस्थित कर सकते हैं, जैसा संरचना III-V में दिखाया गया है।

III
```
   H    H    H    H    H
   1|   2|   3|   4|   5|
H— C —  C —  C —  C —  C—H
   |    |    |    |    |
   H    H    H    H    H
```
पेन्टेन (*n*- पेन्टेन)
(क्वथनांक 309 K)

IV
```
    H     H     H     H
    1|    2|    3|    4|
H — C  —  C  —  C  —  C — H
    |     |     |     |
    H  H— C—H   H     H
          |
          H
```
2-मेथिलब्यूटेन (आइसोपेन्टेन)
(क्वथनांक 301K)

V
```
          H
          |
    H  H— C—H  H
    1|    2|    3|
H — C  —  C  —  C—H
    |     |     |
    H  H— C—H  H
          |
          H
```
2, 2-डाइमेथिलप्रोपेन (नियोपेन्टेन)
(क्वथनांक 282.5K)
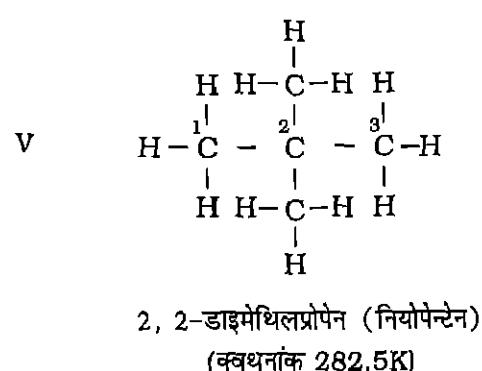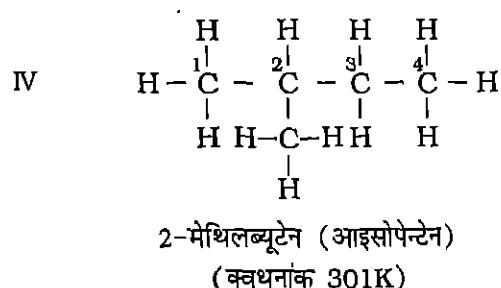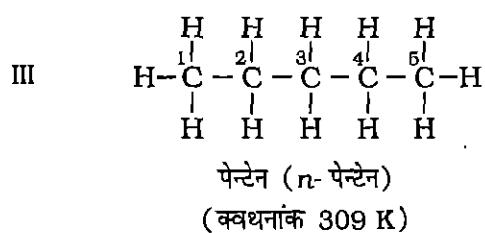
संरचना I तथा II का अणु सूत्र समान है, किंतु क्वथनांक तथा अन्य गुणधर्म भिन्न हैं। इसी प्रकार संरचनाओं III, IV तथा V के अणु सूत्र समान हैं, किंतु क्वथनांक तथा गुणधर्म भिन्न हैं। संरचना I तथा II ब्यूटेन के समावयव हैं, जबकि संरचना III, IV तथा V पेन्टेन के समावयव हैं। इनके गुणधर्मों में अंतर इनकी संरचनाओं में अंतर के कारण है। अत: इन्हें 'संरचनात्मक समावयव' (structural isomers) कहना उत्तम रहेगा। संरचना I तथा III में सतत् कार्बन परमाणुओं की श्रृंखला है, जबकि संरचना II, IV तथा V में शाखित कार्बन श्रृंखला है। अत: ऐसे संरचनात्मक समावयवी, जो कार्बन परमाणुओं की श्रृंखला में अंतर के कारण होते हैं, को '*श्रृंखला समावयव*' (chain isomers) कहते हैं। अत: आपने देखा कि C_4H_{10} तथा C_5H_{12} में क्रमश: दो तथा तीन श्रृंखला समावयव होते हैं।

उदाहरण 13.1

अणुसूत्र C_6H_{14} वाली ऐल्केन के विभिन्न श्रृंखला-समावयवों की संरचना तथा आई.यू.पी.सी नाम लिखिए।

हल

(i) $CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3$ — *n*-हैक्सेन

(ii)
```
CH3 – CH – CH2 – CH2– CH3
      |
      CH3
```
2-मेथिलपेन्टेन

(iii)
```
CH3 – CH2 – CH – CH2 – CH3
             |
             CH3
```
3-मेथिलपेन्टेन

(iv)
```
CH3 – CH – CH – CH3
      |    |
      CH3  CH3
```
2,3-डाइमेथिलब्यूटेन

(v)
```
      CH3
      |
CH3 – C – CH2 – CH3
      |
      CH3
```
2,2-डाइमेथिलब्यूटेन

कार्बन परमाणु से जुड़े हुए अन्य कार्बन परमाणुओं की संख्या के आधार पर कार्बन परमाणुओं को प्राथमिक (1°), द्वितीयक (2°), तृतीयक (3°) तथा चतुष्क (4°) कार्बन परमाणु कहते हैं। कार्बन परमाणु (जो अन्य कार्बन से नहीं जुड़ा हो, जैसे- मेथैन) में अथवा केवल एक कार्बन परमाणु से जुड़ा हो जैसे- एथेन में उसे 'प्राथमिक कार्बन' कहते हैं। अंतिम सिरे वाले परमाणु सदैव प्राथमिक होते हैं। कार्बन परमाणु, जो दो

कार्बन परमाणु से जुड़ा हो, उसे 'द्वितीयक' कहते हैं। तृतीयक कार्बन तीन कार्बन परमाणुओं से तथा नियो या चतुष्क कार्बन परमाणु चार अन्य कार्बन परमाणुओं से जुड़े होते हैं। क्या आप संरचनाएँ I से V में 1° 2° 3° तथा 4° कार्बन परमाणुओं की पहचान कर सकते हैं? यदि आप उच्चतर ऐल्केनों की संरचनाएँ बनाते रहेंगे, तो कई प्रकार के समावयव प्राप्त होंगे। C_6H_{14} के पाँच, C_7H_{16} के नौ तथा $C_{10}H_{22}$ के 75 समावयव संभव हैं।

संरचना II, IV तथा V में आपने देखा है कि $-CH_3$ समूह कार्बन क्रमांक -2 से जुड़ा है। ऐल्केन के कार्बन परमाणुओं या अन्य वर्गों के यौगिकों में $-CH_3$, $-C_2H_5$, $-C_3H_7$ जैसे

उदाहरण 13.2

C_5H_{11} अणुसूत्र वाले ऐल्किल समूह के विभिन्न समावयवों की संरचनाएँ लिखिए तथा विभिन्न कार्बन शृंखला पर -OH जोड़ने से प्राप्त ऐल्कोहॉलों के आई.यू.पी.ए.सी. नाम बताइए।

एकक 12 में पहले से चर्चित नाम पद्धति के सामान्य नियमों का स्मरण करते हुए प्रतिस्थापित ऐल्केनों के निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा नामकरण की अवधारणा को आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

हल
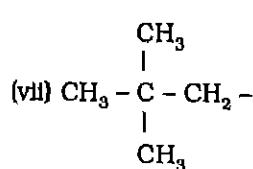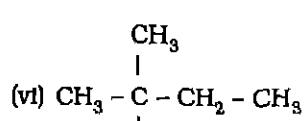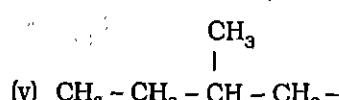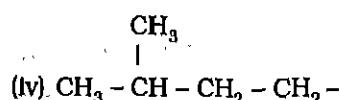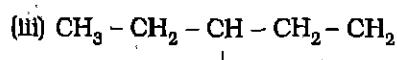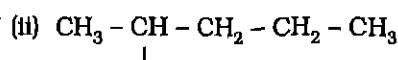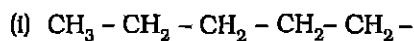
C_5H_{11} समूह की संरचना	संगत ऐल्कोहॉल
(i) $CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-CH_2-$	$CH_3-CH_2-CH_2-CH_2-CH_2-OH$ पेन्टेन-1-ऑल
(ii) $CH_3-\underset{\mid}{CH}-CH_2-CH_2-CH_3$	$CH_3-\underset{\underset{OH}{\mid}}{CH}-CH_2-CH_2-CH_3$ पेन्टेन-2-ऑल
(iii) $CH_3-CH_2-\underset{\mid}{CH}-CH_2-CH_2$	$CH_3-CH_2-\underset{\underset{OH}{\mid}}{CH}-CH_2-CH_3$ पेन्टेन-3-ऑल
(iv) $CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{CH}-CH_2-CH_2-$	$CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{CH}-CH_2-CH_2-OH$ 3- मेथिलब्यूटेन-1-ऑल
(v) $CH_3-CH_2-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{CH}-CH_2-$	$CH_3-CH_2-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{CH}-CH_2-OH$ 2- मेथलीब्यूटेन-1-ऑल
(vi) $CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{\underset{\mid}{C}}-CH_2-CH_3$	$CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{\underset{\underset{OH}{\mid}}{C}}-CH_2-CH_3$ 2- मेथिलब्यूटेन-2-ऑल
(vii) $CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{\underset{\underset{CH_3}{\mid}}{C}}-CH_2-$	$CH_3-\overset{\overset{CH_3}{\mid}}{\underset{\underset{CH_3}{\mid}}{C}}-CH_2OH$ 2,2- डाइमेथिलप्रोपेन-1-ऑल
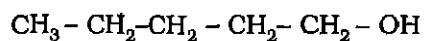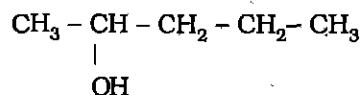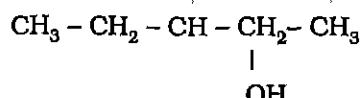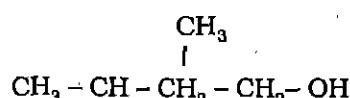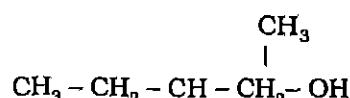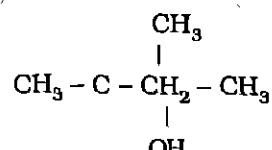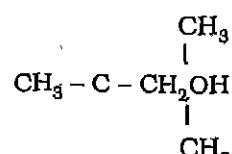
समूहों को 'ऐल्किल समूह' कहा जाता है, क्योंकि उन्हें ऐल्केन से हाइड्रोजन परमाणु के विस्थापन द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐल्किल समूह का सामान्य सूत्र C_nH_{2n+1} (एकक-12) है।

यदि दी गई संरचना का सही IUPAC नाम लिखना महत्त्वपूर्ण है, तो *IUPAC* नाम से सही संरचना कुछ कार्बनिक यौगिकों का नामकरण-सूत्र लिखना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए सर्वप्रथम जनक ऐल्केन के कार्बन परमाणुओं की दीर्घतम शृंखला को लिखेंगे। तत्पश्चात् उनका अंकन किया जाएगा। जिस कार्बन परमाणु पर प्रतिस्थापी जुड़ा हुआ है तथा अंत में हाइड्रोजन परमाणुओं की यथेष्ट संख्या द्वारा कार्बन परमाणु की संयोजकता को संतुष्ट किया जाएगा।

उदाहरण 13.3

निम्नलिखित यौगिकों के आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए-

(i) $(CH_3)_3CCH_2C(CH_3)_3$

(ii) $(CH_3)_2C(C_2H_5)_2$

(iii) टेट्रा-तृतीयक (टर्शियरी)-ब्यूटिलमेथैन

हल

(i) 2, 2, 4, 4-टेट्रामेथिलपेन्टेन

(ii) 3, 3-डाइमेथिलपेन्टेन

(iii) 3, 3-डाइ. तृतीयक (टर्शियरी)-ब्यूटिल-2, 2, 4, 4 -टेट्रामेथिलपेन्टेन

सारणी 13.1: कार्बनिक यौगिकों का नामकरण

संरचना तथा I.U.P.A.C. नाम	टिप्पणियाँ
(क) $^1CH_3-^2CH(CH_3)-^3CH_2-^4CH(CH_2-CH_3)-^5CH_2-^6CH_3$ (4- एथिल-2- मेथिलहैक्सेन)	न्यूनतम योग तथा वर्णमाला के क्रम में व्यवस्था
(ख) $^8CH_3-^7CH_2-^6CH_2-^5CH-^4CH-^3C-^2CH_2-^1CH_3$ (^5C पर CH (CH, CH,); ^4C पर CH_3; ^3C पर CH_2-CH_3 तथा CH_2-CH_3) (3,3-डाइऐथिल -5 आइसोप्रोपिल-4- मेथिलऑक्टेन)	न्यूनतम योग तथा वर्णमाला के क्रम में व्यवस्था
(ग) $^1CH_3-^2CH_2-^3CH_2-^4CH-^5CH-^6CH_2-^7CH_2-^8CH_2-^9CH_2-^{10}CH_3$ (^4C पर $CH(CH_3)_2$; ^5C पर $H_3C-CH-CH_2-CH_3$) (5-द्विती-ब्यूटिल-4-आइसोप्रोपिलडेकेन)	वर्णमाला के क्रम में द्वितीयक (*secondary*) को नहीं माना जाता है; आइसोप्रोपिल को एक शब्द मानते हैं।
(घ) $^1CH_3-^2CH_2-^3CH_2-^4CH_2-^5CH-^6CH_2-^7CH_2-^8CH_2-^9CH_3$ (^5C पर $CH_2-^2C(CH_3)(CH_3)-^3CH_3$) 5-(2,2-डाइमेथिलप्रोपिल) नोनेन	पार्श्व-शृंखला के प्रतिस्थापियों का पुनरांकन
(ङ) $^1CH_3-^2CH_2-^3CH(CH_2-CH_3)-^4CH_2-^5CH(CH_3)-^6CH_2-^7CH_3$ 3-एथिल-5-मेथिलहैप्टेन	वर्णमाला के प्राथमिकता क्रम में

उदाहरणार्थ–3-एथिल-2, 2-डाइमेथिलपेन्टेन की संरचना को निम्नलिखित पदों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है-

(i) पाँच कार्बन परमाणुओं की शृंखला बनाइए–
C-C-C-C-C

(ii) कार्बन परमाणुओं को अंकन दीजिए–
$C^1-C^2-C^3-C^4-C^5$

(iii) कार्बन-3 पर एक एथिल-समूह तथा कार्बन-2 पर दो मेथिल-समूह जोड़िए–

$$C^1-{}^2C(CH_3)_2-{}^3C(C_2H_5)-{}^4C-{}^5C$$
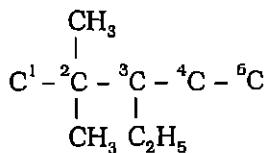
(iv) प्रत्येक कार्बन परमाणु की संयोजकता को आवश्यक हाइड्रोजन की संख्या से संतुष्ट कीजिए।

$$\overset{1}{C}H_3-\overset{2}{C}(CH_3)_2-\overset{3}{C}H(C_2H_5)-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_3$$
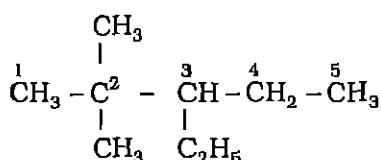
इस प्रकार हम सही संरचना पर पहुँच जाते हैं। यदि आप नाम के द्वारा संरचना-सूत्र लिखना समझ चुके हैं, तो निम्नलिखित प्रश्नों को हल कीजिए–

उदाहरण 13.4

निम्नलिखित यौगिकों के संरचनात्मक सूत्र लिखिए–

(i) 3, 4, 4, 5–टेट्रामेथिलहेप्टेन

(ii) 2,5-डाइमेथिलहेक्सेन

हल

(i) $$\overset{1}{C}H_3-\overset{2}{C}H_2-\overset{3}{C}H(CH_3)-\overset{4}{C}(CH_3)_2-\overset{5}{C}H(CH_3)-\overset{6}{C}H_2-\overset{7}{C}H_3$$

(ii) $$\overset{1}{C}H_3-\overset{2}{C}H(CH_3)-\overset{3}{C}H_2-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H(CH_3)-\overset{6}{C}H_3$$
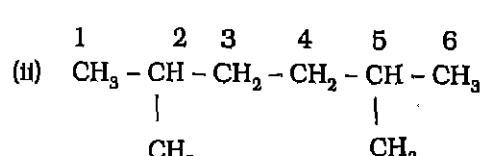
उदाहरण 13.5

निम्नलिखित यौगिकों की संरचनाएँ लिखिए। दिए गए नाम अशुद्ध क्यों हैं? सही आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए।

(i) 2-एथिलपेन्टेन

(ii) 5-एथिल-3-मेथिलहेप्टेन

हल

(i) $$CH_3-\overset{3}{C}H(\overset{2}{C}H_2\overset{1}{C}H_3)-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_2-\overset{6}{C}H_3$$
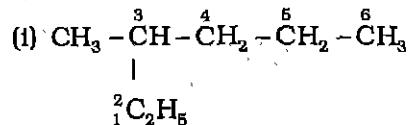
इस यौगिक में दीर्घतम शृंखला पाँच कार्बन की न होकर छः कार्बन की होती है। अतः सही नाम 3-मेथिलहैक्सेन है।

(ii)
7 6 5 4 3 2 1
1 2 3 4 5 6 7

$$CH_3-CH_2-CH(CH_3)-CH_2-CH(C_2H_5)-CH_2-CH_3$$
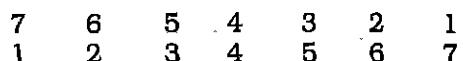
इस यौगिक में अंकन उस छोर से प्रारंभ करेंगे, जहाँ से ऐथिल समूह को कम अंक मिले। अतः सही नाम 3-ऐथिल- 5-मेथिलहैप्टेन है।

13.2.2 विरचन

ऐल्केन के मुख्य स्रोत पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस हैं फिर भी ऐल्केनों को इन विधियों द्वारा बनाया जा सकता है–

1. असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों से–

डाइहाइड्रोजन गैस सूक्ष्म विभाजित उत्प्रेरक (जैसे- प्लैटिनम, पैलेडियम तथा निकेल) की उपस्थिति में एल्कीन के साथ योग कर ऐल्केन बनाती है। इस प्रक्रिया को **हाइड्रोजनीकरण** (Hydrogenation) कहते हैं। ये धातुएँ हाइड्रोजन गैस को अपनी सतह पर अधिशोषित करती हैं और हाइड्रोजन-हाइड्रोजन आबंध को सक्रिय करती हैं। प्लैटीनम तथा पैलेडियम, कमरे के ताप पर ही अभिक्रिया को उत्प्रेरित कर देती है, परंतु निकेल उत्प्रेरक के लिए आपेक्षिक रूप से उच्च ताप तथा दाब की आवश्यकता होती है।

$$\underset{\text{एथीन}}{CH_2=CH_2}+H_2\xrightarrow{Pt/Pd/Ni}\underset{\text{एथेन}}{CH_3-CH_3} \quad (13.1)$$

$$CH_3-CH=CH+H_2 \xrightarrow{Pt/Pd/Ni} CH_3-CH_2-CH_3$$
प्रोपीन प्रोपेन (13.2)

$$CH_3-C\equiv C-H+H_2 \xrightarrow{Pt/Pd/Ni} CH_3-CH_2-CH_3$$
प्रोपीन प्रोपेन (13.3)
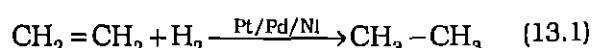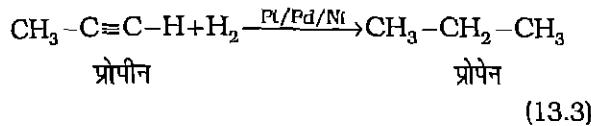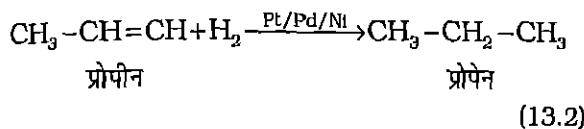
2. ऐल्किल हैलाइडों से–

(i) ऐल्किल हैलाइडों (फ्लुओराइडों के अलावा) का जिंक तथा तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा अपचयन करने पर ऐल्केन प्राप्त होते हैं।

$$CH_3-Cl+H_2 \xrightarrow{Zn,\,H^+} CH_4+Zn^{2+}$$
क्लोरोमेथेन मेथेन (13.4)

$$C_2H_5-Cl+H_2 \xrightarrow{Zn,\,H^+} C_2H_6+Zn^{2+}$$
क्लोरोएथेन एथेन (13.5)

$$CH_3CH_2CH_2Cl+H_2 \xrightarrow{Zn,\,H^+} CH_3CH_2CH_3+Zn^{2+}$$
क्लोरोप्रोपेन प्रोपेन (13.6)
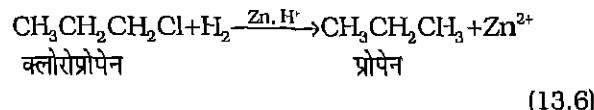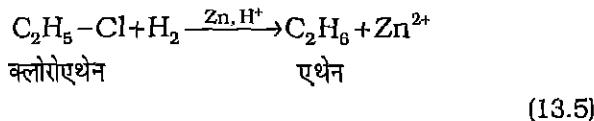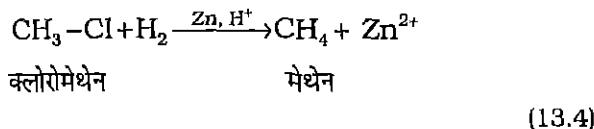
(ii) शुष्क ईथरीय विलयन (नमी से मुक्त) में ऐल्किल हैलाइड की सोडियम धातु के साथ अभिक्रिया द्वारा उच्चतर ऐल्केन प्राप्त होते हैं। इस अभिक्रिया को **वुर्ट्ज अभिक्रिया** (wurtz reaction) कहते हैं। यह सम कार्बन परमाणु संख्या वाली उच्चतर ऐल्केन बनाने के लिए प्रयुक्त की जाती है।

$$CH_3Br+2Na+BrCH_3 \xrightarrow{\text{शुष्क ईथर}} CH_3-CH_3+2NaBr$$
ब्रोमोमेथेन एथेन (13.7)

$$C_2H_5Br+2Na+BrC_2H_5 \xrightarrow{\text{शुष्क ईथर}} C_2H_5-C_2H_5+2NaBr$$
ब्रोमोएथेन *n*-ब्यूटेन (13.8)
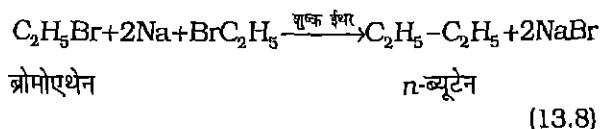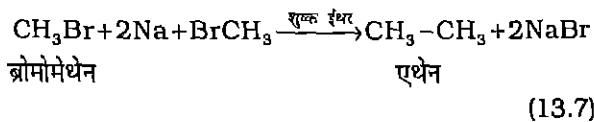
क्या होगा, यदि दो असमान ऐल्किल हैलाइड लेते हैं?

3. कार्बोक्सिलिक अम्लों से–

(i) कार्बोक्सिलिक अम्लों के सोडियम लवण को सोडा लाइम (सोडियम हाइड्रॉक्साइड एवं कैल्सियम ऑक्साइड के मिश्रण) के साथ गरम करने पर कार्बोक्सिलिक अम्ल से एक कम कार्बन परमाणु वाले ऐल्केन प्राप्त होते हैं। कार्बोक्सिलिक अम्ल से कार्बन डाइऑक्साइड के इस विलोपन को **विकार्बोक्सिलीकरण** (decarborytation) कहते हैं।

$$CH_3COO^-Na^++NaOH \xrightarrow[\Delta]{CaO} CH_4+Na_2CO_3$$
सोडियम एथेनोएट
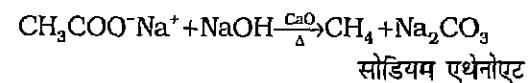
उदाहरण 13.6

प्रोपेन के विरचन के लिए किस अम्ल के सोडियम लवण की आवश्यकता होगी। अभिक्रिया का रासायनिक समीकरण भी लिखिए।

हल

ब्यूटेनोइक अम्ल

$$CH_3CH_2CH_2COO^-Na^+ + NaOH \xrightarrow{CaO} CH_3CH_2CH_3+Na_2CO_3$$
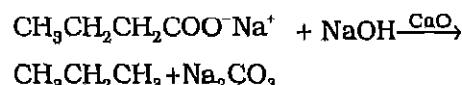
(ii) **कोल्बे की विद्युत्-अपघटनीय विधि** कार्बोक्सिलिक अम्लों के सोडियम अथवा पोटैशियम लवणों के जलीय विलयन का विद्युत्-अपघटन करने पर ऐनोड पर सम कार्बन परमाणु संख्या वाले ऐल्केन प्राप्त होते हैं।

$$2CH_3COO^-Na^++2H_2O \xrightarrow{\text{विद्युत्-अपघटन}} CH_3-CH_3 +2CO_2+H_2+2NaOH \quad (13.9)$$
सोडियम ऐसीटेट
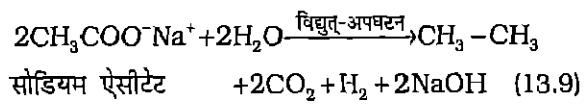
यह अभिक्रिया निम्नलिखित पदों में संपन्न होती है-

(ख) $2CH_3COO^-Na^+ \rightleftharpoons 2CH_3-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O+2Na^+$

(ख) **एनोड पर :**

$$2CH_3-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-O \xrightarrow{-2e^-} 2CH_3-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-\dot{O}: \longrightarrow 2\dot{C}H_3+2CO_2\uparrow$$
ऐसीटेट आयन ऐसीटेट मुक्त मूलक मेथिल मुक्त मूलक

(ग) $H_3\dot{C}+\dot{C}H_3 \longrightarrow H_3C-CH_3\uparrow$

(घ) **कैथोड पर**

$$H_2O+e^- \rightarrow {}^-OH+H^{\cdot}$$
$$2H^{\cdot} \rightarrow H_2\uparrow$$
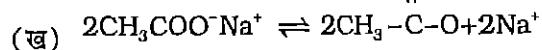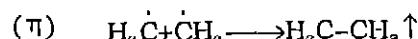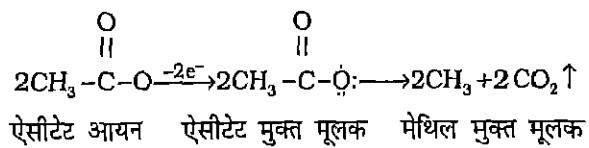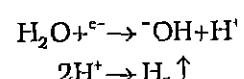
मेथैन इस विधि द्वारा नहीं बनाई जा सकती, क्यों?

13.2.3 गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म

एल्केन अणुओं में C-C तथा C-H आबंध के सहसंयोजक गुण तथा कार्बन एवं हाइड्रोजन परमाणुओं की विद्युत् ऋणात्मकता में बहुत कम अंतर के कारण लगभग सभी ऐल्केन अध्रुवीय होते हैं। इनके मध्य दुर्बल वान्डरवाल्स बल पाए जाते हैं। दुर्बल बलों के कारण ऐल्केन श्रेणी के प्रथम चार सदस्य C_1 से C_4 तक गैस, C_5 से C_{17} तक द्रव तथा C_{18} या उससे अधिक कार्बन युक्त ऐल्केन 298K पर ठोस होते हैं। ये रंगहीन तथा गंधहीन होते हैं। जल में ऐल्केन की विलेयता के लिए आप क्या सोचते हैं? पेट्रोल, हाइड्रोकार्बन का मिश्रण है, जिसका उपयोग स्वचालित वाहनों में ईंधन के रूप में किया जाता है। पेट्रोल तथा उसके निम्न प्रभाजों का उपयोग कपड़ों से ग्रीस के धब्बे हटाने, उनकी निर्जल धुलाई करने आदि के लिए किया जाता है।

इस प्रेक्षण के आधार पर ग्रीसी पदार्थों की प्रकृति के बारे में आप क्या सोचते हैं? आप सही हैं यदि आप कहते हैं कि ग्रीस (उच्च ऐल्केनों का मिश्रण) अध्रुवीय है अत: यह जल विरोधी प्रकृति का होगा तो विलायकों में पदार्थों की विलेयता के संबंध में सामान्यत: यह देखा गया है कि ध्रुवीय पदार्थ, ध्रुवीय विलायकों जबकि अध्रुवीय पदार्थ अध्रुवीय विलायकों में विलेय होते हैं, अर्थात् "समान समान को घोलता है"।

विभिन्न एल्केनों के क्वथनांक सारणी 13.1 में दिए गए हैं, जिसमें यह स्पष्ट है कि आण्विक द्रव्यमान में वृद्धि के साथ- साथ उनके क्वथनांकों में भी नियत वृद्धि होती है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि आण्विक आकार अथवा अणु का पृष्ठीय क्षेत्रफल बढ़ने के साथ-साथ उनमें आंतराण्विक वान्डरवाल्स बल बढ़ते हैं।

पेन्टेन के तीन समावयव ऐल्केनों (पेन्टेन, 2-मेथिल ब्यूटेन तथा 2, 2- डाइमेथिलप्रोपेन) के क्वथनांकों को देखने से यह पता लगता है कि पेन्टेन में पाँच कार्बन परमाणुओं की एक सतत् शृंखला का उच्च क्वथनांक (309.1K) है, जबकि 2,2- डाइमेथिलप्रोपेन 282.5K पर उबलती है। शाखित शृंखलाओं की संख्या के बढ़ने के साथ-साथ अणु की आकृति लगभग गोल हो जाती है, जिससे गोलाकार अणुओं में कम आपसी संपर्क स्थल तथा दुर्बल अंतराण्विक बल होते हैं। इसलिए इनके क्वथनांक कम होते हैं।

रासायनिक गुणधर्म

जैसा पहले बताया जा चुका है– अम्ल, क्षारक, ऑक्सीकारक एवं अपचायक पदार्थों के प्रति ऐल्केन सामान्यत: निष्क्रिय होते हैं। विशेष परिस्थितियों में ऐल्केन इन अभिक्रियाओं को प्रदर्शित करता है–

1. प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ

एल्केन के एक या अधिक हाइड्रोजन परमाणु हैलोजेन, नाइट्रोजन तथा सल्फोनिक अम्ल द्वारा प्रतिस्थापित हो जाते हैं। उच्च तापक्रम (573-773 K) या सूर्य के विसरित प्रकाश या पराबैंगनी विकिरणों की उपस्थिति में हैलोजेनीकरण होता है। कम अणुभार वाले ऐल्केन नाइट्रीकरण तथा सल्फोनीकरण नहीं दर्शाते हैं। वे अभिक्रियाओं, जिनमें ऐल्केनों के हाइड्रोजन परमाणु प्रतिस्थापित हो जाते हैं, को **प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ** कहते हैं। उदाहरणस्वरूप मेथैन का क्लोरीनीकरण नीचे दिया गया है–

हैलोजेनीकरण

$$CH_4 + Cl_2 \xrightarrow{h\nu} \underset{\text{क्लोरोमेथैन}}{CH_3Cl} + HCl \qquad (13.10)$$

$$CH_3Cl + Cl_2 \xrightarrow{h\nu} \underset{\text{डाइक्लोरोऐथैन}}{CH_2Cl_2} + HCl \qquad (13.11)$$

$$CH_2Cl_2 + Cl_2 \xrightarrow{h\nu} \underset{\text{ट्राइक्लोरोमेथैन}}{CHCl_3} + HCl \qquad (13.12)$$

$$CHCl_3 + Cl_2 \xrightarrow{h\nu} \underset{\text{टेट्रा क्लोरोमेथैन}}{CCl_4} + HCl \qquad (13.13)$$

$$CH_3\text{-}CH_3 + Cl_2 \xrightarrow{h\nu} \underset{\text{क्लोरोएथैन}}{CH_3\text{-}CH_2Cl} + HCl \qquad (13.14)$$
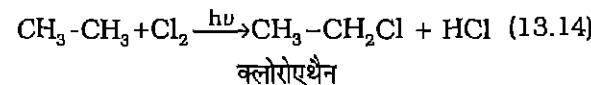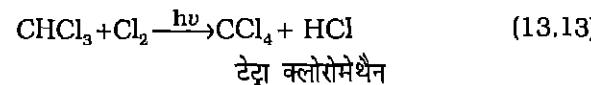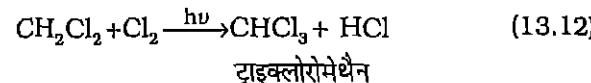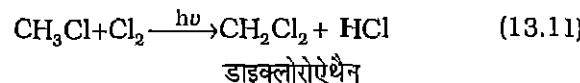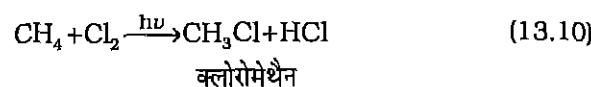
एल्केनों की हैलोजेन के साथ अभिक्रिया की गति का क्रम $F_2 >>> Cl_2 >> Br_2 > I_2$ है। ऐल्केनों के हाइड्रोजन के विस्थापन की दर 3°>2°>1° है। फ्लुओरीनीकरण प्रचंड व अनियंत्रित होता है जबकि आयोडीनीकरण बहुत धीमे होता है। यह एक उत्क्रमणीय अभिक्रिया है। यह अभिक्रिया ऑक्सीकारक (जैसे HIO_3 या HNO_3)की उपस्थिति में होती है।

$$CH_4 + I_2 \rightleftharpoons CH_3I + HI \qquad (13.15)$$

$$HIO_3 + 5HI \rightarrow 3I_2 + 3H_2O \qquad (13.16)$$

हैलोजेनीकरण मुक्त मूलक शृंखला क्रियाविधि द्वारा इन तीन पदों– समारंभन (initiation), संचरण (propagation) तथा समापन (termination) के द्वारा संपन्न होता है।

क्रियाविधि

(i) **समारंभन**- यह अभिक्रिया वायु तथा प्रकाश की उपस्थिति में क्लोरीन अणु के समांशन (homolysis) से समारंभित की जाती है। Cl-Cl आबंध, C-C तथा C-H की तुलना में दुर्बल है अत: यह आसानी से टूट जाता है।

$$Cl-Cl \xrightarrow[\text{समांश विदलन}]{h\upsilon} \dot{C}l + \dot{C}l$$

क्लोरीन मुक्त-मूलक

(ii) संचरण- क्लोरीन मुक्त-मूलक, मेथैन अणु पर आक्रमण करके C-H आबंध को तोड़कर HCl बनाते हुए मेथिल मुक्त मूलक बनाते हैं, जो अभिक्रिया को अग्र दिशा में ले जाते हैं।

(क) $$CH_4 + \dot{C}l \xrightarrow{h\upsilon} \dot{C}H_3 + H-Cl$$
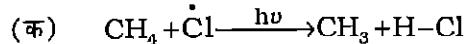
मेथिल मुक्त-मूलक क्लोरीन के दूसरे अणु पर आक्रमण करके CH_3-Cl तथा एक अन्य क्लोरीन मुक्त-मूलक बनाते हैं, जो क्लोरीन अणु के समांशन के कारण बनते हैं।

(ख) $$\dot{C}H_3 + Cl-Cl \xrightarrow{h\upsilon} CH_3-Cl + \dot{C}l$$
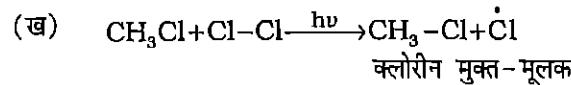
क्लोरीन मुक्त-मूलक

मेथिल तथा क्लोरीन मुक्त-मूलक, जो उपरोक्त पदों क्रमशः (क) तथा (ख) से प्राप्त होते हैं, पुनः व्यवस्थित होकर शृंखला अभिक्रिया का प्रारंभ करते हैं। संचरण पद (क) एवं (ख) सीधे ही मुख्य उत्पाद देते हैं किंतु अन्य कई संचरण पद संभव हैं ऐसे दो पद निम्नलिखित हैं जो अधिक हैलोजेनयुक्त उत्पादों के निर्माण को समझाते हैं।

$$CH_3Cl + \dot{C}l \rightarrow \dot{C}H_2Cl + HCl$$

$$\dot{C}H_2Cl + Cl-Cl \rightarrow CH_2Cl_2 + \dot{C}l$$

(iii) शृंखला समापन- कुछ समय पश्चात् अभिकर्मक की समाप्ति तथा विभिन्न पार्श्व अभिक्रियाओं के कारण अभिक्रिया समाप्त हो जाती है।

विभिन्न संभावित शृंखला समापन पद निम्नलिखित हैं:

(क) $\dot{C}l + \dot{C}l \rightarrow Cl-Cl$

(ख) $H_3\dot{C} + \dot{C}H_3 \rightarrow H_3C-CH_3$

(ग) $H_3\dot{C} + \dot{C}l \rightarrow H_3C-Cl$
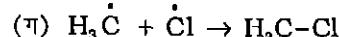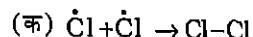
यद्यपि पद (ग) में CH_3-Cl एक उत्पाद बनता है, किंतु ऐसा होने में मुक्त मूलकों की कमी हो जाती है।

मेथैन के क्लोरीनीकरण के दौरान एथेन का उपोत्पाद (byproduct) के रूप में बनने के कारण को उपरोक्त क्रियाविधि द्वारा समझा जा सकता है।

2. दहन

ऐल्केन वायु तथा डाइऑक्सीजन की उपस्थिति में गरम करने पर पूर्णतः ऑक्सीकृत होकर कार्बन डाइऑक्साइड और जल बनाते हैं तथा साथ ही अधिक मात्रा में ऊष्मा निकलती है।

$$CH_4(g) + 2O_2(g) \longrightarrow CO_2(g) + 2H_2O(l); \quad -\Delta_cH^\ominus = -890\ kJ\ mol^{-1} \qquad (13.17)$$

$$C_4H_{10}(g) + 13/2\ O_2(g) \longrightarrow 4CO_2(g) + 5H_2O(l); \quad -\Delta_cH^\ominus = -2875.84\ kJ\ mol^{-1} \qquad (13.18)$$

सारणी 13.1 ऐल्केनों के क्वथनांकों एवं गलनांकों में परिवर्तन

आण्विक सूत्र	नाम	अणु भार (u)	क्वथनांक (K)	गलनांक (K)
CH_4	मेथैन	16	111.0	90.5
C_2H_6	एथेन	30	184.4	101.0
C_3H_8	प्रोपेन	44	230.9	85.3
C_4H_{10}	ब्यूटेन	58	272.4	134.6
C_4H_{10}	2.मेथिलप्रोपेन	58	261.0	114.7
C_5H_{12}	पेन्टेन	72	309.1	143.3
C_5H_{12}	2.मेथिलब्यूटेन	72	300.9	113.1
C_5H_{12}	2, 2-डाइमेथिलप्रोपेन	72	282.5	256.4
C_6H_{14}	हैक्सेन	86	341.9	178.5
C_7H_{16}	हैप्टेन	100	371.4	182.4
C_8H_{18}	ऑक्टेन	114	398.7	216.2
C_9H_{20}	नोनेन	128	423.8	222.0
$C_{10}H_{22}$	डेकेन	142	447.1	243.3
$C_{20}H_{42}$	आइकोसेन	282	615.0	236.2

किसी ऐल्केन के लिए सामान्य दहन अभिक्रिया निम्नलिखित होती है–

$$C_nH_{2n+2}+\left(\frac{3n+1}{2}\right)O_2 \longrightarrow nCO_2+(n+1)H_2O \quad (13.19)$$
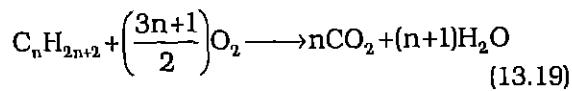
अधिक मात्रा में ऊष्मा निकलने के कारण ऐल्केनों को ईंधन के रूप में काम में लेते हैं।

ऐल्केनों का अपर्याप्त वायु तथा डाइऑक्सीजन द्वारा अपूर्ण दहन से कार्बन कज्जल (Black) बनता है, जिसका उपयोग स्याही, मुद्रण स्याही के काले वर्णक (pigments) एवं पूरक (filler) के रूप में होता है।

$$CH_4(g)+O_2(g) \xrightarrow{\text{अपूर्ण दहन}} C(s)+2H_2O(l) \quad (13.20)$$
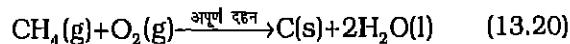
3. नियंत्रित ऑक्सीकरण

उच्च दाब, डाइऑक्सीजन तथा वायु के सतत् प्रवाह के साथ उपयुक्त उत्प्रेरक की उपस्थिति में ऐल्केनों को गरम करने पर कई प्रकार के ऑक्सीकारक उत्पाद बनते हैं।

i) $$2CH_4+O_2 \xrightarrow{Cu/523K/100\ \text{वायु}} \underset{\text{मेथेनॉल}}{2CH_3OH} \quad (13.21)$$

ii) $$CH_4+O_2 \xrightarrow[\Delta]{Mo_2O_3} \underset{\text{मेथेनॉल}}{HCHO}+H_2O \quad (13.22)$$

iii) $$2CH_3CH_3+3O_2 \xrightarrow[\Delta]{(CH_3COO)_2Mn} \underset{\text{एथेनोइक आल}}{2CH_3COOH}+2H_2O \quad (13.23)$$
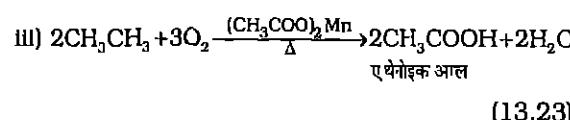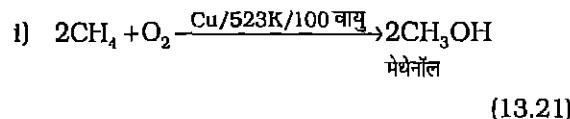
(iv) साधारणत: ऐल्केनों का ऑक्सीकरण नहीं होता, किंतु तृतीयक हाइड्रोजन (H) परमाणु वाले ऐल्केन पोटैशियम परमैंगनेट से ऑक्सीकृत होकर संगत ऐल्कोहॉल देते हैं।

$$\underset{\text{2–मेथिलप्रोपेन}}{(CH_3)_3CH} \xrightarrow[\text{ऑक्सीकरण}]{KMnO_4} \underset{\text{2–मेथिलप्रोपेन-2–ऑल}}{(CH_3)_3COH} \quad (13.24)$$
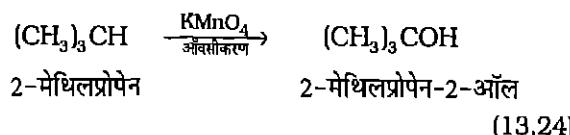
4. समावयवीकरण

n– ऐल्केन को निर्जल ऐलुमीनियम क्लोराइड तथा हाइड्रोजन क्लोराइड गैस की उपस्थिति में गरम करने पर वे उनके शाखित शृंखला वाले ऐल्केनों में समावयवीकृत हो जाते हैं। मुख्य उत्पाद नीचे दिए गए हैं तथा अन्य अल्प उत्पाद के बनने की संभावना भी होती है, जिसे आप सोच सकते हैं। अल्प उत्पादों का वर्णन समान्यत कार्बनिक अभिक्रियाओं में नहीं किया जाता है।

$$\underset{n\text{-हेक्सेन}}{CH_3(CH_2)_4CH_3} \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3/HCl} \underset{\text{2–मेथिलपेन्टेन}}{CH_3\underset{|}{\underset{CH_3}{CH}}-(CH_2)_2-CH_3} + \underset{\text{3–मेथिलपेन्टेन}}{CH_3CH_2-\underset{CH_3}{CH}-CH_2-CH_3} \quad (13.25)$$
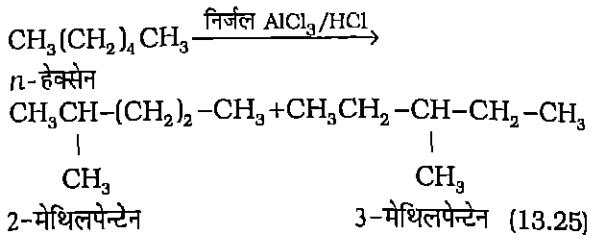
5. ऐरोमैटीकरण

छ: या छ: से अधिक कार्बन परमाणु वाले *n*– ऐल्केन ऐलुमिना आधारित वैनेडियम, मालिब्डेनम तथा क्रोमियम के ऑक्साइड की उपस्थिति में 773K तथा 10 से 20 वायुमंडलीय दाब पर गरम करने से विहाइड्रोजनीकृत होकर बेंजीन या उसके सजातीय व्युत्पन्न में चक्रीकृत हो जाते हैं। इस अभिक्रिया को ऐरोमैटीकरण (Aromatization) या पुनर्संभवन (Reforming) कहते हैं।

$$CH_3CH_2CH_2CH_2CH_2CH_3 \xrightarrow[773K,\ 10\text{-}20\ atm]{Cr_2O_3\ or\ V_2O_5\ or\ Mo_2O_3} C_6H_6 \longleftrightarrow C_6H_6 \quad (13.26)$$
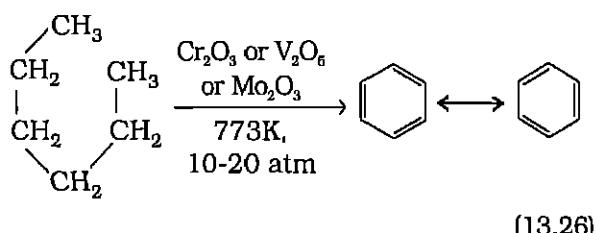
टॉलूईन, बेंजीन का मेथिल व्युत्पन्न है। टॉलूईन के विरचन के लिए आप कौन सी ऐल्केन सुझाएँगे।

6. भाप के साथ अभिक्रिया

मेथैन भाप के साथ निकेल उत्प्रेरक की उपस्थिति में 1273K पर गरम करने पर कार्बन मोनोऑक्साइड तथा डाइहाइड्रोजन देती है। यह विधि डाइहॉइड्रोजन के औद्योगिक उत्पादन में अपनाई जाती है।

$$CH_4+H_2O \xrightarrow[\Delta]{Ni} CO+3H_2 \quad (13.27)$$
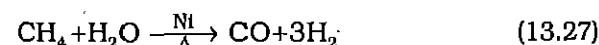
7. ताप–अपघटन

उच्चतर ऐल्केन उच्च ताप पर गरम करने पर निम्नतर ऐल्केनों या एल्कीनों में अपघटित हो जाते हैं। ऊष्मा के अनुप्रयोग से छोटे विखंड बनने की ऐसी अपघटनी अभिक्रिया को ताप-अपघटन (pyrolysis) या भंजन (cracking) कहते हैं।

$$C_6H_{14} \xrightarrow{773K} \begin{cases} C_6H_{12} + H_2 \\ C_4H_8 + C_2H_6 \\ C_3H_6 + C_2H_4 + CH_4 \end{cases} \quad (13.28)$$
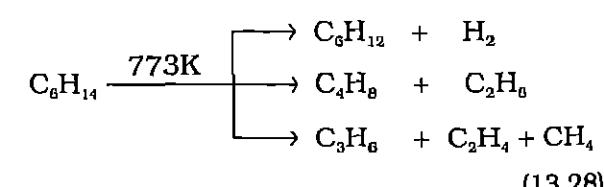
एल्केनों का भंजन एक मुक्त–मूलक अभिक्रिया मानी जाती है। कैरोसिन तेल या पेट्रोल से प्राप्त तेल गैस या पेट्रोल

गैस बनाने में भंजन के सिद्धांत का उपयोग होता है। उदाहरणस्वरूप डोडेकेन (जो कैरोसिन तेल का घटक है) को 973K पर प्लेटीनम, पैलैडियम अथवा निकेल की उपस्थिति में गरम करने पर हेप्टेन तथा पेन्टीन का मिश्रण प्राप्त होता है।

$$C_{12}H_{26} \xrightarrow[Pt/Pd/Ni]{973K} C_7H_{16} + C_5H_{10} + \text{अन्य उत्पाद}$$

डोडेकेन हेप्टेन पेन्टेन

(13.29)
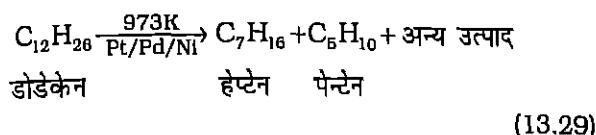
13.2.4 संरूपण

ऐल्केनों में कार्बन-कार्बन सिग्मा (σ) आबंध होता है। कार्बन-कार्बन (C–C) आबंध के अंतरनाभिकीय अक्ष के चारों ओर सिग्मा आण्विक कक्षक के इलेक्ट्रॉन का वितरण सममित होता है। इस कारण C–C एकल आबंध के चारों ओर मुक्त घूर्णन होता है। इस घूर्णन के कारण त्रिविम में अणुओं के विभिन्न त्रिविमीय विन्यास होते हैं। फलतः विभिन्न समावयव एक-दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। ऐसे परमाणुओं की त्रिविम व्यवस्थाएँ (जो C–C एकल आबंध के घूर्णन के कारण एक-दूसरे में परिवर्तित हो जाती हैं) संरूपण, **संरूपणीय समावयव** या **घूर्णी** (Rotamers) कहलाती हैं। अत: C–C एकल आबंध के घूर्णन के कारण ऐल्केन में असंख्य संरूपण संभव है। यद्यपि यह ध्यान रहे कि C–C एकल आबंध का घूर्णन पूर्णतः मुक्त नहीं होता है। यह प्रतिकर्षण अन्योन्य क्रिया के कारण होता है। यह 1 से 20 $kJmol^{-1}$ तक ऊर्जा द्वारा बाधित है। निकटवर्ती कार्बन परमाणुओं के मध्य इस क्षीण बल को **मरोड़ी विकृति** (torsional strain) कहते हैं।

ऐथेन के संरूपण : एथेन अणु में कार्बन-कार्बन एकल आबंध होता है, जिसमें प्रत्येक कार्बन परमाणु पर तीन हाइड्रोजन परमाणु जुड़े रहते हैं। एथेन के बॉल एवं स्टिक मॉडल को लेकर यदि हम एक कार्बन को स्थिर रखकर दूसरे कार्बन परमाणु को C–C अक्ष पर घूर्णन कराएँ, तो एक कार्बन परमाणु के हाइड्रोजन दूसरे कार्बन परमाणु के हाइड्रोजन के संदर्भ में असंख्य त्रिविमीय व्यवस्था प्रदर्शित करते हैं। इन्हें **संरूपणीय समावयव (संरूपण)** कहते हैं। अत: ऐथेन के असंख्य संरूपण होते हैं। हालाँकि इनमें से दो संरूपण चरम होते हैं। एक रूप में दोनों कार्बन के हाइड्रोजन परमाणु एक-दूसरे के अधिक पास हो जाते हैं। उसे **ग्रस्त** (Eclipsed) रूप कहते हैं। दूसरे रूप में, हाइड्रोजन परमाणु दूसरे कार्बन के हाइड्रोजन परमाणुओं से अधिकतम दूरी पर होते हैं। उन्हें **सांतरित** (staggered) रूप कहते हैं। इनके अलावा कोई भी मध्यवर्ती संरूपण विषमतलीय (skew) संरूपण कहलाता है। यह ध्यान रहे कि सभी संरूपणों में आबंध कोण तथा आबंध लंबाई समान रहती है। ग्रस्त तथा सांतरित तथा संरूपणों को **सॉहार्स** तथा **न्यूमैन प्रक्षेप** (Newmen projection) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

1. सॉहार्स प्रक्षेप

इस प्रक्षेपण में अणु को आण्विक अक्ष की दिशा में देखा जाता है। कागज पर केंद्रीय C–C आबंध को दिखाने के लिए दाईं या बाईं ओर झुकी हुई एक सीधी रेखा खींची जाती है। इस रेखा को कुछ लंबा बनाया जाता है। आगे वाले कार्बन को नीचे बाईं ओर तथा पीछे वाले कार्बन को ऊपर दाईं ओर से प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक कार्बन से संलग्न तीन हाइड्रोजन परमाणुओं को तीन रेखाएँ खींचकर दिखाया जाता है। ये रेखाएँ एक-दूसरे से 120° का कोण बनाकर झुकी होती हैं। एथेन के ग्रस्त एवं सांतरित सॉहार्स प्रक्षेप चित्र 13.2 में दर्शाए गए हैं।

(i) ग्रस्त प्रक्षेप (ii) सांतरित प्रक्षेप
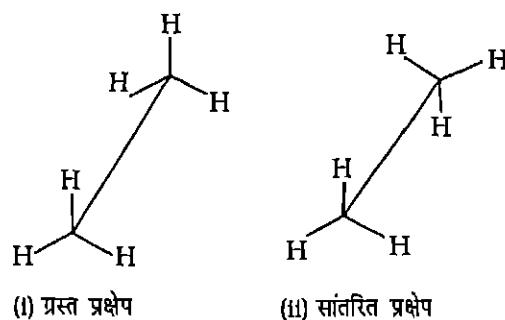
चित्र 13.2 एथेन के साहार्स प्रक्षेप

2. न्यूमैन प्रक्षेप

इस प्रक्षेपण में अणु को सामने से देखा जाता है। आँख के पास वाले कार्बन को एक बिंदु द्वारा दिखाया जाता है और उससे जुड़े तीन हाइड्रोजन परमाणुओं को 120° कोण पर खींची तीन

घूर्णन कोण या मरोड़ी कोण या द्वितल कोण

(i) ग्रस्त (ii) सांतरित
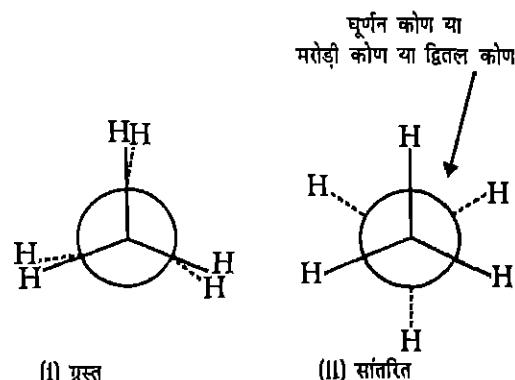
चित्र 13.3 एथेन के न्यूमैन प्रक्षेप.

रेखाओं के सिरों पर लिखकर प्रदर्शित किया जाता है। पीछे (आँख से दूर) वाले कार्बन को एक वृत्त द्वारा दर्शाते हैं तथा इसमें आबंधित हाइड्रोजन परमाणुओं को वृत्त की परिधि से परस्पर 120° के कोण पर स्थित तीन छोटी रेखाओं से जुड़े हुए दिखाया जाता है। एथेन के न्यूमैन प्रक्षेपण चित्र 13.3 में दिखाए गए हैं।

संरूपणों का आपेक्षिक स्थायित्व : जैसा पहले बताया जा चुका है, एथेन के सांतरित रूप में कार्बन-हाइड्रोजन आबंध के इलेक्ट्रॉन अभ्र एक-दूसरे से अधिकतम दूरी पर होते हैं। अतः उनमें न्यूनतम प्रतिकर्षण बल न्यूनतम ऊर्जा तथा अणु का अधिकतम स्थायित्व होता है। दूसरी ओर, जब सांतरित को ग्रस्त रूप में परिवर्तित करते हैं, तब कार्बन-हाइड्रोजन आबंध के इलेक्ट्रॉन अभ्र एक-दूसरे के इतने निकट होते हैं कि उनके इलेक्ट्रॉन अभ्रों के मध्य प्रतिकर्षण बढ़ जाता है। इस बढ़े हुए प्रतिकर्षी बल को दूर करने के लिए अणु में कुछ अधिक ऊर्जा निहित होती है। इसलिए इसका स्थायित्व कम हो जाता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, इलेक्ट्रॉन अभ्र के मध्य प्रतिकर्षी अन्योन्य क्रिया, जो संरूपण के स्थायित्व को प्रभावित करती है, को **मरोड़ी विकृति** कहते हैं। मरोड़ी विकृति का परिणाम C-C एकल आबंध के घूर्णन कोण पर निर्भर करता है। इस कोण को **द्वितल कोण** या **मरोड़ी कोण** भी कहते हैं। एथेन के सभी संरूपणों में मरोड़ी कोण सांतरित रूप में न्यूनतम तथा ग्रस्त रूप में अधिकतम होता है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि एथेन में C-C (आबंध) का घूर्णन पूर्णतः मुक्त नहीं है। दो चरम रूपों के मध्य ऊर्जा का अंतर 12.5 kJ mol^{-1} है, जो बहुत कम है। सामान्य ताप पर अंतराण्विक संघट्टों (Collisions) के द्वारा एथेन अणु में तापीय तथा गतिज ऊर्जा होती है, जो 12.5 kJ mol^{-1} के ऊर्जा-अवरोध को पार करने में सक्षम होती है। अतः एथेन में कार्बन-कार्बन एकल आबंध का घूर्णन सभी प्रायोगिक कार्य के लिए लगभग मुक्त है। एथेन के संरूपणों को पृथक् तथा वियोजित करना संभव नहीं है।

13.3 एल्कीन

एल्कीन द्विआबंधयुक्त असंतृप्त हाइड्रोकार्बन होते हैं। एल्कीनों का सामान्य सूत्र क्या होना चाहिए? अगर एल्कीन में दो कार्बन परमाणुओं के मध्य एक द्विआबंध उपस्थित है, तो उनमें ऐल्केन से दो हाइड्रोजन परमाणु कम होने चाहिए। इस प्रकार एल्कीनों का सामान्य सूत्र C_nH_{2n} होना चाहिए। एल्कीनों के प्रथम सदस्य एथिलीन अथवा एथीन (C_2H_4) की अभिक्रिया क्लोरीन से कराने पर तैलीय द्रव प्राप्त होता है। अतः एल्कीनों को **ओलीफीन** (तैलीय यौगिक बनाने वाले) भी कहते हैं।

13.3.1 द्विआबंध की संरचना

एल्कीनों में C = C द्विआबंध है, जिसमें एक प्रबल सिग्मा (σ) आबंध (बंध एंथैल्पी लगभग 397 kJmol^{-1} है) होता है, जो दो कार्बन परमाणुओं के sp^2 संकरित कक्षकों के सम्मुख अतिव्यापन से बनता है। इसमें दो कार्बन परमाणुओं के 2p असंकरित कक्षकों के संपार्श्विक अतिव्यापन करने पर एक दुर्बल पाई (π) बंध, (बंध एन्थैल्पी 284 kJ mol^{-1} है) बनता है।

C–C एकल आबंध लंबाई (1.54 pm) की तुलना में C = C द्विआबंध लंबाई (1.34 pm) छोटी होती है। आपने पूर्व में अध्ययन किया है कि पाई (π) आबंध दो p कक्षकों के दुर्बल अतिव्यापन के कारण दुर्बल होते हैं। अतः पाई (π) आबंध वाले एल्कीनों को **दुर्बल बंधित गतिशील इलेक्ट्रॉनों का स्रोत** कहा जाता है। अतः एल्कीनों पर उन अभिकर्मकों अथवा यौगिकों, जो इलेक्ट्रॉन की खोज में हों, का आक्रमण आसानी से हो जाता है। ऐसे अभिकर्मकों को **इलेक्ट्रॉनस्नेही अभिकर्मक** कहते हैं। दुर्बल π आबंध की उपस्थिति एल्कीन अणुओं को ऐल्केन की तुलना में अस्थायी बनाती है। अतः एल्कीन इलेक्ट्रॉनस्नेही अभिकर्मकों के साथ संयुक्त होकर एकल आबंध-युक्त यौगिक बनाते हैं। C–C द्विआबंध की सामर्थ्य (बंध एंथैल्पी, 681 kJ mol^{-1}) एथेन के कार्बन-कार्बन एकल आबंध (आबंध एंथैल्पी, 348 kJ mol^{-1}) की तुलना में अधिक होती है। एथीन अणु का कक्षक आरेख चित्र-संख्या 13.4 तथा 13.5 में दर्शाया गया है।
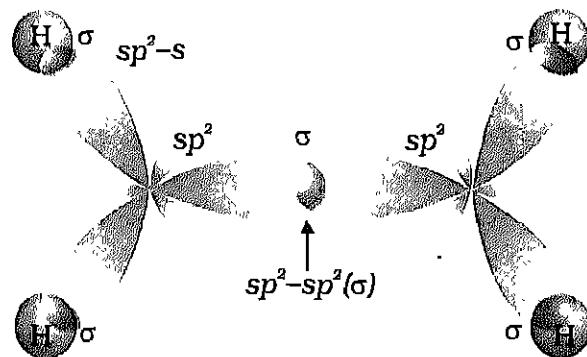
चित्र 13.4 एथीन का कक्षीय आरेख केवल σ बंधों को चित्रित करते हुए

13.3.2 नाम-पद्धति

एल्कीनों के आई.यू.पी.ए.सी. नाम पद्धति के लिए द्विआबंध युक्त दीर्घतम कार्बन परमाणुओं की श्रृंखला में, अनुलग्न 'ऐन' के स्थान पर अनुलग्न 'ईन' (ene) का प्रयोग किया जाता है। स्मरण रहे कि एल्कीन श्रेणी का प्रथम सदस्य है : CH_2
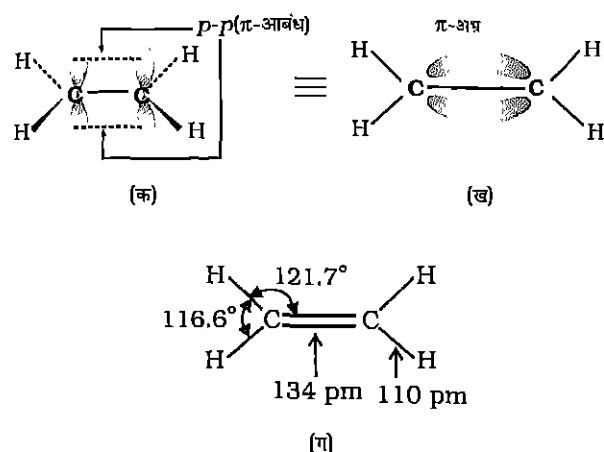
चित्र 13.5 एथीन का कक्षीय आरेख (क) π आबंध बनना (ख) π-अभ्र का बनना तथा (ग) आबंध कोण तथा आबंध लंबाई

(C_nH_{2n} में n को 1 द्वारा प्रतिस्थापित करने पर), जिसे **मेथैन** कहते हैं। इसकी आयु अल्प होती है। जैसा पहले प्रदर्शित किया गया है, एल्कीन श्रेणी के प्रथम स्थायी सदस्य C_2H_4 को **एथिलीन** (सामान्य नाम) या **एथीन** (आई.यू.पी.ए.सी. नाम) कहते हैं। कुछ एल्कीनों सदस्यों के आई.यू.पी.ए.सी नाम नीचे दिए गए हैं–

संरचना	**IUPAC नाम**
$CH_3-CH=CH_2$	प्रोपीन
$CH_3-CH_2-CH=CH_2$	ब्यूट - 1 - ईन
$CH_3-CH=CH-CH_3$	ब्यूट - 2 - ईन
$CH_2=CH-CH=CH_2$	ब्यूट - 1, 3 - डाइईन
$CH_2=C(CH_3)-CH_3$	2-मेथिलप्रोप-1-ईन
$\overset{1}{C}H_2=\overset{2}{C}H-\overset{3}{C}H(CH_3)-\overset{4}{C}H_3$	3-मेथिलब्यूट-1-ईन

उदाहरण 13.7

निम्नलिखित यौगिकों के आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए-

(i) $(CH_3)_2CH-CH=CH-CH_2-CH=CH-CH(C_2H_5)-CH_3$

(ii) [रेखा संरचना]

(iii) $CH_2=C(CH_2CH_2CH_3)_2$

(iv) $CH_3CH_2CH_2CH_2-CH(CH_3)... $: $CH_3-CH(CH_2CH_2CH_2CH_3)CH=C(CH_2CH_3)-CH_2-CH(CH_3)CH_3$

हल

(i) 2, 8-डाइमेथिल डेका-3, 6-डाईन

(ii) 1, 3, 5, 7 ऑक्टॉटेट्राईन

(iii) 2-n-प्रोपिलपेन्ट-1 ईन

(iv) 4-एथिल-2,6-डाइमेथिल-डेक-4-ईन

उदाहरण 13.8 ऊपर दी गईं संरचनाओं (i-iv) में सिग्मा (σ) तथा पाई (π) आबंधों की संख्या का परिकलन कीजिए।

हल

(i) σ बंध : 33, π बंध : 2

(ii) σ बंध : 17, π बंध : 4

(iii) σ बंध : 23, π बंध : 1

(iv) σ बंध : 41, π बंध : 1

13.3.3 समावयता

एल्कीनों द्वारा संरचनात्मक एवं ज्यामितीय समावयवता प्रदर्शित की जाती है।

संरचनात्मक समावयवता- एल्केनों की भाँति एथीन (C_2H_4) तथा प्रोपीन (C_3H_6) में केवल एक ही संरचना होती है, किंतु प्रोपीन से उच्चतर एल्कीनों में भिन्न संरचनाएँ होती हैं।

C_4H_8 अणुसूत्र वाली एल्कीन को तीन प्रकार से लिख सकते हैं।

$\overset{1}{C}H_2=\overset{2}{C}H-\overset{3}{C}H_2-\overset{4}{C}H_3$

I. ब्यूट-1-ईन

$$\overset{1}{CH_3} - \overset{2}{CH} = \overset{3}{CH} - \overset{4}{CH_3}$$

II. ब्यूट-2-ईन

$$\overset{1}{CH_2} = \overset{2}{C}(CH_3) - \overset{3}{CH_3}$$
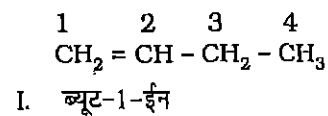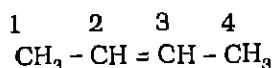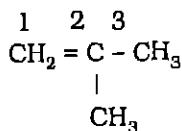
III. 2-मेथिलप्रोप-1-ईन

संरचना I एवं III तथा II एवं III श्रृंखला समावयवता के उदाहरण हैं, जबकि संरचना I एवं II स्थिति समावयव हैं।

उदाहरण 13.9

C_5H_{10} के संगत एल्कीनों के विभिन्न संरचनात्मक समावयवियों के संरचना-सूत्र एवं आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए।

हल

(क) $CH_2 = CH - CH_2 - CH_2 - CH_3$
पेन्ट-1-ईन

(ख) $CH_3 - CH=CH - CH_2 - CH_3$
पेन्ट-2-ईन

(ग) $CH_3 - C(CH_3) = CH - CH_3$
2-मेथिलब्यूट-2-ईन

(घ) $CH_3 - CH(CH_3) - CH = CH_2$
3-मेथिलब्यूट-1-ईन
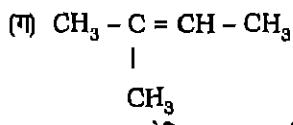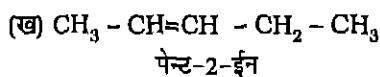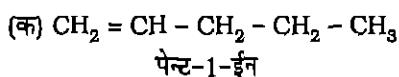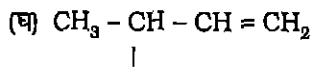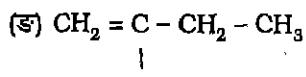
(ङ) $CH_2 = C(CH_3) - CH_2 - CH_3$
2-मेथिलब्यूट-1-ईन

ज्यामितीय समावयवता : द्विआबंधित कार्बन परमाणुओं की बची हुई दो संयोजकताओं को दो परमाणु या समूह जुड़कर संतुष्ट करते हैं। अगर प्रत्येक कार्बन से जुड़े दो परमाणु या समूह भिन्न-भिन्न हैं तो इसे YXC=CXY द्वारा प्रदर्शित करते हैं। ऐसी संरचनाओं को दिक् में इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है–

$$\begin{array}{cc} XYC{=}CXY & XYC{=}CYX \\ \text{(क)} & \text{(ख)} \end{array}$$
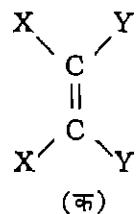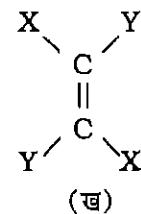
संरचना 'क' में एक समान दो परमाणुओं (दोनों X या दोनों Y) द्विआबंधित कार्बन परमाणुओं के एक ही ओर स्थित होते हैं। संरचना 'ख' में दोनों X अथवा दोनों Y द्विआबंध कार्बन की दूसरी तरफ या द्विआबंधित कार्बन परमाणु के विपरीत स्थित होते हैं, जो विभिन्न ज्यामिति समावयवता दर्शाते हैं, जिसका दिक् में परमाणु या समूहों की भिन्न स्थितियों के कारण विन्यास भिन्न होता है। अतः ये **त्रिविम समावयवी** (stereoisomer) हैं। इनकी समान ज्यामिति तब होती है, जब द्विआबंधित कार्बन परमाणुओं या समूहों का घूर्णन हो सकता है, किंतु C=C द्विआबंध में मुक्त घूर्णन नहीं होता। यह प्रतिबंधित होता है। इस तथ्य को समझने के लिए दो सख्त कार्डबोर्ड के टुकड़े लीजिए और दो कीलों की सहायता से उन्हें संलग्न कर दीजिए। एक कार्डबोर्ड को हाथ से पकड़कर दूसरे कार्डबोर्ड को घूर्णित करने का प्रयास कीजिए। क्या वास्तव में आप दूसरे कार्ड-बोर्ड का घूर्णन कर सकते हैं? नहीं, क्योंकि घूर्णन प्रतिबंधित हैं। अतः परमाणुओं अथवा समूहों के द्विआबंधित कार्बन परमाणुओं के मध्य प्रतिबंधित घूर्णन के कारण यौगिकों द्वारा भिन्न ज्यामितियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। इस प्रकार के **त्रिविम समावयव**, जिसमें दो समान परमाणु या समूह एक ही ओर स्थित हों, उन्हें **समपक्ष** (cis) कहा जाता है, जबकि दूसरे समावयवी, जिसमें दो समान परमाणु या समूह विपरीत ओर स्थित हों, **विपक्ष** (trans) **समावयव** कहलाते हैं। इसलिए दिक् में समपक्ष तथा विपक्ष समावयवों की संरचना समान होती है, किंतु विन्यास भिन्न होता है। दिक् में परमाणुओं या समूहों की भिन्न व्यवस्थाओं के कारण ये समावयवी उनके गुणों (जैसे–गलनांक, क्वथनांक द्विध्रुव आघूर्ण, विलेयता आदि) में भिन्नता दर्शाते हैं। ब्यूट-2-ईन की ज्यामितीय समावयवता अथवा समपक्ष-विपक्ष समावयवता को निम्नलिखित संरचना द्वारा प्रदर्शित किया जाता है–

$$(CH_3)(H)C{=}C(CH_3)(H) \qquad (CH_3)(H)C{=}C(H)(CH_3)$$
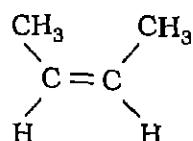
समपक्ष-ब्यूट-2-ईन (क्वथनांक 277 K)
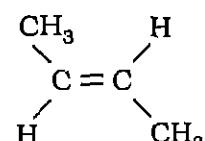
विपक्ष-ब्यूट-2-ईन (क्वथनांक 274 K)

एल्कीन का समपक्ष रूप विपक्ष की तुलना में अधिक ध्रुवीय होता है। उदाहरणस्वरूप–समपक्ष ब्यूट-2-ईन का द्विध्रुव आघूर्ण 0.350 डिबाई है, जबकि विपक्ष ब्यूट-2-ईन का लगभग शून्य होता है। अत: विपक्ष ब्यूट-2-ईन अध्रुवीय है। इन दोनों रूपों की निम्नांकित विभिन्न ज्यामितियों को बनाने से यह पाया गया है कि विपक्ष-ब्यूट-2-ईन के दोनों मेथिल समूह, जो विपरीत दिशाओं में होते हैं, प्रत्येक C-CH_3 आबंध के कारण ध्रुवणता को नष्ट करके विपक्ष रूप को इस प्रकार अध्रुवीय बनाते हैं–

$\overset{\delta+}{CH_3}(\overset{\delta-}{C})H=(\overset{\delta-}{C})H\overset{\delta+}{CH_3}$ (समपक्ष) — समपक्ष-ब्यूट-2-ईन (μ= 0.35D)

$\overset{\delta+}{CH_3}(\overset{\delta-}{C})H=(\overset{\delta-}{C})H\overset{\delta+}{CH_3}$ (विपक्ष) — विपक्ष-ब्यूट-2-ईन (μ= 0)
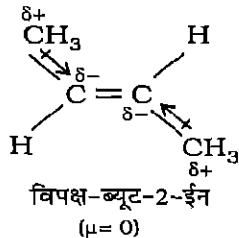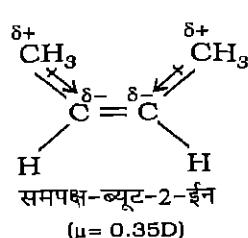
ठोसों में विपक्ष समावयवियों के गलनांक समपक्ष समावयवियों की तुलना में अधिक होते हैं।

ज्यामितीय या समपक्ष (Cis) विपक्ष (Trans) समावयवता, XYC=CXZ तथा XYC=CZW प्रकार की एल्कीनों द्वारा भी प्रदर्शित की जाती है।

उदाहरण 13.10

निम्नलिखित यौगिकों के समपक्ष (cis) तथा विपक्ष (trans) समावयव बनाइए और उनके आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए।

हल

(i) H(Cl)C=C(Cl)H (दोनों H एक ओर) — समपक्ष-1, 2-डाइक्लोरोएथीन; H(Cl)C=C(H)Cl (H विपरीत ओर) — विपक्ष-1, 2-डाइक्लोरोएथीन

(ii) $CH_3(C_2H_5)C=C(C_2H_5)CH_3$ (दोनों CH_3 एक ओर) — समपक्ष-3, 4-डाइमेथिल हेक्स-3-ईन; $CH_3(C_2H_5)C=C(CH_3)C_2H_5$ (CH_3 विपरीत ओर) — विपक्ष-3, 4-डाइमेथिल हेक्स-3-ईन
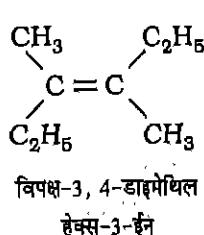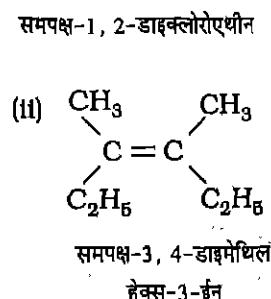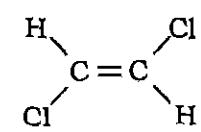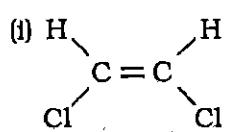
उदाहरण 13.11

निम्नलिखित में से कौन से यौगिक समपक्ष-विपक्ष समावयवता प्रदर्शित करते हैं?

(i) $(CH_3)_2C = CH - C_2H_5$

(ii) $CH_2 = CBr_2$

(iii) $C_6H_5CH = CH - CH_3$

(iv) $CH_3CH = CCl\ CH_3$

हल

यौगिक iii तथा iv

13.3.4 विरचन

1. **एल्काइनों से :** एल्काइनों के डाइहाइड्रोजन की परिकलित मात्रा के साथ पैलेडिकृत चारकोल की उपस्थिति में जिसे सल्फर जैसे विषाक्त यौगिकों द्वारा आंशिक निष्क्रिय किया गया हो तो इसके आंशिक अपचयन पर एल्कीन प्राप्त होते हैं। आंशिक रूप से निष्क्रिय पैलेडिकृत चारकोल को **लिंडलार अभिकर्मक** (Lindlar's catalyst) कहते हैं। इस प्रकार प्राप्त एल्कीनों की समपक्ष ज्यामिती होती है। एल्काइनों के सोडियम तथा द्रव अमोनिया के साथ अपचयन करने पर विपक्ष समावयव वाले एल्कीन बनते हैं।

(i) $RC \equiv CR' + H_2 \xrightarrow{Pd/C}$ R(H)C=C(H)R' — एल्कीन → समपक्ष एल्कीन (13.30)

(ii) $RC \equiv CR' + H_2 \xrightarrow{Na/\text{द्रव } NH_3}$ R(H)C=C(R')H — एल्कीन → विपक्ष एल्कीन (13.31)

(iii) $CH \equiv CH + H_2 \xrightarrow{Pd/C} CH_2 = CH_2$ (13.32)
एथाइन → एथीन

(iv) $CH_3 - C \equiv CH + H_2 \xrightarrow{Pd/C} CH_3 - CH = CH_2$
प्रोपाइन → प्रोपीन (13.33)
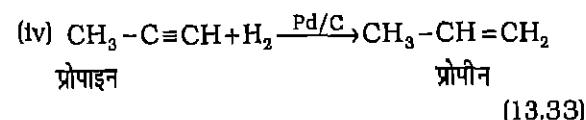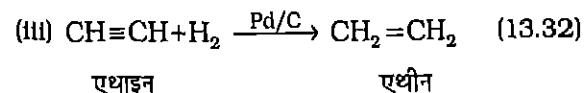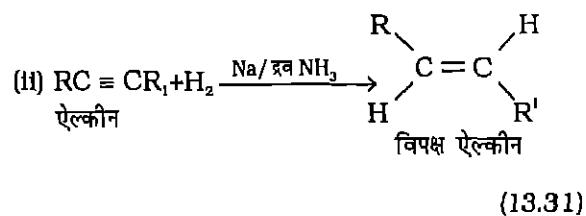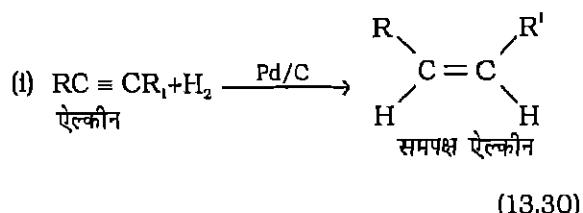
क्या इस प्रकार प्राप्त प्रोपीन ज्यामिती समावयवता प्रदर्शित करेगी? अपने उत्तर की पुष्टि के लिए कारण खोजिए।

2. **ऐल्किल हैलाइडों से :** ऐल्किल हैलाइड (R-X) को ऐल्कोहॉली पोटाश (जैसे–ऐथेनॉल में विलेय पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड) की उपस्थिति में गरम करने पर हैलोजेन अम्ल के अणु के विलोचन पर एल्कीन बनते हैं। इस अभिक्रिया को **विहाइड्रोहैलोजेनीकरण** कहते हैं, जिसमें हैलोजेन अम्ल का विलोपन होता है। यह एक β– विलोपन अभिक्रिया का उदाहरण है। चूँकि β– कार्बन परमाणु (जिस कार्बन से हैलोजेन परमाणु जुड़ा हो, उसके अगले कार्बन परमाणु) से हाइड्रोजन का विलोपन होता है।

$$H-\underset{H}{\overset{H}{\underset{|}{\overset{|_\beta}{C}}}}-\underset{X}{\overset{H}{\underset{|}{\overset{|_\alpha}{C}}}}-H \xrightarrow[\Delta]{\text{alc. KOH}} \begin{matrix} H & & H \\ & C=C & \\ H & & H \end{matrix}$$

(X = Cl, Br, I)

(13.34)
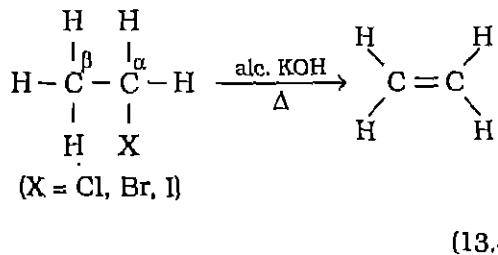
हैलोजेन परमाणु की प्रकृति तथा ऐल्किल समूह ही अभिक्रिया की दर निर्धारित करते हैं। ऐसा देखा गया है कि हैलोजेन परमाणु के लिए दर निम्न इस प्रकार हैं– आयोडीन > ब्रोमीन > क्लोरीन, जबकि ऐल्किल समूहों के लिए यह हैं– $3° > 2° > 1°$.

3. **सन्निध डाइहैलाइडों से :** डाइहैलाइड, जिनमें दो निकटवर्ती कार्बन परमाणुओं पर दो हैलोजेन परमाणु उपस्थित हों, **सन्निध डाइहैलाइड** कहलाते हैं। सन्निध डाइहैलाइड जिंक धातु से अभिक्रिया करके ZnX_2 अणु का विलोपन करके एल्कीन देते हैं। इस अभिक्रिया को **विहैलोजेनीकरण** कहते हैं।

$$CH_2Br-CH_2Br+Zn \longrightarrow CH_2=CH_2+ZnBr_2$$

(13.35)

$$CH_3CHBr-CH_2Br+Zn \longrightarrow CH_3CH=CH_2 + ZnBr_2$$

(13.36)
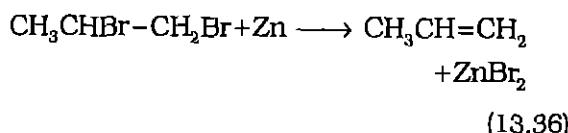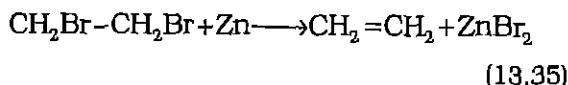
4. **ऐल्कोहॉलों के अम्लीय निर्जलन से :** आपने एकक-12 में विभिन्न सजातीय श्रेणियों की नामकरण पद्धति का अध्ययन किया है। ऐल्कोहॉल ऐल्केन के हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न होते हैं। इन्हें R–OH से प्रदर्शित करते हैं, जहाँ $R=C_nH_{2n+1}$ है। ऐल्कोहॉलों को सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करने पर जल के एक अणु का विलोपन होता है। फलतः ऐल्कीन बनती हैं। चूँकि अम्ल की उपस्थिति में ऐल्कोहॉल अणु से जल का एक अणु विलोपित होता है, अतः इस अभिक्रिया को **ऐल्कोहॉलों का अम्लीय निर्जलीकरण** कहते हैं। यह β– विलोपन अभिक्रिया का उदाहरण है, क्योंकि इसमें –OH समूह, β–कार्बन परमाणु से एक हाइड्रोजन परमाणु हटाता है।

$$H-\underset{H}{\overset{H}{\underset{|}{\overset{|_\beta}{C}}}}-\underset{OH}{\overset{H}{\underset{|}{\overset{|_\alpha}{C}}}}-H \xrightarrow[\Delta]{\text{सान्द्र } H_2SO_4} \underset{\text{एथीन}}{CH_2=CH_2} + H_2O$$

एथेनॉल

(13.37)
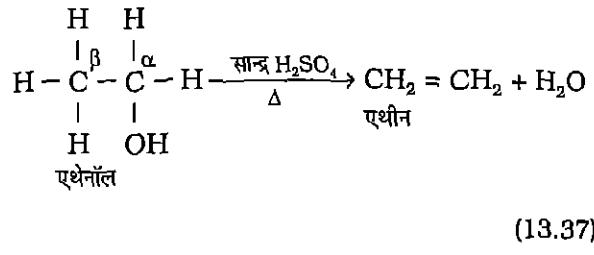
13.3.5 गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म

ध्रुवीय प्रकृति में अंतर के अलावा एल्कीन भौतिक गुणधर्मों में ऐल्केन से समानता दर्शाती है। प्रथम तीन सदस्य 'गैस', अगले चौदह सदस्य 'द्रव' तथा उससे अधिक कार्बन संख्या वाली सदस्य 'ठोस' होते हैं। एथीन रंगहीन तथा हलकी मधुर सुगंध वाली गैस है। अन्य सभी एल्कीन रंगहीन तथा सुगंधित, जल में अविलेय, परंतु कार्बनिक विलायकों जैसे–बेंजीन, पेट्रोलियम ईथर में विलेय होती हैं। आकार में वृद्धि होने के साथ-साथ इसके क्वथनांक में क्रमागत वृद्धि होती है, जिसमें प्रत्येक CH_2 समूह बढ़ने पर क्वथनांक में 20 से 30 K तक की वृद्धि होती है। ऐल्केनों के समान सीधी शृंखला वाले एल्कीनों का क्वथनांक समावयवी शाखित शृंखला वाले एल्कीनों की तुलना में उच्च होता है।

रासायनिक गुणधर्म

एल्कीन क्षीण बंधित π इलेक्ट्रॉनों के स्रोत होते हैं। इसलिए ये योगात्मक अभिक्रियाएँ दर्शाते हैं, जिनमें इलेक्ट्रॉनस्नेही C=C द्विबंध पर जुड़कर योगात्मक उत्पाद बनाते हैं। कुछ अभिकर्मकों के साथ क्रिया मुक्त-मूलक क्रियाविधि द्वारा भी होती है। एल्कीन कुछ विशेष परिस्थितियों में मुक्त-मूलक प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ प्रदर्शित करतीं हैं। एल्कीन में ऑक्सीकरण तथा ओजोनी अपघटन अभिक्रियाएँ प्रमुख हैं। एल्कीन की विभिन्न अभिक्रियाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **डाइहाइड्रोजन का संकलन–** एल्कीन सूक्ष्म पिसे हुए निकेल, पैलेडियम अथवा प्लेटीनम की उपस्थिति में

डाइहाइड्रोजन गैस के एक अणु का संकलन करके ऐल्केन बनाते हैं (13.2.2)।

2. **हैलोजेन का संकलन**– एल्कीन से संयुक्त होकर हैलोजेन जैसे ब्रोमीन या क्लोरीन **सन्निध डाइहैलाइड** देते हैं, हालाँकि आयोडीन सामान्य परिस्थितियों में संकलन अभिक्रिया प्रदर्शित नहीं करती है। ब्रोमीन द्रव का लाल-नारंगी रंग असंतृप्त स्थान पर ब्रोमीन के संकलित होने के पश्चात् लुप्त हो जाता है। इस अभिक्रिया का उपयोग असंतृप्तता के परीक्षण के लिए होता है। एल्कीन पर हैलोजेन का संकलन इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन अभिक्रिया का उदाहरण है, जिसमें चक्रीय हैलोनियम आयन का निर्माण सम्मिलित होता है। इसका अध्ययन आप उच्च कक्षा में करेंगे।

(i) $CH_2 = CH_2 + Br - Br \xrightarrow{CCl_4} CH_2(Br) - CH_2(Br)$ (13.38)

एथीन → 1, 2-डाइब्रोमोप्रोपेन

(ii) $CH_3-CH=CH_2 + Cl-Cl \longrightarrow CH_3-CH(Cl)-CH_2(Cl)$ (13.39)

प्रोपीन → 1, 2-डाइक्लोरोप्रोपेन
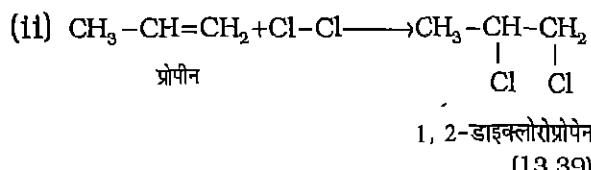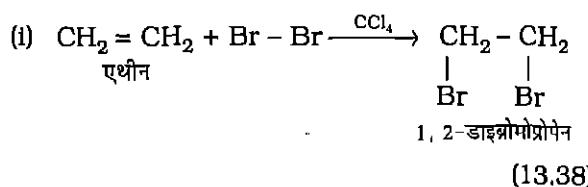
3. हाइड्रोजन हैलाइडों का संकलन– हाइड्रोजन हैलाइड, HCl, HBr, HI एल्कीनों से संयुक्त होकर ऐल्किल हैलाइड बनाते हैं। हाइड्रोजन हैलाइडों की अभिक्रियाशीलता का क्रम इस प्रकार है: HI > HBr > HCl। एल्कीनों में हैलोजेन के संकलन के समान हाइड्रोजन हैलाइड का संकलन भी इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन अभिक्रिया का उदाहरण है। इसे हम सममित तथा असममित एल्कीनों की संकलन अभिक्रियाओं से स्पष्ट करेंगे।

सममित एल्कीनों में HBr की योगात्मक संकलन अभिक्रिया

सममित एल्कीनों में (जब द्विआबंध पर समान समूह जुड़े हुए हों) HBr की संकलन अभिक्रियाएँ इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन क्रियाविधि से संपन्न होती हैं।

$$CH_2=CH_2+H-Br \longrightarrow CH_3-CH_2-Br \quad (13.40)$$

$$CH_3-CH=CH-CH_3+HBr \longrightarrow CH_3-CH_2-CH(Br)CH_3 \quad (13.41)$$
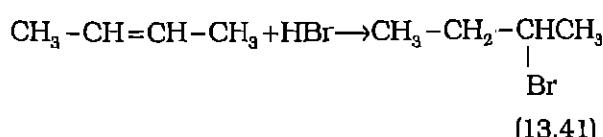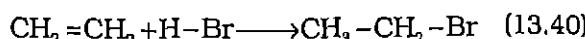
असममित एल्कीनों पर HBr का संकलन (मार्कोनीकॉफ नियम)

प्रोपीन पर HBr का संकलन कैसे होगा? इसमें दो संभावित उत्पाद I तथा II हो सकते हैं।

$$CH_3-CH=CH_2+H-Br \longrightarrow \begin{cases} \text{I} & CH_3-CH(Br)-CH_3 \quad \text{2-ब्रोमोप्रोपेन} \\ \text{II} & CH_3-CH_2-CH_2-Br \quad \text{1-ब्रोमोप्रोपेन} \end{cases} \quad (13.42)$$
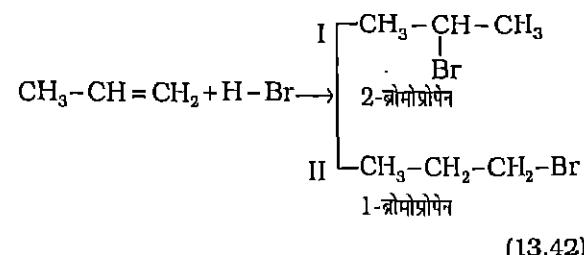
रूसी रसायनविद् मार्कोनीकॉफ ने सन् 1869 में इन अभिक्रियाओं का व्यापक अध्ययन करने के पश्चात् एक नियम प्रतिपादित किया, जिसे **मार्कोनीकॉफ का नियम** कहते हैं। इस नियम के अनुसार, योज्य (वह अभिकर्मक, जिसका संकलन हो रहा है) का अधिक ऋणात्मक भाग उस कार्बन पर संयुक्त होता है, जिस पर हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या कम हो। अतः इस नियम के अनुसार उत्पाद (I) 2- ब्रोमोप्रोपेन अपेक्षित है। वास्तविक व्यवहार में यह अभिक्रिया का मुख्य उत्पाद है। अतः मार्कोनीकॉफ नियम के व्यापकीकरण को अभिक्रिया की क्रियाविधि से अच्छी तरह समझा जा सकता है।

क्रियाविधि

हाइड्रोजन ब्रोमाइड इलेक्ट्रॉनस्नेही H^+ देता है, जो द्विआबंध पर आक्रमण करके नीचे दिए गए कार्बधनायन (Carbocation) बनाता है–

$$H_3\overset{3}{C}-\overset{2}{C}H=\overset{1}{C}H_2 + H-Br \xrightarrow{H^+}$$

$$\text{(क)}\ H_3C-CH_2-\overset{+}{C}H_2 + Br^- \qquad \text{(ख)}\ H_3C-\overset{+}{C}H-CH_3 + Br^-$$
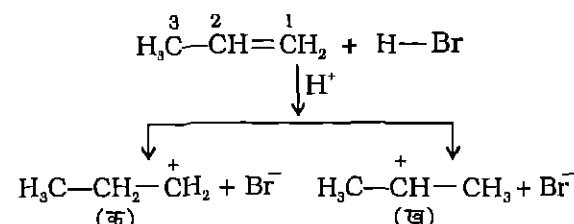
यहाँ 'क' कम स्थायी प्राथमिक कार्बधनायन है जबकि 'ख' अधिक स्थायी द्वितीयक कार्बधनायन है।

(i) द्वितीयक कार्बधनायन, (ख) प्राथमिक कार्बधनायन (क) की तुलना में अधिक स्थायी होता है। अतः द्वितीयक कार्बधनायन प्रधान रूप से बनेगा, क्योंकि यह शीघ्र निर्मित होता है।

(ii) कार्बधनायन (ख) में Br^- के आक्रमण से उत्पाद इस प्रकार बनता है–

$$H_3C-\overset{+}{C}H-CH_3 \xrightarrow{Br^-} H_3C-\underset{Br}{\underset{|}{C}}H-CH_3$$

2- ब्रोमोप्रोपेन (मुख्य उत्पाद)
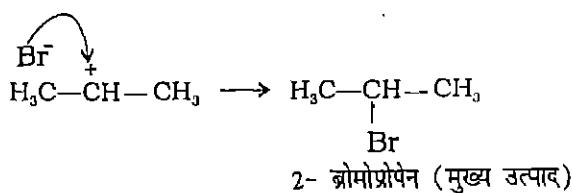
प्रति मार्कोनीकॉफ़ संकलन अथवा परॉक्साइड प्रभाव अथवा खराश प्रभाव– परॉक्साइड की उपस्थिति में असममित एल्कीनों (जैसे– प्रोपीन) से HBr का संकलन प्रति मार्कोनीकॉफ नियम से होता है। ऐसा केवल HBr के साथ होता है, HCl एवं HI के साथ नहीं। इस संकलन अभिक्रिया का अध्ययन एम.एस. खराश तथा एफ.आर. मेयो द्वारा सन् 1933 में शिकागो विश्वविद्यालय में किया गया। अत: इस अभिक्रिया को **परॉक्साइड** या **खराश प्रभाव** (Kharach effect) या **संकलन अभिक्रिया का प्रति मार्कोनीकॉफ नियम** कहते हैं।

$$CH_3-CH=CH_2+HBr \xrightarrow{(C_6H_5CO)_2O_2} CH_3-CH_2-CH_2Br$$
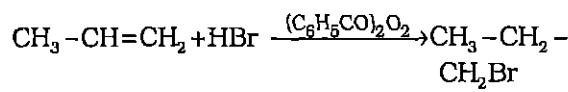
1- ब्रोमोप्रोपेन 2- ब्रोमोप्रोपेन

परॉक्साइड प्रभाव, मुक्त-मूलक श्रृंखला क्रियाविधि द्वारा होता है, जिसकी क्रियाविधि नीचे दी गई है।

(i) $$C_6H_5-\overset{O}{\overset{||}{C}}-O-O-\overset{O}{\overset{||}{C}}-C_6H_5 \xrightarrow{\text{समांशन}} 2C_6H_5-\overset{O}{\overset{||}{C}}-\ddot{\underset{..}{O}}: \rightarrow 2\dot{C}_6H_5+2CO_2$$

बेंजॉयल परॉक्साइड

(ii) $$\dot{C}_6H_5+H-Br \xrightarrow{\text{समांशन}} C_6H_6+\dot{Br}$$

(iii) $$CH_3-CH=CH_2 + \dot{Br} \xrightarrow{\text{समांशन}}$$

$$CH_3-\underset{Br}{\underset{|}{C}}H-\dot{C}H_2 \qquad CH_3-\dot{C}H-CH_2-Br$$

(क) कम स्थायी प्राथमिक मुक्त-मूलक

(ख) अधिक स्थायी द्वितीयक मुक्त-मूलक

(iv) $$CH_3-\dot{C}H-CH_2Br+H-Br \xrightarrow{\text{समांशन}} CH_3-CH_2-CH_2Br+\dot{Br}$$

(मुख्य उत्पाद)

(v) $$CH_3-\underset{Br}{\underset{|}{C}}H-\dot{C}H_2+H-Br \xrightarrow{\text{समांशन}} CH_3-\underset{Br}{\underset{|}{C}}H-CH_3+\dot{Br}$$

(अल्प उत्पाद)
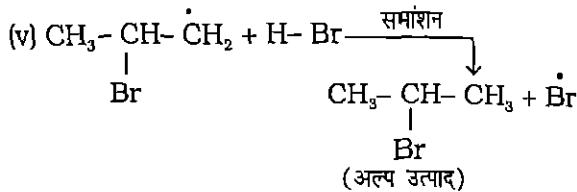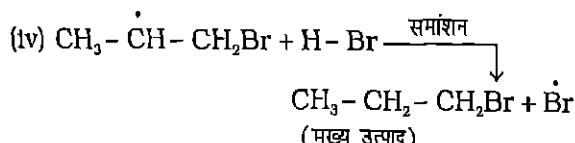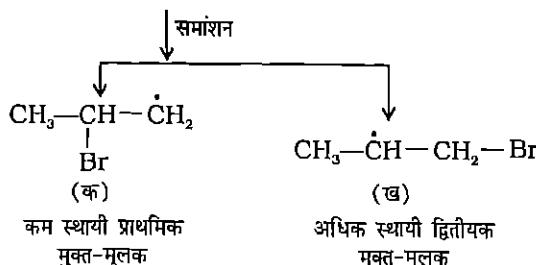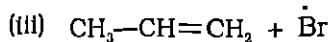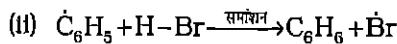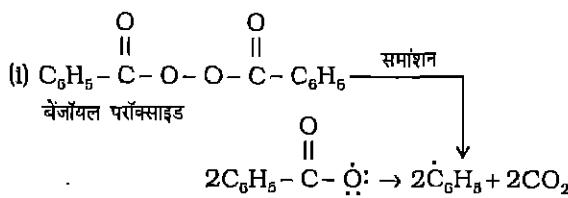
उपरोक्त क्रिया (iii) से प्राप्त द्वितीयक मुक्त-मूलक प्राथमिक मुक्त-मूलक की तुलना में अधिक स्थायी होता है, जिसके कारण 1-ब्रोमोप्रोपेन मुख्य उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि परॉक्साइड प्रभाव HCl तथा HI के संकलन में प्रदर्शित नहीं होता है। यह इस तथ्य पर आधारित है कि HCl का आबंध (430.5 kJ mol^{-1}), H-Br के आबंध (363.7 kJ mol^{-1}) की तुलना में प्रबल होता है। जो $\dot{C}_6H_5$ मुक्त-मूलक द्वारा विदलित नहीं हो पाता। यद्यपि HI (296.8 kJ mol^{-1}) का आबंध दुर्बल होता है, परंतु आयोडीन मुक्त-मूलक द्विआबंध पर संकलन करने की बजाय आपस में संयुक्त होकर आयोडीन अणु बनाते हैं।

उदाहरण 13.12

हेक्स-1-ईन की HBr के साथ संकलन अभिक्रिया से प्राप्त उत्पादों के आई.यू.पी.ए.सी. नाम दीजिए।

(i) परॉक्साइड की अनुपस्थिति में (ii) परॉक्साइड की उपस्थिति में।

हल

(i) $$CH_2=CH-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3+H-Br \xrightarrow{\text{परॉक्साइड अनुपस्थित}} CH_3-\underset{Br}{\underset{|}{C}}H-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3$$

हेक्स-1-ईन; 2-ब्रोमोहेक्सेन

(ii) $$CH_2=CH-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3+H-Br \xrightarrow{\text{परॉक्साइड उपस्थित}} \underset{Br}{\underset{|}{C}}H_2-CH_2-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3$$

1-ब्रोमोहेक्सेन
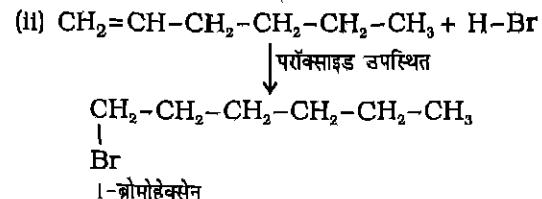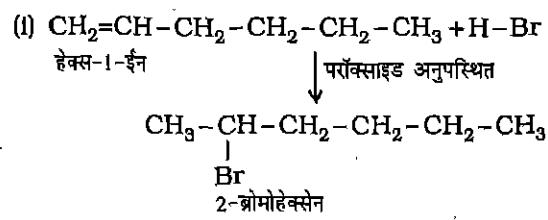
4. सल्फ्यूरिक अम्ल का संकलन– एल्कीनों की ठंडे सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल से क्रिया मार्कोनीकॉफ नियम के अनुसार होती है तथा इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन अभिक्रिया द्वारा ऐल्किल हाइड्रोजन सल्फेट बनते हैं।

$$CH_2 = CH_2 + H-O-\overset{\overset{O}{\|}}{\underset{\underset{O}{\|}}{S}}-O-H \longrightarrow CH_3-CH_2-OSO_2-OH \text{ अथवा } C_2H_5HSO_4$$

एथिल हाइड्रोजन सल्फेट

(13.44)

$$CH_3-CH=CH_2+HOSO_2OH \longrightarrow CH_3-\underset{\underset{OSO_2OH}{|}}{CH}-CH_3$$

प्रोपिल हाइड्रोजन सल्फेट

(13.45)
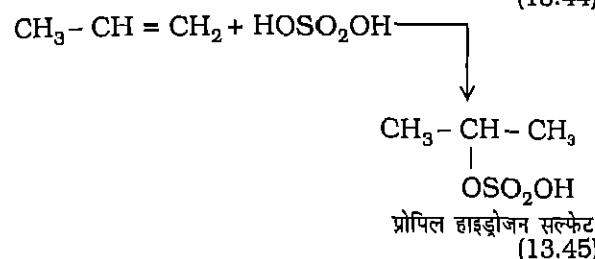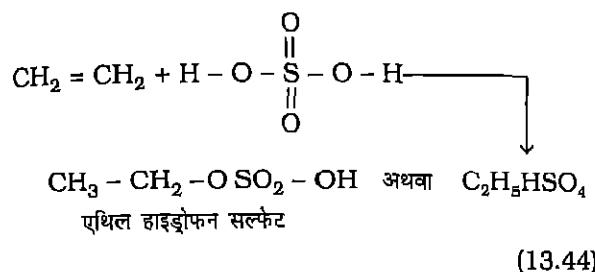
5. जल का संकलन– एल्कीन, सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल की कुछ बूँदों की उपस्थिति में जल के साथ मार्कोनीकॉफ नियमानुसार अभिक्रिया करके ऐल्कोहॉल बनाते हैं।

$$CH_3-\underset{\underset{CH_3}{|}}{C}=CH_2+H_2O \xrightarrow{H^+} (CH_3)_2C(OH)-CH_3$$

2-मेथिलप्रोपीन → 2-मेथिलप्रोपेन-2-ऑल

(13.46)
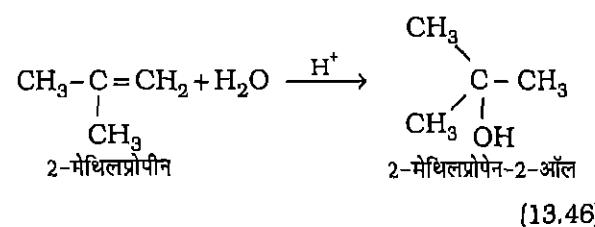
6. ऑक्सीकरण– एल्कीन ठंडे, तनु, जलीय पोटैशियम परमैंगनेट, विलयन (बेयर अभिकर्मक) के साथ अभिक्रिया करके संनिध ग्लाइकॉल बनाती हैं। पोटैशियम परमैंगनेट विलयन का विरंजीकरण असंतृप्तता का परीक्षण है।

$$CH_2=CH_2+H_2O+O \xrightarrow[273\ K]{\text{तनु } KMnO_4} \underset{OH}{\underset{|}{CH_2}}-\underset{OH}{\underset{|}{CH_2}}$$

एथेन-1, 2 डाइऑल (ग्लाइकॉल)

(13.47)

$$CH_3-CH=CH_2+H_2O+O \xrightarrow[273\ K]{\text{तनु } KMnO_4} CH_3CH(OH)CH_2OH$$

प्रोपेन-1, 2-डाइऑल

(13.48)
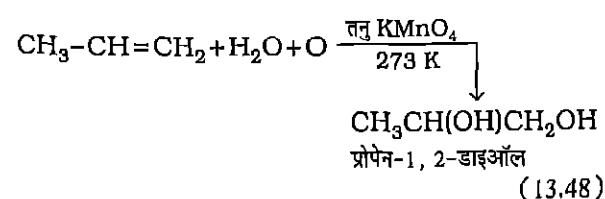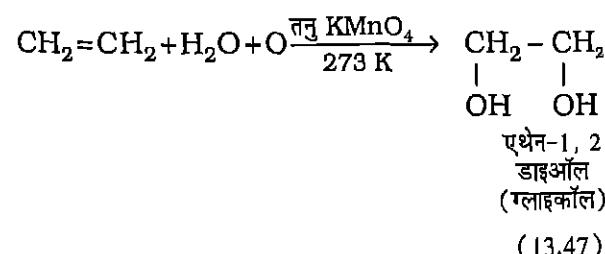
अम्लीय पोटैशियम परमैंगनेट अथवा अम्लीय पोटैशियम डाइक्रोमेट, एल्कीन को कीटोन और अम्ल में ऑक्सीकृत करते हैं। उत्पाद की प्रकृति, एल्कीन की प्रकृति तथा प्रायोगिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

$$(CH_3)_2C=CH_2 \xrightarrow{KMnO_4/H^+} (CH_3)_2C=O + CO_2+H_2O$$

2-मेथिनप्रोपीन → प्रोपेनोन

$$CH_3-CH=CH-CH_3 \xrightarrow{KMnO_4/H^+} 2CH_3COOH$$

ब्यूट-2-ईन → एथेनोइक अम्ल

(13.50)
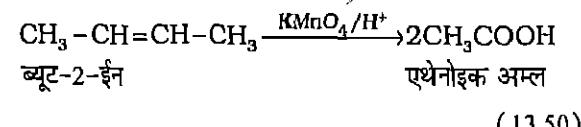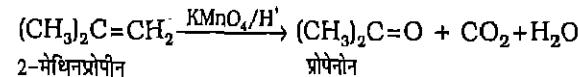
7. ओजोनी अपघटन– ओजोनी अपघटन में एल्कीन O_3 का संकलन कर ओजोनाइड बनाते हैं और $Zn\text{-}H_2O$ के द्वारा ओजोनाइड का विदलन छोटे अणुओं में हो जाता है। यह अभिक्रिया एल्कीन तथा अन्य असंतृप्त यौगिकों में द्विआबंध की स्थिति निश्चित करने के लिए उपयोग में आती है।

$$CH_3CH=CH_2+O_3 \longrightarrow \text{प्रोपीन ओजोनाइड} \xrightarrow{Zn + H_2O} CH_3CHO + HCHO$$

प्रोपीन → प्रोपीन ओजोनाइड → एथेनल + मेथेनल

(13.51)

$$(H_3C)_2C=CH_2+O_3 \longrightarrow \text{ओजोनाइड} \xrightarrow{Zn + H_2O} (H_3C)_2C=O + HCHO$$

2-मेथिलप्रोपीन → प्रोपेन-2-ओन

(13.52)
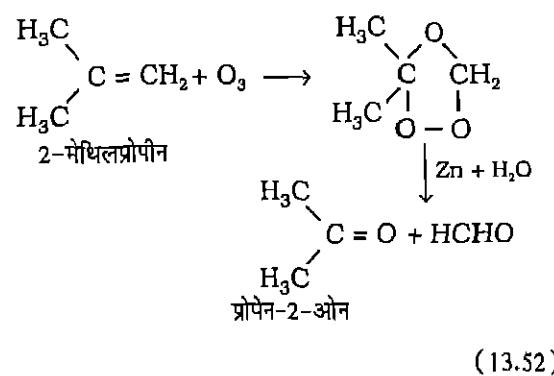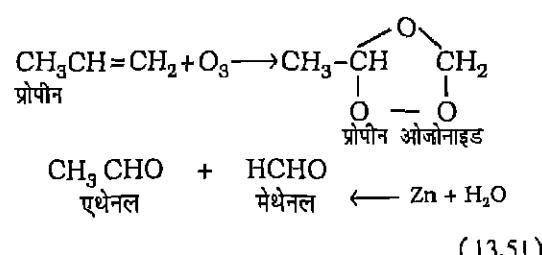
8. बहुलीकरण– आप पॉलिथीन की थैलियों तथा पॉलिथीन शीट से परिचित होंगे। अधिक संख्या में एथीन अणुओं का उच्च ताप, उच्च दाब तथा उत्प्रेरक की उपस्थिति में संकलन करने से पॉलिथीन प्राप्त होती है। इस प्रकार प्राप्त बृहद् अणु **बहुलक** कहलाते हैं। इस अभिक्रिया को **'बहुलकीकरण'** कहते हैं। सरल यौगिक, जिनसे बहुलक प्राप्त होते हैं, **एकलक** कहलाते हैं।

$$n(CH_2=CH_2) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{\text{उच्चताप/दाब}} (-CH_2-CH_2-)_n \quad (13.53)$$
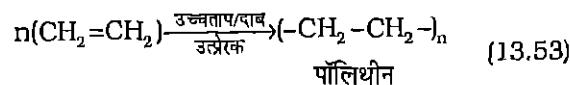
पॉलिथीन

अन्य एल्कीन भी बहुलकीकरण अभिक्रिया प्रदर्शित करती हैं।

$$n(CH_3-CH=CH_2) \xrightarrow[\text{उत्प्रेरक}]{\text{उच्चताप/दाब}} CH_3(-CH-CH_2-)_n \quad (13.54)$$
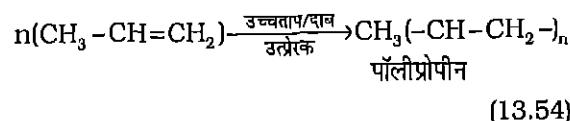
पॉलीप्रोपीन

बहुलकों का उपयोग प्लास्टिक के थैले, निष्पीडित बोतल, रेफ्रिजरेटर डिश, खिलौने, पाइप, रेडियो तथा टी.वी. कैबिनेट आदि के निर्माण में किया जाता है। पॉलिप्रोपीन का उपयोग दूध के कैरेट, प्लास्टिक की बाल्टियाँ तथा अन्य संचलित (Moulded) वस्तुओं के उत्पादन के लिए किया जाता है, हालाँकि अब पॉलिथीन तथा पॉलिप्रोपीन का बृहत् उपयोग हमारे लिए एक चिंता का विषय बन गया है।

13.4 एल्काइन

एल्कीन की तरह एल्काइन भी असंतृप्त हाइड्रोकार्बन हैं। इनमें दो कार्बन परमाणुओं के मध्य एक त्रिआबंध होता है। ऐल्केन तथा एल्कीन की तुलना में, एल्काइन में हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या कम होती है। इनका सामान्य सूत्र C_nH_{2n-2} है। एल्काइन श्रेणी का प्रथम स्थायी सदस्य एथाइन है, जो **ऐसीटिलीन** नाम से प्रचलित है। ऐसीटिलीन का उपयोग आर्क वल्डिंग के लिए ऑक्सीऐसीटिलीन ज्वाला के रूप में होता है, जो ऑक्सीजन गैस तथा ऐसीटिलीन को मिश्रित करने से बनती है। एल्काइन कई कार्बनिक यौगिकों के लिए प्रारंभिक पदार्थ है। अतः इस श्रेणी के कार्बनिक यौगिकों का अध्ययन रुचिकर है।

13.4.1 नामपद्धति तथा समावयवता

सामान्य पद्धति में एल्काइन ऐसीटिलीन के व्युत्पन्न के नाम से जाने जाते हैं। आई.यू.पी.ए.सी. पद्धति में संगत ऐल्केन में अनुलग्न 'ऐन' का 'आइन' द्वारा प्रतिस्थापन करके एल्काइन को संगत ऐल्केन के व्युत्पन्न नाम से जाना जाता है। त्रिआबंध की स्थिति प्रथम त्रि-आबंधित कार्बन से इंगित की जाती है। एल्काइन श्रेणी के कुछ सदस्यों के सामान्य तथा आई.यू.पी.ए.सी. नाम सारणी 13.2 में दिए गए हैं।

जैसा आपने पहले पढ़ा है, एथाइन तथा प्रोपाइन अणुओं की केवल एक ही संरचना होती है, किंतु ब्यूटाइन में दो संरचनाएँ संभावित हैं– (1) ब्यूट-1-आइन (2) ब्यूट-2-आइन। चूँकि दोनों यौगिक त्रि-आबंध की स्थिति के कारण संरचना में भिन्न है। अतः ये समावयव **स्थिति समावयव** कहलाते हैं। आप कितने प्रकार से अगले सजात की संरचना को बना सकते हैं? अर्थात् अगला एल्काइन (जिसका अणुसूत्र C_5H_8 है) के पाँच कार्बन परमाणुओं को सतत् शृंखला तथा पार्श्व शृंखला के रूप में व्यवस्थित करने पर निम्नलिखित संरचनाएँ संभव हैं–

संरचना	IUPAC नाम
I. $\overset{1}{H}\overset{2}{C}{\equiv}\overset{3}{C}-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_2-CH_3$	पेन्ट-1-आइन
II. $H_3\overset{1}{C}-\overset{2}{C}{\equiv}\overset{3}{C}-\overset{4}{C}H_2-\overset{5}{C}H_3$	पेन्ट-2-आइन
III. $H_3\overset{4}{C}-\overset{3}{C}H(CH_3)-\overset{2}{C}{\equiv}\overset{1}{C}H$	3-मेथिलब्यूट-1-आइन
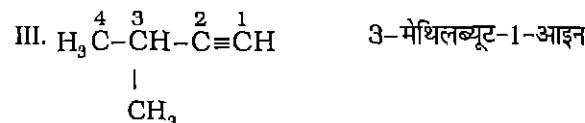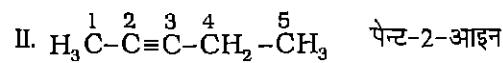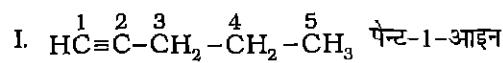
संरचना-सूत्र I एवं II स्थिति समावयव तथा संरचना सूत्र I एवं III अथवा II एवं III शृंखला समावयव के उदाहरण हैं

उदाहरण 13.13

एल्काइन श्रेणी के पाँचवें सदस्य के विभिन्न समावयवों की संरचना एवं आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए। विभिन्न समावयवी युग्म किस प्रकार की समावयवता दर्शाते हैं?

हल

एल्काइन श्रेणी के पाँचवे सदस्य का अणुसूत्र C_6H_{10} होता है इसके संभावित समवयव इस प्रकार है–

(क) $HC \equiv C-CH_2-CH_2-CH_2-CH_3$
हेक्स-1-आइन

(ख) $CH_3-C \equiv C-CH_2-CH_2-CH_3$
हेक्स-2-आइन

(ग) $CH_3-CH_2-C \equiv C-CH_2-CH_3$
हेक्स-3-आइन

सारणी 13.2 एल्काइन C_nH_{2n-2} श्रेणी के सामान्य तथा I.U.P.A.C नाम

n का मान	सूत्र	संरचना-सूत्र	सामान्य नाम	IUPAC नाम
2	C_2H_2	$HC \equiv CH$	ऐसीटिलीन	एथाइन
3	C_3H_4	$CH_3\text{-}C \equiv CH$	मेथिल ऐसीटिलीन	प्रोपाइन
4	C_4H_6	$CH_3CH_2C \equiv CH$	एथिल ऐसीटिलीन	ब्यूट-1-आइन
4	C_4H_6	$CH_3\text{-}C \equiv C\text{-}CH_3$	डाइमेथिल ऐसीटिलीन	ब्यूट-2-आइन

(घ) $HC \equiv C - \underset{\underset{CH_3}{|}}{CH} - CH_2 - CH_3$

3-मेथिलपेन्ट-1-आइन

(ङ) $HC \equiv C - CH_2 - \underset{\underset{CH_3}{|}}{CH} - CH_3$

4-मेथिलपेन्ट-1-आइन

(च) $CH_3 - C \equiv C - \underset{\underset{CH_3}{|}}{CH} - CH_3$

4-मेथिलपेन्ट-2-आइन

(छ) $HC \equiv C - \underset{\underset{CH_3}{|}}{\overset{\overset{CH_3}{|}}{C}} - CH_3$

3, 3-डाइमेथिलब्यूट-1-आइन

उपरोक्त समावयव-शृंखला समावयवता एवं स्थिति समावयवता के उदाहरण हैं।

13.4.2 त्रि-आबंध की संरचना

एथाइन, एल्काइन श्रेणी का सरलतम अणु है। एथाइन की संरचना चित्र 13.6 में दर्शायी गई है।

एथाइन के प्रत्येक कार्बन परमाणु के साथ दो *sp* संकरित कक्षकों के समअक्षीय अतिव्यापन से कार्बन-कार्बन सिग्माआबंध बनता है। प्रत्येक कार्बन परमाणु का शेष *sp* संकरित कक्षक अंतरनाभिकीय अक्ष के सापेक्ष हाइड्रोजन परमाणु के 1s कक्षक के साथ अतिव्यापन करके, दो C-H सिग्मा आबंध बनाते हैं,
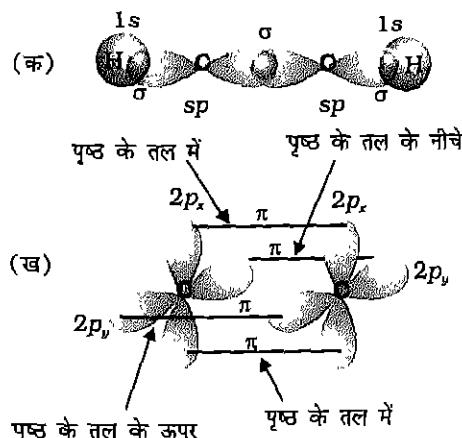
चित्र 13.6 आबंध कोण तथा आबंध लंबाई दर्शाता एथाइन का कक्षीय आरेख (क) σ अतिव्यापन (ख) π अतिव्यापन

H-C-C आबंध कोण 180° का होता है। प्रत्येक कार्बन परमाणु के पास C-C आबंध तथा तल के लंबवत् असंकरित *p*-कक्षक होते हैं। एक कार्बन परमाणु का 2*p* कक्षक दूसरे के समांतर होता है, जो समपार्श्विक अतिव्यापन करके दो कार्बन परमाणुओं के मध्य दो (पाई) बंध बनाते हैं। अत: एथाइन अणु में एक C-C (सिग्मा) आबंध दो C-H सिग्मा आबंध तथा दो C-C (पाई) आबंध होते हैं।

C≡C की आबंध सामर्थ्य बंध एंथैल्पी 823 $kJ\ mol^{-1}$ है, जो C=C द्विआबंध बंध ऐंथैल्पी 681 $kJ\ mol^{-1}$ और C-C एकल आबंध बंध एंथैल्पी 348 $kJ\ mol^{-1}$ अधिक होती है। C≡C की त्रिआबंध लंबाई (120pm), C=C द्विआबंध (134 pm) तथा C-C एकल आबंध (154 pm) तुलना में छोटी होती है। अक्षों पर दो कार्बन परमाणुओं के मध्य इलेक्ट्रॉन अभ्र अंतरानाभिकीय सममित बेलनाकार स्थिति में होते हैं। एथाइन एक रेखीय अणु है।

13.4.3 विरचन

1. कैल्सियम कार्बाइड से–

जल के साथ कैल्सियम कार्बाइड की अभिक्रिया पर औद्योगिक रूप से एथाइन बनाई जाती है। कोक तथा बिना बुझे चूने को

$$\underset{\underset{Br}{|}}{H_2C} - \underset{\underset{Br}{|}}{\overset{\overset{H}{|}}{C}} - H + KOH \xrightarrow[-KBr,\ -H_2O]{\text{ऐल्कोहॉल}} \begin{matrix} H & & H \\ & C = C & \\ H & & Br \end{matrix}$$

$$\xrightarrow[-NaBr,\ -NH_3]{Na^+NH_2^-} CH \equiv CH$$
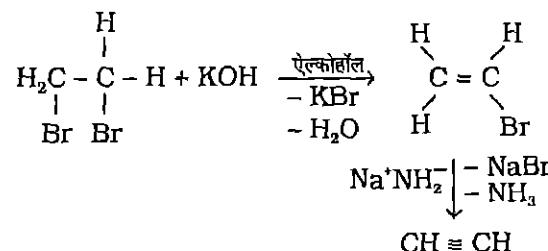
गरम करके कैल्सियम कार्बाइड बनाया जाता है। चूना पत्थर से निम्नलिखित अभिक्रिया द्वारा बिना बुझा चूना प्राप्त होता है–

$$CaCO_3 \xrightarrow{\Delta} CaO + CO_2 \qquad (13.55)$$

$$CaO + 3C \xrightarrow{\Delta} \underset{\text{कैल्सियम कार्बाइड}}{CaC_2} + CO \qquad (13.56)$$

$$CaC_2 + H_2O \longrightarrow Ca(OH)_2 + C_2H_2 \qquad (13.57)$$
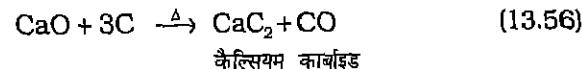
2. सन्निध डाइहैलाइडों से–

सन्निध डाइहैलाइडों की अभिक्रिया ऐल्कोहॉली पोटैशियम हाइड्रॉक्साइड से कराने पर इनका विहाइड्रोहैलोजनीकरण होता है। हाइड्रोजन हैलाइड के एक अणु विलोपित करने से ऐल्किनाइल हैलाइड प्राप्त होता है, जो सोडामाइड के साथ उपचार कराने पर एल्काइन देते हैं।

13.4.4 गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म

एल्काइनों के भौतिक गुण, एल्कीनों तथा ऐल्केनों के समान होते हैं। प्रथम तीन सदस्य गैस, अगले आठ सदस्य द्रव तथा शेष उच्चतर सदस्य ठोस होते हैं। समस्त एल्काइन रंगहीन होते हैं। एथाइन की आभिलाक्षणिक गंध होती है। इसके अन्य सदस्य गंध हीन होते हैं। एल्काइन दुर्बल ध्रुवीय, जल से हलके तथा जल में अमिश्रणीय होते हैं, परंतु कार्बनिक विलायकों जैसे–ईथर, कार्बनटेट्राक्लोराइड और बेंजीन में विलेय होते हैं। इनके गलनांक, क्वथनांक तथा घनत्व अणुभार के साथ बढ़ते हैं।

रासायनिक गुणधर्म

एल्काइन सामान्यतया अम्लीय प्रकृति, योगात्मक तथा बहुलकीकरण अभिक्रियाएँ प्रदर्शित करती है, वे इस प्रकार हैं–

(क) एल्काइन का अम्लीय गुण– सोडियम धातु या सोडामाइड ($NaNH_2$) प्रबल क्षारक होते हैं। ये एथाइन के साथ अभिक्रिया करके डाइहाइड्रोजन मुक्त कर सोडियम ऐसीटिलाइड बनाते हैं। इस प्रकार की अभिक्रयाएँ एथीन तथा एथेन प्रदर्शित नहीं करते। यह परीक्षण एथीन तथा ऐथेन की तुलना में एथाइन की अम्लीय प्रकृति को इंगित करता है। ऐसा क्यों है? क्या इसकी संरचना तथा संकरण के कारण होता है? आप यह अध्ययन कर चुके हैं कि एथाइन में हाइड्रोजन परमाणु *sp* संकरित कार्बन परमाणु से, एथीन में sp^2 संकरित कार्बन परमाणु से तथा एथेन में sp^3 संकरित कार्बन परमाणु से जुड़ा रहता है। एथाइन के *sp* संकरित कक्षक में अधिकतम S गुण (50%) के कारण उसमें उच्च विद्युत्ऋणात्मकता होती है। अतः ये एथाइन में C-H आबंध के साझा इलेक्ट्रॉनों को, एथीन में कार्बन के sp^2 संकरित कक्षक तथा एथेन में कार्बन के sp^3 संकरित कक्षकों की तुलना में अपनी ओर अधिक आकर्षित करेंगे, जिससे एथेन तथा एथीन की तुलना में एथाइन में हाइड्रोजन परमाणु प्रोटॉन के रूप में आसानी से विलोपित हो जाएँगे। अतः त्रिआबंधित कार्बन परमाणु से जुड़े हाइड्रोजन परमाणु अम्लीय प्रकृति के होते हैं।

$$HC \equiv CH + Na \rightarrow HC \equiv C^-Na^+ + \tfrac{1}{2}H_2$$
सोडियम ऐथेनाइड (13.59)

$$HC \equiv C^-Na^+ + Na \rightarrow Na^+C^- \equiv C^-Na^+ + \tfrac{1}{2}H_2$$
डाइसोडियम ऐथेनाइड (13.60)

$$CH_3 - C \equiv C - H + Na^+NH_2^- \rightarrow CH_3 - C \equiv C^-Na^+ + NH_3$$
सोडियम प्रोपिनाइड (13.61)
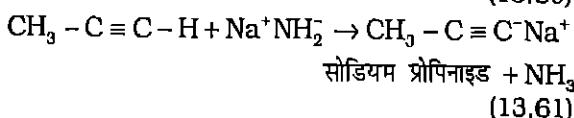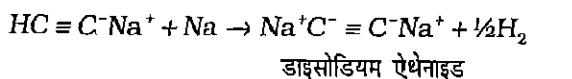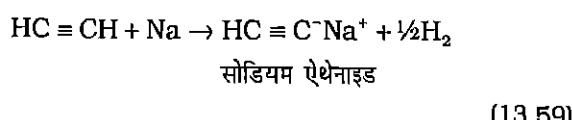
यह ध्यान रखने योग्य बात है कि त्रिआबंध से जुड़े हाइड्रोजन परमाणु अम्लीय होते हैं, परंतु एल्काइन के समस्त हाइड्रोजन परमाणु अम्लीय नहीं होते। उपर्युक्त अभिक्रियाएँ एल्कीन तथा ऐल्केन प्रदर्शित नहीं करते हैं। यह परीक्षण एल्काइन, एल्कीन तथा ऐल्केन में विभेद करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। ब्यूट-1-आइन तथा ब्यूट-2-आइन की उपरोक्त अभिक्रिया कराने पर क्या होगा? ऐल्केन, एल्कीन तथा एल्काइन निम्नलिखित क्रम में अम्लीय प्रकृति दर्शाते हैं–

(i) $HC \equiv CH > H_2C = CH_2 > CH_3 - CH_3$

(ii) $HC \equiv CH > CH_3 - C \equiv CH >> CH_3 - C \equiv C - CH_3$

(ख) योगात्मक अभिक्रिया– एल्काइनों में त्रिआबंध होता है। *अतः* यह डाइहाइड्रोजन, हैलोजेन, हाइड्रोजन हैलाइड आदि के दो अणुओं से योग करते हैं। संकलन उत्पाद निम्नलिखित पदों में बनता है–

$$-C \equiv C- + H-Z \xrightarrow{H^+} -\overset{H}{\overset{|}{C}} = \overset{\oplus}{C} - + :\bar{Z} \longrightarrow -\overset{H}{\overset{|}{C}} = \overset{Z}{\overset{|}{C}} -$$
वाइनिलिक धनायन
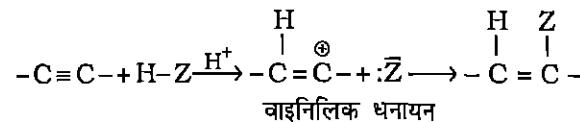
बना हुआ संकलन उत्पाद सामान्यतया वाइनिलिक धनायन के स्थायित्व पर निर्भर करता है। असममित एल्काइनों में संकलन मार्कोनीकॉफ नियम के अनुसार होता है। एल्काइनों में अधिकतर अभिक्रियाएँ इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन अभिक्रियाएँ हैं, जिनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं–

(i) डाइहाइड्रोजन का संकलन

$$HC \equiv CH + H_2 \xrightarrow{Pt/Pd/Ni} [H_2C = CH_2] \xrightarrow{H_2} CH_3 - CH_3 \quad (13.62)$$

$$CH_3 - C \equiv CH + H_2 \xrightarrow{Pt/Pd/Ni} [CH_3 - CH = CH_2] \xrightarrow{H2} CH_3 - CH_2 - CH_3$$
प्रोपाइन → प्रोपीन → प्रोपेन (13.63)

(ii) हैलोजेनों का संकलन

$$CH_3 - C \equiv CH + Br - Br \longrightarrow [CH_3CBr = CHBr] \xrightarrow{Br_2} CH_3 - CBr_2 - CHBr_2$$
1, 2-डाइब्रोमोप्रोपीन → 1, 1, 2, 2-टेट्राब्रोमोप्रोपेन (13.64)
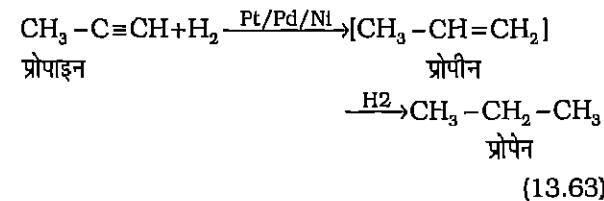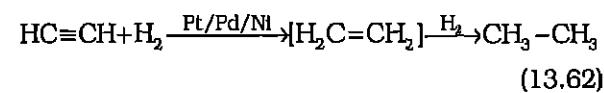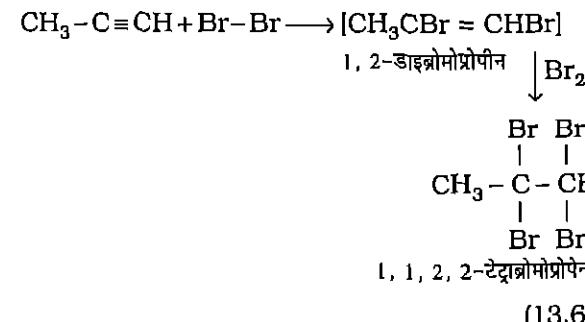
इस संकलन पर ब्रोमीन का लाल-नारंगी रंग विरंजीकृत हो जाता है। अतः इसे असंतृप्तता के परीक्षण के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

(iii) हाइड्रोजन हैलाइडो का संकलन– एल्काइनों में हाइड्रोजन हैलाइड (HCl, HBr, HI) के दो अणु के संकलन से जैम डाइहैलाइड (जिनमें एक ही कार्बन परमाणु पर दो हैलोजेन जुड़े हों) बनते हैं।

$$H-C\equiv C-H + H-Br \longrightarrow \underset{\text{2-ब्रोमोप्रोपीन}}{[CH_2=CH-Br]} \xrightarrow{HBr} \underset{\text{1,1-डाइब्रोमोएथेन}}{CH_3-CHBr_2} \quad (13.65)$$

$$CH_3-C\equiv CH + H-Br \longrightarrow \underset{\text{2-ब्रोमोप्रोपीन}}{[CH_3-\underset{Br}{\underset{|}{C}}=CH_2]} \longrightarrow \underset{\text{2, 2-डाइब्रोमोप्रोपेन}}{CH_3-\overset{Br}{\overset{|}{\underset{Br}{\underset{|}{C}}}}-CH_3} \quad (13.66)$$
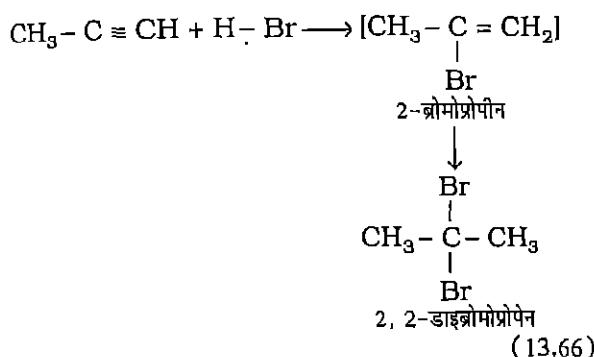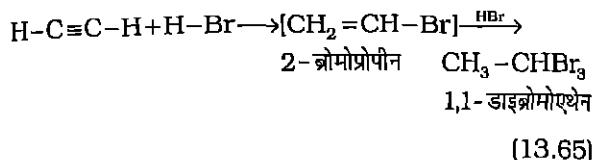
(iv) जल का संकलन– ऐल्केन तथा एल्कीन की भाँति एल्काइन भी जल में अमिश्रणीय होते हैं और जल से अभिक्रिया नहीं करते हैं। एल्काइन 333K पर मर्क्यूरिक सल्फेट तथा तुन सल्फ्यूरिक अम्ल की उपस्थिति में जल के एक अणु के साथ संयुक्त होकर कार्बोनिल यौगिक देते हैं।

$$\underset{\text{एथाइन}}{HC\equiv CH} + H-OH \xrightarrow[333K]{Hg^{2+}/H^+} CH_2=\underset{OH}{\underset{|}{C}}-H \xrightarrow{\text{समावयवन}} \underset{\text{एथेनॉल}}{CH_3-\underset{O}{\underset{||}{C}}-H} \quad (13.67)$$

$$\underset{\text{प्रोपाइन}}{CH_3-C\equiv CH} + H-OH \xrightarrow[333K]{Hg^{2+}/H^+} CH_3-\underset{O-H}{\underset{|}{C}}=CH_2 \xrightarrow{\text{समावयवन}} \underset{\text{प्रोपेनोन}}{CH_3-\underset{O}{\underset{||}{C}}-CH_3} \quad (13.68)$$
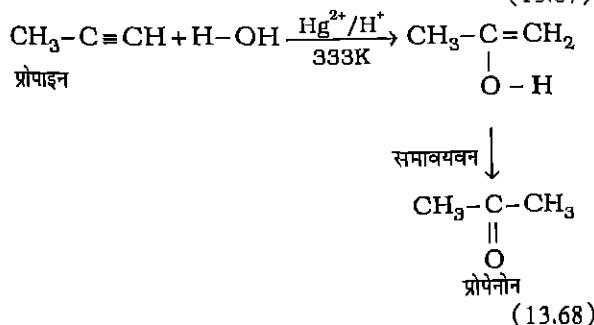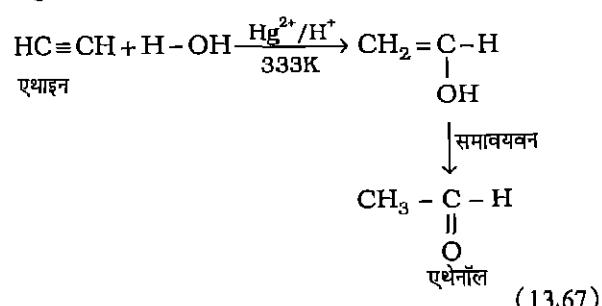
(v) बहुलकीकरण

(क) रैखिक बहुलकीकरण– अनुकूल परिस्थितियों में एथाइन का रैखिक बहुलकीकरण होने से पॉलिऐसीटिलीन अथवा पॉलिएथाइन बनता है, जो उच्चतर अणुभार वाले पॉलिएथाइन इकाइयों $CH=CH-CH=CH$ से युक्त होता है। इसे $(-CH=CH-CH=CH-)_n$ प्रदर्शित किया जा सकता है। विशिष्ट परिस्थितियों में ये बहुलक विद्युत् के सुचालक होते हैं। अतः पॉलिऐसीटिलीन की इस फिल्म का उपयोग बैटरियों में इलेक्ट्रॉड के रूप में किया जाता है। धातु चालकों की अपेक्षा यह फिल्म हलकी, सस्ती तथा सुचालक होती है।

(ख) चक्रीय बहुलकीकरण– एथाइन को रक्ततप्त लौह नलिका में 873K पर प्रवाहित कराने पर उसका चक्रीय बहुलकीकरण हो जाता है। एथाइन के तीन अणु बहुलीकीकृत होकर बेंजीन बनाते हैं, जो बेंजीन व्युत्पन्न, रंजक, औषधि तथा अनेक कार्बनिक यौगिकों के प्रारंभिक अणु है। यह ऐलीफैटिक यौगिकों को ऐरोमैटिक यौगिकों में परिवर्तित करने के लिए सर्वोत्तम पथ है।

$$3\,CH\equiv CH \xrightarrow[873\,K]{\text{रक्त तप्त लौह नलिका}} C_6H_6 \text{ (बेंजीन) अथवा } \bigcirc \quad (13.69)$$
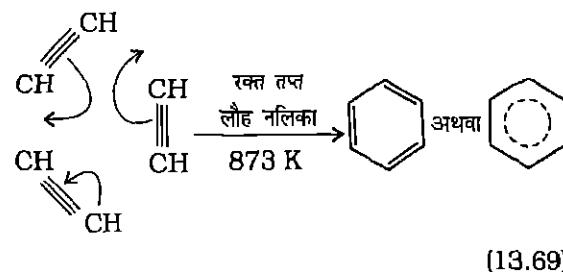
उदाहरण 13.14

आप एथेनोइक अम्ल को बेंजीन में कैसे परिवर्तित करेंगे?

हल

$$CH_3COOH \xrightarrow{NaOH(aq)} CH_3COONa \xrightarrow[\Delta]{\text{सोडा लाइम}} CH_4 \xrightarrow[E=h\nu]{Cl_2} CH_3Cl \xrightarrow[\text{वुट्र्ज अभिक्रिया}]{\text{Na/शुष्क ईथर}}$$

$$C_2H_6 \xrightarrow{Cl_2} C_2H_5Cl \xrightarrow[NaNH_2]{alc.\,KOH} CH_2=CH_2 \xrightarrow[\text{उष्मा}]{Br_2} CH_2Br-CH_2Br \xrightarrow{alc.\,KOH}$$
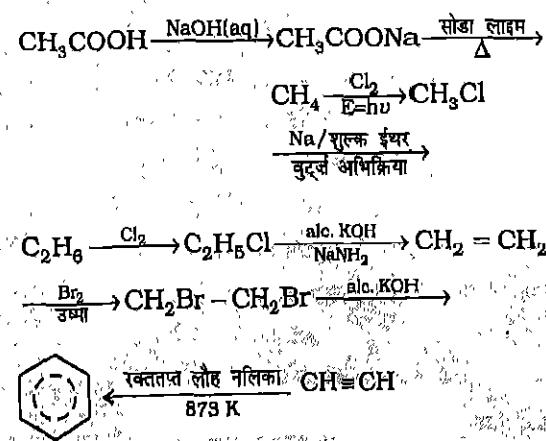
13.5 ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन

ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन को **ऐरीन** भी कहते हैं, क्योंकि इनके अधिकांश यौगिकों में विशिष्ट गंध (ग्रीक शब्द 'ऐरोमा', जिसका अर्थ सुगंध होता है।) रहती है। ऐसे यौगिकों को 'ऐरौमेटिक यौगिक' नाम दिया गया है। अधिकतर ऐसे यौगिकों में बेंजीन वलय पाई जाती है। यद्यपि बेंजीन वलय अतिअसंतृप्त होती है, परंतु अधिकतर अभिक्रियाओं में बेंजीन वलय अति असंतृप्त बनी रहती है। ऐरोमैटिक यौगिकों के कई उदाहरण ऐसे भी हैं, जिनमें बेंजीन वलय नहीं होती है, किंतु उनमें अन्य अतिअसंतृप्त वलय होती है। जिन ऐरोमेटिक यौगिकों में बेंजीन वलय होती है, उन्हें **बेंजेनॉइड** (Benzenoid) तथा जिसमें बेंजीन वलय नहीं होती है, उन्हें **अबेंजेनाइड** (nonbezenoid) कहते है। ऐरीन के कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं–
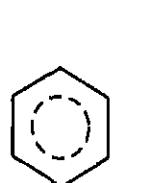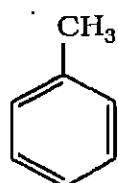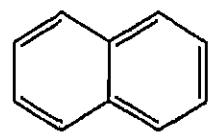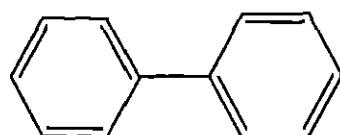
13.5.1 नाम पद्धति तथा समावयवता

हम ऐरामैटिक यौगिकों की नाम पद्धति तथा समावयवता का वर्णन एकक 12 में कर चुके हैं। बेंजीन के सभी छः हाइड्रोजन परमाणु समतुल्य हैं। अतः ये एक प्रकार का एकल प्रतिस्थापित उत्पाद बनाती हैं। यदि बेंजीन के दो हाइड्रोजन परमाणु दो समान या भिन्न एक संयोजी परमाणु या समूह द्वारा प्रतिस्थापित हों, तो तीन विभिन्न स्थिति समावयव संभव हैं। ये 1, 2 अथवा 1, 6 आर्थो (o-); 1, 3 अथवा 1, 5 मेटा (m-) तथा 1, 4 पैरा (p-) हैं। द्विप्रतिस्थापित बेंजीन व्युत्पन्न के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं।
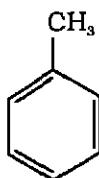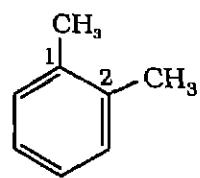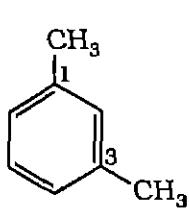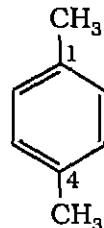
13.5.2 बेंजीन की संरचना

बेंजीन को सर्वप्रथम माइकेल फैराडे ने सन् 1825 में प्राप्त किया। बेंजीन का अणुसूत्र C_6H_6 है, जो उच्च असंतृप्तता दर्शाता है। यह अणुसूत्र संगत ऐल्केन, एल्कीन तथा एल्काइन, से कोई संबंध नहीं बताता है। आप इसकी संभावित संरचना के बारे में क्या सोचते हैं? इसके विशिष्ट गुण तथा असामान्य स्थायित्व के कारण इसकी संरचना निर्धारित करने में कई वर्ष लग गए। बेंजीन एक स्थायी अणु है और ट्राईओजोनाइड बनाता है, जो तीन द्विआबंध की उपस्थिति को इंगित करता है। बेंजीन केवल एक प्रकार का एकल प्रतिस्थापित व्युत्पन्न बनाता है, जो बेंजीन के छः कार्बन तथा छः हाइड्रोजन की समानता को इंगित करती है। इन प्रेक्षणों के आधार पर आगुस्ट् केकुले ने सन् 1865 में बेंजीन की एक संरचना दी, जिसमें छः कार्बन परमाणु की चक्रीय व्यवस्था है। उसमें एकांतर क्रम में द्विआबंध है तथा प्रत्येक कार्बन से एक हाइड्रोजन परमाणु जुड़ा है।
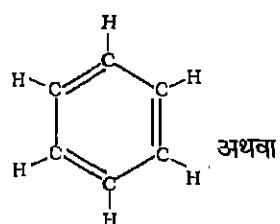
H C H C H C H C H C H C अथवा
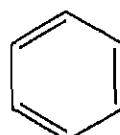
जर्मन रसायनज्ञ फ्रीड्रिक आगुस्ट् केकुले का जन्म सन् 1829 में जर्मनी के डार्मस्ट्ट नामक नगर में हुआ था। वे सन् 1856 में प्रोफेसर तथा सन् 1875 में रॉयल सोसायटी के फैलो बने। संरचनात्मक कार्बनिक रसायन के क्षेत्र में उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण योगदान दिए। प्रथम सन् 1958 में जब उन्होंने यह प्रस्तावित किया कि अनेक कार्बन परमाणु आपस में आबंध बनाकर शृंखलाओं का निर्माण कर सकते हैं। द्वितीय उन्होंने सन् 1875 में बेंजीन की संरचना को स्पष्ट करने में योगदान दिया, जब उन्होंने प्रस्तावित किया कि कार्बन परमाणुओं की शृंखलाओं के सिरे जुड़कर वलय का निर्माण कर सकते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने बेंजीन की गतिक संरचना प्रस्तावित की, जिस पर बेंजीन की आधुनिक इलेक्ट्रॉनीय संरचना आधारित है। बाद में उन्होंने बेंजीन संरचना की खोज को एक रोचक घटना द्वारा समझाया।

फ्रीड्रिक आगुस्ट् केकुले (7 सितम्बर 1829 13 जुलाइ 1896)

"मैं पाठ्यपुस्तक लिख रहा था, परंतु कार्य आगे नहीं बढ़ रहा था क्योंकि, मेरे विचार कहीं अन्य थे। तभी मैंने अपनी कुर्सी को अलाव की ओर किया। कुछ समय बाद मुझे झपकी लग गई। स्वप्न में मेरी आँखों के सामने परमाणु नाच रहे थे। अनेक प्रकार के विन्यासों की संरचनाएँ मेरी मस्तिष्क की आँख के सम्मुख घूम रही थी। मैं स्पष्ट रूप से लंबी-लंबी कतारें देख पा रहा था, जो कभी-कभी समीप आ रही थीं, वे सर्प की भाँति घूम रही थीं, कुंडली बना रही थीं। तभी मैं देखा कि एक सर्प ने अपनी ही दुम को अपने मुँह में दबा लिया। इस प्रकार बनी संरचना को मैं स्पष्ट रूप से देख पा रहा था। तभी अचानक मेरी आँखें खुल गई तथा रात्रि का शेष पहर मैंने अपने सपने को समझकर उपयुक्त निष्कर्ष निकालने में व्यतीत किया।

वे आगे कहते हैं कि– सज्जनो। हमें स्वप्न देखने की आदत डालनी चाहिए, तभी हम सत्य से साक्षात्कार कर सकते हैं। परंतु हमें अपने स्वप्नों को, इससे पहले कि हम उन्हें भूल जाएँ, अन्य को बता देना चाहिए" (सन् 1890)।

सौ वर्ष के बाद, केकुले की जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर पॉलिबेंजिनायड संरचना युग्म यौगिकों के एक वर्ग को 'केकुलीन' नाम दिया गया।

केकुले संरचना 1, 2-डाइब्रोमोबेंजीन के दो समावयवों की संभावना व्यक्त करती है। एक समावयव में दोनों ब्रोमीन परमाणु द्विआबंधित कार्बन परमाणुओं से जुड़े रहते हैं, जबकि दूसरे समावयव में एकल आबंधित कार्बन परमाणुओं से।
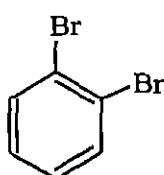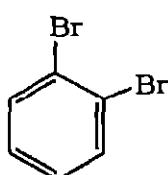
परंतु बेंजीन केवल एक ही ऑर्थो द्विप्रतिस्थापित उत्पाद बनाती है। इस समस्या का निराकरण केकुले ने बेंजीन में द्विआबंध के दोलन (Oscillating) प्रकृति पर विचार करके प्रस्तावित किया।

यह सुधार भी बेंजीन की संरचना के असामान्य स्थायित्व तथा योगात्मक अभिक्रियाओं की तुलना में प्रतिस्थापन अभिक्रियाओं की प्राथमिकता को समझाने में विफल रहा, जिसे बाद में **अनुनाद** (Resonance) द्वारा समझाया गया।

अनुनाद एवं बेंजीन का स्थायित्व

'संयोजकता बंध सिद्धांत' के अनुसार, द्विआबंध के दोलन को अनुनाद के द्वारा समझाया गया है। बेंजीन विभिन्न अनुनादी संरचनाओं का संकर है। केकुले द्वारा दो मुख्य संरचनाएँ (क) एवं (ख) दी गईं, अनुनाद संकर को षट्भुजीय संरचना में वृत्त या बिंदु वृत्त द्वारा (ग) में प्रदर्शित किया गया है। वृत्त, बेंजीन वलय के छः कार्बन परमाणु पर विस्थानीकृत (Delocalised) छः इलेक्ट्रानों को दर्शाता है।

अथवा

(क) (ख) (ग)
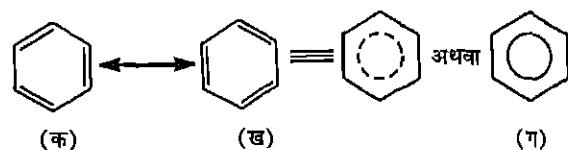
कक्षीय अतिव्यापन हमें बेंजीन संरचना के बारे में सही दृश्य देता है। बेंजीन में सभी छः कार्बन परमाणु sp^2 संकरित है। प्रत्येक कार्बन परमाणु के दो sp^2 कक्षक निकटवर्ती कार्बन परमाणुओं के sp^2 कक्षक से अतिव्यापन करके छः (C-C) σ आबंध बनाते हैं, जो समतलीय षट्भुजीय होते हैं। प्रत्येक कार्बन परमाणु के बचे हुए sp^2 कक्षक प्रत्येक हाइड्रोजन परमाणु के s-कक्षक से अतिव्यापन करके छः C-H सिग्मा आबंध बनाते हैं। अब प्रत्येक कार्बन परमाणु पर एक असंकरित p-कक्षक रह जाता है, जो वलय के तल के लंबवत् होता है, जैसा नीचे दर्शाया गया है–
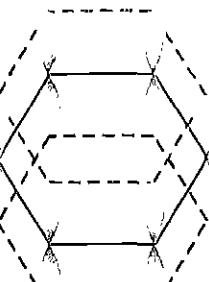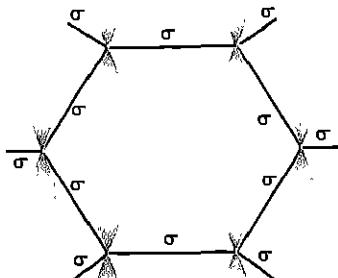
प्रत्येक कार्बन परमाणु पर उपस्थित असंकरित p-कक्षक इतने निकट होते हैं कि वे पार्श्वअतिव्यापन करके आबंध का निर्माण करते हैं। p-कक्षकों के अतिव्यापन से तीन आबंध बनने की क्रमशः दो संभावनाएँ (C_1-C_2, C_3-C_4, C_5-C_6 अथवा C_2-C_3, C_4-C_5, C_6-C_1) हैं, जैसा नीचे दिए गए चित्रों में दर्शाया गया है। संरचना 13.6 (क) तथा (ख) केकुले की विस्थानीकृत आबंधयुक्त संरचना दर्शाता है।

चित्र 13.7 (क) तथा (ख) केकुले की दोनों संरचनाओं के संगत है जिसमें स्थानीकृत π-बंध होते हैं। X-किरण
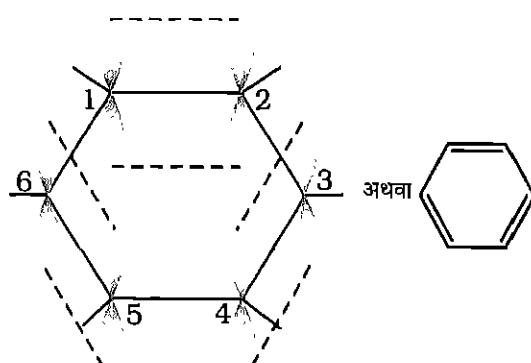
चित्र 13.7 (क)
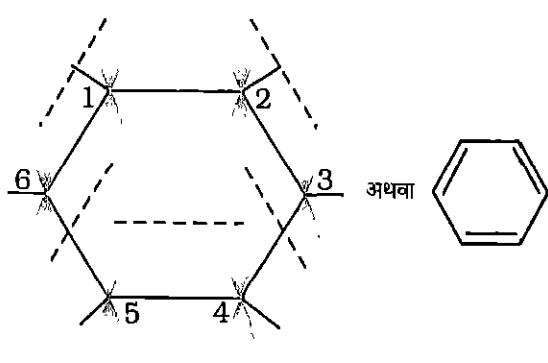
चित्र 13.7 (ख)

चित्र 13.7 (ग) चित्र 13.7 (घ)

विवर्तन से ज्ञात की गई वलय में कार्बन परमाणुओं के मध्य अन्तर्नाभिकीय दूरी समान पाई गई प्रत्येक कार्बन परमाणु के p-कक्षक की दोनों तरफ साथ वाले कार्बन परमाणु के p-कक्षक से अतिव्यापन की संभावना समान है [चित्र 13.7 (ग)]। इस इलेक्ट्रॉन अभ्र को चित्र 13.7 (घ) के अनुसार षट्भुजीय वलय के एक ऊपर तथा एक नीचे स्थित माना जा सकता है।

इस प्रकार कार्बन के छः p इलेक्ट्रॉन विस्थानीकृत होकर छः कार्बन नाभिकों के परितः स्वच्छंद रूप से घूम सकेंगे, न कि वे केवल दो कार्बन नाभिकों के मध्य, जैसा चित्र 13.7 (क) एवं (ख) में दर्शाया गया है। विस्थानीकृत इलेक्ट्रॉन अभ्र दो कार्बन परमाणु के मध्य स्थित इलेक्ट्रान अभ्र की बजाय वलय के सभी कार्बन परमाणुओं के नाभिक द्वारा अधिक आकर्षित होगा। अतः विस्थानीकृत इलेक्ट्रॉन की उपस्थिति में बेंजीन वलय परिकल्पित साइक्लोहैक्साट्राइन की तुलना में अधिक स्थायी है।

X-किरण विर्वतन आँकड़े बेंजीन के समतलीय अणु को दर्शाते हैं। बेंजीन की उपरोक्त संरचना (क) तथा (ख) सही होतीं तो दोनों प्रकारों में C-C आबंध लंबाई की अपेक्षा की जाती, जबकि X-किरण आँकड़ों के अध्ययन के आधार पर छः समान C-C आबंध लंबाई (139pm) पाई गई, जो C-C एकल आबंध (154pm) तथा C-C द्विआबंध (134pm) के मध्य हैं। अतः सामान्य परिस्थितियों में बेंजीन पर शुद्ध द्विआबंध की अनुपस्थिति बेंजीन के संकलन अभिक्रिया होने से रोकती है। यह बेंजीन के असाधारण व्यवहार को स्पष्ट करती है।

13.5.3 ऐरोमैटिकता

बेंजीन को जनक ऐरोमैटिक यौगिक मानते हैं। अब 'ऐरोमैटिक' नाम सभी वलय तंत्रों, चाहे उसमें बेंजीन वलय हो या नहीं, में प्रयोग में लाया जाता है। ये निम्नलिखित गुण दर्शाते हैं–

(i) समतलीयता।

(ii) वलय में इलेक्ट्रॉन का संपूर्ण विस्थानीकरण।

(iii) वलय में $(4n + 2)\pi$ इलेक्ट्रॉन, जहाँ n एक पूर्णांक है (n = 0,1,2,...)। इसे **हकल नियम (Hückel Rule)** द्वारा भी उल्लेखित करते हैं।

ऐरोमैटिक यौगिकों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–
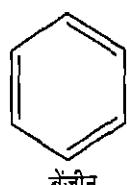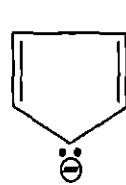
$(n = 1, 6\pi$ इलैक्ट्रॉन$)$

(n = 2, 10 π इलेक्ट्रॉन)
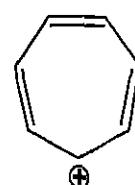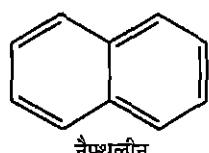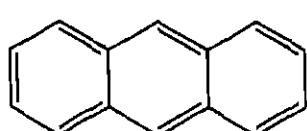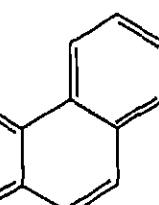
(n =3, 14 π इलेक्ट्रॉन)

13.5.4 बेंजीन का विरचन

बेंजीन को व्यापरिक रूप में कोलतार से प्राप्त किया जाता है, यद्यपि इसे निम्नलिखित प्रयोगशाला विधियों द्वारा बना सकते हैं–

(i) एथाइन के चक्रीय बहुलकीकरण से (देखिए अनुभाग 13.4)

(ii) एरोमैटिक अम्लों के विकार्बोक्सिलीकरण से– बेंजोइक अम्ल के सोडियम लवण को सोडालाइम के साथ गरम करने पर बेंजीन प्राप्त होती है।

$$C_6H_5COONa + NaOH \xrightarrow[\Delta]{CaO} C_6H_6 + Na_2CO_3 \quad (13.70)$$
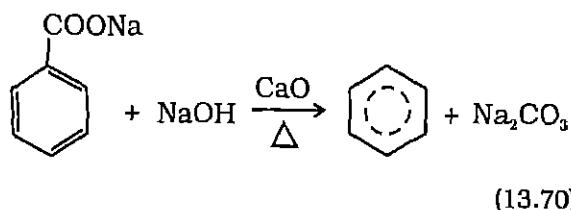
(iii) फीनॉल के अपचयन से– फीनॉल की वाष्प को जस्ता के चूर्ण पर प्रवाहित करने से यह बेंजीन में अपचयित हो जाती है।

$$C_6H_5OH + Zn \xrightarrow{\Delta} C_6H_6 + ZnO \quad (13.71)$$
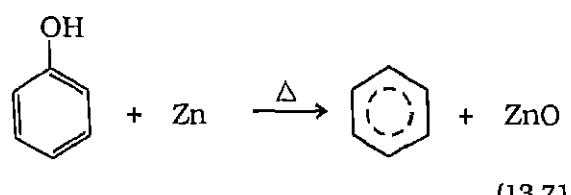
13.5.5 गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म

भौतिक गुणधर्म ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन अध्रुवीय अणु हैं। ये सामान्यत: विशिष्ट गंधयुक्त, रंगहीन द्रव या ठोस होते हैं। आप नैफ्थलीन की गोलियों से चिरपरिचित हैं। इसकी विशिष्ट गंध तथा शलभ प्रतिकर्षी गुणधर्म के कारण इसे शौचालय में तथा कपड़ों को सुरक्षित रखने के लिए उपयोग में लाते हैं। ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन जल में अमिश्रणीय तथा कार्बनिक विलायाकों में विलेय है। ये कज्जली (Sooty) लौ के साथ जलते हैं।

रासायनिक गुणधर्म

रासायनिक गुणधर्म ऐरीनो को इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन द्वारा अभिलक्षित किया जाता है, हालाँकि विशेष परिस्थितियों में ये संकलन तथा ऑक्सीकरण अभिक्रिया दर्शाते हैं।

इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ

साधारणतया ऐरीन नाइट्रीकरण, हैलोजेनीकरण, सल्कोनीकरण, फ्रीडेल क्राफ्ट ऐल्किलीकरण, ऐसीटिलीकरण आदि इलेक्ट्रानस्नेही प्रतिस्थापन अभिक्रिया दर्शाते हैं, जिनमें इलेक्ट्रॉनस्नेही एक आक्रमणकारी अभिकर्मक E^+ है।

(i) नाइट्रीकरण– यदि बेंजीन वलय को सान्द्र नाइट्रिक अम्ल तथा सल्फ्यूरिक अम्ल (नाइट्रीकरण मिश्रण) के साथ गरम किया जाता है तो बेंजीन वलय में नाइट्रो समूह **प्रविष्ट** हो जाता है।

$$C_6H_6 + \text{सांद्र } HNO_3 + \text{सांद्र } H_2SO_4 \xrightarrow{323\text{-}333\ K} C_6H_5NO_2 + H_2O \quad (13.72)$$
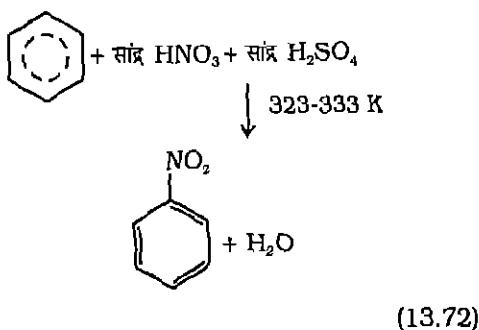
(ii) हैलोजेनीकरण– लुइस अम्ल (जैसे–$FeCl_3$, $FeBr_3$ तथा $AlCl_3$) की उपस्थिति में ऐरीन, हैलोजेन से अभिक्रिया कर हैलोऐरीन देते हैं।

$$C_6H_6 + Cl_2 \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3} C_6H_5Cl + HCl \quad (13.73)$$

क्लोरोबेंजीन
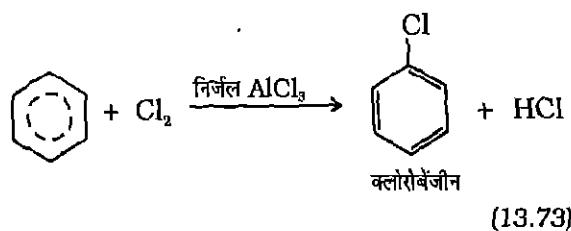
(iii) सल्फोनीकरण– सल्फोनिक अम्ल समूह द्वारा वलय के हाइड्रोजन परमाणु का प्रतिस्थापन **सल्फोनीकरण** कहलाता है। यह सांद्र सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ गरम करके प्राप्त किया जाता है।

$$C_6H_6 + \underset{\text{सांद्र}}{H_2SO_4(SO_3)} \xrightarrow{\Delta} C_6H_5SO_3H + H_2O \quad (13.74)$$

बेंजीन सल्फोनिक अम्ल
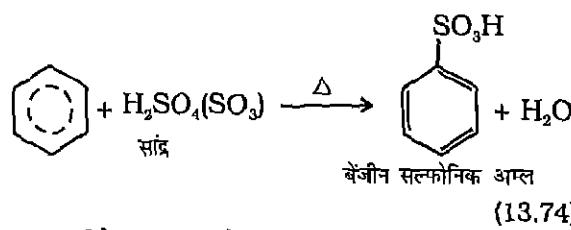
(iv) फ्रीडेल-क्राफ्ट ऐल्किलीकरण– निर्जल $AlCl_3$ की उपस्थिति में बेंजीन की ऐल्किल हैलाइड से अभिक्रिया कराने पर ऐल्किल बेंजीन प्राप्त होती है।

$$C_6H_6 + CH_3Cl \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3} C_6H_5CH_3 + HCl \quad (13.75)$$

टॉलूईन

$$C_6H_6 + C_2H_5Cl \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3} C_6H_5C_2H_5 + HCl \quad (13.76)$$

एथिलबेंजीन
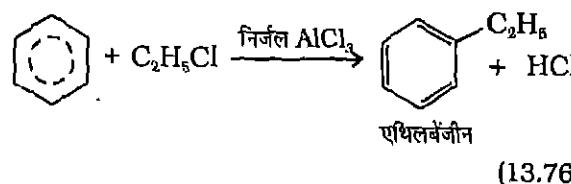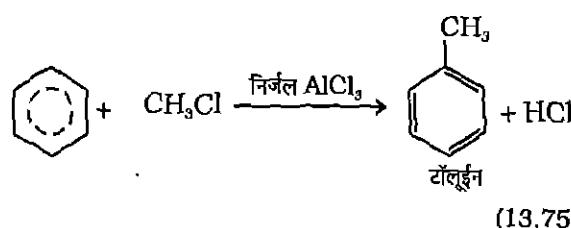
1-क्लोरोप्रोपेन की बेंजीन से अभिक्रिया कराने पर n-प्रोपिल बेंजीन की अपेक्षा आइसोप्रोपिल बेंजीन क्यों प्राप्त होती हैं?

(v) फ्रीडेल-क्राफ्ट ऐसिलीकरण– लुइस अम्ल ($AlCl_3$) की उपस्थिति में बेंजीन की ऐसिल हैलाइड अथवा ऐसिड ऐनहाइड्राइड के साथ अभिक्रिया करने पर ऐसिल बेंजीन प्राप्त होती है।

$$C_6H_6 + \underset{\text{ऐसीटिल क्लोराइड}}{CH_3COCl} \xrightarrow[\Delta]{\text{निर्जल } AlCl_3} \underset{\text{ऐसीटोफीनोन}}{C_6H_5COCH_3} + HCl \quad (13.77)$$

$$C_6H_6 + \underset{\text{ऐसीटिक ऐनहाइड्राइड}}{(CH_3CO)_2O} \xrightarrow[\Delta]{\text{निर्जल } AlCl_3} C_6H_5COCH_3 + CH_3COOH \quad (13.78)$$
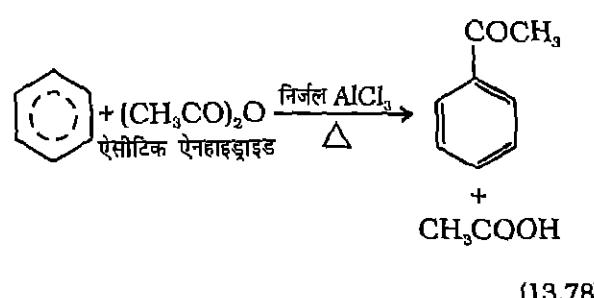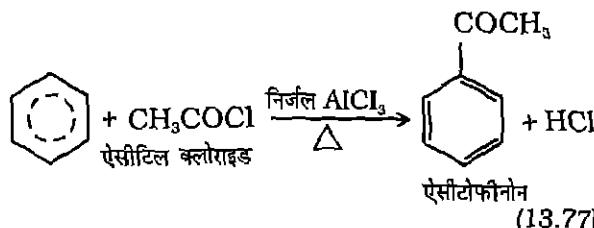
अगर इलेक्ट्रॉनस्नेही अभिकर्मक को आधिक्य में लिया जाए तो पुनः प्रतिस्थापन अभिक्रिया होगी जिसमें इलेक्ट्रानस्नेही द्वारा बेंजीन के दूसरे हाइड्रोजन उत्तरोतर प्रतिस्थापित होंगे। उदाहरणस्वरूप, बेंजीन की क्लोरीन के आधिक्य मात्रा के साथ अँधेरे एवं निर्जल $AlCl_3$ की उपस्थिति में अभिक्रिया कराने पर हैक्साक्लोरोबेंजीन (C_6Cl_6) प्राप्त होगी।

$$C_6H_6 + 6Cl_2 \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3} C_6Cl_6 + 6HCl \quad (13.79)$$

हेक्साक्लोरोबेंजीन (C_6Cl_6)
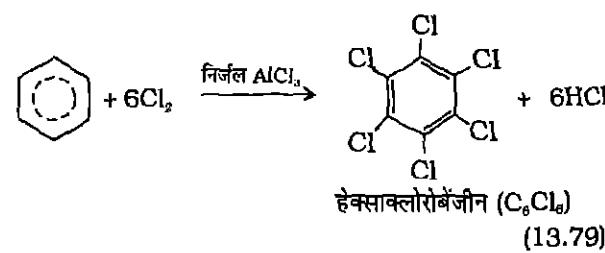
इलेक्ट्रानस्नेही प्रतिस्थापन की क्रियाविधि

प्रायोगिक तथ्यों के आधार पर S_E (S =प्रतिस्थापन E = इलेक्ट्रॉनस्नेही) अभिक्रियाएँ निम्नलिखित पदों द्वारा सम्पन्न होती हैं।

(क) इलेक्ट्रॉनस्नेही का उत्पादन

(ख) कार्बधनायन का बनना

(ग) मध्यवर्ती कार्बधनायन से प्रोटॉन का विलोपन

(क) इलेक्ट्रॉनस्नेही E^+ का उत्पादन– बेंजीन के क्लोरीनीकरण, ऐल्किलीकरण तथा ऐसीटिलिकरण में निर्जल $AlCl_3$, जो लूइस अम्ल है, आक्रमणकारी अभिकर्मक के साथ संयुक्त होकर क्रमश: $Cl^{\oplus}$, $R^{\oplus}$, $RC^{\oplus}O$ (ऐसीलियम आयन) देता है।

$$Cl-Cl + AlCl_3 \longrightarrow \overset{+}{Cl} + [AlCl_4]^-$$

क्लोरोनियम आयन

$$CH_3-Cl + AlCl_3 \longrightarrow \overset{+}{C}H_3 + [AlCl_4]^-$$

$$CH_3-\underset{\underset{O}{\|}}{C}-Cl + AlCl_3 \longrightarrow CH_3-\underset{\underset{O}{\|}}{\overset{+}{C}} + [AlCl_4]^-$$
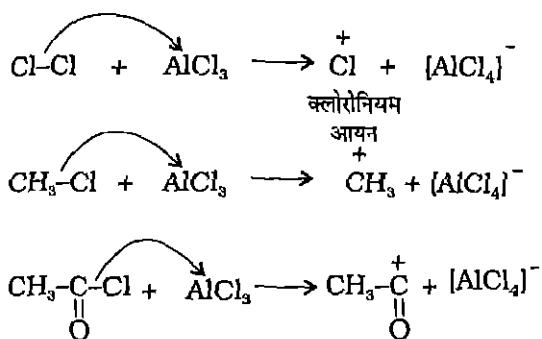
नाइट्रीकरण के संदर्भ में सल्फ्यूरिक अम्ल से नाइट्रिक अम्ल को प्रोटॉन के स्थानांतरण पर इलेक्ट्रॉनस्नेही नाइट्रोनियम आयन $\left(\overset{\oplus}{N}O_2\right)$ इस प्रकार बनता है–

$$HO_3SO-H + H-\ddot{O}-NO_2 \rightleftharpoons H-\overset{\overset{H}{|}}{\overset{+}{O}}-NO_2 + HSO_4^-$$

$$H-\overset{\overset{H}{|}}{\overset{+}{O}}-NO_2 \rightleftharpoons H_2O + \overset{\oplus}{N}O_2$$

प्रोट्रोनीकृत नाइट्रिक अम्ल — नाइट्रोनियम आयन
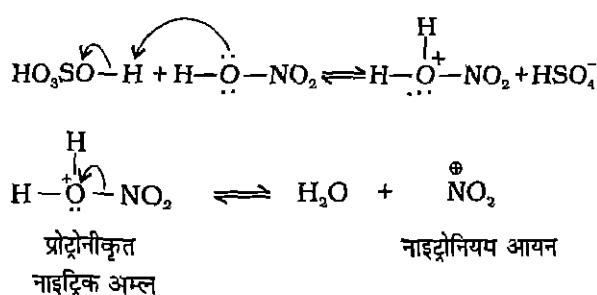
यह रोचक तथ्य है कि नाइट्रोनियम आयन के उत्पादन की प्रक्रिया में सल्फ्यूरिक अम्ल, अम्ल की भाँति तथा नाइट्रिक अम्ल, क्षारक की भाँति कार्य करता है। अत: यह साधारण अम्ल-क्षारक साम्य है।

(ख) कार्बधनायन (ऐरीनोनियम आयन) का बनना

इलेक्ट्रॉनस्नेही के आक्रमण से σ संकर या ऐरीनोनियम आयन बनता है, जिसमें एक कार्बन sp^3 संकरित अवस्था में होता है।

sp^3 संकरित कार्बन
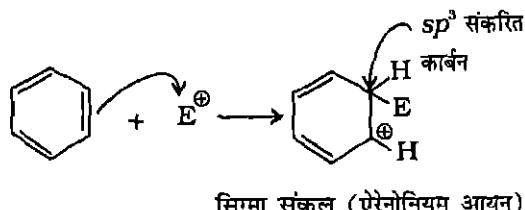
सिग्मा संकुल (ऐरेनोनियम आयन)

ऐरीनोनियम आयन निम्नलिखित प्रकार से अनुनाद द्वारा स्थायित्व प्राप्त करता है–
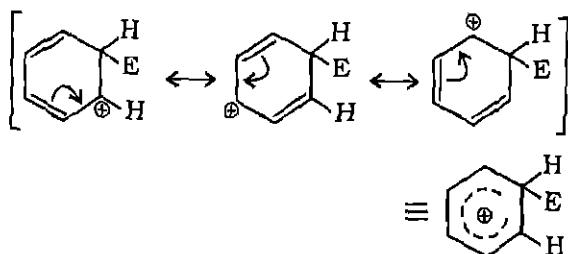
सिग्मा संकुल या ऐरेनोनियम आयन के sp^3 संकरित कार्बन परमाणु पर इलेक्ट्रॉन का विस्थानीकरण रुक जाता है, जिसके कारण यह ऐरोमैटिक गुण खो देता है।

(ग) प्रोटॉन का विलोपन– ऐरोमैटिक गुण को पुन: स्थापित करने के लिए σ संकुल sp^3 संकरित कार्बन पर $AlCl_4^-$ (हैलोजेनीकरण, ऐल्किलीकरण तथा ऐसीटिलीकरण के संदर्भ में) अथवा HSO_4^- (नाइट्रीकरण के संदर्भ में) के आक्रमण द्वारा प्रोटॉन का विलोपन करता है।

$$\xrightarrow{[AlCl_4]^-} + HCl + AlCl_3$$

$$\xrightarrow{[HSO_4]^-} + H_2SO_4$$
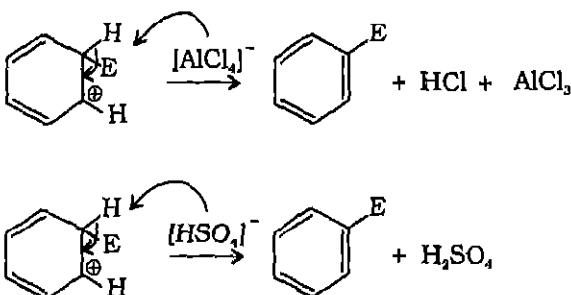
संकलन अभिक्रियाएँ

प्रबल परिस्थितियों जैसे–उच्च ताप एवं दाब पर निकेल उत्प्रेरक की उपस्थिति में बेंजीन हाइड्रोजनीकरण द्वारा साइक्लोहेक्सेन बनाती है।

$$C_6H_6 + 3H_2 \xrightarrow[\Delta]{Ni} \text{साइक्लोहेक्सेन} \quad (13.80)$$
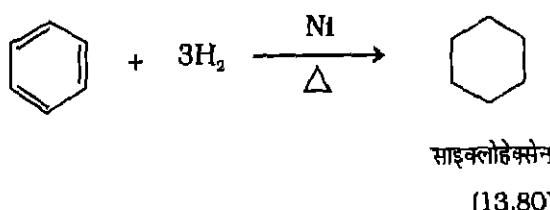
पराबैंगनी प्रकाश की उपस्थिति में तीन क्लोरीन अणु बेंजीन वलय पर संकलन करके बेंजीनहैक्साक्लोराइड $C_6H_6Cl_6$ बनाते हैं, जिसे **गैमेक्सीन** भी कहते हैं।

$$C_6H_6 + 3Cl_2 \xrightarrow[500\ K]{uv} C_6H_6Cl_6$$

बेंजीनहेक्साक्लोराइड

(13.81)
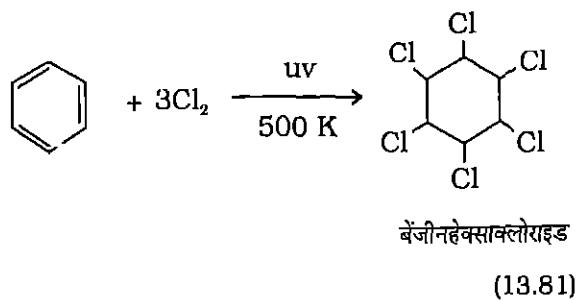
दहन– बेंजीन को वायु की उपस्थिति में गरम करने पर कज्जली लौ के साथ CO_2 एवं H_2O बनती है।

$$C_6H_6 + \frac{15}{2}O_2 \rightarrow 6CO_2 + 3H_2O \qquad (13.82)$$
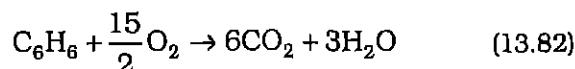
किसी हाइड्रोकार्बन की सामान्य दहन अभिक्रिया को निम्नलिखित रासायनिक अभिक्रिया द्वारा प्रदर्शित किया जाता है–

$$C_xH_y + (x + \frac{y}{4})\,O_2 \rightarrow x\,CO_2 + \frac{y}{2}\,H_2O \qquad (13.83)$$
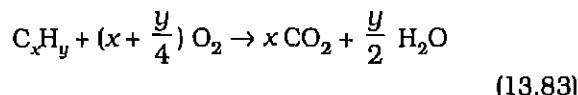
13.5.6 एकल प्रतिस्थापित बेंजीन में क्रियात्मक समूह का निर्देशात्मक प्रभाव

यदि एकल प्रतिस्थापित बेंजीन का पुनः प्रतिस्थापन कराया जाए तो तीनों संभावित द्विप्रतिस्थापित उत्पाद समान मात्रा में नहीं बनते हैं। यहाँ दो प्रकार के व्यवहार देखे गए हैं– (i) ऑर्थो एवं पैरा उत्पादन या (ii) मेटा उत्पादन। यह भी देखा गया है कि यह व्यवहार पहले से उपस्थित प्रतिस्थापी की प्रकृति पर निर्भर करता है, न कि आने वाले समूह की प्रकृति पर। इसे **प्रतिस्थापियों का निर्देशात्मक प्रभाव** कहते हैं। समूहों की विभिन्न निर्देशात्मक प्रकृति का कारण नीचे वर्णित किया गया है–

आर्थो एवं पैरा निर्देशी समूह– वे समूह जो आने वाले समूह को ऑर्थो एवं पैरा स्थिति पर निर्दिष्ट करते हैं, उन्हें **आर्थो** तथा **पैरा निर्देशी समूह** कहते हैं। उदाहरणस्वरूप– हम फीनॉलिक समूह के निर्देशात्मक प्रभाव की व्याख्या करते हैं। फीनॉल निम्नलिखित संरचनाओं का अनुनाद संकर है–

I ⟷ II ⟷ III ⟷ IV ⟷ V
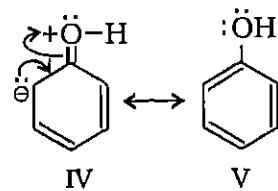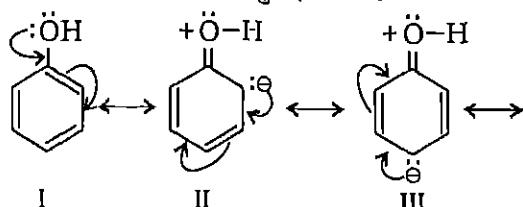
अनुनादी संरचनाओं से स्पष्ट है कि *o*- एवं *p*- स्थिति पर इलेक्ट्रॉन घनत्व अधिक है। अतः मुख्यतः इन्हीं स्थितियों पर प्रतिस्थापन होगा। यद्यपि ध्यान रखने योग्य बात यह है कि -OH समूह का -I प्रभाव भी कार्य करता है, जिससे बेंजीन वलय की *o*- एवं *p*- स्थिति पर कुछ इलेक्ट्रॉन घनत्व घटेगा, किंतु अनुनाद के कारण इन स्थितियों पर व्यापक इलेक्ट्रॉन घनत्व बहुत कम घटेगा। अतः -OH समूह बेंजीन वलय को इलेक्ट्रॉनस्नेही के आक्रमण के लिए सक्रिय कर देते हैं। कुछ अन्य सक्रियकारी समूह के उदाहरण– NH_2, -NHR, -$NHCOCH_3$, -OCH_3,-CH_3,-C_2H_5, हैं।

ऐरिल हैलाइड में हैलोजेन यद्यपि विसक्रियकारी है, परंतु प्रबल -I प्रभाव के कारण ये बेंजीन वलय पर इलेक्ट्रॉन घनत्व कम कर देते हैं, जिससे पुनः प्रतिस्थापन कठिन हो जाता है। हालाँकि अनुनाद के कारण *o*- एवं *p*- स्थिति पर इलेक्ट्रॉन घनत्व *m*- स्थिति से अधिक है। अतः ये भी *o*- एवं *p*-निर्देशी समूह है।

मेटा निर्देशी समूह– वे समूह, जो आने वाले समूह को मेटा स्थिति पर निर्दिष्ट करते हैं, उन्हें **मेटा निर्देशी समूह** कहते हैं। कुछ मेटा निर्देशी समूह के उदाहरण -NO_2,-CN,-CHO, -COR,-COOH,-COOR,-SO_3H आदि हैं। आइए, नाइट्रोसमूह का उदाहरण लेते हैं। नाइट्रो समूह प्रबल-I प्रभाव के कारण बेंजीन वलय पर इलेक्ट्रॉन घनत्व कम कर देता है। नाइट्रोबेंजीन निम्नलिखित संरचनाओं का अनुनाद संकर है–

I ⟷ II ⟷ III ⟷ IV ⟷ V
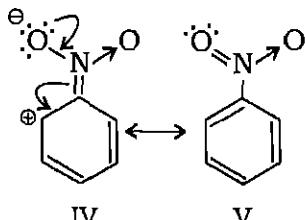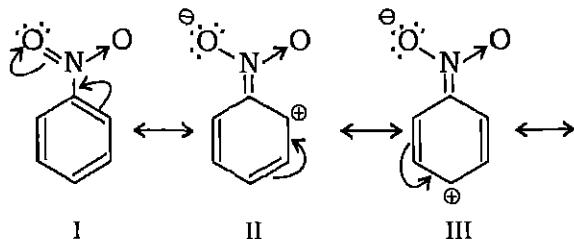
नाइट्रोबेंजीन में बेंजीन वलय पर व्यापक इलेक्ट्रॉन घनत्व घट जाता है, जो पुन: प्रतिस्थापन को कठिन बनाता है। अत: इन समूहों को **निष्क्रियकारी समूह** कहते हैं। मेटा स्थिति की तुलना में *o*- एवं *p*- स्थिति पर इलेक्ट्रॉन घनत्व कम होता है। परिणामत: इलेक्ट्रॉनस्नेही तुलनात्मक रूप में इलेक्ट्रॉनधनी स्थिति (मेटा) पर आक्रमण करता है एवं प्रतिस्थापन मेटा स्थिति पर होता है।

13.6 कैंसरजन्य गुण तथा विषाक्तता

बेंजीन तथा बहुलकेंद्रकीय हाइड्रोकार्बन, जिनमें दो से अधिक जुड़ी हुई वलय हों, विषाक्त तथा कैंसर जनित (कैंसरजनी) गुण दर्शाते हैं। बहुलकेंद्रकीय हाइड्रोकार्बन, कार्बनिक पदार्थों जैसे–तंबाकू, कोल तथा पेट्रोलियम के अपूर्ण दहन से बनते हैं, जो मानव शरीर में प्रवेश कर विभिन्न जैव रासायनिक अभिक्रियाओं द्वारा डी.एन.ए. को अंतत: नष्ट कर कैंसर उत्पन्न करते हैं। कुछ कैंसरजनी हाइड्रोकार्बन नीचे दिए गए हैं–

1,2-बेंजएंथ्रेसीन

3-मेथिलकोलेंथ्रीन

1,2-बेंजपाइरीन

9,10-डाइमेथिल-1,2-बेंजएंथ्रेसीन

1,2,5,6-डाइबेंजऐंथ्रेसीन
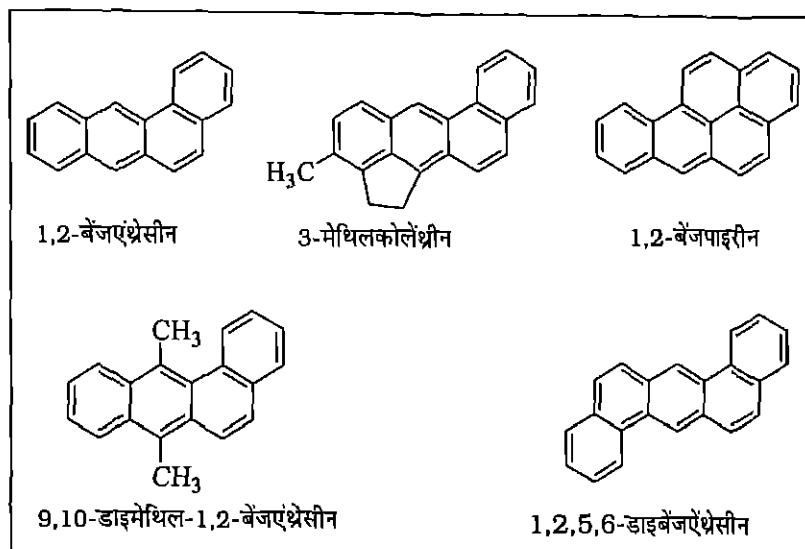
सारांश

हाइड्रोकार्बन केवल कार्बन तथा हाइड्रोजन के यौगिक होते हैं। हाइड्रोकार्बन मुख्यत: कोल तथा पेट्रोलियम से प्राप्त होते हैं, जो **ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। शैल रसायन** (Petrochemicals) अनेक महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक उत्पादों के निर्माण के लिए मुख्य प्रारंभिक पदार्थ हैं। घरेलू ईंधन तथा स्वचालित वाहनों के प्रमुख ऊर्जा स्रोत द्रवित पेट्रोलियम गैस, एल.पी.जी. (Liquified petroleum gas) तथा संपीडित प्राकृतिक गैस सी.एन.जी (Compressed natural gas) है, जो पेट्रोलियम से प्राप्त किए जाते हैं। संरचना के आधार पर हाइड्रोकार्बन को **विवृत्त शृंखला संतृप्त** (ऐल्केन), **असतृंप्त** (एल्कीन तथा एल्काइन), **चक्रीय** (ऐलिसाइक्लिक) तथा **ऐरोमैटिक** वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

ऐल्केनों की प्रमुख अभिक्रियाएँ, **मुक्त-मूलक प्रतिस्थापन**, **दहन**, **ऑक्सीकरण** तथा **ऐरोमैटीकरण** है। ऐल्कीन तथा ऐल्काइन संकलन अभिक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं, जो मुख्यत: **इलेक्ट्रॉनस्नेही संकलन अभिक्रियाएँ** होती हैं। ऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन असंतृप्त होते हुए भी **इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ** प्रदर्शित करते हैं। *ये यौगिक विशेष परिस्थितियों में संकलन-अभिक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं।*

ऐल्केन C-C (सिग्मा) आबंध के मुक्त घूर्णन के कारण संरूपणीय समावयवता (Conformational Isomerism) प्रदर्शित करते हैं। एथेन के सांतरित (Staggered) एवं ग्रस्त रूप (Eclipsed) में से सांतरित संरूपण हाइड्रोजन परमाणुओं की अधिकतम दूरी के कारण अधिक स्थायी है। कार्बन-कार्बन द्विआबंध के चारों ओर प्रतिबंधित घूर्णन के कारण एल्कीन **ज्यामितीय (सिस-ट्रांस) समावयवता** प्रदर्शित करती है।

बेंजीन तथा **बेंजेनाइड** यौगिक ऐरोमैटिकता प्रदर्शित करते हैं। यौगिकों में ऐरोमैटिक होने का गुण, हकल द्वारा प्रतिपादित $(4n+2)\pi$ इलेक्ट्रॉन नियम पर आधारित है। बेंजीन वलय से जुडे समूहों अथवा प्रतिस्थापियों की प्रकृति पुन: इलेक्ट्रानस्नेही प्रतिस्थापन हेतु वलय की सक्रियता एवं निष्क्रियता को तथा प्रवेश करने वाले समूह की स्थिति (Orientation) को प्रभावित करती है। कई बहुकेंद्रकीय हाइड्रोकार्बन (Polynuclear hydrocarbon) में बेंजीन वलय आपस में जुड़ी रहती है। ये कैंसरजनी प्रकृति दर्शाते हैं।

अभ्यास

13.1 मैथेन के क्लोरीनीकरण के दौरान ऐथेन कैसे बनती है? आप इसे कैसे समझाएँगे।

13.2 निम्नलिखित यौगिकों के IUPAC नाम लिखिए–

(क) $CH_3CH=C(CH_3)_2$ (ख) $CH_2=CH-C\equiv C-CH_3$

(ग) (घ) $-CH_2-CH_2-CH=CH_2$

(च) CH_3, OH (छ) $CH_3(CH_2)_4\,CH(CH_2)_3CH_3$ (शाखा: $CH_2-CH(CH_3)_2$)

(ज) $CH_3-CH=CH-CH_2-CH=CH-CH-CH_2-CH=CH_2$ (दूसरे C पर शाखा: C_2H_5)
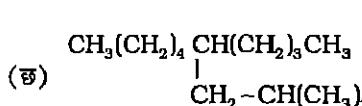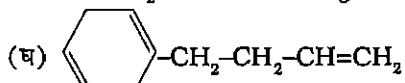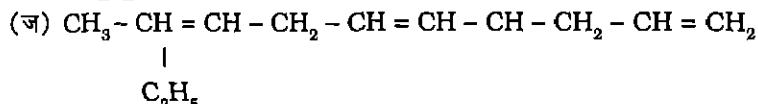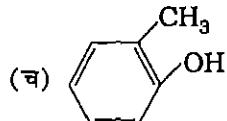
13.3 निम्नलिखित यौगिकों, जिनमें द्विआबंध तथा त्रिआबंध की संख्या दर्शायी गई है, के सभी संभावित स्थिति समावयवों के संरचना-सूत्र एवं IUPAC नाम दीजिए–

(क) C_4H_8 (एक द्विआबंध) (ख) C_5H_8 (एक त्रिआबंध)
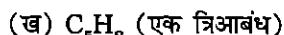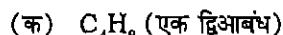
13.4 निम्नलिखित यौगिकों के ओजोनी-अपघटन के पश्चात् बनने वाले उत्पादों के नाम लिखिए–

(i) पेंट-2-ईन (ii) 3, 4-डाईमेथिल-हेप्ट-3-ईन

(iii) 2-एथिलब्यूट-1-ईन (iv) 1-फेनिलब्यूट-1-ईन
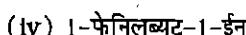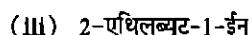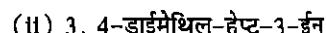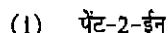
13.5 एक एल्कीन 'A' के ओजोनी अपघटन से पेंटेन-3-ओन तथा ऐथेनॉल का मिश्रण प्राप्त होता है। A का IUPAC नाम तथा संरचना दीजिए।

13.6 एक ऐल्केन A में तीन C-C, आठ C-H सिग्मा आबंध तथा एक C-C पाई आबंध हैं। A ओजोनी अपघटन से दो अणु ऐल्डिहाइड, जिनका मोलर द्रव्यमान 44 है, देता है। A का आई.यू.पी.ए.सी. नाम लिखिए।

13.7 एक एल्कीन, जिसके ओजोनी अपघटन से प्रोपेनॉल तथा पेंटेन-3-ओन प्राप्त होते हैं, का संरचनात्मक सूत्र क्या है?

13.8 निम्नलिखित हाइड्रोकार्बनों के दहन की रासायनिक अभिक्रिया लिखिए–

(i) ब्यूटेन (ii) पेंटीन

(iii) हैक्साइन (iv) टॉलूइन
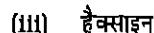
13.9 हैक्स-2-ईन की समपक्ष (सिस) तथा विपक्ष (ट्रांस) संरचनाएँ बनाइए। इनमें से कौन-से समावयव का क्वथनांक उच्च होता है और क्यों?

13.10 बेंजीन में तीन द्वि-आबंध होते हैं, फिर भी यह अत्यधिक स्थायी है, क्यों?

13.11 किसी निकाय द्वारा ऐरोमैटिकता प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक शर्तें क्या हैं?

13.12 इनमें में कौन से निकाय ऐरोमैटिक नहीं हैं? कारण स्पष्ट कीजिए–
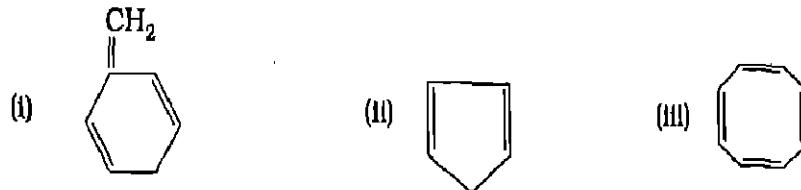
13.13 बेंजीन को निम्नलिखित में कैसे परिवर्तित करेंगे–

(i) p-नाइट्रोब्रोमोबेंजीन (ii) m-नाइट्रोक्लोरोबेंजीन

(iii) p-नाइट्रोटॉलूईन (iv) ऐसीटोफीनोन

13.14 ऐल्केन $H_3C-CH_2-C-(CH_3)_2-CH_2-CH(CH_3)_2$ में 1°,2° तथा 3° कार्बन परमाणुओं की पहचान कीजिए तथा प्रत्येक कार्बन से आबंधित कुल हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या भी बताइए।

13.15 क्वथनांक पर ऐल्केन की शृंखला के शाखन का क्या प्रभाव प्रड़ता है?

13.16 प्रोपीन पर HBr के संकलन से 2-ब्रोमोप्रोपेन बनता है, जबकि बेंजॉयल परॉक्साइड की उपस्थिति में यह अभिक्रिया 1-ब्रोमोप्रोपेन देती है। क्रियाविधि की सहायता से इसका कारण स्पष्ट कीजिए।

13.17 1, 2-डाइमेथिलबेंजीन (o-जाइलीन) के ओजोनी अपघटन के फलस्वरूप निर्मित उत्पादों को लिखिए। यह परिणाम बेंजीन की केकुले संरचना की पुष्टि किस प्रकार करता है?

13.18 बेंजीन, n-हैक्सेन तथा एथाइन को घटते हुए अम्लीय व्यवहार के क्रम में व्यवस्थित कीजिए और इस व्यवहार का कारण बताइए।

13.19 बेंजीन इलेक्ट्रॉनस्नेही प्रतिस्थापन अभिक्रियाएँ सरलतापूर्वक क्यों प्रदर्शित करती हैं, जबकि उसमें नाभिकस्नेही प्रतिस्थापन कठिन होता है?

13.20 आप निम्नलिखित यौगिकों को बेंजीन में कैसे परिवर्तित करेंगे?

(i) एथाइन (ii) एथीन (iii) हैक्सेन

13.21 उन सभी एल्कीनों की संरचनाएँ लिखिए, जो हाइड्रोजेनीकरण करने पर 2-मेथिलब्यूटेन देती है।

13.22 निम्नलिखित यौगिकों को उनकी इलेक्ट्रॉनस्नेही (E^+) के प्रति घटती आपेक्षिक क्रियाशीलता के क्रम में व्यवस्थित कीजिए–

(क) क्लोरोबेंजीन, 2,4-डाइनाइट्रोक्लोरोबेंजीन, p- नाइट्रोक्लोरोबेंजीन

(ख) टॉलूइन, p-$H_3C-C_6H_4-NO_2$, p-$O_2N-C_6H_4-NO_2$

13.23 बेंजीन, *m*- डाइनाइट्रोबेंजीन तथा टॉलूईन में से किसका नाइट्रीकरण आसानी से होता है और क्यों?

13.24 बेंजीन के एथिलीकरण में निर्जल ऐलुमीनियम क्लोराइड के स्थान पर कोई दूसरा लूइस अम्ल सुझाइए।

13.25 क्या कारण है कि वुर्ट्ज अभिक्रिया से विषम संख्या कार्बन परमाणु वाले विशुद्ध ऐल्केन बनाने के लिए प्रयुक्त नहीं की जाती। एक उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

पर्यावरणीय रसायन
ENVIRONMENTAL CHEMISTRY

उद्देश्य

इस एकक के अध्ययन के बाद आप–

- पर्यावरणीय रसायन का अर्थ समझ सकेंगे;
- वायुमंडलीय प्रदूषण को परिभाषित कर सकेंगे तथा भूमंडलीय तापवृद्धि, हरित गृह-प्रभाव तथा अम्ल-वर्षा के कारणों की सूची बना सकेंगे;
- ओज़ोन-परत के अवक्षय के कारणों तथा इसके प्रभावों को जान सकेंगे;
- जल-प्रदूषण के कारण बता सकेंगे तथा पेयजल के अंतरराष्ट्रीय मानकों के बारे में जान सकेंगे;
- मृदा-प्रदूषण के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए योजना बना और अपना सकेंगे;
- दैनिक जीवन में हरित रसायन के महत्त्व को समझ सकेंगे।

विश्व ने ज्ञानरहित चमक तथा विवेकहीन शक्ति प्राप्त कर ली है। हमारा विश्व नाभिकीय रूप से महादानव तथा नैतिक रूप से शिशु है।

पिछली कक्षाओं में आप पर्यावरण के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। पर्यावरणीय अध्ययन परिवेश से हमारे सामाजिक, जैविक, आर्थिक, भौतिक तथा रासायनिक अंतर्संबंध को दर्शाता है। इस एकक में हम पर्यावरणीय रसायन पर ध्यान केंद्रित करेंगे। पर्यावरणीय रसायन परिवहन, अभिक्रियाओं, प्रभावों, तथ्यों आदि पर्यावरणीय रासायनिक स्पीशीज़ से संबंधित हैं। आइए, पर्यावरणीय रसायन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करें।

14.1 पर्यावरण-प्रदूषण

पर्यावरण-प्रदूषण हमारे परिवेश में अवांछनीय परिवर्तन (जो पौधों, जंतुओं तथा मनुष्यों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं) का परिणाम है। वह पदार्थ, जो प्रदूषण उत्पन्न करता है, 'प्रदूषक' कहलाता है। प्रदूषक ठोस, द्रव अथवा गैसीय पदार्थ हो सकता है, जो प्राकृतिक घटनाओं के कारण उत्पन्न होता है। क्या आप जानते हैं कि एक औसत मनुष्य को भोजन की तुलना में लगभग 12–15 गुना अधिक वायु की आवश्यकता होती है? अतः भोजन में प्रदूषक की अति अल्प मात्रा वायु में उपस्थित समान मात्रा की तुलना में महत्त्वपूर्ण है। प्रदूषक को निम्नीकृत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ– सब्जियों के त्याज्य भाग प्राकृतिक विधियों द्वारा निम्नीकृत एवं अपघटित हो जाते हैं। इसके विपरीत कुछ प्रदूषक, जो धीरे-धीरे निम्नीकृत होते हैं, कई दशकों तक पर्यावरण में अपरिवर्तित रूप में बने रहते हैं। उदाहरणार्थ– डाइक्लोरोडाइफिनाइल ट्राइक्लोरो एथेन (डी.डी.टी.), प्लास्टिक-निर्मित अनेक पदार्थ, भारी धातुएँ, अनेक रसायन तथा नाभिकीय अपशिष्ट आदि यदि एक बार पर्यावरण में निर्गमित हो जाते हैं, तो इन्हें पृथक् करना कठिन होता है। ये प्रदूषक प्राकृतिक विधियों द्वारा निम्नीकृत नहीं होते हैं तथा जीवित प्राणियों के लिए हानिकारक होते हैं। पर्यावरणीय प्रदूषण में प्रदूषक विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न होते हैं तथा वायु या जल मनुष्य द्वारा अथवा मृदा में गाड़ने पर अभिगमित होते हैं।

14.2 वायुमंडलीय प्रदूषण

वायुमंडल, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है, की मोटाई हर ऊँचाई पर समान नहीं होती है। इसमें वायु की विभिन्न संकेंद्री परत अथवा क्षेत्र होते हैं तथा प्रत्येक परत का घनत्व भिन्न-भिन्न होता है। वायुमंडल का सबसे निचला क्षेत्र, जिसमें मनुष्य तथा अन्य प्राणी रहते हैं, को 'क्षोभमंडल' (Troposphere) कहते हैं। यह समुद्र-तल से 10 किमी. की ऊँचाई तक होता है। उसके ऊपर (समुद्र-तल से 10 से 50 किमी. के मध्य) समतापमंडल (Stratosphere) होता है। क्षोभमंडल धूलकणों से युक्त क्षेत्र है, जिसमें वायु, अधिक जलवाष्प तथा बादल उपस्थित होते हैं। इस क्षेत्र में वायु के तीव्र प्रवाह एवं बादल का निर्माण होता है, जबकि समतापमंडल में डाइनाइट्रोजन, डाइऑक्सीजन, ओजोन तथा सूक्ष्म मात्रा में जलवाष्प होता है।

वायुमंडलीय प्रदूषण में मुख्यतः क्षोभमंडलीय तथा समतापमंडलीय प्रदूषण का अध्ययन किया जाता है। सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों के 99.5% भाग को समतापमंडल में उपस्थित ओजोन पृथ्वी की सतह पर पहुँचने से रोकता है तथा इसके प्रभाव मानव तथा अन्य जीवों की रक्षा करता है।

14.2.1 क्षोभमंडलीय प्रदूषण

वायु में उपस्थित अवांछनीय ठोस अथवा गैस कणों के कारण क्षोभमंडलीय प्रदूषण होता है। क्षोभमंडल में निम्नलिखित मुख्यतः गैसीय तथा कणिकीय प्रदूषक उपस्थित होते हैं–

(क) गैसीय वायुप्रदूषक– ये सल्फर, नाइट्रोजन तथा कार्बन के ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोकार्बन, ओजोन तथा अन्य ऑक्सीकारक हैं।

(ख) कणिकीय प्रदूषक- ये धूल, धूम्र, कोहरा, फुहारा (स्प्रे), धुआँ आदि हैं।

1. गैसीय वायुप्रदूषक–

(क) सल्फर के ऑक्साइड– जीवाश्म ईंधन के दहन के परिणामस्वरूप सल्फर के ऑक्साइड उत्पन्न होते हैं। इसमें प्रमुख स्पीशीज़ सल्फर डाइऑक्साइड है। यह एक गैस है तथा मनुष्य एवं जंतुओं के लिए विषैली है। ऐसा प्रतीत होता है कि सल्फर डाइऑक्साइड की सूक्ष्म सांद्रता मनुष्य में विभिन्न श्वसन-रोगों (जैसे–अस्थमा, श्वसनी शोथ (Bronchitles), ऐम्फाइसीमा आदि) का कारण होती है। सल्फर डाइऑक्साइड के कारण आँखों में जलन होती है, जिससे आँखें लाल हो जाती हैं तथा आँसू आने लगते हैं। SO_2 की उच्च सांद्रता फूलों की कलियों में कड़ापन उत्पन्न करती है, जिससे ये पौधों से शीघ्र गिर जाती हैं। सल्फर डाइऑक्साइड का अनुत्प्रेरकीय (Uncatalysis) ऑक्सीकरण एक धीमी प्रक्रिया है, परंतु प्रदूषित वायु, जिसमें कणिकीय द्रव्य होते हैं, वायुमंडल में उपस्थित सल्फर ट्राइऑक्साइड की ऑक्सीकरण-प्रक्रिया को उत्प्रेरित करते हैं।

$$2SO_2(g) + O_2(g) \rightarrow 2SO_3(g)$$
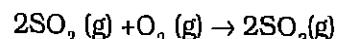
इस अभिक्रिया की प्रगति वायुमंडल में उपस्थित ओजोन तथा हाइड्रोजन परॉक्साइड द्वारा बढ़ जाती है।

$$SO_2(g) + O_3(g) \rightarrow SO_3(g) + O_2(g)$$

$$SO_2(g) + H_2O_2(l) \rightarrow H_2SO_4(aq)$$
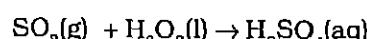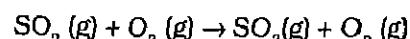
(ख) नाइट्रोजन के ऑक्साइड– वायु के प्रमुख अवयव डाइनाइट्रोजन तथा डाइऑक्सीजन हैं। सामान्य ताप पर ये गैसें आपस में अभिक्रिया नहीं करती हैं; परंतु उच्च उन्नतांश पर जब बिजली चमकती है, तब ये आपस में प्रतिक्रिया करके नाइट्रोजन के ऑक्साइड बनाती हैं। NO_2 ऑक्सीकरण पर NO_3^- आयन बनाती है, जो मृदा में घुलकर उर्वरक का कार्य करती है। किसी स्वचालित इंजन में (उच्च ताप पर) जब जीवाश्म ईंधन का दहन होता है, तब डाइनाइट्रोजन तथा डाइऑक्सीजन मिलकर नाइट्रिक ऑक्साइड NO तथा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड NO_2 की पर्याप्त मात्रा देती हैं।

$$N_2(g) + O_2(g) \xrightarrow{1483K} 2NO(g)$$

NO ऑक्सीजन से शीघ्रतापूर्वक क्रिया कर NO_2 देती है।

$$2NO(g) + O_2(g) \rightarrow 2NO_2(g)$$
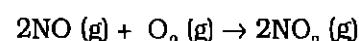
जब समतापमंडल में नाइट्रिक ऑक्साइड NO ओजोन से प्रतिक्रिया करती है, तब नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) के निर्माण की दर बढ़ जाती है।

$$NO(g) + O_3(g) \rightarrow NO_2(g) + O_2(g)$$
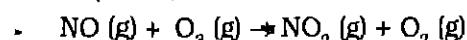
यातायात तथा सघन स्थानों पर उत्पन्न तीक्ष्ण लाल धूम्र नाइट्रोजन ऑक्साइड के कारण होता है। NO_2 की अधिक सांद्रता होने पर पौधों की पत्तियाँ गिर जाती हैं तथा प्रकाश-संश्लेषण की दर कम हो जाती है। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड फेफड़ों में उत्तेजना उत्पन्न होती है, जिससे बच्चों में प्रचंड श्वसन-रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह जीव ऊतकों के लिए विषैली भी है। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड विभिन्न वस्त्र-रेशों तथा धातुओं के लिए भी हानिकारक है।

(ग) हाइड्रोकार्बन– हाइड्रोकार्बन केवल कार्बन तथा हाइड्रोजन के बने होते हैं। स्वचालित वाहनों में ईंधन के अपूर्ण दहन के कारण ये उत्पन्न होते हैं। अधिकांश हाइड्रोकार्बन कैन्सरजन्य होते हैं, अर्थात् इसके कारण कैन्सर होता है। यह पौधों में काल-

प्रभावण, ऊतकों के निम्नीकरण तथा पत्तियों, फूलों एवं टहनियों में छाया द्वारा हानि पहुँचाते हैं।

(घ) कार्बन के ऑक्साइड

(i) कार्बन मोनोऑक्साइड– कार्बन मोनो ऑक्साइड गंभीर वायु-प्रदूषकों में से एक है। यह रंगहीन तथा गंधहीन है। यह श्वसनीय प्राणियों के लिए हानिकारक है। इसमें विभिन्न अंगों तथा ऊतकों के लिए दी जाने वाली ऑक्सीजन के प्रवाह को रोकने की सामर्थ्य होती है। यह कार्बन के अपूर्ण दहन के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इसकी सर्वाधिक मात्रा मोटरवाहनों से निकलने वाले धुएँ से उत्पन्न होती है। इसके अन्य स्रोत कोयला, ईंधन-लकड़ी, पेट्रोल का अपूर्ण दहन हैं। विश्व में पिछले कुछ वर्षों में यातायात के साधनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। अधिकतर वाहनों का उचित रख-रखाव नहीं होता है अथवा प्रदूषक, नियंत्रक उपकरण उपयुक्त नहीं होते हैं। परिणामस्वरूप अत्यधिक मात्रा में कार्बन मोनोऑक्साइड तथा अन्य प्रदूषक गैसें निर्गमित होती हैं। क्या आप जानते हैं कि कार्बन मोनोऑक्साइड विषैली क्यों है? यह हीमोग्लोबिन के साथ ऑक्सीजन की अपेक्षा अधिक प्रबलता से संयुक्त हो जाती है तथा कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन बनाती है, जो ऑक्सीजन-होमोग्लोबिन से लगभग 300 गुना अधिक स्थायी संकुल है। जब रक्त में कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन की मात्रा 3-4 प्रतिशत तक पहुँच जाती है, तब रक्त में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता काफी कम हो जाती है। ऑक्सीजन की इस न्यूनता से सिरदर्द, नेत्रदृष्टि की क्षीणता, तंत्रकीय आवेग में न्यूनता, हृदयवाहिका में तंत्र अव्यवस्था आदि की विसंगतियाँ हो जाती हैं। यही कारण है कि लोगों को धूम्रपान नहीं करने की सलाह दी जाती है। गर्भवती महिलाओं के रक्त में कार्बन मोनोऑक्साइड CO की बढ़ी मात्रा कालपूर्व जन्म, स्वतः गर्भपात एवं बच्चों में विरूपता का कारण है। यह इतनी विषैली है कि 1300 पी.पी.एम. की सांद्रता आधे घंटे में प्राणघातक हो जाती है।

(ii) कार्बन डाइऑक्साइड– श्वसन, जीवाश्म ईंधन का दहन, सीमेन्ट निर्माण में काम आने वाले चूना-पत्थर आदि से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) निर्गमित होती है। कार्बन डाइऑक्साइड गैस केवल क्षोभमंडल में होती है। सामान्यतः वायुमंडल में इसकी मात्रा आयतन के अनुसार 0.03% होती है। जीवाश्म ईंधन के अधिक प्रयोग से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की अधिक मात्रा निर्गमित होती है। कार्बन डाइऑक्साइड की अधिकता हरित पौधों द्वारा कम कर दी जाती है, जिससे वायुमंडल में CO_2 की यथेष्ट मात्रा बनी रहती है। वातावरण में CO_2 की मात्रा बनाए रखना आवश्यक होता है। हरे पौधों में प्रकाश-संश्लेषण के लिए CO_2 की आवश्यकता होती है। फलतः ऑक्सीजन मुक्त होती है। इसलिए संतुलित चक्र बना रहता है। जैसा आप जानते हैं, वनों के कटने तथा जीवाश्म ईंधन के अधिक दहन के कारण वायुमंडल में CO_2 की मात्रा बढ़ गई है तथा पर्यावरण-संतुलन बिगड़ गया है। कार्बन डाइऑक्साइड की यही बढ़ी हुई मात्रा भूमंडलीय तापवृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

भूमंडलीय तापवृद्धि एवं हरितगृह प्रभाव (Global Warming and Greenhouse Effect)

सौर ऊर्जा का 75% भाग पृथ्वी की सतह द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है, जिससे इसके ताप में वृद्धि होती है। शेष ऊष्मा वायुमंडल में पुनः विकिरित हो जाती है। ऊष्मा का कुछ भाग वायुमंडल में उपस्थित गैसों (जैसे–कार्बन डाइऑक्साइड, ओजोन, क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिकों तथा जलवाष्प) द्वारा प्रग्रहित कर लिया जाता है, जिससे वायुमंडल के ताप में वृद्धि होती है। यही भूमंडलीय तापवृद्धि का कारण है।

हम जानते हैं कि ठंडे स्थानों पर फूल, सब्जियाँ, फल आदि काँच-आवरण क्षेत्र (जिसे 'हरितगृह' कहते हैं) में विकसित होते हैं। क्या आप जानते हैं कि हम मनुष्य भी हरितगृह में रहते हैं? यद्यपि हम किसी काँच द्वारा आवरित नहीं रहते हैं, तथापि वायु का एक आवरण, जिसे 'वायुमंडल' कहते हैं, शताब्दियों से पृथ्वी का ताप स्थिर रखे हुए हैं, परंतु आजकल इसमें धीमा परिवर्तन हो रहा है। जिस प्रकार हरितगृह में काँच सूर्य की गरमी को अंदर थामे रखता है, उसी प्रकार वायुमंडल सूर्य की ऊष्मा को पृथ्वी के निकट अवशोषित कर लेता है तथा इसे गरम बनाए रखता है। इसे 'प्राकृतिक हरितगृह प्रभाव' कहते हैं, क्योंकि यह पृथ्वी के तापमान की रक्षा करके जीवन-योग्य बनाता है। दृश्यप्रकाश हरितगृह में पारदर्शी काँच में से गुजरकर मृदा तथा पौधों को गरम रखता है। गरम मृदा तथा पौधे अवरक्त विकिरणों का उत्सर्जन करते हैं। चूँकि अवरक्त (ऊष्मा) विकिरण के लिए काँच अपारदर्शक होता है, अतः यह इन विकिरणों को आंशिक रूप से अवशोषित तथा शेष को परावर्तित करता है। यह क्रियाविधि सौर-ऊर्जा को हरितगृह में संग्रहीत रखती है। इसी प्रकार कार्बन डाइऑक्साइड के अणु ऊष्मा को संग्रहीत कर लेते हैं, क्योंकि ये सूर्य के प्रकाश के लिए पारदर्शक होते हैं, ऊष्मा विकिरणों के लिए नहीं। यदि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 0.03% से अधिक हो जाती है, तो प्राकृतिक हरितगृह का संतुलन बिगड़ जाता है। भूमंडलीय तापवृद्धि में कार्बन डाइऑक्साइड का विशिष्ट योगदान है।

कार्बन डाइऑक्साइड के अतिरिक्त अन्य हरितगृह गैसें, मेथैन (CH_4), जलवाष्प, नाइट्रसऑक्साइड (N_2O), क्लोरो-

फ्लोरोकार्बन तथा ओजोन हैं। ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में जब वनस्पतियों को जलाया, पचाया अथवा सड़ाया जाता है, तब मेथैन उत्पन्न होती है। धान के क्षेत्रों, कोयले की खानों, दलदली क्षेत्रों तथा जीवाश्म ईंधनों द्वारा अधिक मात्रा में मेथैन उत्पन्न होती है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन मनुष्य द्वारा निर्मित रसायन है, जो वायुप्रशीतक आदि में काम आता है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन भी ओजोन-परत को हानि पहुँचा रहे हैं (खंड 14.2.2)। नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) वातावरण में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है, परंतु पिछले कुछ वर्षों में जीवाश्म ईंधन एवं उर्वरकों के अधिक प्रयोग से इसकी मात्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। यदि इसी प्रकार तापवृद्धि का क्रम बना रहा, तो ध्रुवों पर स्थित हिमनदों के पिघलने की दर अधिक होगी, जिससे समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप पृथ्वी के निचले स्थानों में जल भर जाएगा। भूमंडलीय तापवृद्धि के कारण बहुत से संक्रामक रोगों, जैसे—डेंगू, मलेरिया, पीत ज्वर, निद्रा रोग आदि में वृद्धि होती है।

अम्लवर्षा (Acid rain)

हम जानते हैं कि वायुमंडल में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड द्वारा जल से की गई अभिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न H^+ आयन के कारण वर्षाजल की pH सामान्यत: 5.6 होती है–

$$H_2O\,(l) + CO_2\,(g) \quad f \quad H_2CO_3\,(aq)$$

$$H_2CO_3\,(aq) \quad H^+(aq) + (aq)$$
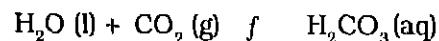
जब वर्षा की *p*H 5.6 से कम हो जाती है, तो इसे 'अम्लवर्षा' कहते हैं।

'अम्लवर्षा' में वायुमंडल से पृथ्वी-सतह पर अम्ल निक्षेपित हो जाता है। अम्लीय प्रकृति के नाइट्रोजन एवं सल्फर के ऑक्साइड वायुमंडल में ठोस कणों के साथ हवा में बहकर या तो ठोस रूप में अथवा जल में द्रव रूप में कुहासे से या हिम की भाँति निक्षेपित होते हैं (चित्र 14.1)।

पुनः विचार करें

भूमंडलीय तापवृद्धि को कम करने के लिए हम क्या कर सकते हैं? चूँकि जीवाश्म ईंधन को जलाने तथा वनों को काटने से वायुमंडल में हरितगृह गैसों में वृद्धि हो रही है, अत: इसके सुचारु, बुद्धिमत्ता एवं न्यायपूर्ण उपयोग के उपाय हमें तलाशने होंगे, जो भूमंडलीय तापवृद्धि को कम करने में सहायक हों। इसका एक साधारण उपाय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यातायात के व्यक्तिगत साधनों का कम प्रयोग साइकिल को प्रोत्साहन देना तथा जनसाधारण के यातायात-साधनों को काम से लेना अथवा कारपूल का प्रयोग आदि है। अधिक पौधे लगाकर हरित-आवरण को बढ़ाने का प्रयास हमें करना
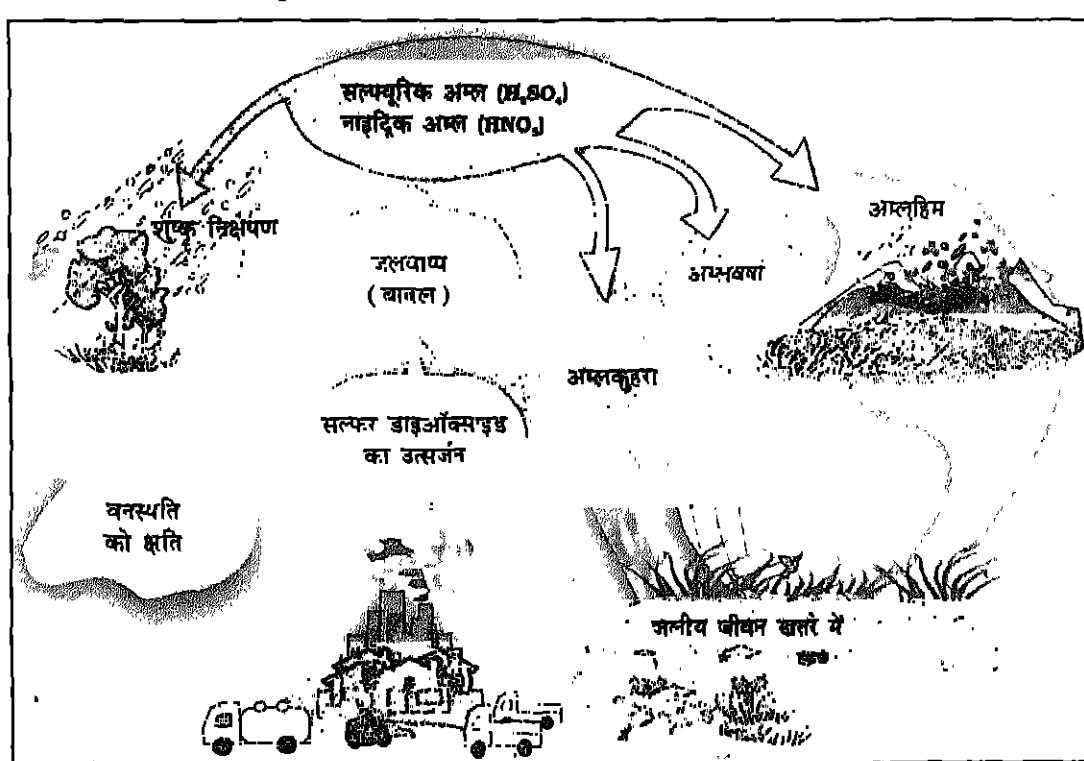
चित्र 14.1 अम्ल-निक्षेपण

चाहिए। शुष्क पत्तियों, लकड़ी आदि को नहीं जलाना चाहिए। जनसाधारण के कार्यस्थलों पर धूम्रपान करना गैर-कानूनी है। चूँकि यह केवल धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के लिए ही नहीं, अपितु आस-पास खड़े अन्य व्यक्तियों के लिए भी हानिकारक होता है। अतः हमें इसे त्यागना चाहिए। अनेक व्यक्ति हरित गृहप्रभाव तथा भूमंडलीय तापवृद्धि के बारे में नहीं जानते हैं। उन्हें इस तथ्य से अवगत कराना चाहिए।

अम्लवर्षा मानवीय क्रियाकलापों का उपोत्पाद होती है, जो वातावरण में नाइट्रोजन तथा सल्फर के ऑक्साइड निर्गमित करती है। जैसा पूर्व में बताया जा चुका है, जीवाश्म-ईंधन (जैसे– कोयला, शक्ति-संयंत्रों, भट्ठियों तथा मोटर इंजनों में डीजल और पेट्रोल, (जिसमें सल्फर तथा नाइट्रोजन पदार्थ होते हैं) के दहन पर सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड उत्पन्न होते हैं। SO_2 तथा NO_2 ऑक्सीकरण के पश्चात् जल के साथ अभिक्रिया करके अम्लवर्षा में प्रमुख योगदान देते हैं, क्योंकि प्रदूषित वायु में सामान्यतः कणिकीय द्रव्य उपस्थित होते हैं, जो ऑक्सीकरण को उत्प्रेरित करते हैं।

$$2SO_2\ (g) + O_2\ (g) + 2H_2O\ (l) \rightarrow 2H_2SO_4\ (aq)$$

$$4NO_2\ (g) + O_2\ (g) + 2H_2O\ (l) \rightarrow 4HNO_3\ (aq)$$
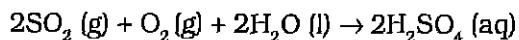
इसमें अमोनियम लवणों का भी निर्माण होता है, जो वायुमंडलीय धुंध (एरॉसॉल के सूक्ष्म कण) के रूप में दृश्यमान होते हैं। वर्षा की बूँदों में ऑक्साइड तथा अमोनियम लवणों के एरोसॉल कण के फलस्वरूप नम विक्षेपण (Wet Deposition) होता है। ठोस तथा द्रव भूमि-सतहों द्वारा SO_2 सीधे अवशोषित हो जाते हैं। इस प्रकार शुष्क निक्षेपण (Dry Deposition) होता है।

अम्लवर्षा कृषि, पेड़-पौधों आदि के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि यह इनकी वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को घोलकर पृथक् कर देती है। यह मनुष्यों तथा जानवरों में श्वसन-अवरोध उत्पन्न करती है। जब यह सतही जल के साथ बहकर नदी एवं झीलों तक पहुँचती है, तो जलीय परिस्थितियों के पौधों एवं जंतुओं के जीवन को प्रभावित करती है। अम्लवर्षा के कारण जल के पाइपों का संक्षारण होता है, जिससे आयरन, लेड, कॉपर आदि धातुएँ घुलकर पेयजल में पहुँच जाती हैं। अम्लवर्षा पत्थर एवं धातुओं से बनी संरचनाओं, भवनों, आदि को नष्ट करती है। हमारे देश में ताजमहल जैसी ऐतिहासिक इमारतें अम्लवर्षा से दुष्प्रभावित हो रही हैं।

क्रियाकलाप-1

आप अपने नजदीकी क्षेत्रों के जल से विभिन्न नमूने एकत्र करके उनकी pH ज्ञात करें। परिणामों की चर्चा अपनी कक्षा में करें। आइए, इस बात पर चर्चा करें कि अम्लवर्षा को कम कैसे किया जाए।

वायुमंडल में सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2) तथा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) के उत्सर्जन को कम करके अम्लवर्षा को कम किया जा सकता है। हमें यातायात के व्यक्तिगत साधनों का कम प्रयोग करना चाहिए तथा शक्ति-संयंत्रों एवं उद्योगों में कम सल्फर मात्रा वाला जीवाश्म ईंधन काम में लेना चाहिए। हमें कोयले के स्थान पर प्राकृतिक गैस का प्रयोग या कम सल्फर से युक्त कोयले को ईंधन के रूप में काम में लाना चाहिए। कार में उत्प्रेरकीय परिवर्तक उपयोग में लेने चाहिए, ताकि वह वायुमंडल में उत्सर्जित धूम्र के प्रभाव को न्यूनतम कर सके। उत्प्रेरकीय परिवर्तन का प्रमुख अवयव सिरैमिक निर्मित मधुकोश होता है, जिस पर दुर्लभ धातुओं (जैसे– Pd, Pt तथा Rh) की परत चढ़ी होती है। निर्गमित गैस, जिसमें बिना जला ईंधन CO तथा NO_x होते हैं, को जब 573K पर उत्प्रेरकीय परिवर्तक में से गुजारा जाता है, तब यह इन्हें CO_2 तथा N_2 में परिवर्तित कर देता है। हम मृदा में चूर्णीय चूना- पत्थर मिलाकर मृदा की अम्लीयता को कम कर सकते हैं। अधिकतर व्यक्ति अम्लवर्षा तथा इसके हानिकारक प्रभावों के बारे में नहीं जानते हैं। हम उन्हें सूचनाएँ देकर जागरूक कर सकते हैं तथा प्रकृति को बचा सकते हैं।

ताजमहल एवं अम्लवर्षा

आगरा शहर में स्थित ताजमहल के चारों ओर की वायु में सल्फर तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड की उच्च सांद्रता उपस्थित है। यह इस क्षेत्र के चारों ओर अधिक मात्रा में शक्ति संयंत्र एवं उद्योगों के कारण है। घरेलू कार्यों में ईंधन के रूप में न्यून गुणवत्ता वाला कोयला, केरोसिन तथा लकड़ी का उपयोग करने पर यह समस्या बढ़ती है, जिसके फलस्वरूप अम्लवर्षा ताजमहल के संगमरमर ($CaCO_3$) से क्रिया करती है ($CaCO_3 + H_2SO_4 \rightarrow CaSO_4 + H_2O + CO_2$) तथा संपूर्ण विश्व को आकर्षित करने वाले इस अद्भुत स्मारक को हानि पहुँचाती है। अम्लवर्षा के कारण यह स्मारक धीरे-धीरे क्षत हो रहा है तथा अपना प्राकृतिक रंग एवं आभा खोता जा रहा है। इस स्मारक को नष्ट होने से बचाने के लिए भारत सरकार ने सन् 1995 में एक कार्य-योजना प्रारंभ करने की घोषणा की। मथुरा तेलशोधन संयंत्र ने विषैली गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए पूर्व में ही उपयुक्त कदम उठा लिए हैं।

इस योजना के अंतर्गत 'ताज ट्रैपीज़ियम' की वायु को स्वच्छ करना है। इस क्षेत्र में आगरा, फीरोज़ाबाद, मथुरा तथा भरतपुर

नगर सम्मिलित हैं। इसके अनुसार, ट्रैपीज़ियम स्थित 2000 से भी अधिक उद्योग ईंधन के रूप में कोयला अथवा तेल के स्थान पर प्राकृतिक गैस अथवा एल.पी.जी. का उपयोग करेंगे। इसके लिए एक नयी प्राकृतिक गैस पाइप लाइन बिछाई जा रही है, जिसकी सहायता से इस क्षेत्र में प्रतिदिन 5 लाख घनमीटर प्राकृतिक गैस लाई जाएगी। शहरों में रहनेवाले व्यक्तियों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा कि वे दैनिक जीवन में कोयले, केरोसीन अथवा लकड़ी के स्थान पर एल.पी.जी. का ही उपयोग करें। इसके अतिरिक्त ताज के आसपास के राष्ट्रीय राजमार्गों पर चलने वाले यातायात के साधनों में कम सल्फर से युक्त डीजल का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाएगा।

2. कणिकीय प्रदूषक

कणिकीय पदार्थ वायु में निलंबित सूक्ष्म ठोस कण अथवा द्रवीय बूँद होते हैं। यह मोटरवाहनों के उत्सर्जन, अग्नि के धूम्र, धूलकण तथा उद्योगों की राख होते हैं। वायुमंडल में कणिकाएँ जीवित तथा अजीवित–दोनों प्रकार की हो सकती हैं। जीवित कणिकाओं में जीवाणु, कवक, फफूंद, शैवाल आदि सम्मिलित हैं। हवा में पाए जाने वाले कुछ कवक मनुष्य में एलर्जी उत्पन्न करते हैं। ये पौधों के रोग भी उत्पन्न कर सकते हैं।

कणिकाओं को उनकी प्रकृति एवं आकार के आधार पर इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) धूम कणिकाओं में ठोस एवं ठोस-द्रव कणों के मिश्रण होते हैं, जो कार्बनिक द्रव्य के दहन के दौरान उत्पन्न होते हैं। जैसे–सिगरेट का धुआँ, जीवाश्म ईंधन के दहन से प्राप्त धूम, गंदगी का ढेर, सूखी पत्तियाँ, तेल-धूम्र आदि।

(ख) धूल में बारीक छोटे कण (व्यास 1–4μm से ऊपर) होते हैं, जो ठोस पदार्थों के पीसने, कुचलने एवं आरोपण से बनते हैं। ब्लास्ट से प्राप्त बालू, लकड़ी के कार्य से प्राप्त लकड़ी का बुरादा, कोयले का बुरादा, कारखानों से उड़ने वाली राख एवं सीमेन्ट, धुएँ के गुबार आदि इस प्रकार के उत्सर्जन के कुछ प्रारूपिक उदाहरण हैं।

(ग) फैले हुए द्रव-कणों एवं वाष्प के हवा में संघनन से कोहरा उत्पन्न होता है। उदाहरणार्थ–*सल्फ्यूरिक अम्ल* का कोहरा तथा शाकनाशी एवं कीटनाशी, जो अपने लक्ष्य से भटककर हवा से गमन करते हैं एवं कोहरा बनाते हैं।

(घ) धूम्र साधारणतया वाष्पों के ऊर्ध्वपातन, आसवन, क्वथन एवं अन्य रासायनिक अभिक्रियाओं के दौरान संघनन के कारण बनते हैं। प्रायः कार्बनिक विलायक-धातुएँ एवं धात्विक ऑक्साइड धूम्र-कणों का निर्माण करते हैं।

कणिक प्रदूषकों का प्रभाव मुख्यतया उनके कणों के आकार पर निर्भर करता है। हवा में ले जाए जानेवाले कण, जैसे–धूल, धूम, कोहरा आदि मानवीय स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। 5 माइक्रोन से बड़े कणिक प्रदूषक नासिकाद्वार में जमा हो जाते हैं, *जबकि लगभग 1.0 माइक्रोन के कण फेफड़ों* में आसानी से प्रवेश कर जाते हैं।

वाहनों द्वारा उत्सर्जित लेड एक मुख्य वायु-प्रदूषक है। लेडयुक्त पेट्रोल भारतीय शहरों में वायुधारित लेड-उत्सर्जन का मुख्य स्रोत है। अधिकतर शहरों में लेडविहीन (सीसारहित) पेट्रोल का उपयोग करके इस समस्या पर काबू पाया जा सकता है। लाल रक्त कोशिकाओं के विकसित एवं परिपक्व होने में लेड बाधा उत्पन्न करता है।

धूम-कोहरा (Smog)

'धूम-कोहरा' शब्द 'धूम' एवं 'क़ोहरे' से मिलकर बना है। विश्व के अनेक शहरों में प्रदूषण इसका आम उदाहरण है। धूम कोहरे दो प्रकार के होते हैं–

(क) सामान्य धूम कोहरा (जो ठंडी नम जलवायु में होता है) धूम, कोहरे एवं सल्फर डाइऑक्साइड का मिश्रण है। रासायनिक रूप से यह एक अपचायक मिश्रण है। अतः इसे 'अपचायक धूम-कोहरा' भी कहते हैं।

(ख) प्रकाश रासायनिक धूम कोहरा जो उष्ण, शुष्क एवं साफ धूपमयी जलवायु में होता है, स्वचालित वाहनों तथा कारखानों से निकलने वाले नाइट्रोजन के ऑक्साइडों तथा हाइड्रोकार्बनों पर सूर्यप्रकाश *की क्रिया के कारण* उत्पन्न होता है। प्रकाश रासायनिक धूम कोहरे की रासायनिक प्रकृति ऑक्सीकारक है। चूँकि इसमें ऑक्सीकारक अभिकर्मकों की सांद्रता उच्च रहती है, अतः इसे 'ऑक्सीकारक धूम कोहरा' कहते हैं।

प्रकाश रासायनिक धूम कोहरे का निर्माण (Formation Of Photochemical Smog)

जब जीवाश्म ईंधनों का दहन होता है, तब पृथ्वी के वातावरण में कई प्रदूषक उत्सर्जित होते हैं। इनमें से में दो प्रदूषक हाइड्रोकार्बन (अदहित ईंधन) एवं नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) है। जब इन प्रदूषकों का स्तर पर्याप्त ऊँचा हो जाता है, तब सूर्यप्रकाश से इनकी अन्योन्य क्रिया के कारण शृंखला अभिक्रिया होती हैं, *जिसमें NO नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) में परिवर्तित* हो जाती है। यह NO_2 सूर्यप्रकाश से ऊर्जा ग्रहण कर पुनः

नाइट्रिक ऑक्साइड एवं मुक्त ऑक्सीजन में विघटित हो जाती है (चित्र 14.2)।

$$NO_2(g) \xrightarrow{h\nu} NO(g) + O(g) \quad (i)$$
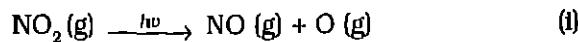
ऑक्सीजन परमाणु अत्यधिक क्रियाशील होने के कारण O_2 के साथ संयुक्त होकर ओजोन में परिवर्तित हो सकता है–

$$O(g) + O_2(g) \rightleftharpoons O_3(g) \quad (ii)$$

उपर्युक्त अभिक्रिया में निर्मित O_3 शीघ्रतापूर्वक अभिक्रिया (i) में विरचित NO(g) के साथ अभिक्रिया कर पुनः NO_2 बनाती है। NO_2 एक भूरी गैस है, जिसका उच्च स्तर धुंध का कारण हो सकता है।

$$NO(g) + O_3(g) \rightarrow NO_2(g) + O_2(g) \quad (iii)$$
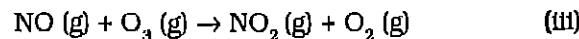
ओजोन एक जहरीली गैस है। NO_2 एवं O_3 दोनों ही प्रबल ऑक्सीकारक हैं। इस कारण प्रदूषित वायु में उपस्थित अदहित हाइड्रोकार्बनों के साथ अभिक्रिया करके कई रसायनों, जैसे–फार्मेल्डिहाइड, एक्रोलीन एवं परॉक्सीऐसीटिल नाइट्रेट (PAN) का निर्माण करते हैं।

$$3CH_4 + 2O_3 \rightarrow \underset{\text{फार्मेल्डिहाइड}}{3CH_2 = O} + 3H_2O$$

$$\underset{\text{एक्रोलीन}}{CH_2 = CHCH = O} \qquad CH_3\overset{\overset{\displaystyle O}{||}}{C}OONO_2$$
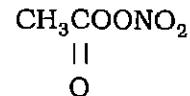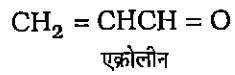
परॉक्सीऐसीटिल नाइट्रेट (PAN)

प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरे के प्रभाव

प्रकाश रासायनिक धूम्र कोहरे के सामान्य घटक ओजोन, नाइट्रिक ऑक्साइड, एक्रोलीन, फार्मेल्डिहाइड एवं परॉक्सीऐसीटिल नाइट्रेट (PAN) हैं। प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरे के कारण भी गंभीर स्वास्थ्य-समस्याएँ होती हैं। ओजोन एवं नाइट्रिक ऑक्साइड नाक एवं गले में जलन पैदा करते हैं। इनकी उच्च सांद्रता से सरदर्द, छाती में दर्द, गले का शुष्क होना, खाँसी एवं श्वास अवरोध हो सकता है। प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरा रबर में दरार उत्पन्न करता है एवं पौधों पर हानिकारक प्रभाव डालता है। यह धातुओं, पत्थरों, भवन-निर्माण के पदार्थों एवं रंगी हुई सतहों (Painted Surfaces) का क्षय भी करता है।

प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरे का नियंत्रण कैसे किया जा सकता है?

प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरे को नियंत्रित या कम करने के लिए कई तकनीकों का उपयोग किया जाता है। यदि हम प्रकाश

चित्र 14.2 प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरा वहाँ घटित होता है, जहाँ यातायात-प्रदूषकों पर सूर्य का प्रकाश क्रिया करता है।

रासायनिक धूम-कोहरे के प्राथमिक पूर्वगामी, जैसे–NO_2 एवं हाइड्रोकार्बन को नियंत्रित कर लें, तो द्वितीयक पूर्वगामी जैसे–ओजोन एवं PAN तथा प्रकाश रासायनिक धूम-कोहरा स्वत: ही कम हो जाएगा। सामान्यतया स्वचालित वाहनों में उत्प्रेरित परिवर्तक उपयोग में लाए जाते हैं, जो वायुमंडल में नाइट्रोजन ऑक्साइड एवं हाइड्रोकार्बन के उत्सर्जन को रोकते हैं। कुछ पौधों (जैसे–पाईनस, जुनीपेरस, क्वेरकस, पायरस तथा विटिस), जो नाइट्रोजन ऑक्साइड का उपापचय कर सकते हैं, का रोपण इस संदर्भ में सहायक हो सकता है।

14.2.2 समतापमंडलीय प्रदूषण

ओज़ोन का विरचन एवं विघटन

ऊपरी समतापमंडल में ओजोन (O_3) की प्रचुर मात्रा होती है, जो सूर्य से आनेवाले हानिकारक पराबैंगनी (UV) विकिरणों (λ–225 nm) से हमें बचाती है। ये विकिरण त्वचा-कैन्सर (मेलोनोमा) के कारण बनते हैं। अत: ओजोन-कवच को बचाए रखना महत्त्वपूर्ण है।

पराबैंगनी विकिरणों की डाइऑक्सीजन (अणु) से प्रतिक्रिया का उत्पाद समतापमंडल में उपस्थित ओजोन है। पराबैंगनी विकिरण आणविक ऑक्सीजन को मुक्त ऑक्सीजन (O) परमाणुओं में विखंडित कर देते हैं। आण्विक ऑक्सीजन से संयुक्त होकर ये ऑक्सीजन परमाणु ओजोन बनाते हैं।

$$O_2(g) \xrightarrow{UV} O(g) + O(g)$$

$$O(g) + O_2(g) \xrightleftharpoons{UV} O_3(g)$$
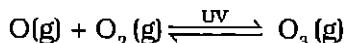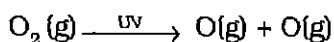
ओजोन ऊष्मागतिकीय रूप से अस्थायी होती है एवं आण्विक ऑक्सीजन में विघटित हो जाती है। इस प्रकार ओजोन के निर्माण एवं विघटन में एक गतिकीय साम्य स्थापित हो जाता है। अभी हाल ही के वर्षों में समतापमंडल में कुछ रसायनों की उपस्थिति के कारण ओजोन की इस सुरक्षा-परत में अवक्षय की सूचनाएँ हैं। ओजोन परत में अवक्षय का मुख्य कारण क्लोरो-फ्लोरोकार्बन यौगिकों (CFCs) का उत्सर्जन है। जिन्हें 'फ्रियोन' भी कहा जाता है। ये यौगिक अक्रिय, अज्वलनशील, विषहीन कार्बनिक अणु हैं। अत: इनका उपयोग रेफ्रिजरेटर, एयर कन्डीशनर आदि में तथा प्लास्टिक फोम के निर्माण एवं कंप्यूटर उद्योग में कंप्यूटर के पुर्जों की सफाई करने में होता है।

CFCs एक बार वायुमंडल में उत्सर्जित होने पर वायुमंडल की अन्य गैसों से मिश्रित होकर सीधे समतापमंडल में पहुँच जाते हैं। समतापमंडल में ये शक्तिशाली विकिरणों द्वारा विघटित होकर क्लोरीन मुक्त मूलक उत्सर्जित करते हैं।

$$CF_2Cl_2(g) \xrightarrow{h\nu} \dot{C}l(g) + \dot{C}F_2Cl(g) \quad \ldots(i)$$
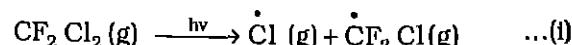
क्लोरीन मुक्त मूलक तब समतापमंडलीय ओजोन से अभिक्रिया करके क्लोरीन मोनोऑक्साइड मूलक तथा आण्विक ऑक्सीजन बनाते हैं।

$$\dot{C}l(g) + O_3(g) \rightarrow Cl\dot{O}(g) + O_2(g) \quad \ldots(ii)$$
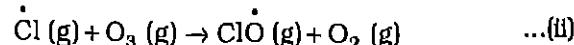
क्लोरीन मोनोऑक्साइड मूलक परमाण्वीय ऑक्सीजन के साथ अभिक्रिया करके अधिक क्लोरीन मूलक उत्पन्न करता है।

$$\dot{C}lO(g) + O(g) \rightarrow \dot{C}l(g) + O_2(g) \quad \ldots(iii)$$
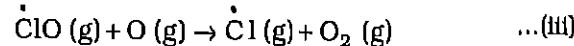
क्लोरीन मूलक लगातार पुनर्योजित होते रहते हैं एवं ओजोन को विखंडित करते हैं। इस प्रकार CFC समतापमंडल में क्लोरीन मूलकों को उत्पन्न करनेवाले एवं ओजोन-परत को हानि पहुँचाने वाले परिवहनीय कारक हैं।

ओजोन-छिद्र

सन् 1980 में वायुमंडलीय वैज्ञानिकों ने अंटार्कटिका पर कार्य करते हुए दक्षिणी ध्रुव के ऊपर ओजोन परत के क्षय, जिसे सामान्य रूप से 'ओजोन-छिद्र' कहा जाता है, के बारे में बताया।

यह पाया गया कि ओजोन छिद्र के लिए परिस्थितियों का एक विशेष समूह उत्तरदायी था। गरमी में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड परमाणुओं (अभिक्रिया iv) एवं क्लोरीन परमाणुओं (अभिक्रिया v) से अभिक्रिया करके क्लोरीन सिंक बनाते हैं, जो ओजोन-क्षय को काफी हद तक रोकता है।

जबकि सर्दी के मौसम में विशेष प्रकार के बादल, जिन्हें 'ध्रुवीय समतापमंडलीय बादल' कहा जाता है, अंटार्कटिका के ऊपर बनते हैं। ये बादल एक प्रकार की सतह प्रदान करते हैं, जिस पर बना हुआ क्लोरीन नाइट्रेट (अभिक्रिया iv) जलयोजित होकर हाइपोक्लोरस अम्ल बनाता है (अभिक्रिया vi)। अभिक्रिया में उत्पन्न हाइड्रोजन क्लोराइड से भी अभिक्रिया करके यह आण्विक क्लोरीन देता है।

$$ClO(g) + NO_2O(g) \rightarrow ClONO(g) \quad (iv)$$

$$Cl(g) + CH_4(g) \rightarrow CH_3(g) + HCl(g) \quad (v)$$

$$ClONO(g) + H_2O(g) \rightarrow HOCl(g) + HNO(g) \quad (vi)$$

$$ClONO_2(g) + HCl(g) \rightarrow Cl_2(g) + HNO(g) \quad (vii)$$
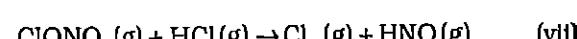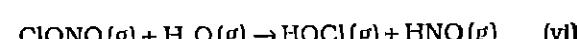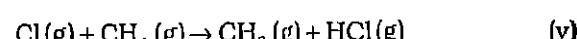
बसंत में अंटार्कटिका पर जब सूर्य का प्रकाश लौटता है, तब सूर्य की गरमी बादलों को विखंडित कर देती है एवं

HOCl तथा Cl_2 सूर्यप्रकाश से अपघटित हो जाते हैं (अभिक्रिया viii तथा ix)।

$$HOCl(g) \xrightarrow{h\nu} OH + Cl(g) \qquad (viii)$$

$$Cl_2(g) \xrightarrow{h\nu} 2Cl(g) \qquad (ix)$$
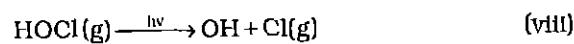
जैसा पूर्व में बताया गया है, उत्पन्न क्लोरीन मूलक, ओजोन-क्षय के लिए शृंखला अभिक्रिया प्रारंभ कर देते हैं।

ओजोन-परत के क्षय के प्रभाव

ओजोन परत के क्षय के साथ अधिकाधिक पराबैंगनी विकिरण क्षोभमंडल में छनित होते हैं। पराबैंगनी विकिरण से त्वचा का जीर्णन, मोतियाबिंद, सनबर्न, त्वचा-केन्सर, कई पादपप्लवकों की मृत्यु, मत्स्य उत्पादन की क्षति आदि होते हैं। यह भी देखा गया है कि पौधों के प्रोटीन पराबैंगनी विकिरणों से आसानी से प्रभावित हो जाते हैं, जिससे कोशिकाओं का हानिकारक उत्परिवर्तन होता है। इससे पत्तियों के रंध्र से जल का वाष्पीकरण भी बढ़ जाता है, जिससे मिट्टी की नमी कम हो जाती है। बढ़े हुए पराबैंगनी विकिरण रंगों एवं रेशों को भी हानि पहुँचाते हैं, जिससे रंग जल्दी हलके हो जाते हैं।

14.3 जल-प्रदूषण

जीवन के लिए जल अनिवार्य है। हम जल को साधारणतया शुद्ध मानते हैं, परंतु हमें जल की गुणवत्ता सुनिश्चित करनी चाहिए। जल का प्रदूषण मानवीय क्रियाकलापों से शुरू होता है। विभिन्न प्रक्रमों के माध्यम से प्रदूषण सतह या भौम जल तक आता है। प्रदूषण के सुज्ञात स्रोत या स्थानों को 'बिंदु-स्रोत' कहा जाता है। उदाहरण के लिए-नगरपालिका पाइप या औद्योगिक अपशिष्ट विसर्जन पाइप, जहाँ से प्रदूषक जल-स्रोत में प्रवेश करते हैं। प्रदूषण के अबिंदु स्रोत वे हैं, जहाँ पर प्रदूषण का स्रोत आसानी से पहचाना न जा सके। उदाहरणार्थ- कृषि-अपशिष्ट (खेतों, जानवरों एवं कृषि-भूमि से), अम्लवर्षा, तीव्र जल-निकासी (गलियों, उद्यानों, लॉन) आदि। सारणी 14.1 में जल के मुख्य प्रदूषण तथा उनके स्रोत दर्शाए गए हैं।

14.3.1 जल-प्रदूषण के कारण

(i) **रोगजनक**- सबसे ज्यादा गंभीर जल-प्रदूषक रोगों के कारकों को 'रोगजनक' कहा जाता है। रोगजनकों में जीवाणु एवं अन्य जीव हैं, जो घरेलू सीवेज एवं पशु-अपशिष्ट द्वारा जल में प्रवेश करते हैं। मानव-अपशिष्ट में *एशरिकिआ कोली, स्ट्रेप्टोकॉकस फेकेलिस* आदि जीवाणु होते हैं, जो जठरांत्र बीमारियों के कारण होते हैं।

(ii) **कार्बनिक अपशिष्ट**-अन्य मुख्य जल-प्रदूषक कार्बनिक पदार्थ (जैसे-पत्तियाँ, घास, कूड़ा-कर्कट आदि) हैं। वे जल को प्रदूषित करते हैं। जल में पादप प्लवकों की अधिक बढ़ोतरी भी जल-प्रदूषण का एक कारण है।

बैक्टीरिया की बृहत् संख्या जल में कार्बनिक पदार्थों का अपघटन करती है। यह जल में विलेय ऑक्सीजन का उपभोग करती है। जल-विलयन में घुलित ऑक्सीजन सीमित होती है। ठंडे जल में घुलित ऑक्सीजन की सांद्रता 10 पीपीएम तक हो सकती है, जबकि वायु में यह करीब 2,00,000 पीपीएम है। यही कारण है कि जल में कार्बनिक पदार्थ के अपघटित होने की थोड़ी-सी मात्रा भी इसमें ऑक्सीजन का क्षय कर सकती है। जल में घुलित ऑक्सीजन जलीय जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि जल में घुलित ऑक्सीजन की सांद्रता 6 पीपीएम से नीचे हो जाए, तो मछलियों का विकास रुक जाता है। जल में ऑक्सीजन या तो वातावरण या कई जलीय पौधों द्वारा दिन में प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रम से पहुँचती है। रात में

सारणी 14.1 मुख्य जल-प्रदूषक

प्रदूषक	स्रोत
सूक्ष्म जीव	घरेलू सीवेज
कार्बनिक अपशिष्ट	घरेलू सीवेज, पशु-अपशिष्ट, सड़े हुए मृत पशु तथा पौधे, खाद्य-संसाधन, कारखानों से विसर्जन
पादप पोषक	रासायनिक उर्वरक
विषाक्त भारी धातु	उद्योग तथा रसायन कारखाने
तलछट	कृषि तथा विपट्टी खनन के कारण मृदा का अपरदन
पीड़कनाशी	कीटों, कवक तथा खर-पतवार को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त रसायन
रेडियोधर्मी पदार्थ	यूरेनियमयुक्त खनिजों का खनन
ऊष्मा	औद्योगिक कारखानों द्वारा ठंडे पानी का उपयोग

प्रकाश-संश्लेषण रुक जाता है, परंतु पौधे श्वसन करते रहते हैं, जिससे जल में घुलित ऑक्सीजन कम हो जाती है। घुलित ऑक्सीजन सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक यौगिकों के ऑक्सीकरण में भी उपयोग में ली जाती है।

यदि जल में बहुत अधिक कार्बनिक पदार्थ मिलाए जाएँ, *तो उपलब्ध सारी ऑक्सीजन उपभोगित हो जाएगी।* इसका परिणाम ऑक्सीजन-आश्रित जलीय जीवन की मृत्यु है। इस प्रकार अवायु जीवाणु, जिन्हें ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती है, कार्बनिक अपविष्ट का विखंडन आरंभ कर देते हैं एवं इससे दूषित गंध वाले रसायन उत्पन्न होते हैं, जो मानव-स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। वायु (ऑक्सीजन की आवश्यकता वाले) जीवाणु इन कार्बनिक अपविष्टों का विघटन करके जल को ऑक्सीजनरहित कर देते हैं।

अतः जल के एक नमूने के निश्चित आयतन में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ को विखंडित करने के लिए जीवाणु द्वारा आवश्यक ऑक्सीजन को **'जैवरासायनिक ऑक्सीजन माँग' (BOD)** कहा जाता है। अतः जल में BOD की मात्रा कार्बनिक पदार्थ को जैवीय रूप में विखंडित करने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा होगी। स्वच्छ जल की BOD का मान 5 पीपीएम से कम होता है जबकि अत्यधिक प्रदूषित जल में यह 17 पीपीएम या इससे अधिक होता है।

(iii) रासायनिक प्रदूषक—हम जानते हैं कि जल एक अच्छा विलायक है। जल में विलेय अकार्बनिक रसायन, जिनमें भारी धातु (जैसे-केडमियम, मर्करी, निकेल आदि शामिल हैं) महत्त्वपूर्ण प्रदूषकों में आते हैं। ये सभी धातुएँ हमारे लिए हानिकारक हैं, क्योंकि हमारा शरीर इन्हें विसर्जित नहीं कर सकता है। समय के साथ इनकी मात्रा स्वीकार्य सीमा से ऊपर चली जाती है। तब ये प्रदूषक धातुओं, वृक्कों, केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र, लीवर आदि को नुकसान पहुँचाते हैं। खदानों के सीवेज से प्राप्त अम्ल (जैसे—सल्फ्यूरिक अम्ल एवं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त लवण, जिनमें ठंडे मौसम में हिम एवं बर्फ को पिघलाने वाले *लवण— सोडियम एवं कैल्सियम क्लोराइड शामिल हैं)* जल में विलेय प्रदूषक हैं।

प्रदूषित जल में पाए जाने वाले अन्य समूह कार्बनिक रसायन हैं। पेट्रोलियम उत्पाद (जैसे—समुद्रों में बड़े तेल-बहाव जल के कई स्रोतों को प्रदूषित करते हैं) दूसरे गंभीर प्रभाव वाले कार्बनिक यौगिकों में कीटनाशक हैं, जो स्प्रे द्वारा बहकर भूमि के नीचे आते हैं। विभिन्न प्रकार के औद्योगिक रसायन, *जैसे—पॉलीक्लोरीनेटेड बाइफिनायल (PCB_s), जो विलायक के* रूप में प्रयुक्त होते हैं, अपमार्जक एवं उर्वरक भी जल-प्रदूषकों की श्रेणी में सम्मिलित हैं। PCB_s संभावित कैन्सरजन्य हैं। आजकल उपलब्ध अधिकांश अपमार्जक जैव अपघटनीय हैं। फिर भी इनका उपयोग अन्य समस्याएँ उत्पन्न करता है। अपघटित करने वाले जीवाणु इन अपमार्जकों से भोजन प्राप्त करके तेजी से बढ़ते हैं। बढ़ोतरी करने में वे जल में उपस्थित समस्त ऑक्सीजन *का उपयोग कर सकते हैं। ऑक्सीजन की कमी के कारण जलीय* जीवन के अन्य रूप (जैसे—मछलियाँ एवं पौधे) मर सकते हैं। उर्वरकों में फॉस्फेट योगज के रूप में होते हैं। जल में फॉस्फेट का योग शैवाल की बढ़ोतरी को सहयोग करता है। शैवाल की यह प्रचुर बढ़ोतरी जलीय सतह को ढक लेती है तथा जल में ऑक्सीजन की सानुता बहुत कम हो जाती है फलतः अवायुविक परिस्थिति उत्पन्न होने से दुर्गंधा युक्त सडन पैदा होती है एवं जलीय जन्तुओं के मृत्यु का कारण बनती है। इस प्रकार यह पुष्पकुंजग्रस्त जल अन्य जीवों की वृद्धि को रोकता है। जल-निकायों में पौष्टिक अभिवृद्धि फलस्वरूप ऑक्सीजन की कमी के कारण **सुपोषण (यूट्रोफिकेशन)** कहते हैं।

14.3.2 जल के अंतरराष्ट्रीय मानक

पेय जल के अंतरराष्ट्रीय मानक, जिनका पालन होना चाहिए, नीचे दिए जा रहे हैं—

फ्लुओराइड—फ्लुओराइड आयन सांद्रता के लिए पेय जल का परीक्षण होना चाहिए। पेयजल में इसकी कमी मनुष्य के लिए हानिकारक है एवं कई बीमारियों (जैसे—दंतक्षय आदि) का कारण बनती है। अधिकांशतः पेयजल में विलयशीय फ्लुओराइड मिलाया जाता है, जिससे इसकी सांद्रता 1 ppm अथवा $1mg.\ dm^{-3}$ हो जाए। फ्लुओराइड आयन दाँतों के इनामेल सतह में हाइड्रॉक्सीएपेटाइट $[3(Ca_3(PO_4)_2 . Ca(OH)_2]$ को फ्लुओएपेटाइट $[3(Ca_3(PO_4)_2 . CaF_2]$ में परिवर्तित करके कड़ा कर देते हैं, यद्यपि फ्लुओराइड आयनों की 2 पीपीएम से अधिक की सांद्रता दाँतों के भूरे कर्बुरण (Mottling) उत्पन्न करती है। साथ ही फ्लुओराइड का आधिक्य (10 पीपीएम से अधिक) हड्डियों एवं दाँतों पर हानिकारक प्रभाव डालता है, जैसा राजस्थान के कुछ भागों में देखा गया है।

लेड—जब जल-परिवहन के लिए लेड पाइपों का उपयोग किया *जाता है, तब जल लेड से दूषित हो जाता है। पीने के जल में* लेड की निर्धारित ऊपरी सीमा लगभग 50 पीपीबी है। लेड किडनी, लीवर एवं पुनरुत्पादन-तंत्र को हानि पहुँचा सकता है।

सल्फेट—पेय जल में सल्फेट का आधिक्य (7500 पीपीएम) विरेचक का कारण हो सकता है। संतुलित स्तर पर रहने की *दशा में सल्फेट हानिरहित है।*

नाइट्रेट—पीने के पानी में नाइट्रेट की अधिकतम सीमा

50 पीपीएम है। उसमें नाइट्रेट आधिक्य में होने पर मेथेमोग्लोबीनेमिया (ब्ल्यू बेबी सिन्ड्रोम) रोग हो सकता है।

अन्य धातुएँ– कुछ अन्य सामान्य धातुओं की अधिकतम सांद्रता सारणी 14.2 में दी गई है।

सारणी 14.2 पेय जल में निर्धारित सामान्य धातुओं की अधिकतम सांद्रता

धातु	अधिकतम सांद्रता (ppm अथवा $mg\,dm^{-3}$)
Fe	0.2
Mn	0.05
Al	0.2
Cu	3.0
Zn	5.0
Cd	0.005

क्रियाकलाप 2

आप स्थानीय जल-स्रोतों का निरीक्षण कर सकते हैं कि नदी, झील, हौद, तालाब आदि का पानी अप्रदूषित/ आंशिक प्रदूषित/ सामान्य प्रदूषित अथवा बुरी तरह प्रदूषित है। जल को देखकर या उसकी pH जाँचकर इसे देखा जा सकता है। निकट के शहरी या औद्योगिक स्थल, जहाँ से प्रदूषण उत्पन्न होता है, से उसके नाम का प्रलेख करें। इसकी सूचना सरकार द्वारा प्रदूषण-मापन के लिए गठित प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड कार्यालय को दें तथा समुचित कार्यवाही सुनिश्चित करें। आप इसे मीडिया को भी बता सकते हैं। नदी, तालाब, जलधारा या जलाशय में घरेलू अथवा औद्योगिक अपविष्ट को सीधे नहीं डालें। बगीचों में रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर कंपोस्ट का प्रयोग करें। डी.डी.टी., मैलाथियोन आदि कीटनाशी के प्रयोग से परहेज करें तथा यथासंभव नीम की सूखी पत्तियों का प्रयोग कीटनाशी के रूप में करें। अपनी घरेलू पानी टंकी में पौटेशियम परमैंगनेट ($KMnO_4$) की कुछ क्रिस्टल अथवा ब्लीचिंग पाउडर की थोड़ी मात्रा डालें।

14.4 मृदा-प्रदूषण

भारत एक कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था वाला देश है, जहाँ कृषि, मत्स्य एवं पशुधन के विकास को प्राथमिकता दी जाती है। अकाल के समय के लिए अधिशेष उत्पादन का भंडारण सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता है। भंडारण की अवधि में होने वाली खाद्य सामग्री की हानि पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। क्या आपने कभी कीट, कृतक, अपतमृण तथा फसलों की बीमारियों के द्वारा फसलों एवं खाद्य पदार्थों को होने वाली क्षति को देखा है? इन्हें हम कैसे बचा सकते हैं? फसलों के बचाव के लिए प्रयुक्त होने वाले कुछ कीटनाशी एवं पीडकनाशियों से आप परिचित हैं। ये कीटनाशी, पीडकनाशी तथा शाकनाशी मृदा-प्रदूषण के कारण हैं। अतः इनके विवेकपूर्ण प्रयोग की आवश्यकता है।

14.4.1 पीडकनाशी

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले अनेक रसायनों, जैसे–निकोटीन (फसल के साथ खेत में तंबाकू के पौधे उगाकर) का प्रयोग अनेक फसलों के लिए पीडक-नियंत्रक पदार्थ के रूप में किया जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय मलेरिया तथा अन्य कीटजनित रोगों के नियंत्रण में डी.डी.टी. बहुत उपयोगी यौगिक पाया गया। इसीलिए युद्ध के पश्चात् डी.डी.टी. का उपयोग कृषि में कीट, सेडैंट, खर-पतवार तथा फसलों के अनेक रोगों के नियंत्रण के रूप में किया जाने लगा। हालाँकि प्रतिकूल प्रभावों के कारण इसका प्रयोग भारत में प्रतिबंधित हो गया है।

पीडकनाशी मूल रूप से संश्लेषित विषैले रसायन हैं, जो पारिस्थितिकी प्रतिघाती भी हैं। समान पीडकनाशकों के प्रयोग से कीटों में पीडकनाशकों के प्रति प्रतिरोध-क्षमता उत्पन्न हो जाती है, जो पीडकनाशी को प्रभावहीन बनाती है। इसीलिए डी.डी.टी. के प्रति प्रतिरोधकता में वृद्धि होने लगी, अन्य जीव-विष (जैसे–ऐल्ड्रीन तथा डाइऐल्ड्रीन) पीडकनाशी उद्योग द्वारा बाजार में लाए गए। अधिकांश कार्बनिक जीव-विष जल में अविलेय तथा अजैवनिम्नीकरणीय होते हैं। ये उच्च प्रभाव वाले जीव-विष भोजन शृंखला द्वारा निम्नपोषी स्तर से उच्चपोषी स्तर तक स्थानांतरित होते हैं (चित्र 14.3) समय के साथ-साथ उच्च प्राणियों में जीव-विषों की सांद्रता इस स्तर तक बढ़ जाती है कि उपापचयी तथा शरीर क्रियात्मक अव्यवस्था का कारण बन जाती है।

उच्च स्थायित्व वाले क्लोरीनीकृत कार्बनिक जीव-विष के प्रत्युत्तर में निम्न स्थायित्व अथवा अधिक जैव निम्नीकरणीय उत्पादों, जैसे–आर्गेनो-फॉस्फेट्स तथा कार्बामेट्स को बाजार में लाया गया, परंतु ये रसायन गंभीर स्नायु जीव-विष हैं। अतः ये मानव के लिए अधिक हानिकारक हैं। परिणामस्वरूप ऐसी घटनाएँ दर्ज हुई हैं, जिनमें खेतों में काम करने वाले मजदूरों की मृत्यु का कारण कुछ पीडकनाशी रहे हैं। कीट भी इन कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधी हो चुके हैं। पीडकनाशी उद्योग नए कीटनाशकों को विकसित करने में व्यस्त हैं, परंतु हमें सोचना पड़ेगा कि पीडकों के खतरे से निपटने का क्या यही एक साधन रह गया है?
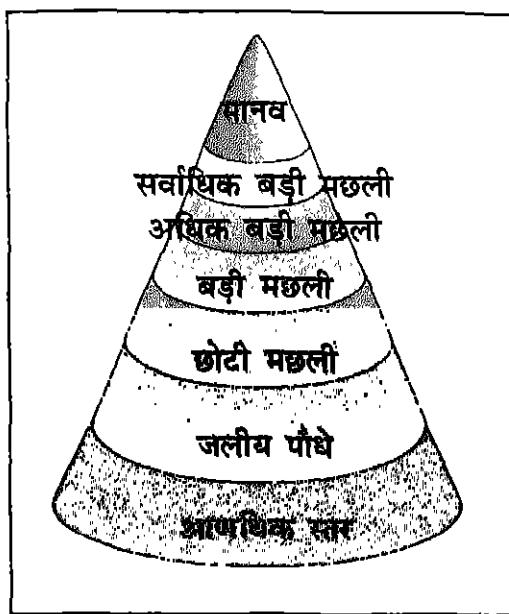
चित्र 14.3 प्रत्येक पोषी स्तर पर प्रदूषक दस गुना सांद्रित हो जाता है।

इन दिनों पीडकनाशी उद्योग ने अपना ध्यान शाकनाशी, (जैसे–सोडियम क्लोरेट ($NaClO_3$), सोडियम आर्सिनेट (Na_3AsO_3) आदि) की ओर मोड़ा है। गत शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यांत्रिक से रासायनिक अपतृण नियंत्रण की ओर किए गए विस्थापन के कारण उद्योग को समृद्ध आर्थिक बाज़ार उपलब्ध हुआ है, परंतु हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि यह भी पर्यावरण के अनुकूल नहीं है।

अधिकांश शाकनाशी स्तनधारियों के लिए विषैले होते हैं, परंतु ये कार्ब-क्लोराइड्स के समान स्थायी नहीं होते हैं। ये रसायन कुछ ही माह में अपघटित हो जाते हैं। कार्ब-क्लोराइड की भाँति ये भी पोषी स्तर पर सांद्रित हो जाते हैं। मानव में जन्मजात कमियों का कारण कुछ शाकनाशी हैं। यह पाया गया कि मक्का के खेत, जिनमें शाकनाशी का छिड़काव किया गया हो, कीटों के आक्रमण तथा पादप रोगों के प्रति उन खेतों से अधिक सुग्राही होते है, जिनकी निराई हाथों से की जाती है।

पीडकनाशी तथा शाकनाशी व्यापक रूप से फैले रासायनिक प्रदूषण के छोटे से भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं। विभित्र वस्तुओं के उत्पादन के औद्योगिक एवं रासायनिक प्रक्रमों में निरंतर प्रयुक्त होने वाले अनेक यौगिक अंततः किसी न किसी रूप में वायुमंडल में मुक्त होते रहते हैं।

14.5 औद्योगिक अपशिष्ट

औद्योगिक ठोस अपशिष्ट (Solid waste) को जैव अपघटनी तथा जैव अनपघटनी ठोसों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैव अपघटनी अपशिष्ट सूत की मिलों, खाद्य-संसाधन इकाइयों, कागज की मिलों तथा वस्त्र उद्योगों द्वारा उत्पन्न होते हैं।

ऊष्मीय शक्ति संयंत्र, जो उड़न राख (Flyash) उत्पन्न करते हैं तथा लोहा एवं स्टील संयंत्र, जो वात्या भट्ठी धातुमल तथा स्टील प्रगलन धातुमल उत्पन्न करते हैं, के द्वारा जैव अनिम्नीकरण अपशिष्ट उत्पन्न होते हैं। ऐलुमिनियम, जिंक तथा कॉपर के उत्पादन उद्योग, जो पंक तथा पछोडन (mud and tailing) उत्पन्न करते हैं। उर्वरक उद्योग जिप्सम का उत्पादन करता है। धातु, रसायन, दवा, फार्मेसी, रंजक, पीडकनाशी, रबर आदि से संबंधित उद्योग ज्वलनशील, मिश्रित विस्फोटक या उच्च क्रियाशील पदार्थ का उत्पादन करते हैं।

यदि जैव अनपघटनी औद्योगिक ठोस अपशिष्ट का सही तरीके से निस्तारण नहीं किया जाए, तो पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा हो सकता है। अभिनव परिवर्तनों के फलस्वरूप अपशिष्ट पदार्थों के विभिन्न उपयोग खोज निकाले गए हैं। आजकल स्टील उद्योग से उत्पन्न फ्लाई ऐश तथा धातुमल का उपयोग सीमेन्ट उद्योग में होने लगा है। भारी मात्रा में विषैले अपशिष्टों को सामान्यतः नियंत्रित भस्मीकरण द्वारा नष्ट किया जाता है, जबकि कम मात्रा में उत्पन्न अपविष्ट पदार्थों को खुले में जलाकर नष्ट कर दिया जाता है, परंतु ठोस अपशिष्टों का प्रबंधन यदि ढंग से न किया जाए, तो भी ये पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

14.6 पर्यावरण-प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय

इस एकक में वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण एवं औद्योगिक प्रदूषण के अध्ययन के पश्चात् अब आप पर्यावरण प्रदूषण के नियंत्रण की आवश्यकता महसूस करने लगे होंगे। आप अपने समीप के पर्यावरण को कैसे बचा सकते हैं? आप अपने अड़ोस-पड़ोस में उपरोक्त प्रदूषणों के नियंत्रण के लिए क्या-क्या कदम उठा सकते हैं या क्रियाकलाप कर सकते हैं, इस बारे में विचार करें। यहाँ अपशिट प्रबंधन के उपायों के संबंध में एक विचार रखा जा रहा है।

14.6.1 अपशिष्ट का प्रबंधन

ठोस अपशिष्ट केवल वही नहीं है, जो आप अपने कचरादान में देखते हैं। बेकार घरेलू वस्तुओं के अतिरिक्त भी अनेक अपविष्ट हैं, जैसे–चिकित्सीय अपविष्ट, कृषि अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट एवं खनिज अपशिष्ट। पर्यावरण के निम्नीकरण का एक मुख्य कारण अपशिष्टों का अनुपयुक्त विधि से किया गया निस्तारण है। इसीलिए अपशिष्ट का प्रबंधन परम आवश्यक है।

क्या आप अपशिष्ट के पुनर्चक्रण के बारे में जानते हैं?

- प्लास्टिक अपशिष्ट से प्राप्त ईंधन की उच्च ऑक्टेन दर होती है। इसमें लेड नहीं होता है तथा इसे 'हरित ईंधन' (Green fuel) कहते हैं।
- रसायन एवं वस्त्र उद्योग में किए गए आधुनिक विकास के कारण अब पुन: चक्रित प्लास्टिक से वस्त्र बनाए जाएँगे। ये जल्दी ही विश्व के वस्त्र-बाज़ार में उपलब्ध होंगे।
- हमारे देश में शहरों तथा कस्बों को बिजली की भीषण कटौती का सामना करना पड़ता है। चारों तरफ सड़ते हुए अपशिष्ट के ढेर भी हम देख सकते हैं। एक अच्छी खबर यह है कि हम इन दोनों समस्याओं से एक साथ छुटकारा पा सकते हैं। आजकल एक ऐसी तकनीक विकसित की गई है, जिसमें कचरे से विद्युत् का उत्पादन होता है। एक प्रायोगिक संयंत्र लगाया गया है, जिसमें कचरे से लौह धातु को अलग करके प्लास्टिक, काँच, कागज आदि को पानी में मिलाया जाता है। बैक्टीरिया द्वारा इसका संवर्धन (Culture) कर मेथेन बनाते हैं, जिसे सामान्यत: 'बायोगैस' के नाम से जाना जाता है। बायोगैस का उपयोग बिजली के उत्पादन में होता है तथा शेष उत्पाद खाद के रूप में प्रयुक्त होता है।

एकत्रण तथा निस्तारण **(Collection and disposal)**

घरेलू अपशिष्ट को छोटे पात्रों में एकत्र करते हैं, जिसे सार्वजनिक कचरा-पात्रों में डाल दिया जाता है। इन सामुदायिक पात्रों में से इसे इकट्ठा करके निस्तारण-स्थल (dumping place) तक पहुँचाया जाता है। निस्तारण-स्थल पर कचरे को इकट्ठा कर इसे जैव अनिम्नीकरण अपशिष्टों तथा जैव निम्नीकरण अपशिष्टों में छाँटकर पृथक् कर लिया जाता है। जैव अनिम्नीकरण पदार्थों, जैसे—प्लास्टिक, काँच, धातु, छीलन आदि को पुनर्चक्रण (Recycling) के लिए भेज दिया जाता है। जैव निम्नीकरण अपशिष्ट को खुले मैदानों में मिट्टी में दबा दिया जाता है। जैव निम्नीकरण अपशिष्ट कंपोस्ट खाद (Compost) में परिवर्तित हो जाता है।

यदि अपशिष्ट को कचरा-पात्रों में इकट्ठा नहीं करें, तो वह नालियों में चला जाता है। इसमें से कुछ मवेशियों द्वारा खा लिया जाता है। जैव अनिम्नीकरण अपविष्ट (जैसे—पॉलिथीन की थैलियाँ, धातु-छीलन आदि) नालियों को रुद्ध कर देती हैं एवं असुविधा उत्पन्न करती हैं। पॉलिथीन की थैलियाँ यदि मवेशियों द्वारा निगल ली जाएँ, तो उनकी मृत्यु का कारण भी बन सकती हैं।

इसीलिए सामान्य व्यवहार में सभी घरेलू अपविष्ट सही तरीके से एकत्र करके इनका निस्तारण करना चाहिए। घटिया प्रबंधन से स्वास्थ्य-संबंधी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे भूमि के जल के प्रदूषण के कारण महामारियाँ फैलती हैं। यह विशेषत: उन लोगों के लिए अधिक हानिकारक है, जो इस अपशिष्ट के सीधे संपर्क में आते हैं, जैसे—पुराना सामान तथा कचरा इकट्ठा करने वाले और वे कर्मचारी, जो अपशिष्ट के निस्तार के काम में लगे रहते हैं, क्योंकि ये वे व्यक्ति हैं, जो अपशिष्ट को दस्ताने या जलरोधी जूतों को पहने बिना स्पर्श करते हैं और गैस-मास्क का भी उपयोग नहीं करते हैं। आप उनके लिए क्या कर सकते हैं?

14.7 हरित रसायन (ग्रीन केमिस्ट्री)

14.7.1 परिचय

यह सर्वविदित तथ्य है कि हमारे देश में 20वीं सदी के अंत तक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के उपयोग तथा कृषि के उन्नत तरीकों का प्रयोग करके अच्छी किस्म के बीजों, सिंचाई आदि से खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है, परंतु मृदा के अधिक शोषण एवं उर्वरकों तथा कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग से मृदा, जल एवं वायु की गुणवत्ता घटी है।

इस समस्या का समाधान विकास के प्रारंभ हो चुके प्रक्रम को रोकना नहीं, बल्कि उन तरीकों को खोजना है, जो वातावरण के बिगड़ने को रोक सकें। रसायन विज्ञान तथा अन्य विज्ञानों के उन सिद्धांतों का ज्ञान, जिससे पर्यावरण के दुष्प्रभावों को कम किया जा सके, 'हरित रसायन' कहलाता है। हरित रसायन उत्पादन का वह प्रक्रम है, जो पर्यावरण में न्यूनतम प्रदूषण या खराबी लाए। एक प्रक्रम में उत्पन्न होने वाले सह उत्पादों को यदि लाभदायक तरीके से उपयोग नहीं किया जाए तो वे पर्यावरण-प्रदूषण में सहायक होते हैं। ऐसे प्रक्रम न सिर्फ पर्यावरणीय दृष्टि से हानिकारक हैं, बल्कि महँगे भी हैं। उत्पाद अपव्यय एवं इसका विसर्जन दोनों ही वित्तीय रूप से खराब हैं। विकास-कार्यों के साथ-साथ वर्तमान ज्ञान का रासायनिक हानि को कम करने के लिए उपयोग में लाना ही हरित रसायन का आधार है। क्या आपने हरित रसायन का विचार ग्रहण किया है? यह भली-भाँति ज्ञात है कि कार्बनिक विलायक, जैसे—बेंजीन, टॉलूइन, कार्बन टेट्राक्लोराइड आदि अत्यधिक विषैले हैं। इनका प्रयोग करते समय सतर्क रहना चाहिए।

जैसा आप जानते हैं, एक रासायनिक अभिक्रिया की सीमा, ताप, दाब, उत्प्रेरक के उपयोग आदि भौतिक मापदंड पर निर्भर करती हैं। यदि एक रासायनिक अभिक्रिया में अभिकारक

हरित रसायनज्ञों को नोबेल पुरस्कार

येज चाउविन

रॉबर्ट एच. ग्रुब्स

रिचर्ड आर. श्रोक

येज चाउविन इन्स्टिट्यूट फ्रैंक्स, डू पेट्रोले, रूइनल-मेलमेसन, फ्रान्स, रॉबर्ट एच. ग्रुब्स, कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (कैलटेक), पासाडेना, सी.ए, यू.एस.ए. तथा रिचर्ड आर. श्रोक मासाच्युएट्स इन्स्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) कैंब्रिज, यू.एस.ए. ने नए रसायनों के निर्माण, जिनमें हानिकारक अपविष्ट कम होते हैं, पर कार्य करने के लिए सन् 2005 का नोबेल पुरस्कार पाया। तीनों ने कार्बनिक संश्लेषण की स्थानांतरण (मेटाथेसिस) विधि के लिए पुरस्कार पाया। इसमें अणु के अंदर परमाणु समूह पुनर्व्यवस्थित होते रहते हैं। रॉयल स्वीडिश अकादमी ने इसकी तुलना ऐसे नृत्य से की है, जिसमें युगल अपना जोड़ीदार बदलते हैं। मेटाथेसिस का जबरदस्त वाणिज्यिक उपयोग औषधि, जैव तकनीकी एवं खाद्य उद्योग में है। इसका उपयोग पर्यावरणीय मैत्रीपूर्ण बहुलकों के क्रांतिकारी विकास में भी होता है।

यह हरित रसायन में एक बड़े कदम का प्रतिनिधित्व है। कुशल उत्पादन द्वारा हानिकारक अपविष्टों को कम किया जाता है। मेटाथेसिस इस बात का उदाहरण है कि मूल विज्ञान का उपयोग मनुष्य, समाज एवं पर्यावरण के लाभ के लिए कैसे प्रयुक्त किया गया है।

एक पर्यावरणीय मैत्रीपूर्ण माध्यम में पूर्णत: पर्यावरणीय मैत्रीपूर्ण उत्पादों में बदल जाए, तो पर्यावरण में कोई रासायनिक प्रदूषक नहीं होगा।

संश्लेषण के दौरान प्रारंभिक पदार्थ का चयन करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए, ताकि जब भी वह अंतिम उत्पाद में परिवर्तित हो, तो अपविष्ट उत्पन्न ही न हो। यह संश्लेषण के दौरान अनकूल परिस्थितियों को अर्जित करके किया जाता है। जल की उच्च विशिष्ट ऊष्मा तथा कम वाष्पशीलता के कारण इसे संश्लेषित अभिक्रियाओं में माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाना वांछित है। जल सस्ता, अज्वलनशील तथा अकैंसरजन्य प्रभाव वाला माध्यम है।

14.7.2 दैनिक जीवन से हरित रसायन–

(i) कपड़ों की निर्जल धुलाई में

टेट्राक्लोरोएथीन [$Cl_2C = CCl_2$] का उपयोग प्रारंभ में निर्जल धुलाई के लिए विलायक के रूप में किया जाता था। यह यौगिक भू-जल को प्रदूषित कर देता है। यह एक संभावित कैंसरजन्य भी है। धुलाई की प्रक्रिया में इस यौगिक का द्रव कार्बन डाइऑक्साइड एवं उपयुक्त अपमार्जक द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। हैलोजेनीकृत विलायक का द्रवित CO_2 से प्रतिस्थापन भू-जल के लिए कम हानिकारक है।

आजकल हाइड्रोजन परॉक्साइड का उपयोग लॉन्ड्री में कपड़ों के विरंजन के लिए लिया जाता है, जिससे परिणाम तो अच्छे निकलते ही हैं, जल का कम उपयोग भी होता है।

(ii) पेपर का विरंजन

पूर्व में पेपर के विरंजन के लिए क्लोरीन गैस उपयोग में आती थी। आजकल उत्प्रेरक की उपस्थिति में हाइड्रोजन परॉक्साइड, जो विरंजन क्रिया की दर को बढ़ाता है, उपयोग में लाया जाता है।

(iii) रसायनों का संश्लेषण

औद्योगिक स्तर पर एथीन का ऑक्सीकरण आयनिक उत्प्रेरकों एवं जलीय माध्यम की उपस्थिति में करवाया जाए, तो लगभग 90% ऐथेनॉल प्राप्त होता है।

$$CH_2 = CH_2 + O_2 \xrightarrow[\text{Pd(II), Cu(II)}\ \text{जल में}]{\text{उत्प्रेरक}} CH_3CHO (90\%)$$
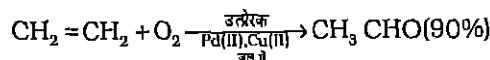
संक्षेप में, हरित रसायन एक कम लागत उपागम है, जो कम पदार्थ, ऊर्जा-उपभोग एवं अपविष्ट जनन से संबंधित है।

इस बारे में सोचिए

मानव होने के नाते पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए हमारी क्या जिम्मेदारी है?

किसी मानव द्वारा दी गई धारणाएँ मानव-जीवन तथा पर्यावरण-स्तर को उच्च बनाने में योगदान करती हैं। आपके

बगीचे अथवा घर की किसी जगह में कंपोस्ट टिन का डिब्बा होना चाहिए तथा इसका प्रयोग पौधों के लिए खाद बनाने के कार्य में करना चाहिए, ताकि उर्वरकों का प्रयोग कम करना पड़े। हमें बाजार से फल, सब्जी तथा परचूनी का सामान एवं अन्य वस्तुएँ खरीदते समय कपड़ों के थैलों का उपयोग करके प्लास्टिक की थैलियों के उपयोग से बचना चाहिए। आप देखिए कि आपके क्षेत्र में पुराने समाचार-पत्रों, काँच, ऐलुमिनियम तथा अन्य सभी वस्तुओं का पुनर्चक्रीकरण हो रहा है अथवा नहीं। पर्यावरण-सुरक्षा के लिए हमें ऐसे विक्रेताओं को पहचान करने में थोड़ी परेशानी भी हो सकती है। हमें यह जानना चाहिए कि प्रत्येक समस्या का निवारण नहीं हो सकता है, किंतु हम अपना ध्यान उन पहलुओं पर केंद्रित कर सकते हैं, जिन्हें हम मुख्य रूप से महसूस कर सकें तथा उसके लिए कुछ कर सकें। जो कुछ भी हम कहते हैं, उस पर अमल भी करना चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि पर्यावरण संरक्षण सदैव हम से ही प्रारंभ होता है।

सारांश

पर्यावरणीय रसायन पर्यावरण में मुख्य भूमिका निभाता है। पर्यावरण में उपस्थित रसायन स्पीशीज़ कुछ प्राकृतिक हैं तथा अन्य मनुष्यों के कार्यकलापों से जनित पर्यावरण-प्रदूषण वातावरण में अनचाहे परिवर्तन का प्रभाव है, जो पौधों, जानवरों तथा मानव के लिए हानिकारक है। पदार्थ की सभी (तीनों) अवस्थाओं में प्रदूषक विद्यमान रहते हैं। हमने केवल उन्हीं प्रदूषकों का वर्णन किया है, जो मानव-क्रियाकलापों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और जिन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। वायुमंडलीय प्रदूषण का अध्ययन सामान्यतया **क्षोभमंडलीय** एवं **समतापमंडलीय प्रदूषण** के रूप में किया जाता है। क्षोभमंडल वायुमंडल का निम्नतम स्तर (~10 km) है, जिसमें मानव के साथ अन्य जीव तथा वनस्पति भी सम्मिलित हैं, जबकि समतापमंडल क्षोभमंडल की ऊपरी सीमा से 40 किमी. ऊपर अर्थात् समुद्र-तल से 50 किलोमीटर की ऊँचाई तक स्थित है। ओजोन-परत समतापमंडल का एक प्रमुख घटक है। क्षोभमंडलीय प्रदूषण मूलतः सल्फर, नाइट्रोजन, कार्बन, हैलोजेन के ऑक्साइड तथा कणिकामय प्रदूषण के कारण होता है। क्षोभमंडल प्रदूषक पृथ्वी पर अम्लवर्षा के रूप में आते हैं। पृथ्वी पर पहुँचने वाले सौर-ऊर्जा का 75% भाग भू-पृष्ठ द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और शेष वातावरण में पुनः विकिरित कर दिया जाता है। उपरोक्त वर्णित गैसें ऊष्मा को ग्रहण करके भू-मंडलीय तापन के लिए उत्तरदायी हैं। ये गैसें पृथ्वी पर जीवन के लिए भी उत्तरदायी हैं, जो जीवनयापन के लिए पृथ्वी पर सौर-ऊर्जा की उपयोगी मात्रा को ग्रहण करती हैं। ग्रीनहाउस गैसों में अधिकता से पृथ्वी के वायुमंडल का तापमान बढ़ता है, जिससे ध्रुवीय बर्फ पिघलने के कारण समुद्र-तल में वृद्धि हो सकती है। परिणामतः समुद्रतटीय क्षेत्र जलमग्न हो सकते हैं। कई मानव-क्रियाकलाप रसायन उत्पन्न कर रहे हैं, जो समतापमंडल में ओजोन-परत के क्षय के लिए उत्तरदायी है, जो ओजोन-छिद्र का निर्माण करते हैं। ओजोन-छिद्र के द्वारा पराबैंगनी विकिरणें पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करती हैं, जो जीनों में उत्परिवर्तन का कारण हैं। जल हमारे जीवन के लिए उपयोगी है, लेकिन यही जल अगर रोगाणु, कार्बनिक अपविष्ट तथा विषैली भारी धातुएँ, पीडकनाशी आदि द्वारा प्रदूषित हो जाए तो यह विष में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार, हमें पेय जल के शुद्धता-स्तर को ध्यान में रखना चाहिए। औद्योगिक अपशिष्टों तथा पीडकनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से भूमि तथा जल का प्रदूषण हुआ है। कृषि-क्षेत्र में रसायनों का युक्तिसंगत उपयोग विकास जारी रखने के लिए आवश्यक है। वातावरणीय प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कई उपाय हैं, जैसे– (i) अपशिष्टों का प्रबंधन, अपशिष्टों में कमी करना, उनका अच्छी तरह सन्निक्षेपण तथा पदार्थ एवं ऊर्जा का पुनर्चक्रण करना (ii) दैनिक-जीवन में ऐसी विधियों का उपयोग करना, जिससे वातावरणीय प्रदूषण कम हो। इसकी दूसरी विधि रसायन की नवीन शाखा है, जिसे **हरित रसायन** के नाम से जाना जाता है। इससे उपयुक्त ज्ञान एवं प्रयास से प्रदूषकों का उत्पादन यथासंभव कम कर दिया जाता है।

अभ्यास

14.1 पर्यावरणीय रसायन शास्त्र को परिभाषित कीजिए।

14.2 क्षोभमंडलीय प्रदूषण को लगभग 100 शब्दों में समझाइए।

14.3 कार्बन डाइऑक्साइड की अपेक्षा कार्बन मोनोऑक्साइड अधिक खतरनाक क्यों है? समझाइए।

14.4 ग्रीनहाउस-प्रभाव के लिए कौन सी गैसें उत्तरदायी हैं? सूचीबद्ध कीजिए।

14.5 अम्लवर्षा मूर्तियों तथा स्मारकों को कैसे दुष्प्रभावित करती है?

14.6 धूम कुहरा क्या है? सामान्य धूम कुहरा प्रकाश रासायनिक धूम कुहरे से कैसे भिन्न है?

14.7 प्रकाश रासायनिक धूम कुहरे के निर्माण के दौरान होने वाली अभिक्रिया लिखिए।

14.8 प्रकाश रासायनिक धूम कुहरे के दुष्परिणाम क्या हैं? इन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है?

14.9 क्षोभमंडल पर ओजोन-परत के क्षय में होने वाली अभिक्रिया कौन सी है?

14.10 ओजोन छिद्र से आप क्या समझते हैं? इसके परिणाम क्या हैं?

14.11 जल-प्रदूषण के मुख्य कारण क्या हैं? समझाइए।

14.12 क्या आपने अपने क्षेत्र में जल-प्रदूषण देखा है? इसे नियंत्रित करने के कौन से उपाय हैं?

14.13 आप अपने 'जीव रसायनी ऑक्सीजन आवश्यकता' (B.O.D) से क्या समझते हैं?

14.14 क्या आपने आस-पास के क्षेत्र में भूमि-प्रदूषण देखा है? आप भूमि-प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए क्या प्रयास करेंगे?

14.15 पीडकनाशी तथा शाकनाशी से आप क्या समझते है? उदाहरण सहित समझाइए।

14.16 हरित रसायन से आप क्या समझते हैं? यह वातावरणीय प्रदूषण को रोकने में किस प्रकार सहायक है?

14.17 क्या होता, जब भू-वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसें नहीं होतीं? विवेचना कीजिए।

14.18 एक झील में अचानक असंख्य मृत मछलियाँ तैरती हुई मिलीं। इसमें कोई विषाक्त पदार्थ नहीं था, परंतु बहुतायत में पादप्लवक पाए गए। मछलियों के मरने का कारण बताइए।

14.19 घरेलू अपविष्ट किस प्रकार खाद के रूप में काम आ सकते हैं?

14.20 आपने अपने कृषि-क्षेत्र अथवा उद्यान में कंपोस्ट खाद के लिए गड्ढे बना रखे हैं। उत्तम कंपोस्ट बनाने के लिए इस प्रक्रिया की व्याख्या दुर्गंध, मक्खियों तथा अपविष्टों के चक्रीकरण के संदर्भ में कीजिए।

कुछ चुने हुए प्रश्नों के उत्तर

एकक 8

8.25 15 g

एकक 12

12.32 विरचित कार्बनडाइऑक्साइड का द्रव्यमान = 0.505 g

विरचित जल का द्रव्यमान = 0.0864 g

12.33 नाइट्रोजन का प्रतिशत = 56

12.34 क्लोरीन का प्रतिशत = 37.57

12.35 सल्फर का प्रतिशत = 19.66

एकक 13

13.1 पार्श्वअभिक्रिया से प्राप्त दो $\dot{C}H_3$ मुक्त मूलकों के योग से शृंखला समापन द्वारा।

13.2 (क) 2-मेथिलब्यूट-2-ईन (ख) पेन्ट-1-ईन-3-आईन

(ग) ब्यूटा-1, 3-डाईइन (घ) 4-फेनिलब्यूट-1-ईन

(ङ) 2-मेथिलफीनोल (च) 5-(2-मेथिलप्रोपिल)-डीकेन

(छ) 4-एथिलडेका-1, 5, 8-ट्राईईन

13.3 (क) (i) $CH_2 = CH - CH_2 - CH_2$ ब्यूट-1-ईन

(ii) $CH_3 - CH_2 = CH - CH_2$ ब्यूट-2-ईन

(iii) $CH_2 = C(CH_3) - CH_3$ 2-मेथिलप्रोपीन

(ख) (i) $HC \equiv C - CH_2 - CH_2 - CH_2$ पेन्ट-1-आईन

(ii) $CH_3 - C \equiv C - CH_2 - CH_3$ पेन्ट-2-आईन

(iii) $CH_3 - CH(CH_3) - C \equiv CH$ 3-मेथिलब्यूट-1-आईन

13.4 (i) एथेनल एवं प्रोपेनल (ii) ब्यूटेन-2-ओन एवं पेटेन-2-ओन

(iii) मेथेनल एवं पेटेन-3-ओन (iv) प्रोपेनल एवं बेंजल्डिहाइड

13.5 3-एथिलपेंट

13.6 ब्यूट-2-ईन

13.7 3-ऐथिलहेक्स-3-ईन

$CH_3 - CH_2 - C(CH_2-CH_3) = CH - CH_2-CH_3$

13.8 (क) $C_4H_{10}(g)+13/2\,O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 4CO_2(g)+5H_2O(g)$

(ख) $C_5H_{10}(g)+15/2\,O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 5CO_2(g)+5H_2O(g)$

(ग) $C_6H_{10}(g)+17/2\,O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 6CO_2(g) + 5H_2O(g)$

(घ) $C_7H_8(g) + 9O_2(g) \xrightarrow{\Delta} 7CO_2(g)+4H_2O(g)$

13.9 $CH_3(H)C=C(H)CH_2-CH_2-CH_3$ — समपक्ष-ब्यूट-2-ईन
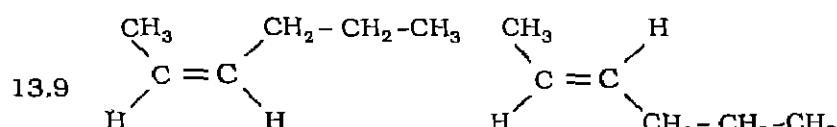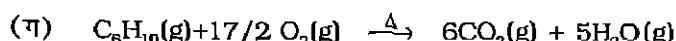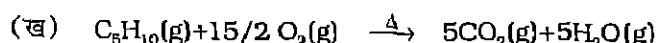
$CH_3(H)C=C(H)CH_2-CH_2-CH_3$ — विपक्ष-ब्यूट-2-ईन

अधिक ध्रुवित प्रकृति के कारण समपक्ष रुप में अधिक अंतरअणुक द्विध्रुव-द्विध्रुव अन्योयक्रिया होती है अत: इन अणुओं को पृथक करने में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है फलत: इसका क्वथनांक अधिक होगा।

13.10 अनुनाद के कारण

13.11 समतलीय, $(4n + 2)\pi$ इलेक्ट्रोन युक्त संयुग्मित वलय निकाय जहाँ n एक पूर्णांक है।

13.12 वलयनिकाय में $(4n + 2)\pi$ इलेक्ट्रॉनो के विस्थानीकरण न होने के कारण।

13.13 (i)

बेन्ज़ीन + $Br_2 \xrightarrow{FeBr_3}$ ब्रोमोबेन्ज़ीन + $\xrightarrow[\text{सांद्र } H_2SO_4]{\text{सांद्र } HNO_3}$ (Br, $-NO_2$ ऑर्थो) + (Br, NO_2 पैरा)

$\xrightarrow[\text{पृथक्करण}]{\text{प्रभाजी आसवन द्वारा}}$ (CH_3, NO_2 पैरा)

(ii) बेन्ज़ीन $\xrightarrow[\Delta]{\text{सांद्र } HNO_3 \text{ + सांद्र } H_2SO_4}$ (NO_2) + $\xrightarrow[\text{निर्जल } AlCl_3]{Cl_2}$ (Br, Cl)

(iii) बेन्ज़ीन $+CH_3Cl \xrightarrow{\text{निर्जल } AlCl_3}$ (CH_3) $\xrightarrow[\text{तनु } H_2SO_4 \text{ ऊष्मा}]{\text{तनु } HNO_3 \text{ +}}$ (CH_3, NO_2 ऑर्थो) + (CH_3, NO_2 पैरा)

$$\xrightarrow[\text{पृथक्करण}]{\text{प्रभाजी आसवन द्वारा}} p\text{-}CH_3C_6H_4NO_2$$

(iv) $$C_6H_6 + Cl-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-CH_3 \xrightarrow{\text{निर्जल . } AlCl_3} C_6H_5-\overset{O}{\overset{\|}{C}}-CH_3$$

13.14

$$H-\underset{H}{\overset{H}{C}}-\underset{H}{\overset{H}{C}}-\underset{CH_3}{\overset{CH_3}{C}}-\underset{H}{\overset{H}{C}}-\underset{CH_3}{\overset{H}{C}}-CH_3$$

(कार्बन क्रमशः 1°, 2°, 4°, 2°, 3°, 1°; सभी CH_3 समूह 1°)
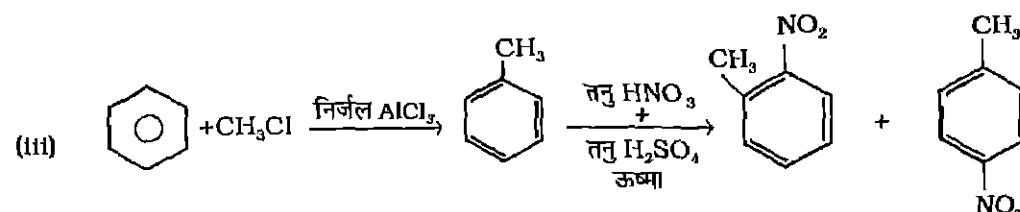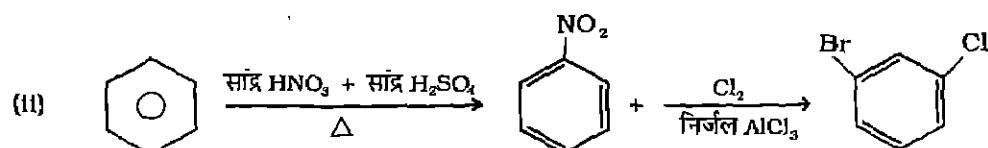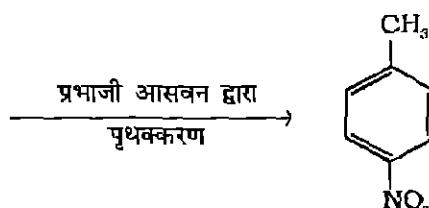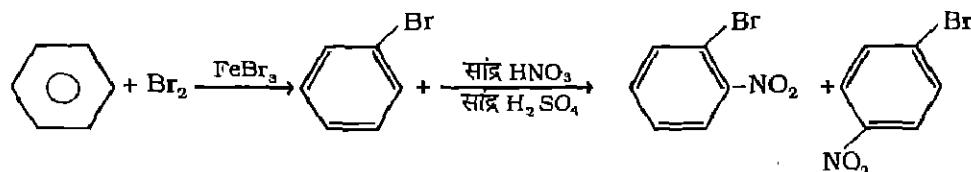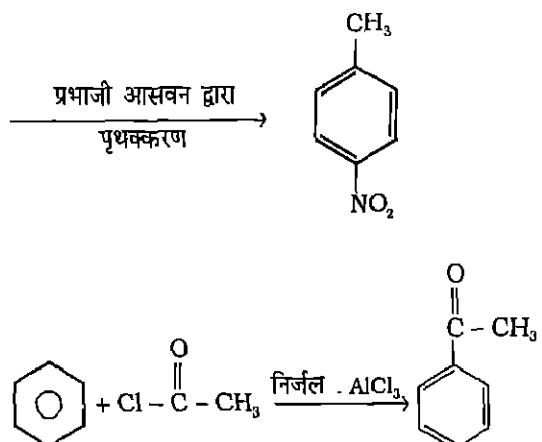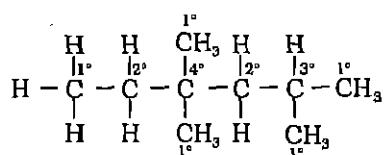
1° कार्बन से 15 H जुड़े हैं

2° कार्बन से 4 H जुड़े हैं

3° कार्बन से 1 H जुड़े हैं।

13.15 एल्केन में जितना अधिक शाखन होगा,क्वथनांक उतना निम्न होगा।

13.17 $$\begin{matrix} CH_3-C=O \\ | \\ CH_3-C=O \end{matrix}, \quad \begin{matrix} CH_3-C=O \\ | \\ H-C=O \end{matrix} \quad \text{तथा} \quad \begin{matrix} CHO \\ | \\ CHO \end{matrix}$$
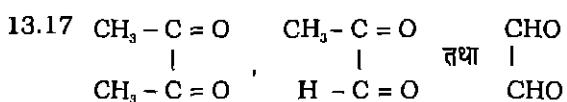
किसी एक केकुले संरचना से तीनों उत्पाद एक साथ प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं। बेंजीन दो अनुनादी संरचनाओं का संकर होती है, प्रदर्शित यह करता है।

13.18 $H-C\equiv C-H > C_6H_6 > C_6H_{14}$. *sp* स्थाइन में अधिकतम (50 प्रतिशत) कक्षक गुण होने के कारण कार्बन के संकरित कक्षकों में s कक्षक गुण की न्यूनता के क्रम

13.19 6 π इलेक्ट्रॉन की उपस्थिति के कारण बेंजीन इलेक्ट्रॉन के धनी स्रोत हैं अत: इलेक्ट्रॉन न्यून अभिकर्मक इस पर आसानी से आक्रमण करेगा।

13.20 (i) $$3\,CH\equiv CH \xrightarrow[\text{लौह नलिका, 873K}]{\text{रक्त तृप्त}} C_6H_6$$

(ii) $$C_2H_4 \xrightarrow{Br_2} \underset{Br}{\underset{|}{CH_2}}-\underset{Br}{\underset{|}{CH_2}} \xrightarrow{\text{एल्कोहॉलिक. KOH}} CH_2=CHBr \xrightarrow{NaNH_2}$$

$$CH\equiv CH \xrightarrow[\text{लौह नलिका, 873K}]{\text{रक्त तृप्त}} C_6H_6$$

(iii) $C_6H_{14} \xrightarrow[\text{773 K, 10-20 वायु–दाब}]{Cr_2O_3\ /\ V_2O_5/Mo_2O_3}$ (बेंजीन वलय)

13.21 $CH_2 = C(CH_3) - CH_2 - CH_3$ 2–मेथिलब्यूट-1-ईन

$CH_3 - C(CH_3) = CH - CH_3$ 2–मेथिलब्यूट-2-ईन

$CH_3 - CH(CH_3) - CH = CH_2$ 3–मेथिलब्यूट-1-ईन
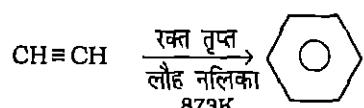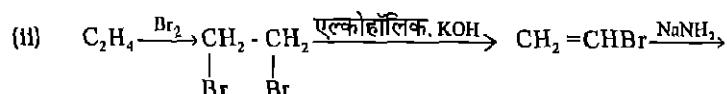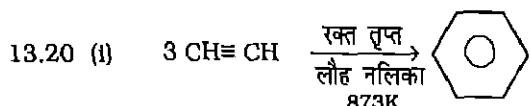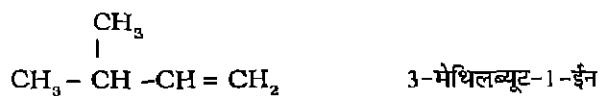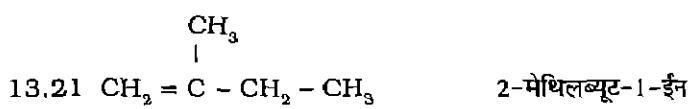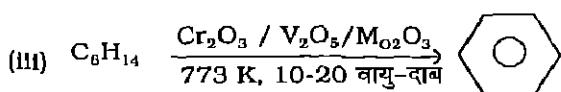
13.22 (क) क्लोरोबेंजीन > 2, 4–डाईनाइट्रोक्लोरोबेंजीन-1-ईन

(ख) टॉलूईन > p-CH_3-C_6H_4-NO_2 > p-O_2N–C_6H_4–NO_2

13.23 मेथिल समूह की इलेक्ट्रॉन देने की प्रवृत्ति के कारण टॉलूईन का नाइट्रीकरण आसानी से होगा।

13.24 $FeCl_3$

13.25 सहउत्पादों के निर्माण के कारण। उदाहरणस्वरुप यदि अभिक्रिया 1–ब्रोमोप्रोपेन एवं 1–ब्रोमो ब्यूटेन के मध्य कराई जाती है तो हेप्टेन के साथ हेक्सेन एवं ऑक्टेन सहउत्पाद के रुप में प्राप्त होगें।

अनुक्रमणिका

SUGGESTED COMMONWEALTH DIPLOMA IN EDUCATIONAL STUDIES

This is an outline in general terms of a suggestion that there might be established a Commonwealth Diploma in Educational Studies. A favourable reception of the proposal in principle would be followed by detailed planning in consultation with interested Commonwealth countries.

2. Throughout the Commonwealth adequate provision is made for professional qualifications to be obtained through full-time courses but there is an increasing number of educators being offered short-term study periods at home and overseas for which no recognised award is received. These study periods take various forms: a three-month course at a university or another academic institution, for example, a practical attachment to an education authority, or a period of specialist training with a commercial firm. In most cases, although the experience is relevant and personal competence has been improved, there are no means through which credit can be given as a first step towards a recognised qualification. Home countries find it difficult to relate the study programmes overseas to the locally accepted framework of qualifications and to evaluate them for increments or promotion. The provision of an award based on acceptable standards would give positive guidance to Governments and meet the expectations of individuals.

3. Such an award would also seem to fit in well with the new pattern of the British Commonwealth Study Fellowship programme which provides for an increasing number of short-term Fellowships not leading to named qualifications.

4. The proposed scheme represents an attempt to initiate new methods of providing recognition for short-term professional courses taken by those who for various reasons are unable to be released for periods long enough to gain a conventional qualification. Such people would be able to follow a series of short courses or attachments in institutions and organisations throughout the Commonwealth suited to their personal and professional growth and particular national requirements knowing that they could eventually gain official recognition.

5. To meet this need it is suggested that there might be established a Commonwealth Diploma in Educational Studies, based on a system of credits awarded for the successful completion of a series of short courses or attachments taken in any part of the Commonwealth over a period of 10 years. This is an adaptation of a pattern used successfully by some Commonwealth universities and the Open University in Britain and might be implemented along the following lines.

6. A short course (unit) would normally be the equivalent of one term of 10 - 12 weeks, and three units would be equated to one year's full-time study. Each unit successfully completed would gain credits towards the aggregate necessary for the Diploma.

7. The Diploma would be taken in two parts. Part I would comprise the short courses and attachments (units 1, 2 and 3); Part II would be a practical application in the home country of the experience gained (unit 4).

8. Each of the units in Part I would be worth 3 credits making a total of 9 and the unit in Part II would gain 6 credits. A final total of 15 credits would qualify candidates for the award. In order to receive the necessary credits evidence would be required from institutions to show that:

a) the assignment was relevant to home needs;

b) the quality of the work was of the required standard;

c) the applicant had demonstrated an ability to identify and analyse problems, investigate evidence objectively before reaching conclusions;

d) the applicant had benefited personally and professionaly from the experience.

9. Supervisors responsible for the programmes for each unit would report on the quality of the applicant's work and on this evidence credits would be awarded.

The emphasis would always be on the relevance of the programmes to particular national needs and the quality of the applicant's contribution rather than on a set sequential content.

10. The organisation to administer the scheme could take the form of:

a) a Council - responsible for policy, arbitration and granting the Diploma;

b) an Advisory Panel - to advise the Council on academic and professional matters;

c) an Executive Committee - headed by an Academic Registrar, responsible for the administration and operation of the scheme.

11. Applicants who wished to be registered for the Diploma would normally have to be recognised by their own countries as professionally qualified with 5 years' experience before the first unit. No other qualification would be required for registration. The subsequent ability of candidates to meet the required standards would be the main criterion and would ensure the quality of the Diploma.

12. Ten years would be allowed for the completion of the programme and experience could be considered retrospectively 5 years from the initial application to a maximum of 6 credits.

13. Initially the scheme could be administered from the Commonwealth Secretariat through the Registrar and Council at little extra cost to the present budget.

14. This proposal could be the beginning of a new Commonwealth approach to the whole problem of further professional training programmes and might prove applicable to areas other than education. It could initiate a more flexible pattern to meet national and personal requirements through relevant short courses. Countries would not be deprived of key personnel for long periods and at the same time professional development could be maintained.

COUNTRY PAPERS

TEACHER EDUCATION IN AUSTRALIA

Until quite recently students preparing to be teachers in government schools in Australia were prepared, in each state, in either a university or a state teachers college.

The universities were, traditionally, the institutions in which the majority of teachers of academic subjects in secondary schools were prepared. The normal pattern of preparation involved the completion of a first degree in the academic area which the teacher would profess in schools followed by a one year course leading to a Diploma in Education. The universities in some state often relied very heavily on nearby teachers colleges to provide courses in teaching "method" and for the placement and supervision of students in schools for "teaching practice". The universities have, for the last decade or so, been jointly supported financially by State and Federal Governments and course in teacher education have been so supported.

The state teachers' colleges have been, traditionally, the institutions which prepare teachers for the public primary (elementary) schools of the state. In addition many of them have provided for the preparation of specialist secondary teachers in fields not provided by universities - art, music, physical education, industrial arts and home science. The course usually consisted of concurrent studies of subject matter, educational theory and teaching methods with periods of practical experience at intervals throughout the period of training. Recently this has been extended to all states to a three year minimum period. In the colleges this applied to most courses though in some secondary areas for which there was no university equivalent such as Art or Music, four year courses were provided. Further, to meet the needs of an expanding secondary school system (expanding not only because of population growth but also because students are remaining in secondary schools longer) many colleges were called on by the State Education Departments which administered them to provide courses for teachers of the "academic" subjects in the secondary school.

Because public primary and secondary education has been constitutionally the province of the states, the colleges were funded directly by state governments and were controlled by the States' Departments of Education. The degree of academic and administrative control varied from state to state but none avoided the criticism that in comparison with the universities they were more narrowly based, more dedicated to producing the type of person who should teach or the type of person who the employer (the department) wanted and hence it would be an improvement were they to be freed of their departmental ties.

From the early 1960's as the result of government decisions on the recommendation of the Martin Committee, a new type of tertiary institution has begun in Australia. These are the colleges of advanced education which are seen to be no less demanding academically than universities but to be interested in vocational preparation rather than academic research. Although these colleges began most strongly in the area of industrial technology and in some states have retained this character, in other states, particularly in the regional or provincial colleges, they have developed with a large proportion of their work in teacher education.

Though these colleges are usually controlled by a body which is responsible for seeing that they provide courses which meet the states "vocational needs", they are free from the state department and from the tradition that they are interested particularly in one kind of teacher. Because of their orientation to vocational preparation, vocational courses including teacher education courses are planned as an integral whole whether for secondary or primary teachers. The implications of their advent on the teacher education scene will be referred to later.

These colleges like the universities are funded jointly by the state and federal governments.

The majority of students in universities, state teachers colleges and colleges of advanced education are destined for the state's teaching service but some students are prepared for independent schools and some for overseas countries.

As well as the state funded colleges there are about 20 non-government teachers colleges - most of these are small in relation to state teachers colleges or colleges of advanced education. The majority have been established by the Catholic Church to provide teacher education for the Catholic Education Service but some provide for other independent schools. As well as the Catholic Colleges, the next largest group would be the schools preparing pre-school teachers for schools run by the various pre-school associations in the states.

Like so many countries, Australia has within recent years had a number of reports on post-secondary education including teacher education which have influenced action in relation to the provision of teacher education programmes. To these have been added a number of reports dealing with education in the schools and these also have had an influence in teacher education. When one adds the long discussions which have taken place in Britain and North America on the development of teacher education programmes to the growing public awareness of the need for larger numbers of highly qualified staff in schools in Australia the fact that teacher educators see themselves in an era of change is understandable.

The directions in which teacher education seemingly is proceeding may be examined under a number of headings.

Financial Support

Prior to acceptance by the Commonwealth of the Murray Report recommendation that University education be funded jointly by the State and Federal Governments, the situation was simple. The state funded university and state teachers colleges, the colleges of advanced education had not been born and the non-state colleges were funded independently.

With the Commonwealth and states' assumption of joint funding of university education a division appeared to occur in that while teacher education in universities was funded, that in state teachers colleges was not.

The basis for this division was presumably that the state teachers colleges provided for the needs of the state teaching service in meeting its constitutional responsibility for compulsory schooling. The universities had wider tasks which were of national rather than state significance and hence within the province of the Commonwealth. The Federal Government had

recognised the need of the states for assistance in developing teacher education institutions and from 1967 made grants to the states for capital works without the requirement that the states match these grants but on the understanding that some of the places so provided would be for students not obligated to state service.

With the advent of the colleges of advanced education whose teacher education programmes were funded automatically with other programmes from 1970 onward, the anomaly that state teachers colleges alone of the teacher education colleges were outside federal funding provisions was recognised. The Federal Government has now offered to support, in the same manner as colleges of advanced education, state teachers colleges provided that they are moving toward independence from the state authorities. The preference of the federal authorities that teacher education be carried out in stitututions preparing students for other vocations has also been reiterated. The implications of these policies for the administration of state teachers colleges will be examined when the administration of colleges is examined.

At the same time, in line with the Federal Government's policy of providing greater assistance to pre-school education, the same offer has been made for the funding of pre-school colleges under advanced education auspices. The movement of these colleges from the control and administration of the agencies which control them at present to a form of government which satisfies the policies of the various states for the government of colleges of advanced education has yet to be developed.

Administration

While there has been growing pressure for the Federal Government to fund teacher education in state teachers colleges there has also been a movement to separate the state teachers colleges from the States' Departments of Education. The close relationship between the training authority and employer was seen by its critics as preventing the colleges from developing courses which might be considered truly tertiary rather than an expression of the needs of the employer.

These two movements have now come together in that the latest Federal Government offer to fund teachers colleges is conditional on "the colleges moving to independence of the state departments of education".

In some states the movement has been to government by a corporate council in the same manner as colleges of advanced education and the state teachers colleges are to all intents and purposes to become colleges of advanced education with a single purpose - that of preparing teachers rather than providing a variety of educational courses. In these cases a regulatory body regulates the development of courses to meet the community need, approves the standard of courses and the awards to be gained upon successful completion of the courses.

In other states the state teachers colleges have formed a parallel system to the universities and colleges of advanced education and have a body at the state level which performs the regulatory functions mentioned above.

Whatever the arrangement regarding state teachers colleges as colleges of advanced education or as separate colleges, the movement away from state departmental control is clear.

The implications and administrative consequences of this have not yet been developed but there are a number of immediate implications. The first of these is that machinery be set up to encourage, indeed ensure the preparation of a teaching force of sufficient size and appropriate skill to meet the needs of a state education policy.

The state departments whose responsibility it is to develop policy in relation to curriculum and school organisation must have avenues whereby their needs are brought to the knowledge of the institutions preparing teachers. In most states this is done by the regulatory body which looks to the development of courses and places the department's needs alongside the needs of the state for other courses and other vocations. Equally the institutions will seek to develop new courses which meet needs as they see them or use expertise which they possess and these aspirations must also be fitted into the states' capacity to support courses and to make priorities. While the states may, and do, seek the further development of courses which will produce teachers who are skilled in the task of teaching Aboriginal children, the children of migrants and the physically and intellectually handicapped, these have to be matched with the states' need for teachers with skills in the teaching of new courses in the secondary school which are designed to meet the needs of the student who stays longer at school but does not aspire to tertiary education and the need for teachers with skills in teaching a growing pre-school population. All these needs have to be measured against the states' ability to provide these courses and courses for scientists, engineers and accountants. While the close control of training and employment may have had some advantages, the new arrangement allows teaching to stand with other professions in competition for resources.

There is in Australia growing support for the view that it is advantageous to have a teacher prepare in an institution which has students preparing for other careers. There is the contrary view that the sense of professional commitment and the greater integration of course content, which is possible in single purpose colleges, make these preferable. There is little empirical evidence either way though research is being conducted on a nation wide basis to define, if nothing more, the patterns of teacher education courses in the institutions.

Within the institutions the movement away from the control of the state department has, along with the general world wide movement for greater participation of staff and students in decision making, brought changes in the internal academic structure. While the process is far from complete there are probably no institutions where staff are not involved in the academic government of the institution and few, if any, where students are not similarly involved. For example most of the governing councils of the colleges will, when independent, have student members.

The increase in the number of institutions preparing teachers, and movement of these institutions away from close contact with state departments bring some problems in the recognition of qualifications. Whereas each state formerly employed a majority of teachers from teachers colleges which it controlled or universities with which it had close contact by reason of the participation of teachers college staff in the universities' programmes, it will now employ a majority of teachers prepared in institutions over which it has no direct control. A community which compels children to attend school must be interested in the quality of the teachers it must provide. The registration of teachers has become a matter on which

discussions have taken place both in teacher organisations and within departments, with the result that a growing number of states are legislating to require teachers to be registered and to meet the qualifications necessary for registration. The machinery differs in that one state has separate registration authorities for different kinds of teacher (primary, secondary, technical) while others have provision for one body to maintain a register of a number of classes of teacher. The purpose is clear: the employer must be able to employ a teacher knowing that his qualifications have been scrutinized and that they meet appropriate standards.

Courses

There has long been a recognition that courses for the education of teachers have four elements which contribute to the development of the person who is regarded as a teacher.

The first relates to the academic development of the teacher-to-be. He is expected to have a minimum level of academic competence in the subject or subjects he wishes to teach as well as the academic skills to add to that knowledge; preferably, he should have pursued the study of some area of knowledge to the depth which is to be found in a person with a degree of specialization in the field. Traditionally this has been regarded as being accomplished, either by gaining a degree from a university before undertaking teacher education or, for those under undertake courses in teachers colleges, by taking academic courses concurrently with studies in teaching theory and practice. More and more the necessity for relating the academic work to the remainder of the course is being examined. The implications for curriculum construction of greater understanding of the basic structure of a subject are leading some teacher educators to the belief that this part of the teacher's preparation might require courses, which are no less rigorous, but which give different insights into the subject matter than those required for academic research in the field or in a vocation other than teaching.

Secondly, the study of the theoretical basis of teaching is an essential part of the teacher's preparation on which he bases the activities he performs with his pupils. This element is usually carried out in a course (or courses) with the academic title "Education". The nature of the subject Education has varied a great deal from place to place and time to time and a good deal of examination is going on among teacher educators as to what constitutes Education and how, from its study, principles for classroom practice might be best developed. Typically, Education courses are an amalgam of the contributions which philosophy, psychology and the social sciences may make to the problems of learning andteaching.

From these courses the third element emerges - the introduction of the student to the approach and teaching methods applicable to the subject and the pupils he teaches. This is attempted through courses in teaching methods, demonstration lessons and practice teaching, all of which may be considerably assisted by the use of audio-visual techniques for illustration, critical examination and recall.

From the second and third element two areas of concern have emerged. The first concerns the most appropriate ways of bringing a student into contact with desirable classroom models. This in turn brings problems for, too often, the student see the solution of his classroom problems in the imitation of the models he has been shown rather than in the basic

theoretical considerations from which the model has been developed and this indicates the second area of concern and one on which the South Pacific Association for Teacher Education has spent one of its annual conferences. It is the problem of the integration of theory and practice and in turn the relationship between course work and experience in the schools.

The impact which a necessarily more flexible access to the schools will have, when the numbers of students are growing faster than the school systems, is clearly one of the side issues to be solved.

The fourth aspect of teacher education is the development of a student as a person who is a teacher:-

- the sort of person whose own value systems are enough to allow his pupils to develop other values which he recognises as valid but which he could not hold and perhaps might wish that his pupils did not hold.

- the sort of person who possesses sensitivity for others, particularly children.

- the sort of person who can communicate easily with others and present or develop logically and clearly what he has to teach.

Obviously greater participation in decision making in the teacher education institutions will help the development of this maturity, but once more the assertion is made that an institution which has as its sole task the education of teachers is able to achieve this more readily than one with responsibilities to other callings.

As a result of the realisation of these changing problems there has been a great deal of experimentation with teaching techniques in teacher education courses and concomitently experimentation with methods of assessment of student achievement, which replaces the traditional examination system in the courses.

State schools in Australia have been part of a centralised system administered by a central state department and using centralised curricula. Though the latter have provided the teacher with increasing freedom, other factors will tend to accelerate the process. The sheer size of the operation in the larger states has meant that in recent years management decisions about schools, teachers and pupils have had to be brought closer to the schools. This process of decentralisation has brought into question the appropriateness of having decisions other than management brought closer to schools.

Obviously this movement will have consequence for teachers and the teacher education institutions.

In-Service Education

The in-service development of teachers will change with the change of government of the teacher education institutions. No longer can the state departments expect the student to be prepared to be sympathetic to or knowledgeable of its particular approaches or methods. As a result, as well as that form of in-service education which provides for the

continued professional growth of the teacher, greater emphasis will be placed on the introduction of the new teacher to the ways of the department which employs him in order that he might become part of a team and recognise the degree of professional freedom open to him to practise his profession and influence the practices of others.

REPORTS OF SIGNIFICANCE IN TEACHER EDUCATION IN AUSTRALIA

Report of the Committee on Australian Universities
September 1957 (Murray Report)

Tertiary Education in Australia - Report of the Committee on the Future of Tertiary Education in Australia to the Australian Universities Commission
3 Vols - 1964 - 65 (Martin Report)

Academic Awards in Advanced Education - Report of the Commonwealth Committee of Inquiry
June 1969 (Wiltshire Report)

Report of the Inquiry into Salaries of Lecturers and Senior Lecturers in Colleges of Advanced Education
September 1969 (Sweeney Report)

Education in South Australia - Report of the Committee of Inquiry into Education in South Australia
1969-70 (Karmel Report)

Report of the Committee apppointed to review teacher education in relation to the needs and resources of Queensland and to make recommendations on the future development of teacher education ("Teacher Education in Queensland")
1971 (Murphy Report)

Report of the Board of Inquiry into Certain Aspects of the State Teaching Service - Victoria
September 1971 (Southwell Report)

Report of the Committee of Inquiry into Teacher Education (N.S.W.)
September 1971 (Bell Report)

Report on the Commonwealth Role in Teacher Education
February 1972 (Senate Committee Report)

Report by a Committee of Inquiry appointed by the Secretary of State for Education and Science, under the chairmanship of Lord James of Rusholme (Teacher Education and Training)
December 1971 (James Report)

Teachers for Commonwealth Schools
July 1972 (Neal/Radford Report)

TEACHER EDUCATION IN ENGLAND AND WALES

The present organisation of the education and training of teachers in England and Wales derives from the reforms instituted following the publication of the McNair report in 1944. Area Training Organisations (ATO's) based on and administered by some 20 universities exercise regional responsibility for the co-ordination and supervision of teacher training within the Government's overall policy for teacher training and supply and recommend successful students to the Secretary of State for recognition for qualified teacher status. The ATO's consist of representatives of the interested parties: the universities themselves, the colleges of education and other training institutions, the local education authorities and voluntary bodies who provide the colleges, and the teaching profession.

The basic framework has endured for more than 20 years but it has been required to contain formidable changes and developments not foreseen when the ATO's were set up. Chief of these has been a massive increase in the magnitude of the operation particularly in the 1960's, occasioned by an increase in the birthrate which added one million children to the school rolls in the period 1961-71, whilst in the same period school staffing standards were improved from a pupil/teacher ratio of 25.3 :1 in 1961 to 22.6 :1 in 1971. Early in the 1960's the decision was taken to extend from 2 to 3 years the minimum period of post-18 higher education and training necessary to attain qualified teacher status. To attract older people to the profession, courses for mature entrants were developed and some 20% of new teachers are now drawn from this source. Since 1967 4-year courses for college of education students of high academic and professional potential have been developed, leading to the award of B Ed degrees; about 10% of entrants to such colleges now qualify for this award. In recent years increasing numbers of university and polytechnic graduates have sought one-year professional teacher training courses, so that about five thousand of them were admitted to colleges of education in 1972 in addition to an equal number training in university departments of education. These graduates, whether trained in university departments or colleges of education, may be prepared for teaching in any part of the age range. To accommodate all these developments the number of training places was multiplied almost threefold in the decade, the capacity of existing colleges of education was expanded, new colleges were founded and departments of education were formed in some of the polytechnics created in the 1960's.

Despite these achievements, and perhaps partly because of them, there developed during the late 1960's an insistent and growing concern about the structure and content of teacher training. This concern focussed particularly on the monotechnic nature of colleges of education, their comparative isolation from other institutions of higher education and the fragmentation of courses inherent in their dual function of providing both personal higher education and professional training for their students. A Select Committee of the House of Commons began a major study of the content, structure and organisation of teacher training in 1969; in 1970 the Area Training Organisations were asked to undertake a thorough review of their own courses and organisation; and late in the same year the new Government appointed a Committee of Inquiry under the chairmanship of Lord James of Rusholme, Vice-Chancellor of York University. The Committee's terms of reference required them to recommend what should be the content and organisation of teacher training courses, whether a larger proportion of teachers should be educated

with students who had not chosen their careers or had chosen others and, in the context of their recommendations on these issues, what should be the role of colleges of education, polytechnics and other further education institutions and universities in the training of teachers.

The Committee was unusual in that it was small; its 7 members, with one exception full-time, were all practitioners in aspects of education relevant to teachers and their professional training; they had available to them a mass of evidence and data already accumulated as the result of the preceding enquiries, to which they added oral and written evidence particular to their own; and they reported in January 1972 a year after being set up. Their report gave rise to energetic public debate which was followed by intensive and comprehensive consultations between the Secretary of State and officers of the Department of Education and Science with representatives of the many interests involved. These discussions established a large measure of agreement about the objectives of teacher education and training and the means to achieve them. The achievement of this consensus was the fruit of investigation, debate, report and consultation extending over a period of years. The process culminated in the issue by Government in December 1972 of a White Paper (Cmnd 5174) "Education: A Framework for Expansion" which incorporates in a wide-ranging statement of policy for education for the next 10 years decisions about the future development of all aspects of teacher training and the institutions in which it is provided.

The Government's objectives and the action proposed to implement them are as follows:

1. A large and systematic expansion of in-service training

Teachers will be released from normal duties for the equivalent of one term in 7 years to participate in further professional training. It is expected that the actual takeup of this new opportunity will result in 3% of the teaching force being absent on secondment at any one time. It is aimed to achieve this level of provision, which represents a fourfold increase in present arrangements, by a phased programme attaining full operation by 1981.

2. A reinforced process of induction in the first year of service

The Government believes that a teacher on first employment needs, and should be released for one fifth of his time to profit from, a systematic programme of professional initiation, guided experience and further study. Furthermore he should work to a lightened timetable so that altogether he might be expected to undertake three-quarters of a full teaching load. During his first year of service a teacher will, by virtue of his initial training, be qualified but will be subject to probation; on successful completion of the probationary year he will become a "registered teacher". To support and guide probationary teachers in their schools, professional tutors will be designated from among experienced practising teachers. Professional centres, based mainly on existing training institutions and teachers centres, will be established to provide the in-service training for which probationary teachers will be released. Such an innovation will require complex administrative arrangements as well as the development of appropriate training programmes for professional tutors and probationary teachers. It is intended to introduce a national scheme in the school year 1975-76. In the meantime a series of 4 pilot schemes, designed to explore the problems implicit in the new arrangements and to indicate solutions to them, is to be mounted. These 2 elements in the Government's new strategy will be costly in manpower and

money. By 1981 in-service training and induction will together require about 20,000 more teachers than would otherwise be needed and are likely to cost about £55 million annually at 1972 prices. Nevertheless they are regarded as a necessary investment in the future quality of the teaching force.

3. A progressive achievement of an all-graduate profession

The Government strongly support the promotion of new 3-year courses incorporating educational studies so designed that they will lead both to the award of a B Ed degree and to qualified teacher status. The degree will normally be awarded at ordinary level with the assumption that a proportion of students who attain a sufficiently high standard could, if they so wished, continue for a fourth year to take an honours B Ed degree. The normal entry standard will be the same as for universities and the academic content would be no less rigorous than that of existing degree courses. The length of the college year will permit the inclusion of at least 15 weeks supervised practical experience in a 3-year course. It is expected that the award will be validated by the universities or by the Council for National Academic Awards and discussions are now proceeding within these bodies to examine in detail the implications of degree courses with the characteristics described.

The introduction of new B Ed courses of this kind will not immediately lead to an all-graduate entry to the profession since not all applicants have nor are likely in the next few years to have the necessary university entrance qualifications. For the time being, existing certificate courses will need to be maintained for those with lower entrance qualifications, though in diminishing numbers; exceptional students following certificate courses should be enabled as at present to transfer to B Ed courses at an appropriate stage. But the combination of a supply situation which, though related to still further improved staffing standards, promises to be a good deal easier in the next decade than in the last; the rising number of graduates seeking professional training; and the introduction of B Ed courses on this new pattern constitutes a long step towards the Government's ultimate aim of an all graduate profession.

4. Improved training of further education teachers

The Government accepts that a much higher proportion of teachers in further education than at present should receive initial training either before or after taking up appointment and that they should have opportunities for further training later in their careers. There are many complex issues which remain to be resolved in consultation with those concerned.

5. The full integration of the colleges of education into the family of higher education institutions

The Government expects to provide by 1981 for an annual entry to higher education courses from within Great Britain of the order of 200,000 students, representing about 22% of the age group then aged 18. This figure compares with 7% in 1961 and 15% in 1971 This expansion will be achieved for the most part by further development of universities and polytechnics but colleges of education are intended to make a contribution to the growth.

During the period up to 1981 the number of places in colleges of education and polytechnics required specifically for teacher training will, it is estimated, decline from the present 114,000 to something of the order of 75,000-85,000. This number of places will provide for a teaching force which will continue to grow so as to achieve by 1981 staffing standards 10% better than those for

1971, and at the same time produce the additional teachers necessary to allow the full application of the Government's policies for in-service training and the induction year. To make good the places not required for the initial or in-service training of teachers and to participate in the general expansion of higher education, colleges of education some singly others by amalgamation with neighbouring institutions of higher or further education will broaden the educational basis of the courses they offer. Besides intending teachers they will admit students with other educational and professional objectives. One significant contribution to the expansion of opportunities in higher education which they along with other higher education institutions are expected to make will be to develop 2-year courses leading to the Diploma in Higher Education. This new qualification will cater for students of university calibre and will be equivalent in its intellectual demands to the first 2 years of a degree course. For some students it will represent a terminal qualification on the basis of which they will enter employment; for others it will be a stage in their progress to a degree taken by a further year's study immediately or after an intermission of some years; for others again it will constitute the educational base for professional training for a variety of vocation.

By providing other courses than those for intending teachers colleges of education will manifestly change their monotechnic nature. They will become, by function, indistinguishable from other institutions offering advanced courses, and thus unmistakably members of the higher education family.

6. Improved arrangements for the control and co-ordination of teacher training and supply, both regionally and nationally

Colleges will continue to seek validation of the courses and awards they offer from existing validating bodies, the universities and the Council for National Academic Awards. Professional recognition of teachers, which is at present conferred by the Secretary of State on the recommendation of ATO's will require the creation of a new machinery, not yet determined, in which the members of the teaching profession should have a major though not exclusive role. The promotion, co-ordination and supervision of in-service training, the improved system of induction, the allocation of teaching practice places and the distribution of teacher training courses, in number and kind, among higher education institutions, will fall to new regional committees which will in due course replace the existing ATO's. The membership of these committees will reflect the interest in the education and training of teachers of the local education authorities, the training institutions and the teaching profession. They will have no executive or financial responsibilities for the services they co-ordinate; these will remain with the local authorities and training agencies, who will need to make appropriate arrangements to meet the costs of the increased services. Because of the impending reorganisation of local government it is not expected that the new committees will be formed until 1975.

For all those involved in the education and training of teachers in England and Wales the 1970's will be a period of intensive innovation. Institutions have to be reorganised to undertake new roles, a new system of regional co-ordination has to be developed, new and expanded services for teachers initiated. Curriculum development and research programmes are in train and more will be required for the design of new courses to achieve objectives as diverse as a rapid expansion of nursery education and the creation of a corps of professional tutors. In all this the many partners to the enterprise have each to make a full and fair contribution. Developments during the past ten years have provided for all the partners' experience of, and the inculcation of attitudes towards, change and innovation which will be fully exploited in the achievement of the challenging and far-reaching plans for the next decade.

TEACHER EDUCATION IN SCOTLAND

Qualification and Registration with the General Teaching Council

1. Anyone who wishes to hold a permanent appointment as a teacher in a primary or secondary school (Education Authority or grant-aided) must successfully complete a course of pre-service training in a College of Education and register with the General Teaching Council for Scotland. The Council, a unique innovation in the administration of teacher education was constituted under the Teaching Council (Scotland) Act 1965, and is the principal advisory body to the Secretary of State for Scotland on all matters concerning the training and supply of teachers. There are 49 members of whom 30 are elected members from the teaching profession including representatives from Colleges of Education, Further Education Colleges and primary and secondary schools. Fifteen members are appointed from such bodies as the Association of Directors of Education, the universities, and the churches, and four are members nominated by the Secretary of State.

2. The Council has the general functions of keeping under review and advising the Secretary of State on standards of education, training and fitness to teach of those entering the profession, of maintaining a register of qualified teachers and of making recommendations on the supply of teachers (except on matters of salary or conditions of service). If the Secretary of State is unwilling to accept the Council's advice or recommendations he is obliged under the 1965 Act to publish a statement setting out the Council's views and his reasons for not accepting them. The Act imposes a duty on the Council to keep itself informed of the nature of courses offered in the Colleges of Education. For this purpose it may appoint persons to visit colleges on its behalf and it has done so in the form of a Committee of Visitation drawn from its own membership. These visitors report to the Council on the general content of, and arrangements for, the courses in the colleges but may not interfere with the teaching or with the conduct of any examination. The Council is empowered however to make recommendations to governing bodies on changes that might be made in general content or arrangements of the courses.

3. The Council has both an Investigating and a Disciplinary Committee. Where a registered teacher has been convicted of a crime, the nature of which implies that he has been guilty of infamous conduct in a professional respect or where a question arises whether the conduct of a registered teacher constitutes infamous conduct, the case is considered by the Investigating Committee in the first instance. If it decides that the teacher was guilty of such conduct the case is referred to and considered by the Disciplinary Committee which has the power to remove a teacher's name from the register if in its opinion he has been guilty of professional misconduct. There is a right of appeal to the Court of Session.

4. The pattern of training courses is governed by the Teachers (Education, Training and Registration) (Scotland) Regulations 1967 which provide for three distinct qualifications in the fields of primary, secondary and further education. A student who successfully completes a course leading to one of these qualifications is recommended by the governing body of the College of Education to the General Teaching Council for registration as a teacher. On application to the Council he is entitled to provisional registration; full registration is accorded on the basis of two satisfactory reports from his headteacher. The normal period of probation, which is supervised

strictly by the Council, is two years. The range of educational qualifications acceptable for entry to training and the duration of the course at the Colleges of Education are both governed by regulations drawn up by the Secretary of State on the advice of the General Teaching Council; the content of each course provided in the college is determined by the Principal of the college on the advice of the Board of Studies.

The Colleges of Education

5. The ten Scottish Colleges of Education are constituted and assigned functions under the Teachers (Colleges of Education) (Scotland) Regulations 1967. Their governing bodies are independent both of the education authorities and of the universities although their membership includes representatives of both. The Secretary of State's aim has been to secure as wide as possible a representation of interests concerned with the education and training of teachers and to this end has ensured that the governing bodies include members of the staff of the college, teachers in schools who are elected by their colleagues, representatives of the churches, and, to cover the general public interest, nominees of the Secretary of State. Each college has a board of studies comprising, in addition to the Principal, all holders of appointments of principal lecturer and above as well as a number of junior lecturing staff. The inclusion of students on both Boards of Governors and Boards of Studies is at present being considered. Co-operation among colleges is secured through the Joint Committee of Colleges consisting of the Chairman and Vice-Chairman (the Principal ex officio) of the governing body of each college. The regulations define the functions of the Joint Committee as being "to facilitate the exercise by the colleges of their function and the process of consultation on matters of common interest". It meets about twice a year but has a Sub-Committee, the Committee of Principals, which usually meets once a month. The Secretary of State keeps in touch with the Joint Committee and the Committee of Principals through the appointment of two assessors, an administrative officer of the Department and one of HM Chief Inspectors of Schools.

Training Courses

6. As has been said above, distinctive courses of training are provided for students who intend to work in one of the three main sectors - primary, secondary or further education. The nature and length of these courses are influenced by the educational attainments of the students at their point of entry to training. For students who have come direct from school the courses involve both professional training and a continuation of the students' own general education. In the training of graduates and specialist diploma holders, prominence is given to professional studies; for those training for a qualification to teach in secondary or further education emphasis is placed on the methodology of the teaching of their specialist subjects. Apart from the course leading concurrently to a degree and to a teaching qualification for secondary work established in September 1967 by the University of Stirling, all pre-service teacher training in Scotland is undertaken by the ten colleges of education.

Primary Teaching

7. There are three main courses of training leading to a teaching qualification for primary education. The first and most popular is the three year course taken mainly by young women and a growing number of young men direct from school; the minimum of age of entry is 17 and the minimum

education requirements are two Higher grade passes, including English, and four Ordinary grade passes, including mathematics or arithmetic, in the Scottish Certificate of Education. The entry qualification for this course is to be raised to three Higher grade passes from session 1974-75. (In fact, this standard is already being applied). The second method of entry is through the one year course for graduates. Until recently this was the standard method of entry for men. The third method, a four year course for the degree of Bachelor of Education was introduced in 1965. It is now available in six of the nine colleges of education offering training for primary education. This course is becoming increasingly popular as a method of entry to teaching, especially for men.

Secondary Teaching

8. There are four main courses of training leading to a teaching qualification in secondary education. Firstly, there are one year courses for graduates leading to a qualification to teach an academic subject such as English or mathematics. Broadly speaking there are two standards of entry leading to separate courses; one is at the Honours degree level of the subject which the student intends to teach and the other is at the level of two graduating courses in that subject, requiring the student to have studied the subject at a university for at least two years. Secondly, there are one year courses, available to holders of a Diploma of a Central Institution, leading to a qualification to teach a practical or aesthetic subject, for example, home economics or art. The entry requirements as far as the general education of the student is concerned are broadly similar to those for entry to the three year primary course. Thirdly, there are four year courses in technical subjects and three year courses in physical education, in speech and drama, and in music. These courses are taken mainly by young men and women direct from school, except in the case of technical subjects where the intake includes a substantial number of technicians and craftsmen from industry who can secure reductions in length of training up to a maximum of two years depending on the nature of their technical or craft qualifications. Finally, the four year courses for the degree of Bachelor of Education now offer another method of entry to teaching academic subjects in addition to the traditional pattern of graduation in an arts or science faculty of a university followed by one year of teacher training. These courses which offer academic and professional training concurrently are established by the Colleges of Education in association either with their neighbouring university or, in the case of one college, with the Council for National Academic Awards. There is an arrangement which enables graduates taking a one year post-graduate course leading either to the primary or to the secondary teaching qualification to begin their studies for the Degree of Master of Education by taking a course leading to the Diploma in Education at the neighbouring university. Attendance at this course exempts the graduate from attending the classes in psychology and education conducted by the College of Education as part of the post-graduate course. Methods and teaching practice are still the responsibility of the colleges of education. A report, "The Training of Graduates for Secondary Education", which was prepared by a Working Party set up by the General Teaching Council for Scotland was published on 28 November 1972. Consultation with the profession on the recommendations of the Report is currently taking place. A summary of the Report is appended to this paper.

Further Education

9. The course of training for further education teachers is a sandwich one consisting of two months' full-time study at Jordanhill College of

Education followed by a year of supervised teaching and finally another two months' full time study at the same college. This course is taken by teachers in service seconded by their authority to attend the periods of study at the college. It is proposed to lengthen both the initial and final phases of this course to one term's full-time study.

In-Service Training

10. The Secretary of State established in 1967 a National Committee for the In-Service Training of Teachers. The Committee is composed of 22 members representing the education authorities, Colleges of Education, teachers' associations, universities, Central Institutions, the General Teaching Council and the Secretary of State. Among its responsibilities are the identification of in-service training needs and a definition of priorities within these needs, and the devising of administrative machinery at local and regional level to ensure that courses are adequate for a comprehensive and economic programme of in-service training. Four regional committees centred at Edinburgh, Glasgow, Aberdeen and Dundee are responsible for co-ordination at local and regional level.

11. The provision of in-service training courses leading to a special qualification is governed by the Teachers (Colleges of Education) (Scotland) Regulations 1967. Under these Regulations the colleges are empowered to offer registered teachers courses leading to specialist qualifications as a teacher in a nursery school, as an infant teacher, as a remedial teacher in a primary or a secondary school, or as a teacher of pupils requiring special education. These courses are provided under a variety of arrangements extending from a one year full-time course for the specialist qualification in both primary and infant work to vacation courses extending to not more than six weeks spread over two summer vacations, with supervised teaching in the intervening year. A Working Party is at present designing a special qualification course for teachers engaged in teaching children in the 8-12 year old range.

12. In the provision of in-service training which does not lead to additional qualifications, the colleges offer an extensive range of courses, the education authorities also play an important part and there are contributions by the teachers' associations, the universities and the Central Institutions (colleges of advanced technology). Staff for these courses are drawn from the Colleges of Education, the universities, schools, education advisory staffs, industry and HM Inspectorate.

13. Courses are offered to keep teachers up-to-date with developments in the curricular field to both primary and secondary schools and to provide training for those in promoted posts, as well as to give serving teachers an opportunity of improving their initial qualifications. In the past, the majority of courses have been held out of schools hours - during evenings, at week-ends, and in vacation time. As the supply of teachers improves it is intended to increase the provision of full-time courses which will entail the release of teachers from their day-to-day classroom tasks. In 1972-73 more than 40 courses of about one month's duration were mounted, each for 20 primary teachers. It is Government policy to increase this form of provision during the next decade for teachers in primary schools and to extend it to those in secondary schools.

The Training of Graduates for Secondary Education in Scotland

14. In January 1971 the General Teaching Council set up a Working Party with the following remit -

> 'To review, in the light of the requirements of the education service and the practice in other countries, the present arrangements for post-graduate and post-diploma teaching leading to the award of a Teaching Qualification (Secondary Education) and to make recommendations.'

Later that year this remit was extended to include all of the four main courses of training leading to the acquisition of a Teaching Qualification (Secondary Education).

Summary of the Report

15. The report may be seen as having four main sections, viz, preliminary conclusions based on clearly discernible needs of teachers and pupils; the aims and objectives of preliminary training; the degree to which existing courses meet these aims and objectives; and the recommendations. Each of these is discussed in turn.

16. Preliminary Conclusions

The Working Party were agreed that any recommendations which might be made should give priority to the interests of pupils. They would require to take account of the emergence of the comprehensive school as the common pattern of secondary education, the consequent need to design the curriculum for a broad spectrum of intelligence and the changing concept of secondary education as a preparation for responsible adult life. The gradual acceptance of the belief that pupils should have a part to play in the planning and organisation of their school experience and the concept of the school as a focal point in the community it served implied the closest integration of the local authority, teachers, parents and pupils in establishing and maintaining a centre of civilised living concerned with life outside and within its walls. These ideas implied for the teacher an increasingly 'open' relationship between himself and his pupils and an awareness that social education was as important an element in his work as subject specialism. Teachers would require to be trained for this new role and the training process would require to be continuous covering a teacher's life from his entry to college of education until his retirement. The preliminary and general conclusions of the Working Party were that teacher training for graduates wishing to teach in secondary schools must continue to be obligatory and must attempt to meet the changing needs of the schools; the responsibility for training must be shared by the colleges of education and the teaching profession and existing collaboration between colleges, schools and the education authorities must be developed; the role of the school in the training process must be seen to be organised on a nationally consistent pattern; and the probationary period i.e. the period between provisional and full registration by the General Teaching Council must become a more effective period of the training process.

17. The Aims and Objectives of Preliminary Training

The Working Party identified four major aims of the professional training course. Firstly the course should be so designed as to enable the highly educated graduate with varied interests and abilities to become an efficient

and professionally motivated teacher. By the end of the course of training the teacher should have learned to adapt his specialism to enable him to present it as a school subject, to assess the value of that subject and to appreciate its place in the pattern of secondary education. The power of ready communication and a willingness to understand the learning processes of less mature and non-intellectual persons were qualities to be developed. Secondly, it should provide him with adequate equipment with which to teach. Ideally, he should, after training, have a wide and varied selection of teaching methods, the ability to deploy them in many situations and the skill to cope with unexpected problems. Thirdly, the trained teacher should have a clear idea of his place in the national system of education through learning about the form of modern Scottish society, the aims of education, existing practices in Scottish schools and classrooms and the nature and strains of the teaching process. Fourthly, his training should have encouraged him to take a continuing interest in current developments and research at all stages of the educational process so that he was convinced of the need to maintain and increase his competence as a teacher.

18. The Degree to which Existing Courses meet these Aims and Objectives

Although the colleges of education had done much, often successfully, to meet the changing demands of the schools the traditional conception of pre-service training as a basis for 40 years of service had led to serious deficiencies. It had led, for example, to the overcrowding of courses and the introduction of additional subjects in the course content. Colleges had been forced to provide solutions to problems which were not recognised as such by students because they had not encountered them in teaching practice. Schools also had had to face the conflicting demands of the pressures on senior staff and the need for steady and consistent guidance of students on teaching practice. Difficulties of this kind in colleges and schools could only be overcome by a rethinking of the individual contribution which each could make and of the degree to which the process could become a shared responsibility. As far as the colleges were concerned increased co-ordination of professional studies in Education and Psychology with those in other departments, and the proportion of lecturing to work in seminars and discussion groups required urgent consideration. As far as the schools were concerned fresh thought had to be given to the whole nature of teaching practice with the teachers playing a more significant role. If the probationary period were to become a shared responsibility of college and school this would require a formal system of co-operation. Ways would have to be found of helping college and school staffs, through secondment in both directions, to keep in touch with the rapid changes in secondary education. Probation must become a part of training involving the highest degree of co-operation among, college, education authority and school. Pre-service training and the period of probationary service would thus be integrated in a coherent whole lasting two years.

The Recommendations

19. The Working Party's thinking would ideally have been matched by a course of the 'sandwich' type in which the first part was conducted by a college of education, the second part was spent as a probationer teacher still under training but in employment and the third part was a continuation of the course in the same college of education. There were problems however which made such a 'closed-circuit' 'sandwich' course impracticable. For example, teachers in employment throughout Scotland, and perhaps north of Scotland, in the second part of the course, could not each be expected

to return for the third part to the college in which he had received his pre-service training. Even where such a return was possible the load on the colleges might be beyond their resources. The Working Party therefore had to find a practical alternative which ensured that the third part of training might be successfully accomplished.

20. The Working Party therefore proposed the following general pattern of training for teachers seeking the Teaching Qualification (Secondary Education). There should be a period of initial training (Phase I), a period of probationary service as a trainee teacher (Phase II) and a further period of training (Phase III). The three Phases would last for two full sessions and a student would be required to complete successfully each of the Phases to gain the Teaching Qualification. While the probationary period under this arrangement would be reduced from two to one years it would become an integral part of organised training.

21. Phase I

The responsibility for training in this Phase of pre-service training would rest with the colleges of education. On successful completion of the Phase a student would be recommended by the governing body of the college for provisional registration with the General Teaching Council. Since this provisional registration would mean that the student was considered fit to enter the profession as a trainee and to begin his period of supervised teaching, this first Phase would require to be both vigorous and vigorously tested. Phase I would last from the beginning of September until the following April and would consist of an introductory period, covering most of September, of 'observation' in the schools and two terms of 10 weeks each, with almost half of each term devoted to teaching practice. A September start to this Phase would not of course allow an intending student who had failed to complete his degree or diploma in June to re-sit examinations in September and begin teacher training once the results were known. While this proposal might deprive the profession of some potential recruits, the Working Party felt that it might lead indirectly to an improvement in the quality of the recruits through encouraging future undergraduates to treat their basic studies with becoming seriousness. As far as the content of Phase I was concerned it would deal with an introduction into the nature of teaching and the types of problem the student was likely to meet in Phase II; certain subject areas e.g. guidance, counselling, curricular development, outdoor education, remedial education could well be postponed; others such as the history of education might be covered by a course of prescribed reading. The general aim of Phase I would be to ground students sufficiently in both professional and subject studies and to enlighten and strengthen their growing competence in practical teaching. In practical terms colleges would require to re-distribute their theoretical studies and, since it could not be guaranteed that students would return in Phase III to the colleges in which they had completed Phase I, to co-ordinate their training policies. Teaching practice during each of the two terms would be for an uninterrupted period of at least four weeks with each student being made to feel that he was a true apprentice to the experienced teacher and being given a reasonable chance to take this practice in different types of schools. School staff and college tutors would co-operate in assisting students and in assessing teaching practice. While ultimate responsibility for all assessment in this Phase, in both practical and theoretical fields, would lie with the college, the final decision on whether a student should be allowed to enter Phase II should be, and be seen to be, the joint work of representatives of college and school.

22. Phase II

The aim of Phase II would be to provide an improved form of probationary service and to integrate this into the training process. The Phase would last for three terms i.e. the summer term of the first year of training and the winter and spring terms of the second year. Entry to Phase II would depend on a graduate securing a suitable post as a trainee teacher in a secondary school. In this teaching post the trainee teacher, as a provisionally registered teacher, would be entitled to the same status and emolument as the present provisionally registered teacher who has completed his professional training and is serving a two year period of probationary service. To ensure that the trainee teacher would have time for reflection and discussion with experienced teachers, the headteacher (or his representative), college tutor, to attend seminars, to meet tutors at colleges of education etc. he should not be asked to undertake a teaching load of more than 60-70 per cent of the teaching week. In addition the trainee would be expected to engage in discussion of such aspects as the pattern of curricular provision of the school; discipline and guidance; extra-curricular activities. He would be expected to receive systematic instruction in school organisation and administration and would be given the opportunity to study methods of assessment, school records and school reports. Where possible full use should be made of teachers' centres so that trainees from different schools in the same area could be brought together to discuss mutual problems. Thus a wide range of individuals, employers, local authority advisers, headteachers, teachers and college tutors would have a direct interest in the welfare of the trainee teacher.

23. As far as schools were concerned the supervision of the progress of the trainee teacher would require careful organisation and co-ordination. The Working Party proposed that each school should be required to nominate a senior member of staff - a regent - who would be generally responsible for the overall supervision of Phase I students and Phase II trainees. This would be a new post in secondary schools the duties of which would include the reception of students in schools; the checking and supervision of their timetables; consultation with the principal teacher of the appropriate subject department on the trainee's departmental work, including subject matter, methods and assessment; the organisation of regular contact between subject teachers and college tutors; the planning of discussion groups and seminars in which experienced teachers, trainees and students would participate; and the provision of means whereby teachers and college tutors together could discuss the progress of their younger colleagues. The appointment would carry with it the right of access to the college authorities and the definite locus in the training system which are required if schools, with the help of the colleges, are to be in charge of Phase II training. In-service training would of course be required for teachers who were appointed as 'regents'.

24. Theoretical studies begun in Phase I might be continued in Phase II, and subsequently resumed in Phase III, through an assignment of work undertaken by the trainee in Phase II. The assignment would be closely related to the work of the trainee in Phase II, would be completed in sufficient time for it to be assessed by the end of May of the second year and would be one of three conditions of final registration i.e. the headteacher's report on Phase II, the assignment and a report on Phase III.

Phase III

25. This compulsory Phase which would cover the last term of the second session in training is designed to enable the trainee to obtain fresh

insights and re-organise his personal theories about education which were synthesised for him in Phase I and were tested in practice in Phase II; and to add studies in depth of elements not covered in Phase I. Entry to Phase III would depend on a satisfactory report by the headteacher on his performance in Phase II and the trainee would be required to make arrangements with his employing authority for release from school duties for a period of eight school weeks or approximately forty days. Mere attendance at the course would not be sufficient and a satisfactory level of participation by the trainee would be required. Responsibility for the Phase would rest with the college of education advised by a local committee representative of the college, the teaching profession and the education authority staff; this committee would become in effect a second board of studies of the college. This committee would also be responsible for assessing the progress made by the students at the end of the Phase and for making appropriate recommendations to the college of education for transmission to the General Teaching Council. Since trainees in Phase II would be dispersed throughout Scotland many would be unable to undertake Phase III courses in the Phase I college and arrangements would be required to enable courses to be run in colleges or centres conveniently placed to schools where the trainees are teaching. Since colleges would thus have the dual function of initial training and local or regional provision the work of this Phase would require to be shared by all of the colleges of education and certain colleges would have to be closely related to 'outlier' centres within their allocated areas. In such centres the accommodation would be provided by the local authority and the equipment by arrangement between the authority and the college.

26. Course pattern would vary in Phase III, there might be two courses each of four weeks; or courses held on selected days within the total period leaving the rest of the week for preparation and prescribed written work. Course content would also vary e.g. completion of the Phase II assignment; ad hoc minor assignments; discussion groups and seminars etc; in which the main topics might be problems arising from practical teaching, the development of the curriculum to suit the changing needs of the pupils and problems of school and society.

27. Since the trainee would be seconded from a particular school for Phase III he would, as the term 'secondment' implies, normally return to that school where he had served during Phase II. Final registration would of course depend on the successful completion of all three Phases.

28. Mention was made earlier of other courses which lead to the award of the Teaching Qualification (Secondary Education) viz. the 2, 3 or 4 year courses in such subjects as technical education, physical education, speech and drama and music and the courses at colleges of education leading to the award of the B.Ed. The Working Party considered the impact of its proposals on both types of courses. As far as the former were concerned the final session of a concurrent course could commence at the beginning of September and conclude in the following April and be regarded as Phase I; Phases II and III would then follow according to the pattern recommended for post-graduate students. As far as the latter were concerned it was felt that the degree of B.Ed. would correspond to a university degree plus Phase I; Phase II would extend from August in the year of graduation for three terms and full registration would be granted on the basis of the degree, the training in Phase II and the headteacher's report and completion of an assignment as described above; Phase III would not be compulsory but it would be expected B.Ed. trainees would be enabled to take such share as was possible in the courses organised in that Phase.

29. Any adjustments to the University of Stirling's course which enables a student after seven semesters to gain the award of a BA and a teaching qualification and after nine semesters a BA (Hons) and a teaching qualification would be a matter for the University. The teacher training element of these semesters could be regarded as equivalent to Phase I. Graduates taking up posts in January after completion of the degree course should then undertake a Phase II which was one term longer than that for other graduates. This would cover the spring and summer terms of the year in which they graduate and the winter and spring terms of the next year. At the end of this extended Phase they would enter Phase III in the normal way.

30. Finally, having reaffirmed the necessity for all three Phases in the proposed pattern of initial training, the Working Party regarded it as essential to move, as soon as resources including staffing make it possible, to a situation in which all teachers would be required to take periodic in-service training. The pattern of training proposed was indeed designed to point the way to further avenues of training for teachers and so increase their effectiveness.

TEACHER EDUCATION IN CANADA

(RECENT INNOVATIONS IN TEACHER TRAINING PROGRAMMES)

As Canada is a federation of ten provinces, each with its own unique system of education, no attempt has been made to consolidate the information submitted by the provinces. The material is either summarized or given in full under appropriate headings.

BRITISH COLUMBIA

Teacher education institutions in this province continue to keep abreast of developments in the preparation of teachers, but it is doubtful whether the innovations are particularly unique. Changes include:

a) greater flexibility in patterns of teacher preparation study programs

b) extended practica tending towards an internship incorporated in the full program. Inclusion of planned periods of experimental studies in classroom techniques, and extensive use of students in carefully designed "teacher aide" situations

c) development of pre-program observation periods, i.e. use of an observation period to assist the student in deciding what his special area of studies is to be

d) "micro-teaching", and the use of videotape in analysis of practice teaching

e) attention to developing school curriculum areas, such as Family Life Science

f) development of interdisciplinary courses on such topics as the open area school, outdoor education, techniques in the use of the school resource centre to include procedures such as development and use of materials for individualized instruction through videotaped materials, etc.

g) development, at the University of British Columbia, of a major in Canadian Studies, including social, economic, political and anthropological courses as well as those in history and general geography

h) attention to current educational concerns through courses in such things as values in education, behaviour modification, and so on.

ALBERTA

At the present time, the province of Alberta has indicated that each of its three universities is involved in the development of innovative teacher education programs.

University of Alberta

The Faculty of Education at the University of Alberta has recently initiated a major innovative program in the field of teacher training, known as Plan B. Plan B is an integrated third year program, developed and conducted by a team of instructors from the Departments of Educational Administration, Educational Psychology, Educational Foundations and Elementary Education, which is being offered to a small group of students who will be in the third year of the Bachelor of Education in 1973-74. One of the essential features of this special program is the integration of courses from each of the departments mentioned above and the centering of these courses around extensive in-school experiences.

The coursework, integrated seminars and workshops, which constitute 66% of the student's timetable, are based on the principle that the prospective elementary teacher should:

a) know at least two of the more common conceptions of teaching, and be familiar with a variety of approaches to analyzing teaching

b) be able to design instruction and arrange the variables for teaching and learning - formulate objectives, select methods, organize groups, and choose instructional materials

c) be familiar with and able to use a wide variety of instructional techniques and skills

d) know how to diagnose pupil learning needs and evaluate pupil progress

e) know how to perform teaching functions in ways that create and maintain the desired emotional climate

f) have a positive and professional attitude towards teaching elementary school children.

The remaining 33% of the student's time is taken up with field or in-school experiences. These field experiences are designed to introduce the student to the school environment on a gradual basis and to avail him of the opportunity to put into practice the theories and procedures discussed in class. In order to achieve optimum realization of the preceding objectives, a hierarchy of teaching experiences has been planned. Initially, students concentrate their attention on elementary school children individually and in small groups (3-8). In the following weeks, the student moves from working with small groups to working with larger groups (10-15), then with the total class, and finally to a full-fledged decision-making, instructing and strategy-designing function.

University of Calgary

There is known to be in the province of Alberta a pool of able Indian people who, it is believed, could benefit from university education and who could, as trained teachers, fill a great social need. It is for these potential students that the Faculty of Education at the University of Calgary has developed a proposal for a special Indian Student's University Program, which is designed to produce employable professionals. Once

approved, the ISUP will eventually become a three-year teacher training program, with the following special characteristics:

a) The program is one of intensive support for the student through counselling and tutoring.

b) It is designed to help the students in the <u>regular</u> teacher education program leading to Alberta <u>certification</u>.

c) The use of program options can lead to the incorporation of special courses, e.g. in native languages.

d) The field experiences of the program will include extended periods spent in <u>Indian</u> schools (e.g. in student teaching in the third year.

e) The program will be distinguished by <u>Indian</u> leadership in counselling situations.

f) Although a common program is set out for all students, each student must be treated as an individual and adjustments made in his program as needed. So, too, there will be adjustments for small groups of students. This will be facilitated by weekly planning and discussion meetings for all students in addition to the regular tutorial sessions.

g) The program is designed in relationship to the teacher aide program. As teacher aides enter the university to obtain teacher certification, more teacher aides can be trained. A cycle of upward mobility is anticipated.

h) Finally, this program is not to be thought of as rigidly predetermined but as one which will evolve in response to the expressed needs of Indian students and to insights that are developed through research and experience.

<u>University of Lethbridge</u>

The University of Lethbridge has recently added a field experience sequence to its teacher education program which includes courses designed to provide the prospective teacher with school experiences and opportunities at every level. An internship option is also available which allows students to assume full responsibility in the classroom under authentic teaching conditions. Internship may be done on a half-day basis throughout the semester or during May and June.

SASKATCHEWAN

Innovations have been made in the teacher training programs at both campuses of the University of Saskatchewan.

<u>Regina Campus</u>

The Faculty of Education has been engaged in a number of innovative programs in various subject areas this year. The foremost of these is the development of the Experience Bank Program. This program in elementary education involves two sections of students, approximately

forty in number, who are engaged in experiences designed to integrate theories of education and practice in teaching methods. In these experiences students and faculty have attempted to integrate teaching sessions in the schools with curriculum and instruction classes on campus. This program attempts to develop a series of teaching competencies and these competencies are put into practice in the school setting. One of the most valuable developments in the experimental program has been the emergence of the importance of a faculty advisor who helps a group of students to develop teaching competencies and to integrate field experiences with class experiences on campus.

The Faculty of Education has also initiated a Bachelor of Education elementary program which includes internship. The students involved in this program have undertaken a number of field experiences already in connection with their curriculum and instruction classes to help build teaching competencies that will be developed further during their internship. It is hoped that in the future that this type of program will become more popular with elementary students.

At the secondary level many subject areas have initiated pre-internship experiences for their students. These experiences involve observation and participation in schools at all levels. The experiences are related to curriculum and instruction courses offered on campus. It is hoped that this type of experience will prove beneficial in preparing students for an effective internship experience.

In the areas of outdoor education, drug education and special education, efforts are being made to expand innovations which have already been undertaken. The outdoor education classes, which involve experiences with the winter and summer environment, are rapidly becoming more inter-disciplinary in scope. Instructors from the areas of science education, physical and health education and social studies education have become involved in structuring these courses. The drug education program, which was initiated two years ago on this campus, is in the process of consolidation and even expansion. Proposals are underway for an additional course in this area which will help train teachers in methods of teaching drug education in the schools. The area of special education, which was developed this year on campus, has proved very popular, particularly with experienced teachers. These courses designed to deal with special types of students in the schools have been well attended and indeed there is demand from teachers in the field for more off-campus offerings in this area.

In addition to innovations in courses, some faculty have been deeply involved in in-service activities in the public and separate schools. For example, an instructor from the music education area has been introducing innovations in music education at the elementary level. Similarly in social studies education, faculty have been involved in introducing the new "Man: A Course of Study" at the Division II level in the Regina Separate School System. Teachers have been most appreciative of these efforts to introduce new courses in the elementary schools.

Saskatoon Campus

The newest and probably the most dramatically different of the innovative programs established at the University of Saskatchewan, Saskatoon, is the Indian Teacher Education Program. It consists of five semesters of study and on-the-job teacher training, or the equivalent of

two and one-half academic years. Students who successfully complete the program will be eligible for employment in any of the schools in the province. It is hoped, however, that most of them will choose to work with their own people, since one of the main objectives of the program is to provide native children with more teachers of their own ancestry.

Tuition fees and training allowances of the students who are admitted, as well as additional costs arising from the special nature of the program, are covered by the federal and provincial governments.

The new program differs in both focus and format from the regular program, but includes all of its academic and professional requirements. It is in fact more demanding in some respects, such as the addition of a strong cultural component, and the requirement of fluency in speaking a native language. For these reasons an extra semester of study has been prescribed.

Each of the program's five semesters consists of five weeks of study on campus, three weeks of on-the-job training in selected schools, two weeks of regional seminars, and another three weeks in the schools. Tutorial counsellors will work with the students both on campus and in the field.

Other innovations in effect at the Saskatoon Campus College of Education are:

a) a program of internship which requires four months of continuous experience in a selected school. The idea of apprenticeship is certainly not a new one, but the unique feature of this program is that it is a product of continuous consultation and cooperation with practicing teachers, college personnel, department of education officials, representatives of the Saskatchewan Teachers' Federation and school superintendents

b) contract teaching in educational psychology classes

c) a highly individualized laboratory method of teaching mathematics and science. This concept, as with contract teaching, is not new, but does represent a step towards achieving closer integration of theory and practice

d) use of videotape to enable students to analyze their own performance in a classroom or mini-teaching situation

e) the restructuring of the whole approach to the teaching of industrial arts and technology. The basic concept is that the individual courses are viewed as being parts of a process. Therefore it is a matter of examining the structure of the subject area, so as to be able to relate its individual elements (courses) to each other and to the whole.

MANITOBA

Innovations in teacher education in Manitoba are of both a general and a specific nature.

General

Greater flexibility in teacher education has been obtained by the offering of a greater number of options together with greater freedom of course choice by students. Because students are sent to schools for practice teaching at an earlier time than ever before, the students are better able to identify their needs and aspirations and are therefore able to use their freedom of choice in an intelligent manner. Further, there is opportunity for independent study on topics selected by the students and approved by faculty advisers.

Instead of concentrating practice teaching in the traditional blocks of time, the tendency now is to have study of theory proceed concurrently with practice teaching. This means earlier contact with the schools, an earlier identification of needs, and a greater union of theory and practice. In addition, it should be pointed out that students at the University of Manitoba will be given three semester hours of credit in their teacher training program for youth work done during the summer vacation months in the inner city.

The use of television to improve teaching skills and to eradicate teaching deficiencies is rapidly becoming a compulsory part of all teacher education.

There is a decided increase in the emphasis by the teacher training institutions to assist teachers in the field. In-service is being implemented on a continuing basis rather than on short, intensive one or two-day training sessions.

An integrated four-year Bachelor of Education degree program has been established at the University of Manitoba. In addition to incorporating the features noted above, it also ensures that teachers will have a thorough background of academic studies in at least two teaching areas.

Specific Projects

Seven schools are cooperating with the Faculty of Education, University of Manitoba, in a differentiated staffing project. Student teachers spend half of the certification year in the schools assisting with the planning, organizing and implementing of various forms of differentiated staffing.

Science study carrels are equipped with a variety of audio-visual materials including video and magnetic tapes. Students independently follow a planned program to improve their knowledge of scientific processes and teaching skills. Students are encouraged to develop their own resource materials.

Instruction for trainee mathematics teachers is conducted in groups in a workshop situation. Emphasis is on content and processes. Activities and materials are developed which will have relevance in particular to teaching mathematics in the elementary school.

Primary learning centres are designed to develop a total approach to learning with emphasis on cognitive, affective and tactile learning.

Students are encouraged to set up centres where materials of instruction are developed in particular subject areas and processes of learning are examined.

The following teacher training programs for the native peoples and the disadvantaged have also been initiated:

a) At Brandon University, prospective Indian and Metis teacher trainees, after being selected by their communities, can enter a minimum three-year teacher training program, known as IMPACTE. Although trainees are given instruction in theory during the summer at the university, most of the instruction and practice teaching is conducted in local communities, under supervision of the Faculty of Education.

b) Also under the direction of Brandon University is the Project for the Education of Native Teachers (PENT), a project whereby Indian teacher trainees already employed as aides in northern Manitoba schools by the Frontier School Division and the Department of Indian Affairs may become certified as teachers through summer programs over a five-year period.

c) The Winnipeg Centre Project follows much the same pattern as IMPACTE and is supervised by the same university. However, trainees are selected from a variety of ethnic backgrounds. The program is designed to allow the disadvantaged to find a useful career in teaching.

ONTARIO

After a relatively long period of elementary-secondary consecutive (rather than concurrent) teacher education, Ontario is now moving toward integrated and diversified programs in teacher education institutions. The province is committed to raising almost all academic prerequisites to the liberal arts (three-year after Grade 13) bachelor's degree level. In harmony with this move, it is approaching a predominantly university-based location for its teacher education programs.

Innovations in Ontario are, therefore, related to an equalizing of the importance of all levels of primary-secondary education through requiring comparable academic background of all new candidates for teacher education. Although those who hold lower academic qualifications will not be forced to upgrade, it is confidently expected that most will choose to reach their new colleagues' level.

Only vocational-occupational teacher education and teacher education for French-language schools are exempt from these higher formal academic requirements, the former because of the need for essential non-academic qualifications, the latter through lack of sufficient high level qualified applicants to meet the demand. But even in vocational schools the demand for broader teacher capabilities is requiring retraining of qualified teachers to permit greater flexibility to meet the demand for more, different courses, especially at the secondary level.

An expansion of the concurrent type of teacher education is new in Ontario. An interesting variation is a cooperative-concurrent pilot program to produce specialist mathematics-computer science teachers shared by a faculty of education and a nearby university (which has no faculty of education).

At present, the time allotted to practice teaching is admittedly too short. Therefore, the cooperative program referred to above involves trimester-length work terms which permit much longer and less hurried exposure of teachers-in-training to the atmosphere, work, problems and needs of schools. In some elementary (primary) teacher education institutions students are taking on extra time in schools (in addition to the limited teaching practice) to act as aides, observers and assistants on a voluntary basis.

Three special optional programs which are offered in teachers' colleges - the Primary Specialist's (for teachers of kindergarten to Grade 2), the Oral French and the Vocal Music - have expanded from experimental single courses to three to five courses in different colleges. The latter two provide selected teacher candidates with special competence in addition to basic teacher qualification, while the first prepares teachers for the very important first three or four years of children's schooling.

It would appear that most innovations are aimed at (a) a greater exposure of teachers-in-training to schools before certification, (b) producing teachers with broader capabilities (in terms of subject expertise and of grade level competence). This in turn could lead to reduction of the primary-secondary dichotomy which has in many cases created an undesirable break and loss of momentum in the educational continuum for the children of the province.

PRINCE EDWARD ISLAND

The preparation of teachers in this province has for some years been in the hands of the University of Prince Edward Island, and in recent years training has consisted of three types of programs:

a) a two-year diploma program

b) a four-year Bachelor of Education program

c) a one-year Bachelor of Education program following a Bachelor of Arts or Bachelor of Science program.

The two-year diploma program is being phased out and the last graduate of this program will be graduating in May, 1973. Beginning in September, 1973, all new teachers licensed in Prince Edward Island must have at least four years of training after completing Grade 12.

As a result of several studies initiated in the past two years on teacher training in the province, a proposal is currently before the Senate of the University of Prince Edward Island which would launch a concurrent five-year Bachelor of Education program at the elementary and secondary levels.

The Faculty of Education, University of Prince Edward Island, has also established new courses in developing learning resource centres, advanced art and environmental studies which are being offered in the present programs.

The Prince Edward Island Department of Education, at the urging of the Prince Edward Island Teachers' Federation, inaugurated block programs in primary and intermediate education in the summer of 1969.

These programs were designed for elementary school teachers and had two main objectives:

a) to improve the level of training of teachers who had been in the school system for a number of years, and

b) to acquaint teachers with the ways in which a continuous progress philosophy of education can be implemented.

This four-summer block type of program has proved most popular and successful. A number of teachers equal to one third of this year's total teacher population in the province have availed themselves of the chance to enroll in this program.

In this present school year an agreement has been arrived at between the Teachers' Federation and the Department of Education whereby an In-Service Training Assistance Committee has been established. The functions of this committee are:

a) to determine in which areas of instruction the demand for teachers exceeds the supply,

b) to determine in which areas of instruction new programs are being introduced which require further training by teachers, and

c) to devise a government-sponsored bursary program for the summer following the relevant school year which will give teachers an incentive to study in the areas of instruction described in a) and b) above.

The committee will report on its findings to the Minister of Education.

NEWFOUNDLAND

Recent innovations in teacher training systems in the province of Newfoundland include the following:

a) The Memorial University Faculty of Education has recently instituted a practice teaching arrangement which places a number of students in British school systems for several weeks of the year. Memorial has a piece of property at Harlow, England, and a staff to maintain it. About thirty education students go to Harlow each year and do their practice teaching in selected British schools. The arrangement is proving very worthwhile and holds great promise for the future.

b) A further innovation is the move towards internship. Teachers in training are placed in school situations for a full term to serve as interns, and graduate students in education work with educational agencies such as school boards and departments of education for one or two semesters, to obtain practical experience in various aspects of educational administration or supervision.

The Faculty of Education is presently making a very comprehensive and in-depth study of teacher training programs, with a view to introducing significant changes in the near future.

TEACHER EDUCATION IN DOMINICA

For a long time now it has been recognized that the need for more and better qualified teachers is one of the most urgent educational requirements of Dominica. The 1957 Regional Conference on Teacher Training in the British Caribbean regarded teacher training as the most urgent educational problem of the area when it observed: "Above all, most teachers have no training for their work. This is true of the primary and all-age school and also of grant aided secondary schools in which less than half of all the teachers have a university degree, and only a very small proportion of them have any training as teachers." This is particularly true of Dominica where primary as well as secondary schools continue to be staffed by the more able of their past pupils, who, in the case of primary schools, are designated Teacher Auxiliaries, but in secondary schools unqualified Assistant Teachers.

System of Recruitment and Teacher Supply

Primary School Teachers

Persons with three different levels of academic attainments are recruited into the primary system.

(a) Teacher Auxiliaries: These are the teachers who were formerly known as Pupil Teachers and are primary school pupils about 15 years of age who have successfully completed the all-age school course, and having gained a School Leaving Certificate are taken into the teaching service. These teachers undergo a three year in-service training programme which is geared towards improvement of their academic background in the areas of mathematics, English Language and Literature, Health Science, Geography and History. The teachers are required to pass an examination in each subject yearly. Those who fail are allowed to repeat but have their services terminated on two successive failures. Success at the examination is rewarded with an increase in salary. On successful completion of the third year examination the students are designated Unqualified Assistant Teachers.

(b) Secondary School Drop-outs: Many pupils leave the secondary schools without the minimum of four G.C.E. 'O' level subjects which are required for entry into the teaching service, some with no 'O' levels, or even before they reach the fifth form. These students are admitted as Teacher Auxiliaries if they have not spent at least one year in the Fifth Form.

(c) Secondary School leavers admitted after at least one year in the Fifth Form or with 'O' levels are classified as Unqualified Assistant Teachers and are given one bonus increment for each 'O' level, but two each for mathematics and English Language.

All Teacher Auxiliaries are prepared in-service
(a) through supervision and actual tutoring by the heads of the schools to which they are attached; (b) vacation courses. The fortnightly Saturday classes which were temporarily suspended will be revised to assist these teachers in preparation for their examination. In addition, the Extra Mural Department, University of the West Indies, also runs courses in mathematics, English Language and West Indian History.

The Teacher Auxiliary system is a very poor method of recruitment of teachers in the twentieth century. Writing in this context V.C. Griffith

(External Teacher Training 1955) said " Most of us who are keenly interested in education feel some distaste, even shame, when pupil-teaching is mentioned." But as he rightly points out: "Sometimes we deceive ourselves into thinking that we have abolished the essentials of the system by taking candidates from the secondary schools. We then call them Probationer Teachers instead of Pupil Teachers. But really our problem has not altered much."

By and large these teachers have no form of professional training and merely do things in the manner, as far as they can recall, they were done to them. There is also the other danger that the four (4) 'O' levels may not all be relevant to the primary school situation.

Formerly all teachers who had reached the 4 'O' levels standard took an examination conducted by the Education Division known as the Local Teachers' Certificate. In addition to the usual academic subjects there was a test in practical teaching. They prepared for these examinations privately with assistance being given occasionally at vacation courses or Saturday classes. Successful candidates were graded Certificated Assistant Teachers. Because there was no Teachers' College in the State many had to wait for some time before gaining admission to one of the Teachers' Colleges in Antigua or Barbados where our teachers are still being trained.

Secondary School Teachers

The recognized qualification for Grammar School teaching is a degree. For many years any teacher with a degree - usually the Headmaster only - was an expatriate. All Dominicans who qualified for university entrance pursued the professions fof Medicine, Law, or Engineering. Schools were, therefore, staffed almost exclusively by the better of their ex-pupils. The Roman Catholic Church, however, managed to secure the services of religious persons with good teaching qualifications to teach in their schools. On the whole the secondary schools suffered much more than the primary schools from the school to classroom type of teacher since they had no system of in-service training for their teachers. It was particularly bad in these schools since the most qualified members of staff taught the youngest pupils as an external examination dominated system required the best teachers to work at the top of the school where efforts were directed towards the examination rather than the personal development of the individual.

The latter part of the 1950's saw a change in teacher education when the Christian Brothers, who operated a secondary school on the island, began training a few of their better able pupils at their own University of Iona; and other Dominican students started courses at the then University College of the West Indies with a view towards entering teaching. Some have returned to teaching and a few of them have taken the Diploma in Education.

The shortage of good quality teachers particularly in the areas of Science and Mathematics is still acute and makes itself manifest in the types of courses which students are later able to pursue at university level. As a result there has been a preponderance of Arts and Social Science graduates over natural science and mathematics. Such a condition must have a stultifying effect on curriculum development as a whole and the schools in particular, a condition which must eventually manifest itself in the quality of the country's manpower resources.

In an effort to set matters right advantage is taken of the generous offer of friendly countries to assist with the teacher shortage through such

agencies as United Kingdom VSO and Technical Assistance Programme; United States of America Peace Corps and Canadian CUSO or CIDA. As a short term policy this system can satisfy an immediate need. However, if one were to derive full benefit from the scheme it should be exploited with foresight. The time when these volunteers are on ground should be used to train their replacements to avoid the programme coming to a halt.

In-service Training by the University of the West Indies Institute of Education

In spite of the various efforts on the part of the Division of Education the percentage of untrained teachers continues to be high and the quality of the teaching remains a matter of serious concern. Very much remains to be done in order to achieve the objective which is: to raise the standard of the teaching in the territory by improving the quality of the teacher.

In an effort to assist government in its attempt to achieve its aims the UWI Institute of Education instituted a three-phased programme of in-service training designed to replace the local system of certification and lead to trained teacher status. The course was introduced in 1966 and designed to meet the training requirements of teachers from Probationer stage onwards. Those below this cadre would continue to be prepared in the customary manner.

This in-service course was divided into:

Part I: A basic approach to teaching: A year's course divided into units of six assignments each for a study period of six weeks.

Part II: A more advanced study of principles and methods would also be divided into six units or assignments as in Part I, each for a study period of six weeks. Students are assigned at the rate of not more than six to a tutor who, in addition to marking and grading the students, written work, met the students regularly for discussions and also visited them in the classroom. Students who had completed Parts I and II would be considered certificated teacher.

In order to qualify for trained teacher status the student would go on to Part III of the course which was to be two summer residential courses.

Those teachers who wished to qualify for headships of schools would be required to do an eight weeks course in administration, pass at least one 'A' level subject and write what was discribed as a position paper.

The key person in the whole in-service system of training was the visiting supervisor who together with the head of the school was responsible for training the teacher on the job. In order to make a success of the job the supervisor should be a person of broad outlook with training in administration and supervision. He should also be professionally competent. Professional competence involves professional stature and continuous growth. He should possess the kind of personality which would help him to get along with persons who did not necessarily agree with him. He ought to be someone who can help others to find strength in their weakness without humiliating or belittling them to the point of ridicule. In other words the tutor should realize that he is working within a human situation and so should be one who has the greatest respect for the human personality.

All things considered, the system of in-service has much to commend. The tutor is able to see for himself the actual - not the supposed-difficulties

of the student and is therefore in a better position to help him put them right in the classroom. The tutor is in a position to take hold of a situation and demonstrate to the student a suitable way in which it can be handled. Back in the lecture room the tutor will not merely theorise about a difficulty but must be able to say, " I will have a look at the situation on my next visit." The tutor should be able to help relieve the students' anxieties by letting him know there are problems to which there is no single solution and what may apply in one situation may not in another. In such situations the tutor should always be careful to avoid personal condemnation as this might only create antagonism and a feeling of animosity. It is important to remember that acceptance and support are important elements of such a programme of training. It should be borne in mind, when dealing withyoung teachers fresh from school, that dead level of efficiency or perfection in what they do is not a legitimate goal, neither should it be expected of all students that they should reach the same level of success at the same time <u>or</u> within the same period.

There are problems involved in this system of training in that the students are likely because of geographical conditions to be isolated, thus making it difficult for the tutor to make personal contact with them. On the other hand, in order to see all his students, it might mean too frequent absences from the tutor's own school where he may be responsible for a class or two. Apart from the times set apart for group tutorial periods the student should not be required to visit the tutor in lieu of the tutor's visit, as the value of training him in his own classroom would be sacrificed and the effectiveness of the scheme thereby jeopardised.

This scheme of training has limitations. It is a very inexpensive means of training teachers and one which governments with limited funds will gladly welcome. At best it appears too hazardous to attempt to train teachers completely outside of the training college. There is much more in the training of a teacher than giving him the technical know-how. The teacher's personal development has to be taken seriously into consideration. To train him completely out of college would be to sacrifice a most stimulating and enriching experience which can be gained only through living and working together with others.

In the second place this system of training seriously curtails the chances for curriculum development as the type of teacher trained would be one with very limited skills since the main concerns were Language Arts, mathematics, Social Studies and principles of education. There still remains the need to train teachers for those other activities necessary for the all-round development of the child.

Another weakness is that the content has little or no relevance to the work of the secondary school teacher.

As planned, Parts I and II could be used to replace the local Teacher's Certificate and shorten the period of residence at a Teacher's College if necessary, but not to replace college training completely. Part III of the course, a training in administration, could be used to upgrade teacher teacher competence and should be open to all trained teachers including heads of schools. We never got beyond Part I of the course which was suspended two years ago as it was thought necessary to rewrite and upgrade it in order that teachers at all levels might derive more benefit from it. This has not yet been done.

Under such a system supervision will be based upon the individual

standards and competence of the supervisor. This is not the same as a college supervisor who is guided by the fact that he has a responsibility not only to the student but also to the institution whose standards must be maintained. There was no plan for training the teachers in such subjects as Art, Craft, Music, Home Economics, Woodwork and Physical Education. In planning a teacher training programme one should look far ahead as severe limitation in this area could have a stultifying effect on curriculum development.

Finally in the training of teachers the aim should not only be professional competence. There must be concern for the development of teachers as persons. In the words of Professor Figueroa " To teach teaching demands that we concern ourselves with the development of that kind of person, of that kind of being who invariably conducts himself in the appropriate situations like a teacher." The in-service course just described aims at training young people to teach and not at making them teachers. The process of becoming a teacher can be better accomplished in an institution where contact with persons with the right touch and the traditions of the institution will help the student develop the proper attitudes necessary for the work of a teacher. If this system of in-service training were to be the only means of teacher training, it would appear that we might not get beyond the technique stage. Surely technique in itself is not enough. Jeffrey (1955) puts it this way, " In the last resort, in education as in all art, inspiration without technique is better than technique without inspiration. Better still is to have both."

With a teachers' college now under construction we hope to provide institutional training for our own teachers at home by September, 1973. This means that the practice of training teachers in Antigua and Barbados will be discontinued.

A team from the School of Education, UWI,was invited to examine the proposals for training and to submit models for the consideration of government. The proposals were submitted to the Education Board for its views.

However, since it is now widely accepted that four 'O' levels including English Language should be the minimum entry requirement for the teaching service efforts are made to assist those persons now in the teaching service without the minimum requirements to acquire them. To this end in January 1968 with the help of the Canadians who loaned a teacher for the purpose, groups of twenty teachers who have passed the Teachers Auxiliary stage are brought into what is called the 'Teachers Institute' for a period of two years to study five core subjects of English, Mathematics, History, Geography and Health Science to 'O' level. So far the results have not been outstanding as few students succeed in gaining four passes. However, we are satisfied that it helps young teachers to improve their academic background and plans are to have this incorporated into the programme at teachers' college.

The position of the Teacher Auxiliaries is not a happy one and plans are afoot to resuscitate Saturday morning classes for them in an effort to assist them to prepare for their examinations.

In addition to the above the Division of Education runs regular one-day workshops on Fridays in specific subject areas for groups of schools. On these days the schools in the particular zone close for the day to enable all teachers to attend. In this way each teacher has the privilege of attending at least one such workshop each term. There is also the annual Teachers Vacation Course, in specific subject areas, held for a period of three weeks

during the long vacations. Care is taken to see that each school benefits from this and the heads are asked to select their representative whose business it is to return to the school and pass on any knowledge gained to the other members of the staff. In this way the Division hopes to improve the quality of pupil experiences provided by the schools.

TEACHER EDUCATION IN FIJI

For quite long teacher education in Fiji was generally concerned with the preparation of teachers for primary schools only. The training of teachers for secondary education was almost neglected and given minimal effort. The emphasis in the teachers' college was more on the production of the teacher who had a mastery of the instructional techniques and for the most part was able to teach only what he had been taught. Students were in general trained to instruct pupils in specific ways and to acquire a few teaching principles or maxims which most of them neither fully comprehended nor were able to practise effectively. Little was done to inspire them to broaden and deepen their knowledge and understanding of the various subjects they were to teach and of the communities with which they were going to work, or to develop in them the right attitude towards professional improvement and perfecting their own personalities.

The tutors at the college also found little autonomous freedom to devise courses and to discuss freely among themselves what they would have considered important and essential as an effective and adequate programme for the preparation of future teachers, teachers who would not only know how to learn and acquire knowledge but who would also be capable of using the acquired knowledge fruitfully and be capable of constructive and imaginative thinking.

For a time there existed also the situation in which directives from central education authorities had to be followed strictly and without question. Tutors were sometimes required to follow such definite recipes on what to teach and how to teach it that their students became their prototypes. Even little opportunity was given to the College staff and students to decide among themselves as to how the college should be organised, staffed and maintained. It was quite evident that little serious concern was given to the importance and effectiveness of learning to be responsible by practising responsibilities realistically.

Although no one entirely agreed or was satisfied with such practices, it seemed that people either failed or were just not well-enough informed to question the insufficient attention given to improving and developing teacher education by those in authority and the public alike.

Little was done to provide the kind of teacher education that would meet the changing and varying demands of the new generation of people of different social, political, and economic development and aspirations.

Today, the legacy of this past conditioning and experience has not yet abated, and it is still to some extent quite prevalent in our school system. It is not too far wrong to say that in a good number of primary schools the methods of handling pupils and subject matter are still quite authoritarian, rigid, and paternalistic in nature. Quite a number of teachers are opposed to changes and especially to those aspects that are related to curriculum contents and methods. They display insecurity and lack of confidence to initiate and to deviate from the rigid and somewhat irrelevant syllabus they are familiar with, to a flexible and more realistic one that also provides for individual differences and for the changes that have occurred in our society. Nevertheless, these teachers are not to be considered blameworthy, because they are only the products of the system.

It was not until recently that some positive and realistic move was made to devalue this aspect of teacher education and preparation. The establishment of the University of the South Pacific in Fiji, in 1968, and the publication of the 1969 Education Commission Report were significant manifestations of the concern of the people of Fiji and, of course, her Pacific neighbours, too, to improve the quality of education, to eliminate some of these problems and to expand it in order to cater for new demands. Since then the University of the South Pacific, working closely with the Fiji Education Department and other educational agencies, has been a major influence in stimulating thinking, enhancing discussions, and initiating moves towards a more constructive and realistic appraisal of the form of general education and teacher preparation suitable for the country and the region as a whole.

Through its School of Education, the University of the South Pacific is now concerned largely with the preparation of secondary school teachers. At present it offers two programmes, a three-year post-School Certificate Diploma in Education and a four-year concurrent programme leading to a BA/BSc and Graduate Certificate of Education. These are to meet the teaching needs of our newly established Junior Secondary Schools and Higher Secondary Institutions.

The University also offers facilities for the in-service education of primary school teachers in various subjects like science and mathematics. Primary school teachers are now taking an active part in curriculum development and evaluation programme sponsored and conducted by the United Nations Curriculum Development Programme Unit attached to the University. Through extension study courses offered by the Department of Extension Services of the University, teachers in outlying areas have the opportunity to develop themselves further professionally and educationally, and after four years of successful external study, these external students are then required to do an additional year of internal study at the University in order to complete the Diploma in Education programme.

Though the University teacher education and preparation role is still reckoned in terms of current secondary school work, it is also anticipated that in the not too distant future all teachers' colleges within the University region will become constituent parts of an institute of education where all students, whether they are going to teach in the primary or secondary schools, will on successful completion of their preparation receive the same recognition, becoming the holders of the Teachers' Certificate awarded by the University.

Already the three teachers' colleges in Fiji are moving closer to the University of the South Pacific, and much has already been achieved at the informal level. There is co-operation and consultation among the staffs of the University and the teachers' colleges, discussions on professional and policy matters are quite frequent and have been of great value and benefit to the teachers' colleges and primary education in general.

Although these colleges are controlled by different authorities, it is nevertheless encouraging that all are now realizing the importance of working closely together with the Government and the University in the selection, preparation and employment of better quality teachers for the primary school. Both the Government and the Catholic Mission run colleges which accept students with New Zealand School Certificate and University Entrance qualifications together with those who have passed the Senior Cambridge Examination. Because of shortages of highly qualified school leavers and competition from

other professional and commercial sectors, the colleges are, however, at times forced to accept students with lower academic qualifications but with at least two years' teaching experience in primary schools. The acceptance of these students is a temporary measure intended to alleviate the acute shortage of trained teachers which our country is facing.

The University Assessment Unit assists the two colleges in the selection of potential students by the use of the Unit's Aptitude Test conducted at Form VI level in the secondary school. In addition, a number of local graduates with several years of primary school experience behind them are now taking up appointments as teacher educators at these colleges. It is anticipated that in the not too distant future, these colleges should have the required number of well qualified teacher educators with local primary school experience and a knowledge and understanding of the society in which the schools exist.

A cordial relationship also exists between the Fiji Government and the Catholic Mission in the training and employment of teachers. The Government agrees to employ primary school teachers trained by the Catholic Mission-run college, leaving the posting and transfer of teachers, however, entirely in the control of the Church. In 1970 an arrangement between these two bodies made it possible for the Government to work closely with the Catholic Education authority in the re-training of a number of primary school teachers to teach in the various newly established Junior Secondary Schools. Although the Government subsidizes the cost of re-training, the actual conversion work which lasts for a year is entirely in the hands of the staff of the Catholic Mission Teachers' College. In this case, however, it is the Government that decides the appointment and the posting of teachers at the end of the course.

The Seventh Day Adventist Mission-controlled teachers' college, on the other hand, has a somewhat guarded relationship and acceptance of the Government assistance and recognition. The Government has to some degree recognised teacher graduates from this college, but it is not prepared as yet to employ them directly at the end of their training.

With the increasing number of tutors with proper academic and professional qualifications in the Nasinu Teachers' College there has been an increasing confidence and trust in the tutors to devise their own programmes and courses. These courses are then subjected to regular review and are quite flexible enough to meet the varying needs of the students admitted to the college and also to satisfy some of the urgent requirements of combating shortages and other deficiencies in our primary school system.

In staff-student relationships we have already begun to move away from the formal lecturer-student relationship and to place more emphasis on the use of seminars, tutorials, and informal discussion groups. We are increasingly aware of our responsibility for the individual student, and this has initiated the introduction of organised personal tutorial groups and of a school experience programme that involves every member of the staff of the college in personally guiding and assisting students during school observation and teaching practice. At the same time, we are increasingly emphasizing the importance of inspiring students to be responsible for the improvement of their own academic and professional education. Enrichment courses on various subjects are offered and students are given the opportunity to select what courses to pursue. Students are encouraged to seek and verify information on particular topics related to their course work. Instead of the main

work consisting of several full-scale lectures or courses, students now either form themselves into groups or work individually, preparing papers on topics selected by tutors and the students together which are then presented in tutorials, seminars and in small informal discussions.

The past practice of working through the school syllabus is now replaced by the learning or general principles and specific skills which should enable students to formulate individual approaches and techniques, and to evaluate their effectiveness in the light of the objectives and contents of the syllabus they prepare themselves or with the help of their tutors.

Some courses now begin with a series of assignments and practical exercises designed not only to introduce part of the social context of the course, but also to introduce students to the learning theory by causing them to go unconsciously through the learning processes. In brief, the main task of the college now is to change students' thinking to a new concept of what education really is about.

Now and then students are expected to participate in advising and deciding the type of courses and other extra-curricular activities with which they are to be involved; and through their advice and criticism far-reaching reform has been effected in the teacher education programme now being offered by the college. We are also quietly anticipating the day when it may not be too much for the student to have the responsibility of his own attendance at lectures. The freedom to choose whether to attend or not should put the student on his mettle and that he now feels he is responsible for his own progress and this should lead to improved attitudes to work.

With all due respect to the effort being given to equipping students adequately for their future tasks it is a little disquieting when we begin to wonder how much the students can really acquire and absorb within the limited two-year training period normally offered at our only Government Teachers' College. The inadequacy of the two-year training period becomes more apparent and alarming when we start to think of the other numerous roles a teacher in a developing country will normally play in the community in which he is going to work. Our attempts to provide an education which will provide the teacher in training with much of what he needs to handle his professional tasks with competence and pleasure, and also enable him to fit into the society and to be flexible enough in order to respond to its changing demands in terms of educational needs, have to some extent made the curriculum of the college hopelessly swollen and unmanageable at times.

If we are to accept that primary education is to be complete in itself, but not a series of academic obstacles to be hurdled in an unsteady progression towards secondary education, and to educate children for the society in which they are to live rather than educate them away from it, and also to be considered as an integral part of rural and urban lives, then the teacher becomes a key figure in both areas. This means that his role is going to be a much greater one than just merely inspiring, assisting and guiding the pupil to think and discover for himself. It suggests the important and urgent need for the college to produce superior teachers who are competent and willing to work with both children and adults, and who have a thorough understanding of the nature of the communities in which they are going to work and are fully acquainted with national problems. The teachers' college must be able to change students' attitudes towards their responsibilities towards the nation. It must develop a sense of self-reliance among students who should be ready to offer their services to the community which has paid for their education.

It must also develop among students an understanding of the job opportunities which are likely to be available for the primary school leavers. In short, a future teacher must be fully conversant with the various social, political and economic problems of the country, so that he is able to interpret them correctly to the members of his community and has an adequate grasp of the role which education can play in alleviating if not solving them. Special attention should be paid to providing students with much more practical experience in schools and in villages, and in particular provide plenty of opportunities for decision-making by the students themselves, and in the carrying out of responsibilities.

It seems that our colleges are, to some extent, still falling short of some of these goals and a re-appraisal of the aims of our primary education should be made to enable the teachers' college to define clearly its role and the type and extent of teacher education and preparation that need to be offered to students. This will also assist greatly in the selection of the right calibre of student teacher recruits and of tutors, with appropriate attitudes and qualifications. Although scholastic achievement is quite essential for both student teachers and tutors, it should not be the only criterion in selection. People should be selected who exhibit desirable personal traits and appropriate attitudes towards their work and their fellows.

TEACHER EDUCATION IN GHANA

INTRODUCTION

For most countries of Africa, the greatest challenges of independence have been the pressing needs for social and economic development. All the African developing countries realise and are convinced that the way to rapid development and progress of their societies requires the most useful and relevant education. Experience has shown that the key way of making school systems relevant and development-oriented is through the teacher training programme, which G.S. Counts describes as "the most basic and decisive factor in survival and progress."

Changes in education, no matter how relevant and bold, profound and popular, are barren unless they bring about changes in the classroom and their effectiveness depends largely and almost entirely on the teacher in the classroom and in charge of the administration of the school. The teacher is therefore an important factor in the realization of innovations in the educational system and by implication in the fulfilment of national goals and aspirations.

With a growing appreciation of the role of education in national development and progress, the aims, goals and programmes and structure of teacher education, must of necessity, therefore, change to reflect the new role of education in national development and progress.

Radical changes in teacher education are needed, more especially in most African countries where the whole school systems are greatly in need of urgent innovations, and where Teacher Education programmes are still conservatively concerned with curricula and teaching methods which reflect the needs and educational thinking of colonial days of some African countries. Teacher Education must therefore have a new philosophy which will reflect the need for the reconstruction and restructuring of the entire educational system and the social ideology that is inspiting the economic and social changes. Future teacher education must not only aim at producing effective and competent teachers but also teachers who are change-agents in their society. In a developing country, the role of the teacher as an initiator of change has to be highlighted and stressed. He must not only be the conveyor of intellectual and moral enlightenment but of the good life in its totality.

The importance of teacher education, therefore, in providing relevant and effective education for national development and progress cannot be over-emphasised. In Ghana this importance has been appreciated and realized, and innovations are therefore constantly being made in teacher education programmes to make them responsive to national needs, aspirations and thinking.

INITIAL TRAINING OF TEACHERS: A BRIEF HISTORY

In the initial training of teachers, a series of innovations has taken place over the years in response to political, religious, social and economic changes, objectives, and aspirations. These innovations will be discussed within the general context of the development and growth of Teacher Education in Ghana.

The first training college in Ghana was established in 1848 by the Basel missionaries at Akropong in the Eastern Region to train catechists and teachers for the 45 schools they had established in the country with an enrolment of 1200 children. In 1909, the Government established the Accra Training College as a non-denominational college. It offered a post-elementary two-year course (i.e. entrants had completed 10 years of elementary education) and the aim of the authorities of the type of training the students were to receive was "not merely that they should be able to read and write English Language but that they should develop the best in (the) African custom and character for the enrichment of a definitely African culture".

The method of financing in those early days was that the government paid the full cost of running its training college and the salaries of the teachers who taught in the few government schools; the government also gave grants on a stipulated basis towards the running of the training college belonging to the missions and for subsidising the payment of the salaries of the teachers in mission schools.

The Education Act of 1925 promulgated by Governor Guggisberg sought to improve the quality of education and raise the status of the teaching profession. A register of teachers was introduced, and only qualified teachers were allowed to teach; the opening of new schools was based on the number of trained teachers available. At the same time, the two-year teacher training course was replaced by a three-year course, and in 1928 by a four-year course. The Wesleyan missionaries had opened a training college for teachers, catechists and ministers in 1922 in temporary building at Aburi; in 1924 it moved into new buildings at Kumasi under the name 'Wesley College'. About the same time the Government Training College at Accra was absorbed into the new Achimota College. Two more training colleges, St. Augustine's and St. Joseph's, were opened in 1930, and the number of teachers in training increased to 600 and the colleges to five.

In the first eighty years of Teacher Education in Ghana there was rather a slow development and expansion of college facilities. The quality and competence of the products of the first training colleges were improved upon by increasing the period of training and the quality of teacher educators.

After the second world war, the urgent need for more primary school teachers led to the establishment of new two-year post-elementary teacher training colleges offering courses leading to a Teachers' Certificate 'B', in addition to the existing 4-your Teacher Training Course.

By 1950 there were 19 teacher training colleges with an enrolment of 1,000 students in the country. From 1951, under the Government's Accelerated Development Plan for Education, there was a phenomenal increase in the number of primary and middle schools, followed later by an increase in the number of secondary schools and training colleges. The result of this was that there were enough secondary school graduates for training as teachers, and the post-secondary teacher training course of two years' duration which had started at Achimota in the forties was gradually extended to other colleges. By 1960 out of 4,427 teachers in training, 340 were post secondary students. (It might be mentioned that the idea of secondary school graduates training as teachers had started in a very small way as far back as 1930 when selected graduates after training sometimes went back to secondary schools to teach.)

THE CURRICULUM OF TEACHER TRAINING COLLEGES

Among the subjects in the curriculum of both the 4-year post-primary and 2-year post-secondary colleges are English Language and Literature, Mathematics, History, Geography, General Science, Agricultural Science, Home Science, Religious Knowledge, Art and Crafts, Physical Education, the the Theory and Practice of Education. The Theory of Education includes the Principles of Education, the History and Development of Education, Educational Administration, Child Study and Methodology, that is, specific methods of teaching the various subjects in the school curriculum. The Practice of Education consists of specific periods of practical teaching spread over the last two years of training.

The Post-primary Colleges study the main college subjects up to a level comparable with the General Certificate of Education, and the Post-secondary colleges go beyond this standard to A-level standard in some subjects.

FINANCING OF TRAINING COLLEGES

The Central Government gives grants to cover the running cost of the colleges and pays the salaries of all the tutors and the tuition, room and boarding fees of students. Between 1952 and 1069, in addition to paying the total cost of running the colleges, the government also paid allowances to all students in training colleges. The payment of the allowances was discontinued but the Central Government still pays the tuition, room and boarding fees of students.

CERTIFICATION

Before 1926 the Education Department conducted final examinations for the award of teachers' certificates. From 1927 to 1957 the training colleges were allowed to conduct their own certification examinations with the Education Department awarding the certificates on the results of the examinations. One reason for this change in the conduct of final examination was that during this period the colleges had, on the whole, well-qualified teaching staff.

THE NATIONAL TEACHER TRAINING COUNCIL

As a result of the Accelerated Development Plan which aimed at providing universal literary, more and more training colleges were established and it became necessary to give guidance and to exercise some supervision in the production of teachers. The National Teacher Training Council was therefore set up by the Government to be responsible to the Minister of Education for co-ordinating all forms of pre-university teacher education. The Council advises the Minister/Commissioner on all matters relating to pre-university teacher education, and organizes examinations which are conducted on its behalf by the West African Examinations Council, both for entry into all training colleges and for final certification. The funds for running the Council are provided by the Ministry of Education.

CURRICULUM DEVELOPMENT

The greatest innovation in recent times has been in the fields of curriculum development and change and assessment for certification. Under the old system the West African Examinations Council conducted common

final external examinations on behalf of the National Teacher Training Council in five subjects, namely Education, English Language, Mathematics, Geography and History. The Colleges conducted internal examinations in the remaining subjects including General Science, Agricultural Science, Art and Crafts, Music, Physical Education, Civics, Ghanaian Languages, Religious Studies. As a result of this there had grown a tendency to over emphasize the external subjects and the questions set in these subjects were more of the secondary school type and of little relevance to the work of teaching in the primary schools. A shift in emphasis was needed to correct this non-professional tendency, to improve the quality of teaching and to expose teachers to the enquiry type, child-centred approach to the teaching of science, mathematics, social studies and general integrated studies. To do this it was necessary to break away from a rigid examination system and offer more scope for student-initiated and directed group and individual project work.

Under a new programme introduced in 1970 and still under experiment, the number of subjects at the external examination has been reduced to three, Education, English Language and Mathematics, all the rest being examined internally. All subjects have been modified to reflect the teaching in primary schools with emphasis on methodology and current approaches to the development of learning. A continuous assessment of work during the course has been recommended.

The new programme also highlights elective subjects which students are expected to study in depth, both in content and methodology, with emphasis on research and practical work initiated by the student himself on a topic of his own choice and related to his professional work.

A suggested method of assessment with a weighting breakdown of 40% on the external examination, 40% on the internal and 20% on the elective subject is expected to correct the attitude of students to the subjects taken internally. A separate pass in Teaching Practice is required for certification.

PROJECT AND WORKSHOPS

An essential feature in the new programmes of colleges is the various projects and workshops in Social Studies, Mathematics, Science and English conducted by the colleges, sometimes with the assistance from research specialists of the Curriculum Research Development Unit of the Ministry of Education. Block periods of a week at a time are devoted to these and some of the experiments are extended into selected primary schools. It is hoped that the new innovations in the certification of the elementary school teachers will give equal weight to the academic and professional preparation of teachers.

SPECIALIST TRAINING COLLEGE

As a result of the rapid expansion of teacher training colleges both in numbers and in the enrolment of students, a serious strain was created in the staffing of training colleges. The shortage of qualified teachers was also due to the fact that Ghanaian graduate teachers were few in number and most of them preferred to teach in Secondary Schools. A crash programme for 2-year specialist training courses in English, Mathematics, Geography and History, in addition to the Associate Course, were therefore initiated for post-secondary practising teachers.

The expansion of the pre-university curriculum to include Science and Agriculture in both secondary schools and training colleges posed a similar staffing problem for which an immediate solution seemed to be 2-year specialist course in science and agriculture.

Moreover, the revival of interest in African culture brought about by the nationalism of the years immediately before and after independence expressed itself in a greater emphasis on cultural subjects (Art, Music, Religion, Home Science, Physical Education) and the desirability to study them at a higher and more advanced level as a matter of general policy.

Another factor which created the need for specialist teachers was the need to replace the large proportion of expatriate staff in secondary schools with Ghanaians. The Africanization policy in the staffing of schools and colleges was needed to save scarce foreign exchange reserves.

It can be seen, therefore, that the specialist teacher training courses were in themselves an innovation in response to staffing demands in training colleges and secondary schools which could not be immediately satisfied by graduate teachers.

COLLEGES OFFERING SPECIALIST COURSES AND THEIR PROGRAMMES

Below are the details of the programmes given by the Specialist Training Institutions:

(a) ADVANCED TEACHER TRAINING COLLEGE (A.T.T.C.) WINNEBA

The A.T.T.C. offers courses in English, Mathematics, Science (Physics, Chemistry, Biology), Geography and History. The courses were initiated by the Conference of Training College Principals in the late fifties and later expanded by the National Teacher Training Council in order to meet the staffing needs of the growing number of training colleges. Secondary schools, however, showed interest in the specialist teachers since they were found suitably prepared to teach in the lower forms.

From 1964 to 1966, eight colleges offered these course under a special relationship with the University of Cape Coast which was also responsible for final examination and certification of the products of the college.

In September, 1966, the courses were brought together and housed in the buildings of the former Ideological Institute in Winneba to form the Advanced Teacher Training College. Cape Coast University's special relationship continued with the A.T.T.C. In September, 1968, the Associate course in Education, then at the University of Cape Coast, was removed to the A.T.T.C.

As more and more graduate teachers from the University became available, the college developed a bias towards primary/middle school teaching, and now some specialist teachers from A.T.T.C. can be employed either in primary/middle schools or training colleges and secondary schools. As an aid to the new bias a primary school has been developed at the college where observation and demonstration lessons can be held.

Most of the students have received initial teacher training, and have either the 'O' or 'A' levels in their special subjects. The A-level qualification is specifically required for the science course.

It is now being proposed to phase out the Geography and History courses in favour of courses in Guidance and Counselling.

(b) SPECIALIST TRAINING COLLEGE, WINNEBA

The college offers 4-year diploma courses in Physical Education, Art Education, Home Science Education, and Music Education, intended primarily for teaching in secondary schools and training colleges. The three universities of Ghana give course guidance and are also responsible for final examination and certification, the University of Ghana for Home Science and Music Education, the University of Cape Coast for Physical Education, and (in conjunction with the University of Science and Technology) for Art Education.

Originally, the courses were intended to upgrade serving Certificate 'A' teachers in addition to the main objective of providing secondary level teachers. But the current trend is to extend admission to secondary school leavers and to shift entry requirements from Certificate 'A' to School Certificate Ordinary and Advanced levels.

Throughout the course the Ghanian situation forms the background and context of learning and a conscious attempt is made to emphasise the relationship of courses to the environment. In Music, for instance, Ghanaian music and folk songs, including drumming and rhythms of Ghanaian ethnic goups and an application of compositional techniques to these, are emphasised. In addition, the piano is a compulsory instrument intended to provide the services needed in schools and colleges. In Home Science, the principles of foods and nutrition, home economics and management, housing and family relationship are studied within the context of the Ghanaian society. Special studies in these are undertaken by students as an essential part of the course. In Art, Ghanaian concepts and resources are utilised as media for creative work.

It was recently announced that the college would at the end of the current academic year break up into colleges or schools, namely, the Sports College, the National Academy of Music and the College/School of Art. Until a suitable accommodation is found, the Home Science Department will continue to be a department of the Sports College. There is the talk of bringing some of the University courses to the new colleges. These and the changes in entry requirements to the diploma courses seem to indicate a state of flux in which no definite prediction as to perspective can be made until the new educational structure is promulgated.

(c) OTHER SPECIALIST COURSES

(1) The 2-year Housecraft course continues to be given in two colleges.

(2) As from September this year five colleges will, in addition to the initial training course, offer 2-year specialist courses in Science and Mathematics to serving Certificate 'A' teachers. These specialist teachers, it is hoped, would help foster and sustain interest in the study and teaching of science and mathematics.

(3) In order to meet the demand for more agricultural science teachers, it is hoped that three more colleges will, from September, 1974, organise in addition to the initial training courses, 2-year specialist courses in agricultural science. This would be in addition to the course now existing at Bagabaga Training College, Tamale. This would be a response to National Redemption Council's policy of self-reliance and the agricultural revolution now taking place in Ghana.

THE CONTINUATION SCHOOL AND SPECIALIST TEACHERS

The rapid expansion of the basic liberal education in the fifties led to an overproduction of Middle Form Four leavers, most of whom live in the rural areas, in relation to the type of job openings available to them. The Middle Form Four leavers are pupils from the last classes of the elementary school who do not go on to receive secondary education and they are twice as many as all the pupils enrolled in the secondary schools. In 1961/62 their number was 35,626, ten years later, i.e. in 1971/72, the number rose to 91,551 and this year it is over 100,000. It was, therefore, decided to turn the last two years of the elementary school, i.e. the 9th and 10th grades, into a Continuation School. Such schools are to prepare those pupils who do not go to the secondary schools in some practical skills which will predispose them to further vocational training. This is the first serious attempt in the history of education in Ghana to orientate Middle School pupils on such a large scale towards technical and vocational training.

THE PHILOSOPHY OF THE CONTINUATION SCHOOL

The aim of the Continuation School is to correct the notion derived from an earlier understanding of Western education, that education of the general academic type is superior to that of technical and vocational type. It aims therefore at providing education appropriate to the future calling of those who do not continue formal academic education. The courses are therefore patterned on the farming and industrial needs of the local community of the Continuation School, which course may be the study of agricultural, technical, domestic and commercial subjects. At the moment there are over 40 different courses offered at the Continuation Schools and they range from charcoalburning to kenteweaving, rabbitry, hairdressing, farming and fishing. The main problem that faces the Continuation Schools, apart from equipment, is the lack of specialist teachers. At the moment such teachers are recruited from government and private agencies, such as the Fishery Department, Department of Parks and Gardens, Ghana Industrial Holding Corporation, Ghana National Trading Corporation and private workshops where the pupils are taught such subjects as tailoring, shoe-making and hairdressing. The pupils are sent to the agencies and artisans for two days in a week to learn their particular chosen trades. Selected schools are provided with adequate specialist staff and equipment to teach Continuation School practical subjects. Two such schools are Elmina Continuation School, about 6 miles from Cape Coast, which has specialised in fishing, and Biriwa Continuation School, about 10 miles from Cape Coast, which has specialised in fishing, carpentry and joinery. There are over 80 such schools in the Central Region of Ghana alone.

There is some opposition to the Continuation School idea in certain quarters of the Ghanaian society. This opposition has stemmed from a prejudice against such schools which are regarded as schools for the less

intelligent children and educationally deprived pupils from the rural areas. It is feared that such schools will relegate rural children especially to a permanent working-class status. The opposition and fear are, however, leftovers of the colonial attitudes to education. But now the Continuation School idea is gaining a wider acceptance as a result of the emphasis that the present Military Government has put on the importance of agriculature for the recovery of Ghana's economy and on other practical courses. The Continuation School idea has, therefore, been incorporated into the new plan for the pre-university education and this will make Continuation School courses available to all children for 7 years, irrespective of intelligence. A As has been pointed out earlier and judging from the experience of running the Continuation Schools, there will be an increased demand for all categorie of specialist teachers to teach the practical courses and so for some time to come the combination of liberal and vocational courses in the pre-university study programme may determine the trend of innovation in teacher education.

INNOVATIONS AT THE UNIVERSITY LEVEL

At this level, the establishment of the University of Cape Coast in 1962 was unique in itself and was an innovation in teacher education in Africa. It was founded primarily to meet the demand for certified graduate teachers in schools.

In July, 1964 the Government of Ghana assigned specific functions to each of the three University institutions in the country in order to avoid duplication and wastage. The University of Cape Coast was assigned, as its main responsibility, the task of producing graduate teachers for the secondary schools, teacher colleges and polytechnics in the country. The University continues to be charged with this responsibility. It is thus a professional university meeting the high-level manpower needs of the teaching profession and of education in Ghana.

STRUCTURE AND FUNCTION

The University began in 1962 with two Academic Departments, the Department of Arts and the Department of Science. These developed into faculties in the second academic year, 1963/64. A third Faculty, that of Education, was established in the 1964/65 academic year.

The University still operates through these three Faculties made up of the following departments/centres:

(a) The Faculty of Arts comprises the Department of English, French, Classics, History, Geography, Sociology, Economics and Religious Studies.

(b) The Faculty of Science comprises the Department of Physics, Mathematics, Botany, Zoology and Chemistry.

(c) The Faculty of Education is made up of the Department of Education, Department of Curriculum Development, the School of Education and the Centre for Educational Planning and Research.

The Faculties of Arts and Science cater for the teaching subjects of education and Faculty of Education provides mainly the professional education at both the undergraduate and postgraduate levels.

PROGRAMME OF STUDY

The following degree and postgraduate programmes are provided for the training of teachers: B.A. General (Education), B.A. Honours (Education), B.Sc. (Education), B.Sc. Honours (Education), B.Ed., M.Sc., M.Ed., Postgraduate Certificate in Education and Diploma in Advanced Study of Education.

The Undergraduate courses include the study of the Foundations of Education, Methodology, Organisational Studies, Practice Teaching for 8 weeks plus either one of two of the following subjects: for Arts students, History, Geography, Economics, English, French, Sociology, Greek, Latin, Religious Studies; for Science students, Botany, Zoology, Physics, Chemistry, Agriculture, Mathematics. The graduate courses involve specialisation in one of Education, Science or Arts.

INTERNATIONAL ASSISTANCE

A number of International bodies and projects give help in the running of courses and further training of staff in the University as follows:

(a) The UNESCO Science Project

The University has an agreement with UNESCO whereby the University receives technical aid in the form of equipment and of professors and lecturers in science subjects and education whose salaries are paid by UNESCO. The University is expected to admit a sizeable number of new students every academic year for courses leading to the B.Sc. (Education) degree. The idea is to increase substantially the output of qualified science graduate teachers for schools and colleges in the country, within the shortest possible time.

(b) French Technical Aid

There is another agreement whereby the French Government assists in the training of French graduate teachers, while the University is under obligation to set aside a number of places each year for new students who are qualified to include French in the number of subjects they will study for their degrees. The French Government provides, at its own expense, a number of lecturers and some language laboratory equipment for the teaching of the language up to degree level.

(c) The Technical Aid Scheme of the Netherlands Government

This is for the development of a Social Studies project. The University was chosen from among a number of African universities by the Institute of Social Studies at the Hague, a postgraduate institution for a special form of co-operation in teaching and research in Social Studies. This has meant the attachment of a professor and two lecturers from the Institute and the supply of suitable equipment for the project. Under this scheme, selected Ghanaians have the opportunity to undergo postgraduate training at the Hague to prepare fully for work as university lecturers.

(d) Other Aid

The University also obtains assistance from other international

bodies such as the British Council, the British Overseas Development Administration, the Inter-University Council of Britain, the Overseas Educational Service of New York, the Carnegie Corporation, and the Canadian International Development Agency.

Through the aid provided by the O.D.A., the Faculty of Education of the University of Cape Coast and the Institute of Education of the University of Keele have entered into a link agreement whereby the two institutions can exchange teaching staff for a year at a time. They also organize and run joint in-service training courses. Last year the two institutions ran a very successful long vacation course at Cape Coast on the organization and supervision of teaching practice. Candidates for the course were selected from the secondary schools and training colleges and the Faculty of Education now uses some of such trained teachers in the supervision of its student teachers on teaching practice.

THE IMPORTANCE OF TEACHER EDUCATION

In some sense, the establishment of a full-fledged University of Cape Coast wholly devoted to Education and the production of graduate and postgraduate teachers is in itself a revolutionary innovation in teacher education in Ghana, and possibly in the whole of Africa. Teacher education at the University level has been, and still is the concern of Institutes, Schools, Colleges and Departments of Education in existing Universities or University Colleges in many parts of Africa. The University of Cape Coast is unique, as it is, perhaps, the only university of its kind in the whole of Tropical Africa which has education and the training of teachers as its professional speciality. Thus the Vice Chancellor of University of Cape Coast in his matriculation address last December said: "It is quite plain that in order to receive public support and justify its existence as a relevant segment of society, the University of today must combine liberal and professional education. Every University in Ghana today does this in one form or another. In Cape Coast our professional speciality is education and the training of teachers."

INNOVATIONS IN IN-SERVICE TRAINING

In spite of innovations in teacher education at the initial training, specialist and university levels, the importance of in-service education in teacher education cannot be over-emphasised. Educational methods and thinking are constantly undergoing new orientations and directions. The rate of change sometimes is so fast that teachers after formal training in colleges may get quickly out of date unless a way is found to bring home to them new methods and new directions which will enable them keep abreast with changing educational thinking.

One of the ways by which new ideas are brought home to teachers is through in-service training programmes which from time to time bring teachers together and enable them to share ideas and examine how best new methods can be utilised in the classroom situation thereby improving their professional competence.

IN-SERVICE TRAINING IN HISTORICAL PERSPECTIVE

In-service training programmes in Ghana took up a special significance after 1951 when the Government's Accelerated Educational Programme was launched. This Accelerated Development Plan for Education

led to the rapid expansion in schools and in school enrolment. The number of schools and pupils increased phenomenally and the production of qualified teachers could not cope with the demand for them. A lot of untrained and unqualified pupil teachers, therefore, were absorbed into the system and there was as a result the urgent need to give them short and concentrated professional courses at Pupil Teachers' Centres which had been set up to train such teachers and also to organise training for them on the job through their headteachers and assistant education officers.

As a result of the expansion in number of teacher training colleges in the fifties and early sixties to cope with the increase in primary and middle schools, a lot of persons were admitted into teacher training colleges who would not have gained admission under normal circumstances. The necessity to have regular in-service training programmes became almost imperative.

NATIONAL OBJECTIVES OF IN-SERVICE TRAINING

In Ghana, the national objectives of in-service education have been defined as:

(a) to eliminate weakness detected in the teaching/learning habits of teachers/pupils;

(b) to reinforce desirable teaching/learning methods and techniques;

(c) to upgrade teachers;

(d) to introduce new methods and concepts incorporated in new syllabuses;

(e) to render the teacher more effective in the classroom through self-confidence;

(f) to inculcate in the teacher adaptability and committal to change and innovation;

(g) to keep the teacher up-to-date, i.e. to make him aware of contemporary educational thought and practices as well as of trends in national policies.

ORGANISATION INVOLVED IN IN-SERVICE TRAINING

To achieve these objectives, the Ministry of Education of Ghana, through its chief courses officer, organises each year several in-service training courses, some with single subject bias and others with an integrated bias to give teachers new orientations. Apart from the Ministry of Education, the following organisations are actively involved, with collaboration of the Ministry of Education, in in-service training programme: Teachers' Subject Associations, School of Education, University of Cape Coast, Advanced Teacher Training College, Specialist Training College, Ghana National Association of Teachers and the National Teacher Training Council.

At the secondary school level, the importance of the teachers' subject associations in in-service training programmes cannot be underestimated. There are associations of teachers for most of the subjects offered in Secondary Schools, e.g. the Ghana Association of French Teachers and the Ghana Mathematics Teachers Association. Each Association assists its members to improve their academic and professional competence through meetings, courses, workshops and dissemination of literature and information. There is also the Consultative Council of Subject Associations which co-ordinates the activities of the subject associations and sees to the equitable distribution of grants. Every year there is a conference of the various subject associations, normally at one venue, and the opportunity is offered to teachers who may wish to attend lectures and activities of associations other than their own to do so. In this way, there is a cross-fertilization of ideas.

SOME FLAWS IN EXISTING IN-SERVICE TRAINING PROGRAMMES

Unfortunately, examination of the existing in-service training programmes indicates certain major flaws. For example, there has been no systematic documentation; the result has been that almost the same teachers have been invited to similar courses every year; many have not been catered for; the coverage has not been satisfactory. There has been the lack of effective follow-up programmes and little or no attempt has been made to evaluate some of the courses. There has also been little or no liaison between pre-service and in-service education; the result has been that the flow of ideas between colleges and the field and vice versa has been minimal.

INNOVATIVE TRENDS

Present thinking and recommendations indicate innovative trends to correct some of the flaws and imbalances in the present system. Among the many recommendations and trends, the following require attention:-

(a) Establishment of a liaison between Training Colleges and their products in the field. Such a liaison will help provide the medium through which the colleges will receive the required feedback information from the field. The liaison can be established by arranging for Training Colleges to observe the work of teachers in an around their respective localities; by getting the staff, equipment and other physical facilities of Training Colleges involved in in-service training programmes.

(b) The setting up of a National In-service Education Centre where course officers will be briefed and where in-service courses could be organised. Similar centres could also at a later stage be set up in the regions. Research evidence has shown that teachers are prepared to attend courses when and where adequate residential facilities in staff and equipment are available.

(c) Organization of courses for elementary school teachers in three phases: (i) pre-institutional, when the participants are set assignments to prepare them for the residential course; (ii) the institutional phase, when participants are brought together either in a college or training centre;

(iii) the post-institutional phase, which will involve a follow-up and assessment of participants in the classroom situation to find out how far they can implement what they have acquired at in-service training courses.

(d) building up incentives into in-service training programmes to encourage teachers to take interest in such courses. The incentives may take the following forms:

(i) designing the courses in such a way as to enable teachers pass their promotion examinations while at the same time improving their professional competence;

(ii) successful completion of a prescribed number of courses spread over a number of years leading to the award of certificates carrying incremental credits;

(iii) awarding a certificate of attendance.

(e) working out a programme so that graduate teachers who do not possess professional teaching qualification can take vacation courses spread over a number of years and qualify for the post-graduate certificate in education. It should be possible to organise in-service training courses in collaboration with the University of Cape Coast to enable diplomates also to prepare for the B.Ed. degree.

CONCLUSION

If we are to improve the quality of our teachers and the quality of education offered to our children then innovations in teacher education will continue to be made at all levels - initial training, specialist and university. In-service educational programmes should also be given their due importance Educational change is so fast that it is not possible for training colleges to keep pace with new methodologies and anticipate future approaches. Teachers in the field will have to be acquainted with innovations on the job. To enable innovative ideas to be quickly and effectively transmitted to teachers in the field and teachers in training, there should be a constant flow of information between training colleges, universities and in-service training programmes.

Education in Ghana is committed to change and innovation as long as there is ample justification for the change. Even now proposals for a change in the structure of education in the country are being seriously considered. If these proposals are accepted, further changes in the teacher education programme will have to be made.

THE ROLE AND FUNCTIONS OF KENYA INSTITUTE OF EDUCATION

HISTORICAL BACKGROUND

The history of Curriculum Development in Kenya dates back to 1957 when an English Special Centre was established as a Section of the Ministry of Education and for the purpose of advising the Ministry on the new teaching methods and the development of materials for use in up-grading the standard of English, in particular Asian Primary Schools.

The Centre was so useful that in 1961 the Ministry set up another Centre, the Science Teaching Centre, with the aim of up-grading the standard of Science teaching in Kenya schools.

Most of the Science Teaching Centre's work was initially directed to Secondary Schools for which schemes of work and Teacher's Handbooks were produced in Physics, Chemistry and Biology. In 1965 and following a series of Mathematics Workshops at Entebbe, Uganda, yet a third Centre, the Mathematics Centre was established to introduce New Mathematics in Primary as well as in Secondary Schools.

Although part of the Ministry of Education, these Centres worked separately and independently of each other. In an attempt to co-ordinate their activities, and in an effort to set up an organization to prepare for Kenya schools relevant and excellent curriculum materials, these Centres were in 1966 brought under one administrative directorate called the Curriculum Development and Research Centre (CDRC).

Two years later, and in an effort to create a viable body of curriculum developers and teacher educators. CDRC was reorganised with another much older organization of the Ministry of Education called the Kenya Institute of Education, and became the present Department of Curriculum Development within the Institute.

The Kenya Institute of Education as such had previously been established in April 1964 as a direct result of Conference on Institutes of Education sponsored by the then University of East Africa held in Mombasa in January 1964 and attended by representatives from Ministries of Education in Tanzania, Uganda and Kenya, representing the then University Colleges of Dar-es-Salaam, Makerere and Nairobi together with participants from donor agencies.

Before the Institute was established there were two Delegacies, the Eastern and Western Teacher Training Organisations which co-ordinated the activities of Primary Teachers Colleges in Eastern and Western Kenya respectively.

The first meeting of the Board of Delegates of the new Institute was held on 2nd April, 1964. It outlined the Institute's policy and organisation. The most important factor underlying that policy and organisation is that the Institute "will associate together the then University College, Nairobi, (now University of Nairobi), all maintained Teachers' Colleges and the Ministry of Education."

While remaining part of the Ministry of Education, the Institute has a large measure of autonomy to enable it effectively to implement the policy of its Board.

ROLE AND FUNCTIONS

The role of the Institute in the educational life of Kenya may be summarised as preparing new and relevant curriculum materials, revising the existing course content, co-ordinating programmes (in particular of teacher education) and initiating and promoting innovative practices to improve the quality and quantity of education in the country.

In pursuance of this role, and as stated in Part VII, paragraph 23 of the Kenya Education Act of January, 1968, the Institute has set for itself the following main functions:

(a) to undertake appropriate research activities leading to, among others, the preparation of relevant curriculum materials, as well as the provision of appropriate teaching aids, apparatus and equipment, for use in schools, Teachers' Colleges and other educational institutions;

(b) to secure due publication of the results of these research activities and therefore, to provide an advisory service and library facilities for teachers in schools and tutors in Teachers Colleges;

(c) to desseminate information to schools and Teachers Colleges on new teaching methods and techniques, and on the results of research from Educational Centres;

(d) to promote and co-operate in the promotion of educational conferences, workshops, seminars and in-service courses for teachers and others engaged or intending to engage in educational activities;

(e) to administer a scheme of examinations on behalf of the Ministry of Education for students in 'Teacher Education institutes, and to make recommendations for the award of appropriate Teachers' Certificate; and

(f) to provide an advisory service to Government and other organisations as requested from time to time by the Minister for Education.

ADMINISTRATION AND ORGANISATION

As part of the Ministry of Education, the Institute is governed and administered under the provisions of the Kenya Education Act of January, 1968.

Subject to the provisions of this Act, the Institute has a Board of Delegates which is responsible for the general policy of the Institute, and whose Chairman is appointed by the Minister for Education.

Membership of the Board includes representatives from the Association of College Principals, Kenya Heads' Association, Kenya

National Union of Teachers, voluntary agencies, University of Nairobi, Ministry of Education and co-opted individuals.

The policy decisions taken by the Board are implemented under the vigilance of an Executive Committee, the membership of which is derived from the Board, on behalf of which it operates. The Chairman of the Board is also Chairman of this Committee.

The Board has a Professional Committee whose membership follows that of the Board itself; it has the Chief Inspector of Schools as Chairman. The Professional Committee, as its name implies, discusses and advises on matters partaining directly or indirectly to the professional activities of the Institute, its member institutions, and its subject panels.

Internally the Institute has three Departments, each of which is headed by a Co-ordinator, and eight subject-based Sections all of which are within the Department of Curriculum Development.

In addition to their normal professional work, the four Co-ordinators, together with the nine Heads of Section, assist the Secretary in carrying out the day-to-day administration of the Institute.

At present the Institute has 55 full-time professional staff engaged in the various aspects of its functions. There are a further 70 supporting staff of various grades and categories.

ACHIEVEMENTS

From the on-going projects, a list of which is given below, the Jomo Kenyatta Foundation has so far published on behalf of the Institute some 96 titles, all of which have been included in the Purchase List of the School Equipment Scheme as required texts in schools.

Longmans of Kenya Ltd. have also so far published a total of 149 titles under the Tujifunze Kusoma Kikwetu Project. These books are being used in the Lower Primary classes during the Vernacular periods.

The Kenya Primary Mathematics Course was introduced to all Primary I classes throughout the country from January, 1971.

Work on the Safari English Course and also on New Primary Science is about to be completed, so that in the next year or so all Primary Schools will be using new courses in Mathematics, English and Science.

Since its inception in 1965, the New Primary Approach (NPA) technique of teaching has gained emphasis through all the Primary Teachers Colleges and in a large number of Primary Schools.

The Institute has a full-fledged Workshop for the preparation of various kinds of teaching aids and apparatus from local materials.

FINANCE

To support the on-going and proposed curriculum projects, the Institute receives the bulk of its funds from the Government of Kenya.

However, a number of other donor agencies and foreign Governments

have also substantially contributed to the projects through the provision of peronnel, equipment and funds. For instance, while the Bernard Van Leer Foundation at The Hague, Netherlands, has recently agreed to generously support the Institute's Nursery School Education Project, the Japanese Government three years ago gave the Institute Science equipment and apparatus worth well over K£ 1000. The Institute is grateful for this and future assistance from any quarter.

DEPARTMENT OF CURRICULUM DEVELOPMENT

(a) Foreign Languages Education Section:

Three of this Section's main programmes are:

(i) Safari English Course:

In early 1966, the Pivot Course, initially developed by the Oxford University Press for use in Malawi and later on adapted to be used temporarily in Kenya, was intended to follow on the New Peak Course through the Upper Primary classes. This course was found to be unsuitable partly because it was based on difficult, different and far less effective linguistic principles, and partly because it was pitched too high for the pupils' ability in English.

There was an urgent need, therefore, to provide the Upper Primary levels with a course which has a logical and smooth continuation of the New Peak Course, particularly as the number of schools using the New Peak Course was increasing.

Since May, 1966, the Section has prepared and published both the Pupils Edition and the Teachers Guide of each of the Safari English Course books for Primary 4 to 6, which are already in use in most of our Primary Schools. Safari English Course Book 4 for Primary 7 has just been published by the Jomo Kenyatta Foundation.

(ii) Teaching of French in Secondary Schools:

Acting on a decision reached in one meeting of the Organisation of African Unity Ministerial Committee that Ministries of Education in member-states should make every effort to encourage the teaching of French and English in the Anglophone and Francophone countries respectively, the Kenya Ministry of Education decided to introduce the teaching of French in a few selected Secondary schools. In view of this decision, there was an urgent need to develop materials for use in these schools at both 'O' and 'A' levels. So far A Guide to the Teaching of French has been prepared.

(iii) Preparation of Supplements to the Texts for the East African Certificate of Education Examinations:

The writing of these supplements began in the second

half of 1968 and was initially intended to be experimental. However, due to heavy demand from schools for the Supplements, the programme has become "permanent".

(b) African Languages Education Section:

(i) Masomo ya Kiswahili Project:

This Project was established in 1965 following recommendations of the Ominde Education Commission Report and the Hutasoit New Primary Approach (NPA) Report on the use of Kiswahili in Primary Schools.

As a result of these reports, Kiswahili was included in the Primary School Syllabus in 1967. At the same time plans were formulated by the Ministry of Education to prepare a four-year Course in Kiswahili as a second language.

By 1969 the four books that constitute the Masomo ya Kiswahili Series had been written and published, and were in use in Primary 4 - 7 in all parts of the Republic.

(ii) Teaching of Kiswahili in Secondary Schools:

Since its inception, the Section has been preparing schemes of work for use in Forms I to IV in the Secondary Schools.

Because of the recent changes in the Kiswahili Syllabus to conform with the requirements of the East African Examination Council, these schemes of work have become out-dated.

The Section has decided to prepare A Guide to the Teaching of Kiswahili in Secondary Schools which will be in the form of a text book, the content and approach of which will not only emphasize basic principles of teaching Kiswahili, but will also be "permanent".

(c) General Methods Section:

(i) Tujifunze Kusoma Kikwetu (TKK) Project:

A mini-survey done in 1966 revealed that there were quite a number of non-readers in Primary 2,3, and 4, and that many of those who could read did so mechanically and without understanding the content of what they read.

Faced with the problem, the Section planned to prepare Reading Materials which were all illustrated, relevant and suitable and therefore which could attract and sustain children's interest in reading.

Such materials were to be prepared under this Project, and were to emphasise the development of children's meaningful reading.

(ii) A Scheme of Handwriting:

Writing is a means of communication and the process of practising handwriting should never be separated from the meaning of what is being written. The words and sentences which the children write should be chosen from things which have meaning and interest for them. Although the recommended style of Handwriting at present is "Marion Richardson," it renders problems to both teachers and children, as a result of which little of this style of Handwriting is practised in our schools to-day. The Section strongly believes that children should be encouraged to print first, a style they often see in their first readers, before they develop cursive Handwriting.

(iii) A Teachers' Handbook of Stories:

The Primary School Syllabus 1967 recommends that during the Monther-tongue periods in the Lower Primary classes, the child should be guided into talking about pre-school and home experiences in language he can best use. The telling and discussing of folk tales, riddles, songs, and proverbs should be included at this level.

The Teachers' Handbook of Stories aims to held the teacher towards achieving this objective.

(iv) Guidelines on "Grouping Children in the Classroom"

Not all teachers understand why and how grouping children in the classroom should be done so as to give maximum individual attention, and the tact and right personal attitude in which it is done.

In view of this, the Section is in the process of preparing the said Guidelines.

(d) Mathematics Education Section:

(i) Kenya Primary Mathematics Project:

The Mathematics text-books in use in Kenya Primary Schools before independence were found by the Ministry of Education to be far outdated in both content and approach.

The Ministry decided in 1964 to begin a long-term New Primary Mathematics Project under which a new series of modern texts would be prepared to improve Mathematics Education. These texts were to be

patterned after the Entebbe Mathematics Series. After seven years of writing, adaptation and experimentation the Kenya Primary Mathematics Course Book I was introduced in all Primary I classes throughout the Republic in 1971.

Although the basic skills to be mastered are the same, the Kenya Primary Mathematics Course books emphasise the understanding of the structure of Mathematics rather than memorisation of basic operations. In this way, the new Course aims at exciting the child's creative abilities and enabling him to adopt a practical approach to solving Mathematical and other problems.

To enable the child to achieve this more easily and rapidly, a number of Wall-Charts, Work-cards and Games have been designed and included in the Teachers Guides to the new Course books.

(ii) Schools Mathematics for East Africa (SMEA) Project:

The Project was started at the same time and for the same reasons as the Kenya Primary Mathematics Course, except that it was concerned with the development and adaptation of materials for use in Secondary Schools. At the moment, 200 pilot schools are using the text books and other teaching aids prepared under the Project.

(e) Natural Science Education Section:

(i) Kenya Primary Science Course:

As far back as 1961 the Ministry of Education had realised the need for a Primary Science Course reflecting not only the child's needs, and environment, but also emphasising the enquiry approach.

In that year, the Ministry decided to set up a Science Teaching Centre to cater for improvement in science education at both Primary and Secondary levels.

This centre, now part of the Natural Science Education Section, immediately started working on new Primary Science Units, as required by the Ministry. In doing this, the Centre worked very closely with the African Primary Science Programme (APSP) of the Education Development Centre (EDC), Newton, Massachusetts, USA, and with other similar Centres in English speaking African countries. The African Primary Science Programme has, effective from 1st July, 1971 become the Science Education Programme for Africa (SEPA) which has its headquarters in Accra, Ghana.

The Section has now completed some 60 such units, two

films - the Village School and the Village Teacher, and a set of science kits. These materials are being reorganised into the Kenya Science Course.

(ii) Schools Science Project (SSP):

In an effort to improve science education, a few secondary schools as far back as 1965 were using new science materials based on Nuffield Physics and Chemistry Courses then in use in Britain.

At that time, UNESCO was also already contributing to the process of modernising science materials by supporting and encouraging the establishment of National Study Groups engaged in curriculum reform in all aspects of science teaching.

In an attempt to streamline and to co-ordinate the activities of these National Study Groups and those of other science organisations involved in Science Curriculum changes, a meeting was held in Nairobi in March, 1968.

This meeting was attended by not only representatives of the various National Study Groups, but also by officials of the three Ministries of Education in Uganda, Tanzania and Kenya, as well as by representatives from the then Centre for Curriculum Renewal and Educational Development Overseas (CREDO) and from UNESCO. (CREDO has since been incorporated into the Centre for Educational Development Overseas (CEDO).) At this meeting, it was agreed that curriculum materials should be prepared for schools in East Africa under the Schools Science Project (SSP). Such materials should (a) reflect local needs and national aspirations and (b) emphasise the enquiry approach i.e. maximum student Pupils' Texts, Teachers' Manuals Teaching Aids and Students' Readers.

Work on the preparation and adaptation of such materials started immediately, and the Ministry of Education selected about 20 pilot schools to use the resultant experimental edition in each subject area, namely Physics, Chemistry and Biology.

(iii) Materials for the Teaching of Agriculture in Secondary and Primary Teachers' College:

In an effort to improve the teacher of Agricultural education in Kenya Secondary Schools, the Ministry of Education decided to introduce a new syllabus, Principles and Practice of Agriculture, in a few selected schools in 1962.

This syllabus emphasised among other things, the solution of Agricultural problems through investigation

and experimentation.

In accordance with the decision of the World Bank in 1961 that the teaching of Agricultural education should be expanded, the Ministry increased not only the number of secondary schools teaching this syllabus, but also extended the programme to Primary Teachers Colleges.

Despite the supply of Agricultural equipment to these schools there was an extreme shortage of suitable text-books to support the syllabus.

The Section is therefore preparing materials on Crop and Animal Husbandry, Farm Economics and Management and Soil Science to fill this gap.

(iv) The Teaching of Home Science in Secondary Schools and Teachers' Colleges:

Previously, the title for this subject was Domestic Science, which included Needlework, Cookery, and Mothercraft. In the middle of 1967, the Ministry of Education decided to reorganise the Subject under a new name, Home Science, which included the following areas:-

Food and Nutrition,

Clothing and Textiles and

Home Management.

In preparing texts and other teaching aids for Home Science, it is vitally important to recognise that this is a practical subject requiring laboratory facilities and equipment in the institutions where the subject is offered.

(f) Social Sciences Education Section:

(i) An Integrated Social Studies Project:

The creation of this Institute's Social Sciences Education Section in March, 1968 was a direct result a Conference of African Educators, representatives of EDC and of the then CREDO (now CEDO) at Queen's College, Oxford, England, in September, 1967.

The main aim of this conference was to explore co-operatively the needs and priorities in curriculum development of participating African countries, and to consider how both EDC and CEDO might jointly or severally assist these African countries in meeting these needs.

The Oxford Conference identified a variety of needs

at the Primary, Secondary and Teacher Education levels, but a consensus emerged on the need to give prior attention to the development of Social Studies materials for use in Primary Schools.

The conference resolved, among other things, that:

(a) arrangements should be made for the distribution information about the existing state of curriculum development in the field of Social Studies

and

(b) E.D.C. and C.E.D.O. should convene within the next year a conference of Social Scientists and other educators from Africa, Britain and the U.S.A. to share experiences and to develop a strategy for the preparation of materials in Social Studies.

The Conference referred to in (b) above was duly convened in Mombasa, Kenya, in August, 1968, and as a result of that Conference,

(i) the African Social Studies Programme, with its Headquarters in Nairobi, was established,

(ii) a co-ordinating Committee was set up to assist in the administration of the Programme whose chief function is to collect and disseminate information and materials on the new Social Studies Courses in Africa.

The Section staff preparing materials under the Integrated Social Studies Project have received a great deal of assistance from the African Social Studies Programme.

The Project's experimental materials are intended to strengthen the awareness of the Primary School leavers' immediate environment, develop their social studies skills and ultimately provide for a better approach to the teaching of Social Studies in Secondary Schools.

i) The Secondary Schools Geography Project for the Development of Materials at the KJSE Level:

The new KJSE syllabus introduced in 1969 emphasises the study in depth of specified topics, including clear interpretation of geographical concepts and strategies.

In this respect the syllabus calls for new materials to be prepared and developed with these concepts and strategies in mind. Hence the establishment of project.

(iii) The Secondary Schools Project for the Development Materials at the East African Certificate of Education (EACE level):

In drawing up the new 'O' Level Geography syllabus, emphasis was laid on field work. In doing this, it was recognized that none of the existing Geography texts were suited to the suggested strategies in Geography teaching. There was thus a need to write new materials to meet the new situation. Hence the project.

(iv) The Secondary Schools Religious Education Project:

The joint Christian Religious Education Panel has recently prepared an 'O' level Religious Education syllabus. This syllabus incorporates the teaching of "themes" and the use of African Religious and Beliefs as a basis for teaching the subject. New materials are required at all levels, to meet this shift in emphasis.

(g) Business, Industrial and Technical Education Section:

(i) Business Education Project:

The area of business education is presently undergoing considerable expansion in the Kenya Secondary School system. Until recently secretarial training was largely handled by private business Colleges and by two government training institutions.

Schools that wanted to offer business education had to follow the Cambridge syllabuses which were British-oriented and which did not stress secretarial studies.

In 1970 the Ministry of Education decided to improve the Business Education programme in Kenya by starting a business teacher education course at Kenyatta University College. 1971 the Ministry supplied selected schools with business equipment so that expanded programme could be effected.

If the business education programme was to improve and make full use of the new teachers and equipment, new syllabuses had to be prepared to replace the ones from Cambridge. These new syllabuses in Commerce, Principles of Accounts, Typewriting with Office Practice, and Shorthand were prepared by the Kenya National Advisory Committee on Business Education during 1971 and submitted to the East African Examinations Council for approval. Sixteen selected schools began teaching from the new syllabuses on an experimental basis in January, 1972.

The initial objective of this project was the preparation of the new syllabuses. Now that this has been accomplished, the objective is to ensure that the syllabuses are the best possible and that they truly apply to Kenya.

Also, every effort will be made to ensure that the syllabuses

are presented in the manner intended and that they are introduced in as many schools as is feasible.

(ii) Industrial Education Project:

Kenya is rapidly taking her place in the modern world not only as a consumer of industrial goods but as a producer as well.

As Kenyan youth take their place in this increasingly technical society, they must be prepared to participate as both informed producers and consumers. It is through the study of Industrial Education that the schools seek to acquaint Kenyans with this area. It must be noted that the study of Industrial Education is not devoid of other disciplines and set off as a separate entity. Rather, it provides the setting within which elements learned in the academic setting and can be applied, reinforced and supplemented. In addition, the student is given the opportunity to develop the ability to work with a minimum of personal direction and assistance and to develop his powers of creativity and initiative.

According to the Development Plan 1970 - 1974 the Kenyan Government is firmly committed to an expansion of the offerings within practical subjects in the secondary schools. The plan states:

"In practice, this means that there will be a rapid increase in the number of lower secondary schools offering practical studies in agriculture, commerce, industrial arts, and home science.

The purpose of these courses will not be to produce individuals who are qualified to pursue course-related professions upon leaving schools, but to instil in the children an appreciation for skilled manual work, and to establish some of the basic skills required in a broad range of occupations." (Development Plan 1970 - 1974, page 460)

(iii) Technical Education Project:

This Project has as its major purposes the localization and standardization of all technical syllabuses employed in the secondary technical schools in Kenya.

The first objective of the Technical Education Project is to produce syllabuses for all secondary technical courses.

The second objective is to produce teaching materials which should accompany these syllabuses such as sample schemes of work, project, information and job sheets, and ultimately texts which reflect local conditions and needs.

The third objective is to work towards the general improvement in teacher skills and knowledge through in-service workshops and seminars.

The fourth objective is to assist other Ministry officers in the planning of facilities and equipment for the expansion of technical education programme. The final objective is to conduct extensive evaluation of the technical education programmes being offered in the schools with a view to their improvement.

The subject areas to be covered under the Technical Education Project are as follows:

(a) Forms 1 and 2

Metalwork
Woodwork
Technical Drawing

(b) Forms 3 and 4

Common Core Subjects
Mechanical Engineering
Electrical Engineering
Automotive Engineering
Agricultural Mechanics

(c) Forms 3 and 4

Basic Civil Engineering and Building Courses
Diagnostic Core
Masonry
Carpentry
Joinery
Plumbing

(d) Pre-Technician Courses for Forms 3 and 4

As for (c) above.

(e) Cambridge Technical Syllabuses for the E.A.C.E. Examination

Woodwork
Metalwork Engineering
Geometrical, Mechanical and Building Drawing
Technical Drawing
Engineering and
Workshop Practice

(h) Instructional Materials Section:

(i) The Design and Construction of Teaching Aids from Local Materials

In general, the major duty of the Section is to support and reinforce the curriculum activities of the various other Sections

of the Institute and of those other organisations particularly within Kenya that are engaged in similar activities.

For the purpose of preparing the much needed cheap Instructional aids from local materials to supplement expensive commercially produced aids, the Section has a full-fledged Production Workshop.

To assist teachers in the construction of these instructional apparatus, the Section must necessarily prepare basic designs and diagrams, including Notes for use by the teachers.

The major aim of the programme is to reduce the cost of producing these aids for each school.

(ii) Art-work for the Institute - prepared Book-Materials:

One of the ways of reducing the cost of Institute-based books and other educational materials is by having all illustrations and art-work designed by the Section's team of full-time artists.

(iii) The Audio-Visual Aids Display Room:

Instead of the old-fashioned chalk-and-talk method of teaching, many countries have introduced many and better methods in order to keep pace with the technological changes in Science and other fields.

In the case of Kenya, the need for an Audio-Visual Aids Display Room and library is of paramount importance.

(i) Music Education Section:

This Section has been established only very recently and is intended to:

(i) review the current Primary School Music syllabus;

(ii) prepare suitable teaching materials at all levels of the school system up to the University;

(iii) organise necessary in-service courses including workshops and seminars for Music teachers; and

(iv) assist in the planning and organisation of Provincial and National Music Festivals.

DEPARTMENT OF TEACHER EDUCATION

(a) One of the Institute's major functions is to co-ordinate professional and academic studies offered in Teachers Colleges and to administer a scheme of examinations for these institutions.

The Department discharges this responsibility through:

(i) the preparation of syllabuses for the various courses of study;

(ii) the appointment of 'external' examiners in particularly Practical Teaching;

(iii) the setting of central examinations in Education and Methods, Mathematics and Kiswahili; and

(iv) Moderation of other college-set examinations.

(b) Co-ordination and Organisation of In-Service Teacher Education Activities

As a result of frequent changes in educational content and methodology as well as the general need for professional imporvement, many in-service courses are organised in the country.

In order to ensure maximum utilisation of the limited financial and personnel resources the Department co-ordinates in-service courses organised by various educational agencies including the various sections of the Institute.

(c) Organisation of the In-Service Course for Unqualified Teachers:

Owing to rapid expansion of primary education prior to and after Independence, the demand for qualified teachers greatly exceeded the supply from Teachers Colleges.

By 1965 there were no fewer than 10,000 untrained teachers out of a teaching force of about 40,000.

Because of the concern about the adverse effect on primary Education resultant from this high proportion of novice teachers, the Ministry of Education, with the generous assistance of the Canadian Government, decided in 1966 to establish the In-Service Course for Unqualified Primary School Teachers, to enable unqualified teachers already in teaching service to obtain at least the P3 teaching status.

The Department has been operating this Programme since then.

(d) Organisation of the Headmasters In-Service Course:

Realising the need to enhance the position of the Primary School Headmaster in the light of the changing educational content and pedagogy, the Ministry of Education decided, in 1966, to launch this Course and was again assisted by the Canadian Government as in part (iii) above.

DEPARTMENT OF EDUCATIONAL RESEARCH

(a) Combined Research Project:

The Primary purpose of these projects is to introduce College

Tutors and their students to the techniques and processes of research in education and to give them first hand involvement in the design, implementation and analysis of a research project.

The topics for research are arrived at during the Tutors Workshop. Thereafter they prepare the manuals of instructions, design the manner in which the data is to be collected and receive training in how to do simple analysis of the data.

The Tutors next train the students who are to carry out the Project and then prepare a preliminary analysis before sending the data to the Department.

In deciding on the Project, the Department gives priority to topics whose results are likely to produce data and reports on important educational matters.

(b) <u>An Analysis of the Certificate of Primary Education Examination 1971</u>:

Resulting from two projects on Modern Mathematics done in early 1971, it was found out that of 50 questions in the first test only 26 were good, and in the second last of another 50 questions, only 30 were good. The bad items were due to either the questions being too difficult or distractors not being effective at all.

Curriculum developers in other subject areas expressed interest in having item analysis done on their 1971 CPE paper as well. The Department therefore decided to do a complete analysis of a representative sample of the 1971 CPE.

(c) The main purpose of this project is to provide a subjective and empirical data analysis of the examination. The data will be useful to policy makers, test-item writers and curriculum developers. Data gathered will also provide information for analysis of various curriculum programmes.

(d) <u>Comparative Study of Kenya Primary and Traditional Mathematics Courses</u>:

The Mathematics Section is interested in evaluating the Kenya Primary Mathematics, a new Course which was examined at CPE level in 1971, in order to find out whether there is any difference at all in the performance of pupils taking the new Course and those taking Traditional Mathematics. Without being told, both Modern and Traditional Mathematics Pupils will sit both tests and the analysis will show how Traditional Mathematics pupils performed on the Modern Mathematics, whether it is different or same as the Traditional Mathematics.

This exercise will help the Department and the Section determine if there are any differences between the performances of pupils who were exposed to both Courses.

(e) Nursery School Education Project:

A survey of Day Care Centres conducted by the Child Development and Research Unit of the University of Nairobi, in 1969, revealed that there were over 5,000 such Centres in the country.

The activities in those Centres varied greatly from actual classroom teaching, as in a Primary School, to centres that merely acted as playgrounds for children without actually fostering in the children any positive ideals and attitudes at various stages of their development. Although there are new four national training institutions of teachers of such Centres, the output is far too small for the rapidly increasing numbers of the Centres.

So far no curriculum has been produced for the nursery school teachers nor one for use in these Centres. There is also no evidence to show the usefulness or the need for these Centres.

This Institute in collaboration with the City Education Department of the Nairobi City Council and with the generous assistance from the Bernard van Leer Foundation at The Hague, Holland, has established an experimental project in the training of teachers, curriculum development and evaluation of pre-school education as a basis for preparing long-term plans to meet these demands.

THE JOMO KENYATTA FOUNDATION

In the wake of the Kenya Government's determination, especially after Independence to involve itself in the public and private sector of the country's economy, the Government showed initiative in the establishment and the encouragement of indigenous publishing firm. Thus the birth of the Jomo Kenyatta Foundation, a non-profit making Kenyan organisation controlled and directed by a Board of Governors under the Chairmanship of His Excellency The President Mzee Jomo Kenyatta; the running and management of its daily affairs is in the hands of a Secretary-General.

This body was established in 1966 with the view of furthering the educational programme of Kenya. In other words, the Foundation was conceived for the purpose of making genuine and effective contributions towards the Kenyanisation of Education. The first aim of the Foundation then was specialization in the school book publishing field, thus providing a full range of modern school text-books with a Kenyan environment which reflect the ideals, ambitions, interests and aspirations of the Kenya nation. It was entrusted with the task of wresting control of our educational system from foreign firms (which for a long time have been controlling the school book market in Kenya) and thus preventing the large sums of money involved leaving the country.

Since its inception, the Jomo Kenyatta Foundation has been actively engaged in publishing and distributing books out of materials prepared by the staff of the Curriculum Development Department of the Kenya Institute of Education. The materials of these prepared courses are not only relevant to the needs

of the country, but are also geared to reflect the culture of the nation. The Kenya Government has objected to the practice of adapting and placing in our schools, especially at primary level, materials published in other parts of the world, with only a change of name used in the text.

These school courses include the Safari English Course for Standards four to seven, the Kenya Primary Mathematics for Standards one to seven, the Masomo Ya Kiswahili for Standards four to seven, the Science Scheme of Work for Standards one to seven and the Lesson Notes for Christian Teaching in Kenya Schools for Standards five to seven. Also in these primary courses are supplementary readers and wall charts which include Teachmaster and Workmaster aids.

In addition the Foundation has published the First Kenya Atlas and a metric system booklet. It is also engaged in producing trial materials which will be used in Secondary Schools; these include SSP materials and Kenya Advanced Mathematics Project at 'A' level. The Foundation has so far published over eighty titles.

Apart from publishing and distribution of books, the Foundation is required to channel the revenue from the publishing of Kenya Government-prepared courses into a scheme which will operate a merit-award scholarships programme. Hence the money accruing from the sales of the said books is used not only to develop new educational materials, but also for scholarships for needy and worthy children who have gained admission into Government maintained secondary schools. Between 1968 and 1971, one hundred scholars in Kenya Secondary Schools benefitted from this scheme. Two hundred more pupils who joined Form I in 1972 were awarded scholarships by the Foundation; and it has been planned that these awards will be made annually, while the number of pupils benefitting will be substantially increased every year.

TEACHER EDUCATION IN LESOTHO

Lesotho's educational system is handicapped by a shortage of trained teachers and a lack of centralisation for a small country of its size with a million inhabitants. Almost all of its schools are owned and run by religious missions with a large element of untrained teachers. (See appendix I, II & III below).

PRE-SERVICE COURSES

Presently teacher education is carried out by seven widely dispersed mission-controlled colleges which are concerned with

(a) a three year post-primary course known as the Lesotho Primary Teachers' Certificate (for standards 1-5 pupils) and

(b) a two-year post-Junior Certificate (three years after primary) Higher Teachers' Certificate (for standards 5-7 pupils).

The former course is being phased out while the latter will in due course be replaced by a three-year Primary Teachers' Course whose candidates will be allowed to opt for specialisation in the upper or lower classes as the case may be. One college offers a two-year post-Cambridge (O-Level) Junior Secondary Teachers' Certificate Course with a new intake every two years to alleviate the problems of inadequate accommodation and staffing shared with a neighbouring college for this purpose only. As at present all primary Headteachers must hold a minimum of Primary Higher Teachers' Certificate.

In 1970, there were 695 trainees in the seven colleges - an average of less than 100 in each. It has been the opinion of numerous international education missions that have visited Lesotho in the last ten years that one central and well-equipped institution could conduct the work of teacher education at this level more efficiently and effectively than the seven existing colleges. In addition, the government of Lesotho is concerned that the kind of education currently offered in the country's primary and secondary schools is not preparing students for the developmental tasks outlined in the National Development Plan.

Lesotho is predominantly a rural-agricultural country and consequently its education should be orientated to an environmental and functional approach. Since the key person in any process of internal reform or adaptation of an educational system is the teacher, teacher education would seem to be the logical focal point for change. In establishing a National Teachers' College that will offer a programme less academic and more functional in approach the government hopes not only to gain control over education at the primary and junior secondary levels but to guarantee a general reform of its contents and methods.

The Faculty of Education at the University of Botswana, Lesotho and Swaziland is charged with the education of Secondary School teachers. Various diploma courses (general and special) are offered for this purpose to candidates who qualify for admission. Recently a Mature Entry formula has been devised to encourage teachers to improve their qualifications up to and

beyond a Bachelor of Education degree. The normal students can take a four-year arts or Science degree concurrently with education after a good pass in a Cambridge Overseas Senior Certificate (O-Level) exam.

The supply of these teachers is far short of demand and the prospects are more bleak owing to competition in recruitment by the Civil Service, commerce and industry for young graduates, due to the policy of localisation of senior posts. The alternative source, i.e. the recruitment of expatriate teachers, is fraught with the hazards of maladjustment when it comes to younger and inexperienced teachers whose contracts expire just when they get acclimitized. Our scholarship policy and system of bonding is subjected to criticism from some quarters because of its bias in favour of teacher education and the lack of appreciation of what we consider to be its potential future multiplier effect on other areas of the country's manpower requirements.

IN-SERVICE COURSES

In-service courses for Primary Teachers take the form of:

(a) Up-grading courses for unqualified teachers conducted jointly by the Ministry Inspectors and tutors of Training Colleges (including a considerable number of better qualified teachers exposed to training in U.K. and other Commonwealth countries through the Commonwealth Fellowship Scheme, etc.) This course covers three years with about 6 months (two per annum) residential training and correspondence tuition in the intervening periods leaving to a certificate that guarantees the holders a permanent status and better remuneration while the others are by law temporary in the teaching service.

(b) The same team conducts annual primary headmasters' courses (for one month) aimed at their orientation to change and familiarisation with innovations in curricula or educational thinking generally. More than three quarters of the teachers concerned have been exposed to these courses during the last three years.

(c) Whole staffs of 12 primary schools have been included in an innovative project led by a team from Durham (U.K.) to carry out activity methods and the child-centred philosophy. These schools will also serve as teachers' centres for the surrounding schools. It is hoped that by 1975 forty schools will be involved in this project and as from this year the Faculty of Education teacher educators and the inspectors concerned will be involved in a programme of careful programming and evaluation to ensure its success as, hopefully it may help to promote changes in the whole system which is not only authoritarian and traditional in every sense of the words but adverse to any form of creativity and independent research by teacher and pupil.

(d) Apart from these, teachers hold periodical and/or week-end workshops on curriculum development in special subjects such as English, mathematics and science under the guidance of the Ministry's specialists.

At the Secondary School level there are regular programmes designed and conducted by the School of Education in collaboration with the Ministry officials concerned on various subjects, for each of which there is a national association with a panel that has a right to suggest changes on the sy labus and form of examination. Teachers nominated for these courses are expected to attend and, so far, the University has been able to pay for the expenses out of the Carnegie funds at its disposal.

APPENDIX I

Projections of School Enrolment:

Year	Primary	Secondary
1973	179,738	9,577
1974	184,231	9,766
1975	188,836	10,127
1976	193,556	10,291
1977	198,394	10,501
1978	203,353	10,759
1979	208,436	11,007
1980	213,646	11,282
1981	218,987	11,564
1982	224,461	11,853

Growth rate of pupils' enrolment: 2.5% p.a.

Standard of enrolment represents 7% of the projection

Form A enrolment represents 25% of the projection

Progression through Forms A, B, C and D is based on the following:

A - B = 86% C - D = 40%
B - C = 84% D - E = 85%

APPENDIX II

Teachers in Lesotho by Levels and Qualifications:

1972

Level	Qualified	Unqualified	Total
Primary	2604	1324	3928
Secondary	246	1145	391

APPENDIX III

Student-Teacher Ratios by Levels and Qualifications:

1972

Level	Qualified Teachers	Qualified & Unqualified Teachers
Primary	67 : 1	45 : 1
Secondary	36 : 1	22 : 1

TEACHER EDUCATION IN MALAWI

The training of teachers in Malawi is determined to a large extent by the country's national needs as reflected by the present structure of the teaching profession. There are at present two categories of teachers, namely, University graduates and diploma teachers on the one hand and those with the Ministry of Education Teachers' Certificate on the other. The former are trained specially for secondary schools while the latter teach in primary schools. However, some teachers, such as some of the vocational teachers and teacher trainers, have been trained overseas.

(a) Graduate teachers University graduates with no teaching qualifications are required to enrol for the University Certificate in Education course run by the University of Malawi. The course is in three parts. The course is in three parts. The first part is a residential course lasting about eight weeks during the long school holiday. Students are introduced to the art of teaching through participation in lectures, interdisciplinary seminars, micro-teaching and tutorials. During the second part of the course students go to their respective schools and are engaged in full-time teaching. They are supervised by staff from the University who observe them teaching and provide tutorial assistance with both their teaching and with assignments which are set for this period. The third and final part of the course is another eight-week residential course held during the long school holidays. Students are assessed on the promise they show of becoming good teachers. This assessment is based on the results of the examinations as well as on performance during teaching practice. Successful students are awarded the University Certificate in Education.

(b) Diploma teachers Not all the students who qualify to enter the University of Malawi take degree courses; a good number take diploma courses in Agriculture, Administration, Engineering, Business Studies and Education.

Straight Diploma The majority of the Diploma teachers take the normal Diploma course in Education lasting three years. Students are required to take two teaching subjects and Education up to part I degree level. The purpose of the Education course is to help students to become effective secondary school teachers, capable of adapting themselves to changing conditions in Malawi schools. The course in Education includes such subjects as the History and Philosophy of Education, Psychology and Sociology of Education, Comparative Education; and methodology and Teaching Practice. The best of the Diploma students go on to a two-year B.Ed course.

Special Diploma The introduction of Agriculture in our schools made it necessary to recruit people with either a University degree or Diploma in Agriculture and take a special Diploma course in Education in order to qualify as teachers.

(c) Teachers for Technical subjects in Secondary Schools: Twelve Secondary schools have been equipped to handle subjects like Woodwork, Metalwork and Technical Drawing. The necessary teaching staff for these subjects has been produced from three consecutive yearly intakes, numbering 12, 12 and 8 respectively. The training of these teachers has been a combined

effort of two constituent colleges of the University of Malawi, namely Soche Hill College and the Malawi Polytechnic. Soche Hill College concentrated on teaching methods while the Polytechnic gave the technical element. Teaching practice was supervised by the staff of the two colleges. Apart from technical teachers for secondary schools, a number of vocational teachers trained to instruct either Carpentry or Brickwork has been trained within Malawi. This group of teachers took a 3 years course leading to the Advanced Craft certificate of the City and Guilds of London Institute. Like the other one, this course had a component of teaching methodology.

(b) Primary School Teachers There are at the moment four different grades of teachers in the primary school system. These grades are generally known at T5, T4, T3, T2. T5 is the lowest grade while T2 is the highest. All the training colleges in Malawi offer a two-year course. The initial academic qualifications of candidates determine the grade of the Teacher's Certificate to be awarded. The T5 certificate was awarded to those who enrolled for courses at colleges without having obtained the Primary School Leaving Certificate. Such people had to pass an entrance examination before being accepted at Colleges, and the medium of instruction for the T5 course was in the local language. The Government later raised the entry qualifications to these colleges to Primary School Leaving Certificate and the grading of the Certificate was T4. The entry academic qualifications to the T3 course is the possession of a Junior Certificate and to T2 the possession of School Certificate or its equivalent.

There are eleven small T3 colleges and two T2 colleges scattered all over the country and it was felt that this was expensive and inefficient. The government has, therefore, planned to establish three colleges, one in each region. Two of these colleges are already in existence. Domasi College, which has been training our T2 teachers for several years, will be expanded when it moves to Blantyre later this year. Lilongwe Teachers' College opened in October, 1971. It has accommodation for 540 students, with an annual intake of 270 and will have a staff of 30 when it reaches its optimum level. The third college is still in its planning stages and according to the present plans this will be built in Mzuzu, in Northern part of Malawi. It is hoped that with the establishment of the three colleges the available resources will be used to the full and that there will be greater efficiency in the training of teachers. It is believed that a few years from now the three colleges should be able to produce enough teachers of a better quality to cope with the present shortfall and the rapid increase of the school population. This increase is not a result of population growth. Rather, it is a result of increased parental interest in the education of their children. Every effort is being made to recruit better qualified staff for these colleges, both locally and from abroad. Among the local staff, there are a few graduates and specially trained diploma teachers with varied experience in primary education.

An important milestone in the history of education in Malawi was the holding of the Education Conference in April, 1972. The conference, which was held at the direction of His Excellency the Life President, Ngwazi Dr. H. Kamuzu Banda, gave educationalists and members of the general public an opportunity to review progress in the field of education over the past 50 years. The general feeling was that there had been a lowering of standards in recent years and that there was urgent need to remedy the situation. People were rather sceptical of some of the new methods of teaching, especially those that curtailed the influence of the teacher in a classroom situation. The conference concluded that the teacher should continue to play an important role in the classroom. If it is accepted that learning involves

the mastery of subject matter or specific skills, then the teacher's task is to issue clear instructions relevant to the learning situation and to ensure that his teaching is thorough.

As a result of the recommendations made at the Education Conference, teacher training colleges have had to review some of their programmes. The emphasis has been on the refinement of teaching methods, Students are given clear instructions on how to handle different types of material in the classroom. It is impressed upon them that effective teaching is a result of thorough preparation.

In-service Courses

(a) Primary School teachers Courses for primary school teachers are organized either by District Inspectors of Schools or by Teacher Training Colleges. Such courses are meant to help teachers understand new syllabuses. Ways of teaching the new material are explained and teachers are advised on how to make and use apparatus. In some cases, teachers may help in the writing of a teacher's guide.

(b) Secondary School teachers The Ministry of Education organises courses for these teachers through the Malawi Certificate of Education subject syallabus committees. As in the case of primary school teachers courses are meant to be an orientation to new syllabuses, books and materials.

Upgrading: (a) A diploma teacher may, if he qualifies, be selected to do a two-year course in education and be awarded a B. Ed.

(b) A T2 teacher may, after attending an approved course of training, and provided a vacancy exists in the establishment, be promoted to a diploma status. Alternatively he may, if he qualified, join the university for a degree.

(c) A T4 teacher may be upgraded to T2 under the following conditions. He must pass Junior Certificate examinations and then follow a correspondence course offered by the Malawi Correspondence College. At the successful completion of this correspondence course he is required to attend a residential course at one of the colleges, where college tutors give him face to face tuition. If his assessment is satisfactory, he is awarded a T3 certificate.

A similar pattern is followed by a T3 teacher wishing to be upgrade to T2 but instead of Junior Certificate, he is required to obtain four General Certificate of Education, ordinary level passes including English before he enrols for the correspondence course.

TEACHER EDUCATION IN MALAYSIA

Pre-Service Training

Integration of Primary and Lower Secondary Teacher Training Courses

1. Situation Prior to Integration

In accordance with the principles laid down in the Report of the Education Committee of 1956, (the Razak Report) the Ministry of Education established separate programmes for the training of Primary and Lower Secondary school teachers.

Such a separation was justifiable on circumstantial and administrative grounds considering the distinct demarcation of opportunities for Primary and Lower Secondary schooling available during the early years of independence.

Only 30% of Primary school leavers were selected for lower secondary education during the early period. Consequently the minimum entry qualification into the comparatively larger number of Primary teacher training centres/colleges could not then be raised higher than that of the Lower Certificate of Education (Form III) level, while that for the Lower Secondary Teacher Training Colleges was fixed at the School Certificate and in a number of special courses at the Higher School Certificate level.

Taken in its historical perspective, raising the minimum academic qualification of Primary teacher trainees from a mere Standard VI Primary School Certificate to the Lower Certificate of Education was a big step in narrowing the gap between the quality of our Primary and Secondary school teachers.

However, Secondary teacher training colleges as a whole were staffed with better qualified trainers, enjoyed better facilities and were accorded a higher status and recognition than Primary teacher training centres/colleges.

In Primary teacher training institutions, students were trained as general purpose teachers. In Secondary training colleges students were trained more intensively and extensively in two main teaching subjects.

Although the same core/professional subjects were incorporated in both types of training programmes viz. Education, Physical and Health Education, Language Studies and Methodology, the syllabuses for each subject differed in breadth and depth of content and treatment. The number of hours and the weightage assigned to each subject also differed.

In general the Primary teacher trainee had his efforts spread thin in trying to master content and methodology of a range of subjects while his Secondary college counterpart studied in greater depth around two Lower Secondary school subjects.

The Secondary teacher trainee's curriculum provided for more academic upgrading and enrichment in specific subject areas, in many cases preparing him for higher academic examinations such as the Higher School Certificate or University's Intermediate Level examinations. A fair percentage of our Secondary college products gained admission into Universities and eventually became Graduate Teachers.

Such a system coupled with the higher salary scale accorded to our Secondary college products developed a stigma of social and educational inferiority against our Primary teacher training institutions and Primary school teachers.

Towards an Integrated Training Programme

Report of the Education Committee, 1957. With independence in 1957, the policy of the Ministry of Education as enunciated in the Report was to try to co-ordinate the different training courses to produce teachers with comparable qualifications and quality of training through a common pattern of training, for service in all government and government aided schools.

Report of the Education Review Committee, 1960, (the Rahman Talib Report). The Committee recommended raising the school leaving age to 15 years by the establishment of a new type of Post Primary school known as "Continuation Schools" for the 70% of Primary School leavers who failed to gain entry into the Academic Secondary Schools.

Abolishment of the Malayan Secondary Schools Entrance Examination in 1964, the introduction of the Comprehensive System of Lower Secondary Education and extension of the automatic promotion system through the first three years of Secondary education in 1965 increased the period for universal education from 6 years to 9 years.

The resultant 9-year basic school education programme in the nation's education system emphasises the continuous process of educational growth and the removal of artificially created barriers between Primary and Lower Secondary schools.

These developments in the national education system favoured an integrated Primary and Lower Secondary teacher training programmes.

Expert Committee on Teacher Education. The Director-General of UNESCO convened a meeting of the Committee in Paris on 4th - 5th December, 1967. The Committee while pointing out the vital importance of professional studies in teacher education, recommended that an urgent review of practices and needs in this field be sponsored by UNESCO as part of its recommended review of teacher-education programme as a whole.

The Regional Meeting of Teacher Educators in Asia held at the Asian Institute for Teacher Educators Quezon City, the Philippines 23rd September - 3rd October, 1969 among other things noted the growing trend in the Asian region of considering the entire period of schooling as one continuous unit. The artificial division of the school programme into Primary and Secondary is being gradually discarded. This will in future, eliminate the classification of teachers into two types: Primary and Secondary; and result in unifying the teaching profession. Hence, the need for a common teacher education programme to cover both Primary and Secondary school teachers together.

The Royal Commission on the Teaching Services, West Malaysia 1971 (the Aziz Commission) recorded that the supply of teachers with full Secondary School Certificate has now exceeded the demand and therefore recommended that the minimum qualifications required of Academic Primary and Lower Secondary school teachers be a School Certificate plus professional training in a teacher training institution. These teachers are to be placed on the same salary scale irrespective of the level of schooling they are assigned to teach.

The National Seminar on Curriculum Development in Teacher Education held in Penang, Malaysia, 3rd - 6th December, 1970 agreed in principle to the trend in other parts of Asia to integrate Primary and Secondary teacher training courses.

In March 1971 a committee set up to study policy matters embodied in the report of the national seminar spelt out the rationale, nature and scope and the implications of introducing an integrated Primary and Lower Secondary teacher training programme in the Ministry of Education's teacher training institutions.

In 1972, the Teacher Training Courses of Studies Review Committee, a working committee responsible to the Teacher Training Policy Review Committee drafted a scheme to effect an integration of Primary and Lower Secondary teacher training courses.

The draft scheme was subjected to a series of discussions, processed and modified by various academic and professional committees at the Ministerial and the training college levels, and its final revised form accepted and approved for implementation beginning with the 1973 intake of trainees in all West Malaysian teacher training institutions offering two-year basic teacher training courses.

The Proposed Scheme

During the first year, all student-teachers will follow a common broad based programme geared to teaching the middle level of the basic 9-year school education programme in the nation's education system. This middle level covers roughly Standards IV through Form I, with exposure to Remove Class work.

During their second year of training, student-teachers will be selected to specialize in either -

(i) the Early Childhood level comprising the Lower Primary grades including exposure to Pre-school Education.

(ii) The Early Adolescent level comprising Remove Classes, Forms II and III.

The proposed scheme will thereby produce two groups of teachers -

(i) Group A; able to teach from Standard I through Form I

(ii) Group B; able to teach from Standard 4 through Form III.

Courses of studies under the proposed scheme are grouped as follows -

(i) Professional Education Courses: Education, Audio-Visual Education; Library Utilization and Management; Civics.

(ii) Language Proficiency Courses.

(iii) School Subject Courses.

(iv) Co-curricular Activities, including Community Service Activities.

(v) Practical Teaching.

Changes to the existing training programmes incorporated in the proposed scheme are:-

(i) The introduction of a two-year common Personal Enrichment Course in Civics in line with the recommendations of the "Review Committee on Aims and Objectives of Teacher Training."

(ii) Basic language courses aimed at developing proficiency in the Malaysian Language and English.

(iii) The academic content courses will focus on topics in the relevant school syllabuses and discussions on various approaches/methods in teaching the topics. Enrichment and upgrading of students' knowledge of the content of the academic subjects will be through an increase in the breadth and depth of their knowledge pertaining to topics in the school syllabuses <u>not</u> through additions of further topics to syllabuses <u>in</u> line with syllabuses for higher examinations such as the H.S.C. or Universities' Intermediate Level examinations.

(iv) Students will have practice teaching in both Primary and Lower Secondary Schools.

(v) Students are required to participate actively in one uniformed youth movement throughout their training and develop the necessary knowledge and ability to assist with the organization of the movement.

(vi) Students are also to participate actively in at least one organised game and a club/society, per year and learn to organise the game and club/society.

(vii) Students will receive guidance in the organization of community services and be involved in practical welfare and social services to the underprivileged during their training.

(viii) A course in library management and utilization for all students.

A modification of this scheme supplies to the training of teachers of Islamic Studies, Commerce, Industrial Arts and Agricultural Science.

The proposed scheme does not deal with the training of teachers for Secondary Vocational Schools.

Proposed Scheme for an Integrated
Two-Year Basic Teacher Training Programme
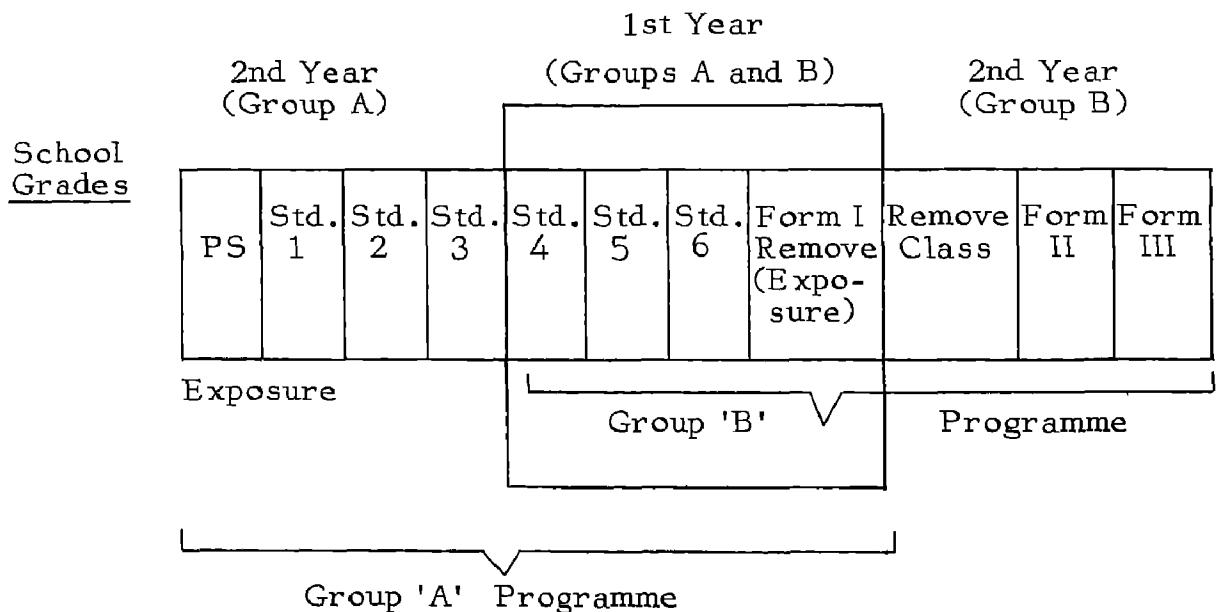
Year of Schooling	-	1	2	3	4	5	6	7	8 or 9	9 or 10
Age	5	6	7	8	9	10	11	12	13 or 14	14 or 15

In-Service Training Courses

The Teaching of Mathematics and Science

1. In keeping abreast with the curricula changes taking place in the teaching of Science and Mathematics, Malaysia is actively involved in curricula changes affecting both the Primary and Secondary schools.

A scheme for re-training of Mathematics and Science Teachers has been effected to meet the changes.

2. Primary Level

A programme to up-grade and enrich the teaching of Mathematics and Science in Primary Schools especially those in rural areas was initiated in 1968. This programme known as the Special Project is committed to the following activities:

(a) To write and distribute guidesheets on the teaching of primary mathematics and science using the discovery method.

(b) To provide in-service training at state levels to teachers using the guidesheets in order to ensure that the teachers fully understand the rationale and the methodology stipulated in the guidesheets.

(c) To establish communication between the centre and the teachers in the classroom and to collect and collate feedback materials and to evaluate the extent of the behavoural changes achieved in the teachers and pupils.

Guidesheets for the teaching of Mathematics and Science in Malay have been prepared printed and despatched to teachers covering about 5,000 classrooms.

In-service courses in the proper use of the guidesheets have been conducted systematically at the national, state and district levels. The implementation of this plan has also meant the creation of 'Centres of excellence' and the training of 'Key Personnel'. They in turn will spread the training and guidance work in these subjects to other teachers at the ground level.

Besides the in-service courses for teachers, there have been seminars and workshop sessions for lecturers from Primary Teacher Training Colleges, members of the Federal Inspectorate and representatives from the State Education Offices.

The writers, members of the Federal Inspectorate as well as the organisers from the State Education Offices have been making regular visits to the schools making use of the guidesheets in order to evaluate progress from time to time.

3. Lower Secondary Level

Malaysia has introduced Integrated Science and Modern Mathematics courses on trial basis in its Lower Secondary Schools.

Integrated Science which has its origins in Scotland has been modified to the Malaysian needs. Besides modification attempts are being made to add new material to the existing course.

Integration of Physics, Chemistry and Biology and presentation as a theme is a new idea in this country. Further, the course lays a heavy emphasis on practical work guided by worksheets. Hence, greater responsibilities and a more fundamental approach in teaching methods are required of the teacher. Consequently, the Ministry is embarked on a major undertaking of giving an in-service course to teachers in the trial schools.

The emphasis on practical work has also created demands on schools for science equipment hitherto not used by the schools. A programme of phased purchasing of equipment and considerable innovation and substitution of equipment is in progress.

A newsletter is also circulated whereby teachers have an opportunity of exchanging ideas. In addition, it stresses teaching techniques in keeping with the objectives of the syllabus and attempts to impart a deeper understanding of scientific principles.

The introduction of this new syllabus, and its stress on practical work has made it necessary to give a training to the laboratory attendants/assistants. Besides the general procedures and safety measures in laboratories, they are also given training in making cheap apparatus and to complement the work of the teacher.

At present 240 schools are trying out the new syllabus in Forms I - III. First group of 22 schools will be sitting for their terminal examination after three years work in this new course. Pupils from these schools will be sitting for a special paper of objective type of questions in keeping with the objectives of the course.

Personal visits, group discussions with the practising teachers and the 'feed-back' received from the teachers give an impression that the course has gone down well. The pupils' participations in practical work are most encouraging.

The curricular activities in Mathematics at this level has kept pace with similar activities in Science. In 1969, a committee was set up to consider a new syllabus in the light of changes taking place. It produced a syllabus, largely influenced by the work of the Scottish Mathematics Group, which aims to provide a useful experience of Mathematics for those pupils who will terminate their studies at the lower secondary level. At the same time it attempts to lay a strong foundation for the future needs of the pupils in the Upper Secondary school.

About 75 trial schools are attempting this new syllabus, and teachers from these schools are given in-service courses

where the following philosophy is stressed:

(i) Be practical, because pupils learn best from things which they do themselves;

(ii) Be relevant to students experience so that mathematics become a real study of the real world;

(iii) Make it enjoyable and encourage investigation and discovery methods so that the pupils acquire an interest in and not develop fear of Mathematics;

(iv) Be progressive by relating new results to old ones by reasoning processes which are appropriate to pupils' age and ability.

(v) Use modern content where this fits in with the first four requirements.

(vi) Be both corrective of impoverished experiences and be adaptive to the variety of ability.

Pupils' books based on the new syllabus and adapted from Scottish materials have been published for the first two years both in English and Malay. Teachers have been provided with guide notes, reference books, apparatus lists, specimen examination questions etc. There have been visits to schools and meetings at state levels to solve common problems and to evaluate the success of the programme. Attempts are also being made to inform and involve more and more 'key personnels' at various levels through circulars, seminars and visits to the trial schools.

4. Upper Secondary Level

The changes in the Lower Secondary Science has made it necessary to make changes at the Upper Secondary level. Since 1968, local officers together with the tutors, from U.K. under C.E.D.O. aid has been preparing Malaysian Courses for Physics, Chemistry and Biology based on the Nuffield 'O' level courses.

Through 'exposure' in-service courses in Nuffield Science 'writing sessions' and practical work, the trial materials are being prepared for Form IV and V pupils. The trial materials for Form IV in the form of Teachers' Guides and Pupils' Workbooks for Physics, Chemistry and Biology have been published. Form V materials are under preparation.

The exposure in-service courses are conducted with the aim of familiarising our Upper Secondary science teachers with the Nuffield philosophy and approach and the suitability of the material for Malaysian Schools. The experience gained has been the basis for planning and producing a balanced course for two years which forms a natural extension to the course at the Lower Secondary level.

The introduction of the new courses has also made it necessary to prepare a new list of apparatus of trial schools. Other supporting activities has involved research on the suitability of the local biological material that can be used in these courses.

5. Other Activities

Besides activities in curricula changes the Ministry has been actively encouraging out-of-school science activities through science exhibitions at school, district and state levels. With the co-operation of the private sector, the Ministry of Education organised a National Science Exhibition for the second successive year.

Health and Nutrition Education

1. Health defined by the World Health Organization "is a state of complete physical, mental and social well-being and not merely absence of disease or infirmity".

2. Based mainly on the above concept, the Ministry of Education emphasises School Health and Health Education. For this it undertakes various activities on its own, and in collaboration with other governmental, private and voluntary agencies.

3. Health Education today is a far cry from the Hygiene and Physiology of yesterday. Today we not only develop knowledge but also attitude and practice. Therefore we look into not only classroom teaching (Pedgogical Approach) but also out of classroom activities (Non-Pedagogical Approach). What the children learn in the classroom is related to their experience from the environment, as well as the health and nutritional services provided through inter-departmental activities.

4. Teacher preparation for School Health and Health Education is a very important activity. The pre-service syllabuses in Health and Physical Education were revised in 1970 and reviewed in 1972, as part of overall revision of the Ministry of Education's Teacher Training Curriculum.

5. Preliminary for teachers in-service were started in 1970 and up to date 500 "key personnels" have been trained. Another 400 will be trained this year.

6. Preliminary courses for ground level teachers will be conducted this year for about 1,000 personnels.

7. A Health and Nutrition Education Centre has been established in a rural township to train "key personnels" as specialists.

8. Educationists are also being trained overseas as Specialists in School Health and Health and Nutrition Education.

PRE-SCHOOL EDUCATION

1. The Ministry of Education does not provide pre-school education in the national school education system.

2. In January 1972 the Malaysian Parliament passed an amendment to the Education Act 1961 to grant the Government through the Ministry of Education some control over private kindergartens in the country.

3. The amendment is to enable rules or regulations to be made to control, supervise and regulate kindergartens.

4. The Ministry of Education has initiated steps to provide guidance and supervisory services to kindergartens at state level.

5. Specialists in Pre-School Education are being trained, and a Guide Book for Kindergartens prepared.

6. A one year full time Supplementary Course in Early Childhood Education for serving teachers and training college lecturers was started in 1972. Thirty personnels received training in 1972 and a second group of thirty will be trained this year.

7. Pending the availability of fellowships a small number of educationists will be sent for higher level specialist courses in Pre-School Education abroad.

TEACHER EDUCATION IN MALTA

Malta is in the process of re-organising its teacher-training but it is too early to define the lines on which re-organisation will take place since the Working Committee responsible for working out plans has been set up only very recently. Re-organisaion has been made necessary by the cumulative effect of the following:

i) lack of planning as regards teacher supplies and teacher specialisation, with the result that the two training colleges have turned out too many primary teachers and not enough secondary school teachers;

ii) selection procedures for entry into College which took little account of the specialised needs of the secondary schools;

iii) a sharp drop in the birthrate with the result that between 1970 and 1980 there will be 18,000 children less between the ages of 5 and 16;

iv) a very rapid expansion in secondary schools. Secondary education for all was introduced three years ago. This has meant a reduction of the compulsory (five years of age to eleven) primary school course from eight years to six, and the introduction of a five year Secondary School course for all, with the compulsory school leaving age at 14 to be raised to sixteen within the next three years. Though a number of primary teachers were redeployed in secondary schools, there are still a considerable number of redundant teachers in primary schools. At the same time needs of secondary schools in certain subjects could not be met. The needs of the Secondary Schools will continue to expand up to 1975, after which there will be a drop in the teacher requirements. If the need for secondary teachers in 1975 is fully satisfied and if there is no expansion in upper secondary there will be a considerable number of redundant secondary teachers in 1976;

v) lack of provision for training teachers of technical subjects linked with rapid expansion in technical and vocational education;

vi) the change in bias from pre-service to in-service training;

vii) the rapid social changes that have taken place in Malta in the last few years. While 25 years ago, co-educational Training Colleges were unacceptable, non-residential, co-educational teacher training would be fully accepted now;

viii) the small scale of Malta and the small numbers of teachers required. The Education Department administers about 110 primary schools with a pupil population of around 26,000, 38 secondary schools, 1 upper secondary school, 2 Technical Institutes and 2 Trade Schools with a student population which will stabilize around 24,000 in 1976. The maximum teacher complement is around 3,000 with a wastage rate of around 150 teachers a year, mostly due to the fact that female teachers must resign on marriage. With a maximum replacement rate of 150 teachers, two training-colleges is one too many, especially as facilities at the University have not been fully explored.

Present situation

There are two residential teachers' Colleges in Malta - one for females and one for males. The one for females is owned and run by the nuns of the Order of the Sacred Heart on contract with Government. Up to two years ago it had an output of 120 female teachers a year, mostly for primary schools. Two years ago the intake was reduced to 100 and last year to 80. There has been no intake this year.

The one for males is owned by Government but it is run by the De La Salle Brothers on contract with Government. Up to two years ago it had an output of 60 male teachers a year, mostly for the primary schools. In the last two years the intake was reduced to 30 and there was no intake this year.

Both Colleges have a number of teachers seconded to them as full-time and part-time lecturers, and both have organised a number of in-service courses.

Last year the courses at both Colleges were extended by one year to three years.

Intake into both Colleges is regulated by the Public Service Commission since successful students are assured of a post in Government Schools as soon as a vacancy arises. Attendance at both Colleges is free and students receive an allowance.

The courses followed are adaptations of those set by the London Institute of Education which provides external examiners in the professional subjects.

(i) The following decisions have already been taken and the Working Committee has to work on the basis of these decisions:

(a) teacher training will no longer be operated under contract with any external body; it will be organised and run by newly appointed officials in the Department of Education;

(b) teacher training will take place in a single institution;

(c) the new institution will be non-residential;

(d) with the exception of the Principal and a limited number of lecturers, the main body of lecturing staff will consist of part-time lecturers who will generally be serving teachers, sharing their time in class teaching, teacher training and research work.

It is felt that the new institutional set up, even if known, will not be of general interest and remarks will be limited to the curriculum aspect of innovation.

(ii) (a) In the case of pre-service training for non-graduates the Working Committee will have to take into consideration the need to redeploy teachers from primary schools to secondary schools and to devise a felxible course to facilitate this.

Consideration has to be given to the amount of 'basic' courses all

students will take as well as to the length and location of the teaching practice. It has been suggested that as much as possible methodology should be covered in the classrooms and that teaching practice should be as long as possible and under the supervision of tutor teachers who will be responsible for a very limited number of students in their school. In the first year all students will do teaching practice in primary schools, in the second year they will do teaching practice in secondary schools/technical schools and in their final year they will do it in a primary or secondary school or technical schools according to their own choice. The 'bias' in teaching practice will also be linked up with a bias in educational psychology (Child Development).

All students will cover courses from a general group of subjects (both professional and academic though there should be no sharp borderline between these) preferable on a system of units or credit points. Certain units would be compulsory for obtaining the Certificate, others not.

Each student will also take a special subject at a high enough standard to enable him to teach it up to top classes in secondary schools. The possibility of linking this aspect of the course with courses covered at the University or the Malta College of Arts, Science and Technology will be explored.

(b) For graduates who want to become teachers, the course will be shorter and will concentrate on teaching practice and the professional subjects with a limited amount of compulsory units from other general or cultural subjects and activities.

(c) In-service courses will offer special difficulties since purposes of these courses might be grouped under three main headings:

i) those intended to help up-grade teacher from primary schools to secondary schools;

ii) those intended to help teachers fill in gaps in the knowledge of the subject they teach. This type of course has a heavy overlap with the previous one;

(d) In-service courses will be one of the main functions of the new institution. These courses might be grouped under the main headings:

i) those intended to help up-grade teachers from primary schools to secondary schools;

ii) those intended to help teachers fill in gaps in the knowledge of the subject they teach. This type of course has a heavy overlap with the previous one;

iii) those intended to bring teachers up to date with recent developments in teaching. Perhaps the best approach to this kind of in-service training is the one of involving the teachers concerned in appropriate research work.

Steps are being taken to initiate and encourage the setting up of Teachers' Centres to supplement the work of in-service training done by the College of Education. These Centres will offer teachers better opportunities to meet, to discuss common problems, to establish working groups in curriculum development and also to conduct specific research work.

TEACHER EDUCATION IN MAURITIUS

Up to now Mauritius has catered for the Primary School level only in respect of Teacher Education. There is one Teacher Education College providing for a yearly intake of some 275 general purpose teachers and some 100 teachers of Oriental Languages. The minimum entry qualification for course (a) general purpose teacher is:

> a Cambridge School Certificate with at least a credit pass in English, French and Mathematics - or an equivalent General Certificate of Education in five subjects including English, French and Mathematics.

The course is spread over two years, alternate terms of a three term year being spent in college and in schools. The theory side is done in college and the practical side in schools under supervision of College Tutors. This is a change from a previous one year in college one year in schools pattern. The alternating of theory and practice proves a more effective form of teacher education though with the rather large incidence of teachers on leave of some sort it has not always been possible to attach students to cooperating teachers and thus ensure a balance of observation and actual teaching practice.

There are, however, two demonstration schools attached to the Teacher College where students may have the equivalent of teaching laboratory situations and learn the habit of self-criticism under guidance of college staff.

There is no equipment for micro teaching. Short refresher courses are also organised by the college for the upgrading of teachers in Modern Mathematics and Elementary Science and also for the introduction of new text books on the syllabus.

The college is now using language laboratory facilities for the improvement of student language skills in English and French - and also on short refresher courses for teachers.

The short courses are now supplemented with vacation courses in specific subjects such as English, Mathematics, and Elementary Science. The emphasis is now being laid on training trainers. These courses are normally of 3 weeks duration.

There are regional sessions organised jointly by the Inspectorate and the College Staff whenever new books are introduced. These cater for teachers in charge of classes where the books are to be used. Radio and T.V. lessons, teacher orientated, are made to top these arrangements, and handouts and guide sheets are given to the teachers concerned.

Pilot projects under the joint care of the college and the Inspectorate operate before the introduction of new text books and new approaches - e.g. Elementary Science and the shift from Geography to Environmental Studies in Lower Primary.

Students and teachers are not at the moment given anything on testing and evaluation so that much is left to chance. There is now a serious demand for the training of teachers especially for the pre-primary stage.

Apart from a course organised for them in 1972, the opportunity is provided for them to follow classes at Primary Schools in their neighbourhood; and the services of one Inspector in particular, and of the other inspectors in general, are available for consultation and guidance. Nothing very systematic has been possible up to now in that field, but relations are maintained to keep the door open for more organised action in the future.

(b) For the Oriental Language Students the minimum qualification for admission to college is 4 subjects at School Certificate level including the Oriental Language and English/English Literature.

Qualifications awarded by recognised overseas or local bodies in the respective languages e.g. Hindi, Urdu, Tamil, Telegu and Marathi are also accepted.

All students must have a working knowledge of English. In college while the bulk of their training concentrates on the language - these students will teach at Primary School - they are now also given an allround training in Mathematics, Geography and other aspects of the Primary School curriculum, including Physical Education, Health Education, Arts and Crafts and Music.

Vacation courses provide training for the teaching of specific subjects e.g. Modern Mathematics. The Secondary Level will be provided for by the Institute of Education which is currently being set up in Reduit to deal with Secondary Teacher Education at 3 levels:

i. graduate
ii. non-graduate
iii. technical and vocational

This Institute of Education will incorporate the present Teachers' Education College, and will include an Audio-Visual Section, a Curriculum Research and Reform Section, an Examinations Centre etc. Plans for the Institute are now being drawn up by the Project Manager designate provided by Unesco and financed by UNDP.

TEACHER EDUCATION IN NEW ZEALAND

Changes to primary teacher training programmes in New Zealand in recent years need to be seen in the context of translation from two year to three year training. The longer course has in itself been an innovation and has required review and re-design of existing programmes. Major reviews of secondary teacher training have also been undertaken in an effort to provide more effective programmes geared to the changing needs of secondary schools. Brief outlines of current innovations follow:

Learning through Different Teaching Styles

To combat the problems associated with teaching large groups, variations in course presentation have been introduced. A choice is offered students of one of the following learning styles:

(a) a course with emphasis on formal lecture style and in which the students experience a passive learning role;

(b) a course offering an emphasis towards group discussion rather than lecturing or individual work;

(c) a course offering learning through individual study and research with lectures adopting a consultative role.

Aside from the advantage of offering choices to students we have found lecturers benefit from the opportunity to teach in a style of their choice.

Developing individual learning capability

A student's individual learning skills are developed by offering 'learning packs' which serve as study guides. In this way a lecturer offers a course of study as a written prescription with closely detailed instructions for associated study. Students work through the guides with freedom to pursue individual interest and with an invitation to call for lectures or seminars as they see the need. The lecturer adopts a strong guidance role and builds in set lectures or tutorials as required. The emphasis is on sharing and learning together.

A progression of teaching skills

There is a need to relate education courses to the curriculum studies teaching in other departments in a college. In response to this, an education department has critically examined its own courses, taking account of the arguments in current educational literature that education programmes in teacher training institutions are too heavily weighted to theory and require re-structuring to include emphasis on the development of teaching skills.

Accordingly, a progression of teaching skills has been developed that is closely linked with general education studies. The progression, which is developed over the three year course, is designed to:

(a) form a teaching skills pattern to which other departments can refer in planning their own teaching programmes;

(b) form a set of minimum performances in teaching skills to be generally expected of students on various school practice teaching sections. (Headteachers and teachers were invited into the planning of the progression and now share in its operation);

(c) provide a set of criteria by which staff, students and teachers may judge teaching effectiveness.

It is hoped to develop the value of this programme by studies in interaction analysis and other means of examining teaching performance.

Research

Approval has recently been given for teachers' colleges to undertake approved research projects related to their own work and the work of the schools. Lecturing staff undertaking such approved research may be replaced by relieving staff for a term or up to one year. Many studies are already in hand and two have been approved for additional staffing, one in the field of reading disability.

Teachers' college and schools liaison

A strong feature of New Zealand teacher training has been the close liaison developed between the teachers' colleges and the schools. In recent years colleges have developed even closer links with those schools where students gain practical teaching experience. Small teams of lecturing staff now work closely with teachers in 3 or 4 "associate" schools. Follow-up sessions with teachers and students evaluate student progress, and the appropriateness of the work undertaken by students. Closer links have also been developed between the professional studies taught in the college, and classroom teaching practice requirements.

Selection procedures for entrants to teacher training

Large numbers of students are now offering themselves for preparation as primary teachers and it is desirable that more refined selection procedures are developed. To this end, some groups of applicants are asked to undergo extended selection procedures in addition to the normal interview. These additional selection procedures include:

(a) a teaching experience with a group of infants;

(b) a one-to-one interview with an interviewer not on the original panel;

(c) a written response to a film sequence depicting a teaching situation.

The applicant's success in dealing with these three situations is carefully evaluated and assessments given for each element, as well as an overall assessment. It is intended to carry out follow-up studies during the college course and in subsequent teaching.

Closed circuit television and the use of video-tape

A pilot scheme to assess the usefulness of closed circuit television

and video-tape recording equipment in teacher training has been developed in one teachers' college. The equipment provided includes two C.C.T.V. cameras and monitors for viewing teaching situations developed in a modest studio; and a mobile video-tape recording van equipped with two cameras and two video-tape recorders. This equipment has been used in the following ways:

(a) As illustrative material for use in lecture programmes;

(b) Closed Circuit Viewing: This has been found particularly useful in the Department of Special Education, where it is possible to demonstrate live, specific remedial techniques with deaf children and for speech correction, the demonstration of psychological and audiological tests, and interviews with parents;

(c) Immediate Feedback: Probably the most important use video has been to provide an immediate feedback of students' performance. This has been particularly useful in micro-teaching, gymnastics, music, language, etc.

(d) Testing and Evaluation

(e) Conversion of Tape to Film: For long term storage of taped material and for easier sharing with others, taped material can be transferred to 16 mm film.

It is proposed that all colleges will in the first instance have available for their use the same range of equipment along with one or two portable video-tape recorders. The equipment provided for the pilot scheme has proved suitable for work in teacher training.

Teachers' College - university links

Students in training for teaching have traditionally been encouraged to undertake concurrent university studies. Those who are successful in their first year may be awarded full time university studentships. In that way a number of students complete the course of training with a college diploma and a university degree.

Two teachers' colleges have developed close associations with the adjacent universities by becoming part of the university's school of education and preparing students in college courses for university diploma and degree examinations. Teachers' college lecturing staff involved in the courses work closely with university staff in designing the course and setting examinations.

Minority group culture and language studies

All colleges have recently introduced compulsory courses concerned with the culture, language, and the social and educational needs of New Zealand's main minority group. Maori language lecturers have been appointed and substantial three year courses are being offered in an effort to increase understanding of cultural difference in a bi-cultural society.

THE TEACHING OF A MINORITY - THE MAORIS OF NEW ZEALAND

People and population

The population of New Zealand comprises two main ethnic groups - a majority who are Caucasian, most of whom have emigrated from the United Kingdom since the country was first settled in the early 19th century, and a minority who are Polynesians, known as Maoris, who occupied the country at the time European colonisation began. At the latest census Maoris numbered 227,400 out of New Zealand's total population of 2,861,900, a proportion of Maoris in the total population of about 8.4 per cent. Between 1966-1971 the percentage increase of the Maoris was twice that of the total population. About fifty per cent of the Maori population are under 15 years of age which means that there is a low death rate, and a high birth rate. By the end of the century it is estimated that about 15 per cent of the total population will be Maoris.

Historical background

New Zealand is a racially integrated society. The British Government at the time of annexation intended that Maoris should not be exploited and that policies of assimilation of the races should be actively developed. A majority of New Zealanders today are in favour of policies which strengthen the integration of the races. This in turn is made easier by the capacity of the Maori people themselves to adapt and to meet the demands placed on them by European society.

Government policies in relation to the Maoris have changed from protective ones to those which are aimed at providing equal opportunity for all. To attain this goal, measures which are unequal, have been employed. Nowhere is this more true than in education where since 1840, when New Zealand was annexed to Britain as a Crown colony, the Government has acknowledged its responsibility for the education of the Maoris. In the first instance grants were made to mission schools, but later Government undertook direct responsibility for setting up a secular school system. Separate schools for Maoris, which did not, however, exclude others, were provided largely because centres of Maori population were separate from centres of European population. Separate Maori schools continued for ninety years, until 1969. These schools operated under different regulations from those provided by local boards for the community at large, had their own staffing arrangements and provided a curriculum aimed at meeting the particular needs of Maori children. The separate Maori schools with their special conditions were a genuine attempt to offer what was considered to be an appropriate education for Maoris.

Over the years that the separate Maori schools existed, many Maori children, however, attended local board schools. In 1928 over 50% of the Maori primary children attending school attended 746 board schools and just under 50% attended 134 Maori and 11 mission schools. In 1969 when Maori schools were transferred to board schools, seven times as many Maoris attended board schools as attended Maori schools. All state financed schools have throughout our history been open to Maori children.

Today, no vestiges of the separate Maori school system remain. Maoris are educated alongside Pakehas* at all levels of the education system, from pre-school to university. The transfer of Maori schools to board control enabled the special kinds of assistance that had previously been available only to pupils at Maori schools, to be extended to all Maori pupils. The effort to provide equal educational opportunity continues but through greatly expanded special measures which are themselves now an integral part of the education system and teacher training programmes.

Current trends

For a number of years two trends concerning Maoris in New Zealand have influenced educational policies. The first is demographic, the upsurge in Maori population altering not only the balance of population between the races but also altering drastically the balance between youth and age in the Maori sector. Between 1955 and 1970 the number of Maori pupils at primary schools doubled and at secondary schools trebled. The second trend is social and economic; a movement towards the towns and cities of young Maori labour unable to support itself adequately on its own lands, and seeking the greater economic opportunities available in urban areas.

These trends have resulted in a greater mixing of the races in the community at large and in all levels of the school system. More and more Maori children have been enrolled and have become a significant minority in schools where previously there were none.

The changes resulting from this increase in Maori population and the movement of Maoris to urban areas, hastened the transfer of Maori schools into the locally controlled elected board system. The rate of Maori population increase and the movement of Maoris to urban areas has continued. This has focussed attention on the need to take special measures within the schools at large to assist Maori children to gain an education which enables them to develop their talent to the full and best fits them to enter fully into life in a bi-cultural society.

Race relations

A broad issue which has also brought the education of Maori children under scrutiny is the highly publicised one of race relations. Many New Zealanders feel that effort and active policies are needed in order to keep race relations in New Zealand in a healthy state. The school system and policies pursued in it to provide for the special needs of minority groups are seen as positive ways of building better attitudes to other races within our own bi-cultural community.

In recent years too, other Polynesians from South Pacific countries have immigrated to New Zealand and form important minorities in our larger cities. In some city schools these Pacific Island Polynesians comprise as much as 80% of a total school roll and require special teaching. In most instances English is for them, a second language and all instruction in New Zealand schools is in English. It is easy in making special provisions for a Maori minority in the school system to associate an allied racial group - the Pacific Island Polynesians - with them and to consider

---

* Pakeha: a Maori term commonly used to describe a non-Maori.

their needs will be met by provisions being made for Maoris. In fact, their needs may be different and some special provisions are being made for Pacific Islanders.

The self image of the minority group child

An objective which has influenced the nature of the special measures which have been introduced in connection with the teaching of minority groups in New Zealand is that it is essential that a child's self image is enhanced by his knowledge that cultural differences are understood, accepted and respected by all with whom he associates. It is important that the minority group child - in our case the Maori and the Pacific Islander, a few Dutch and some Chinese - should feel personal worth and a sense of identity. For the Maori, indigenous to New Zealand and yet for many years swamped by the introduced culture of the majority, an understanding by the Maori child himself of Maori culture is necessary. It is necessary for the Pakeha too, in order that he might more fully appreciate the history, achievements and values of the Maori. Recent developments have diversified the ways in which elements in the school programme contribute to the achievement of this objective. In particular, a new emphasis is being placed on understanding Maoritanga* and the importance to the Maori of the Maori language. Pakeha teachers and children are being made more aware of the cultural values which form an essential part of the Maori way of life. This is no new development for in the 1930's in Maori schools Maori activities such as arts, crafts, song and dance were encouraged, but usually as occasional studies. Outstanding Maori leaders campaigned through the country to revive in schools and teachers' colleges the knowledge of their traditions. Knowledge of Maori arts has been further supported in more recent years in all schools by the development of handbooks for teachers which inform and encourage the teaching of the appropriate skills. Advisers with special knowledge assist teachers throughout the country, but particularly in areas of greatest concentration of Maori population, to teach Maori arts and crafts. At primary level many of these skills and activities are included in social studies and physical education syllabuses, and are further supported by films, tapes and records of songs, games and dances, so that Pakeha and Maori children may learn that things Maori have significance in their own right and yet are a part of the New Zealander's cultural background.

Maoritanga includes much more than arts and crafts, songs and dances. It is a vital, constantly evolving pattern of living which is of fundamental importance to the Maori people, embracing both their way of life and their view of the universe. Elements of Maoritanga relating to cultural values, history and customs are included in syllabuses in social studies, liberal studies and Maori language studies themselves.

The classroom teacher

In the final analysis it is the attitude of the classroom teacher, the quality of inter-personal relationships in the classroom and school, and the establishment of good working relationships which gain the confidence of pupils and which ultimately foster educational achievement. More important than any other set of factors - size of class - organisation - equipment - and so on is the empathy of the teacher with his pupils, and his

* Maoritanga: an all embracing term for things Maori, including the culture, mores, spirit, language and attitudes or Maoris.

skill in using their strengths to bring about greater motivation and success. Bi-cultural teachers are needed, capable of predicting how a child of another culture perceives and acts in the classroom, who knows well the background of Maori children and is able to draw upon their experiences and culture in the classroom.

Many measures have been taken to inform present teachers about Maoritanga and the values and needs of Maori children and the importance of these for the Pakeha too: in-service courses are available for teachers; an advisory service for teachers in schools with large numbers of Maori pupils; and publications have been produced specifically designed to inform and assist teachers in various aspects of work with Maori children.

Advice on policy

In 1953 a widely representative group which included representatives of the Maori people was brought together to consider Maori education issues. It made a number of important recommendations including the transfer of Maori schools to board control. In 1956 the National Advisory Committee on Maori Education was established directly as a result of the earlier representative meeting and has since been the main machinery for advice to the Minister and the Department of Education. The National Advisory Committee on Maori Education is a continuing body, half of whose members since 1969, have been Maoris. In 1970 it issued a report on Maori Education which forms the basis for present policy developments in Maori education for all levels of education and in its recommendations, charts a course of action for Maori education for the 1970's. Already many of the Committee's 1970 recommendations have been implemented and the benefits of some of the supporting measures are becoming apparent.

In-service training

A network of in-service assistance for teachers is available in the form of some national week long residential courses for selected teachers who are replaced by relieving teachers. One and two day courses are also held locally which are conducted by advisory staff officers who are often practising teachers seconded for this work. From time to time voluntary vacation courses are offered.

In addition to these efforts which are aimed at assisting teachers in particular ways in their work with Maori and Island children, correspondence courses for teachers, offered through the Department of Education's Advanced Courses for Teachers provide opportunities for practising teachers to learn Maori and to learn about teaching children with language difficulties. University degree study of Maori language, as part-time and extra-mural studies as well as full-time studies are also available to teachers who wish to extend their knowledge in this field.

Initial training of teachers

It is in the initial training of teachers that a concentration of effort is being directed. Teachers' colleges have for many years included, in various courses, elements relating to Maoritanga and the needs of Maori children. Usually these have been small sections of broader sociological and educational studies or syllabus studies. One or two colleges have for some years offered optional Maori studies of a substantial nature but these were usually within a Social Studies Department.

All Colleges now offer a compulsory course in Maoritanga of at least 30 hours, for all students, in addition to elements in courses which deal with the particular educational needs of Maori children. The Maoritanga course will ensure that all students know the basic cultural patterns of Maoris and Pacific Islanders, how to pronounce common Maori words, phrases and names and something of the sociological issues which exist in New Zealand. Further, all Colleges will from this year have appointed to the staff a Maori language lecturer who will offer a three year Maori language course as an optional study. Some Colleges will in addition offer three year *Selected Study, Maori Studies Courses. These courses will include a Maori language component but will primarily consist of a study of Maori society and culture in the New Zealand society. From them would emerge a background of knowledge and skills that will develop their appreciation of Maori culture and values and thus assist them to teach effectively in Maori and multi-cultural situations.

A number of teachers' colleges have reported on the value of field studies to rural Maori communities where for a week or more students immerse themselves in Maoritanga, including present issues affecting Maori and Pakeha, by living with a predominantly Maori community and experiencing a Maori marae or meeting place. One teachers' college has involved staff members in a weekend field study of this type.

An extra curricular activity which all teachers' colleges sponsor is a so-called Maori Club, of which Pakehas as well as Maoris are members, where students enjoy opportunities to study crafts, songs, and dances and learn of various aspects of Maori culture and tradition.

Maori language

The opportunity to learn the Maori language is important to Maori people and may provide a deep appreciation of the culture. Opportunities for studying the Maori language have therefore been greatly increased in recent years. In four years the number of Maoris and Pakehas studying Maori in secondary schools has doubled and in the last two years Maori has been introduced into those intermediate schools adjacent to secondary schools where Maori is taught. An Advanced Course for Teachers, a Correspondence Course in Maori language is now available to certificated teachers. All teachers' colleges from 1973 will offer Maori language courses to teachers in training. Most universities offer courses in Maori language and extra-mural degree courses in Maori language are available. Since 1957 under the direction of an Advisory Committee on the Teaching of Maori a comprehensive programme of publications in Maori has been carried out for children studying the language and for teachers of Maori. Measures being taken are also aimed at providing an adequate supply of teachers for what is a growing demand for Maori language courses in the school system. The new place being given Maori language in our society is contributing to the objective of enhancing the self image of the Maori himself and increasing the respect in which he and his culture is held by the Pakeha.

---

* Selected studies are substantial studies in depth primarily for the student's own general education and personal development but usually related to the school curriculum at certain points. Each student undertakes two selected studies from 9 options offered over the 3 year course and comprising about 200 hours in each selected study in each year.

There are some who believe that all pupils should be compelled to learn Maori. They argue that, since language enshrines the unique spirit of a culture, all Pakeha and Maori New Zealanders must be equipped with a working knowledge of Maori if a proper basis of sympathy and understanding is to develop between them. Against this it can be argued that bilingualism is not necessarily a safeguard against racial disharmony, that the introduction of a compulsory language study could work against a better understanding and though desirable the study of a language is not essential to the building of bridges across cultural gaps. In New Zealand at present in any case, there are not enough teachers of Maori to support such a policy.

All educational policies concerned with teaching the Polynesian minorities in New Zealand are directed towards equipping them to realise their full potential, first of all within the school system and later as effective members of the community. The measures outlined to do this have been primarily concerned with developing knowledge and attitudes in both teachers and children, Maori and Pakeha, regarding cultural differences.

Learning problems of Maori children

A number of other policies are being developed related particularly to learning problems of Polynesian children. To this end an advisory service, working in a day to day relationship with teachers has developed a teachers' handbook which sets down ideas about language programmes for Maori children; again numerous in-service courses are held annually to assist teachers who have pupils with language problems and a book is in preparation for teachers of children for whom English is a second language.

Research

Substantial resources are now being made available to support research effort into the language learning difficulties of Maori children. Research on aspects of Maori education and the needs of Maori children has until recently been in the form of one man studies usually for Honours or doctoral theses. In 1971 approval was given for a Government grant to enable the N.Z. Council for Educational Research to set up a research unit on Maori schooling. Its task is to undertake research into the linguistic abilities of Maori pupils and the characteristic difficulties they may have in developing their competence in spoken and written English. It is hoped that in this way a firm underpinning of research will be given to further projects which assist teachers in developing more effective methods of teaching language to Maori children.

Pre-school education

There is strong support for the view that the early years of childhood are important ones in respect to all aspects of a child's growth and development. There are benefits too of course for parents who participate. Pre-school education may also be a form of adult education. Measures to meet the special needs of Maori and Pacific Island children include a great expansion of pre-school services to enable these children to gain the benefit of pre-school experience. The number of advisers has been increased, increased subsidies have made it easier to establish new kindergartens and play centres and spare rooms in primary schools have been made available in order to start a pre-school group. Pre-school groups within primary schools, under a paid supervisor are being developed where it has not been possible to establish a pre-school group under the voluntary pre-school

arrangements which apply in New Zealand. Supporting and encouraging the development of pre-school education and with its own pre-school advisor, is the Maori Education Foundation established in 1961.

Equal opportunity and special measures

The principle, that in order to provide equal opportunity, vastly unequal measures may need to be taken, has been accepted as a basis for policy making by Government in New Zealand. To ensure that minority group children in New Zealand have an equal opportunity special measures are continuing to be taken. In addition to the provisions already referred to, additional staff may be appointed to schools which have a significant percentage of Maori or Pacific Island pupils; guidance counsellors' appointments are being made first to those schools with special needs including high percentages of Maori or Island children; teachers' aides in primary schools are likewise approved on the basis of the special needs of those schools; special bursaries and grants are available to Maori pupils for university and secondary education.

It is not sufficient in an integrated society to expose minority group children to the equal opportunities which exist expecting that they will be enjoyed in equal degree by majority and minority groups. Many special measures may be required over many years if the full benefits of the education offered are to be realised.

Conclusion

Emerging from our experience with policies of integration and bi-culturalism is the fact that such policies touch a society at every point, whether it be in regard to social attitudes, economic considerations, leisure and cultural activities, or the education system. In education this policy has its expression at all levels from pre-school to tertiary levels and in all its aspects. The effects of this policy may be seen within the curriculum, in the programmes provided for the training of teachers and in the supporting services and special measures which are taken within the education system to provide for equality of educational opportunity for Maori and Island Polynesian children. The objective in the measures taken is the development and maintenance of healthy race relations in New Zealand's bi-cultural society.

TEACHER EDUCATION IN NIGERIA

1. Introduction

Innovative practices in Teacher Education in Nigeria are few and tentative, mostly at the experimental stage. In the last two decades emphasis has been on expansion in order to cope with the phenomenal expansion in primary and secondary education. The practices described here make no claim to originality. Many of them are innovations which have been adopted or adapted from practices in one or another of the Commonwealth countries and the United States. They are largely in the administration of the institutions. Others are in curriculum development, teaching techniques and evaluation. The content of teacher education has been a matter of concern to the Association for Teacher Education in Africa (ATEA) and its two branches, the Western Council and the Eastern. Both Councils have held independent workshops with a view to innovations in the content of teacher education in the countries covered by the Association. The results of the workshops are now awaited.

II. Teacher Education Institutions

Teacher education institutions in Nigeria lend themselves to a variety of classifications. One is according to the certificate or qualification obtainable at the end of the course which is as follows:

	Type	No.
(1)	Teachers' Grade II Certificate	155
(2)	Teachers' Grade I Certificate	3
(3)	Nigeria Certificate in Education (NCE)	7
(4)	BA/BSc (Education): BEd	Universities 5
(5)	Postgraduate Diploma in Education	Universities 4
(6)	Higher Degrees in Education	Universities 5

The Grade II institutions are by far the majority and are aimed at producing primary school teachers most urgently required for the maintenance and expansion of primary school education.

The Nigeria Certificate in Education institutions, otherwise known as the Advanced Teachers' Colleges, are few (seven) but their contribution is very important. The students who go into them represent a new breed, better qualified on admission and more competent to absorb new ideas and develop initiative. The University Departments/Faculties, which offer one or more of the courses leading to the Nigeria Certificate in Education, BA/BSc (Education) BEd, the Postgraduate Diploma in Education, and the Higher Degrees, are at present the more important resources of innovative practices. It is the contribution of this last class and the implications for other teacher education institutions that are outlined here.

III. Administrative Practices

(i) An Advanced Teachers' College is linked with a University, usually one in its neighbourhood. The degree of relationship between the two institutions varies but generally ideas which are generated in the University Department/Institute of Education spread to the associate Advanced Teachers' College. In one case, the integration is complete so that the education students are able to share the University facilities and life in common with students in

other disciplines. On the successful completion of the NCE course, a candidate is eligible for consideration for admission to Part II of the relevant BA/BSc (Education) degree course.

(ii) BA/BSc (Education), BEd: The programme leading to the degree of BA/BSc (Education) or BEd offered by every Nigerian university is increasingly appreciated. It brings the students into contact with undergraduates pursuing similar courses in arts or science or pursuing entirely different courses like Law, Medicine, Engineering and others. It provides the opportunity of mixing outside lectures and academic work, at games, sports, debates, social events and activities, all of which enrich the general education of the students and ultimately enhance the status of teachers.

(iii) Sandwich Postgraduate Diploma in Education Programme: A number of University Departments/Institutes of Education run the one-session Diploma in Education course. As an alternative to the full-time course, one of the Universities runs a sandwich course which starts during one vacation and concludes in another with practical work during the interval. This is an innovation which should increase the number of graduate teachers in the teacher education institutions and the secondary schools.

(iv) In the recent past, the Grade II Colleges were the only institutions concerned with primary education. The present trend is that University Department/Institutes are showing keen interest in primary education, not only in research in the field of primary education but by offering in-service courses to primary school teachers, tutors of Grade II Colleges, supervisors and administrators of primary education. The areas of emphasis at the moment are pre-primary and early primary education, language problems, special subjects such as Mathematics and Science.

(v) Practising primary school teachers are encouraged to use the facilities of the various University Departments/Institutes, such as libraries and audio-visual aids centres. There are short courses, spread throughout the year, covering a wide range of topics in primary education.

(vi) Participation by students in the Administration: The students are increasingly involved in decisions affecting their welfare and there is a sufficiently satisfactory response to justify increasing the area of participation. There is under consideration in some of the Universities' proposals that students should participate in the deliberations of Senate, Academic Boards and Boards of Studies.

IV. Curricula, Techniques, etc.

This is an area of intensive activities and a variety of innovations in the different Universities.

(i) Content of School Courses: Content of school courses has been undergoing continual review and changes since Independence and much more so in the last two years. There is active co-operation between the Ministries of Education, Teachers' Associations and the teachers as individuals on the one hand and the Universities on the other. The National Curriculum Conference of 1969 was evidence of team-work by the various bodies mentioned above and the general public in identifying the objectives of school education at the different levels and of teacher education. The Conference was followed up in a series of national curriculum workshops. The syllabuses produced at such workshops are turned over to the various Ministries of Education in the country (thirteen in all) which then adopt or adapt them according to the local circumstances of the States.

(ii) The Comparative Education Study and Adaptation Centre (CESAC): An example of curriculum development in the Universities is the Comparative Education Study and Adaptation Centre (CESAC), which until recently was a unit of the College of Education of the University of Lagos. The function of the Centre is the construction and revision of curricula and the production of material for trial and use in schools throughout the country. It also serves as a clearing house for curricula in other countries, which are available for the use of teachers. The writing teams for local textbooks are drawn from serving teachers and University lecturers.

(iii) Content of Teacher Education Courses: In addition to the effort of the Africa-wide and Regional Associations, each University Department/ Institute is continually reviewing its courses. Common innovations are the integration of the Foundation courses and emphasis on National Development. These ideas are being passed on to the Grade II teachers' colleges.

(iv) Research: There is a wide range of research topics and activities which are relevant to school education at one level or another or geared to the aspirations of the nation or intended to enrich teacher education at the different levels. Further information could be obtained from each University.

(v) Techniques: Innovations are proceeding on the nature and use of audio-visual aids. The Audio-Visual Aids Centre is a feature of every Department/Faculty of Education. Emphasis is on the use of local materials and the making of simple apparatus in preference to the more mechanical and expensive gadgets.

Team teaching and micro teaching as techniques are being tried in one or another of the institutions.

(vi) An innovation of wider application is a course for University lecturers in the methods of teaching. The first course was run with the help of the University of London Institute of Education and it proved very popular.

V. Examinations

Research projects on examinations include selection process, aptitude tests, examination in primary and secondary schools and in teacher education institutions. Trials are being made with the use of course work in addition to written examinations in determining the final performance of students in certain teacher education programmes.

VI. Concluding Remarks

This is only an outline of the existing practices. For details each University Department/Institute would need to be consulted. There are other innovations which are still in the making such as the proposal for correspondence courses for teachers, external degrees in Education, which are well advanced in one of the Universities.

VII. Statistical Information

(i) Federal Ministry of Education: Directory of Post-Primary Education Institutions in Nigeria, 1971, Lagos, Federal Ministry of Information, 1971;

(ii) Federal Ministry of Education: Statistics of Education in Nigeria, 1969, Series II, Vol. II, Lagos, Federal Ministry of Information, 1969.

TEACHER EDUCATION IN PAPUA NEW GUINEA

If innovation is defined as planned change then recent years have encompassed a period of unusually wide ranging innovation, involving fundamental changes in administration and supervision; an upgrading of enrolment levels; consolidation of colleges; a concentrated programme for the development of local staffing; the high priority expansion of in-service education; and moves to develop college curricula in terms of student attitude formation and problem solving ability as well as basic teaching methods and knowledge.

Administration and Supervision

Over the past few years the Department of Education has endeavoured to pass over to Teachers' Colleges a great deal of responsibility for their own professional growth and development. This has been attempted in a number of ways. Foremost has been the establishment under Ordinance of Governing Councils and Boards of Studies. Governing Councils with lay and professional representation have responsibilities for the selection of staff, for the graduation of students and the general oversight of college activities. Boards of Studies, provided they have suitable representation from both within and without the college, are responsible for the analysis of the courses taught and the supervision of the curriculum.

Other action includes the cessation of inspection visits and the institution of advisory visits; the organisation of specialist seminars and workshops; the cessation of annual external examinations and cumulative assessment schemes; and project financing.

Enrolment Levels

In 1973 the enrolment level in "Primary" Teachers' Colleges is running at approximately 60% Form IV. This compares with less than 50% Form IV entry students in 1972 and considerably lower percentages in previous years. The bulk of the trained teachers in Papua New Guinea have had much less than a full Secondary education but an in-service programme is providing opportunities for many teachers to improve their educational and professional qualifications. The anticipated enrolment of Form IV students in 1974 is expected to be 80% or more. However, the percentages in future years will depend upon the rate of expansion of the Primary system and the demand for teachers.

A feature recently has been the number of female students who have entered Teachers' Colleges. Although still less than men the percentage has increased from a quarter to approximately a third. Difficulty is being found in finding accommodation and employment after graduation.

Consolidation of Colleges

The number of colleges in Papua New Guinea is now 10, of which 9 are engaged in the preparation of Primary teachers and one in training Secondary teachers. This number is still too large considering the number of students in training (2,000), but it has been reduced from 16 in the past few years. Further consolidation of colleges will depend upon the future demands for teacher numbers. An expansion of the smaller colleges before new colleges are built is the aim.

Development of Local Staffing

Political developments in Papua New Guinea have accelerated the need to place Papua New Guinea teachers in executive positions.

A paucity of information on the country's 8,500 indigenous teachers has made identification of executive potential a major task. A large number of executive assessment workshops have been run throughout the country and teachers of high executive potential have either been placed directly in executive positions or placed in executive positions following either academic or professional courses or on-the-job training.

A number of Papua New Guinea teachers have been placed in teachers' colleges throughout the country and those placed are all considered to have the potential to rise quickly within the Department. Two selected under the scheme have been placed as Deputy Principal and another as trainee Deputy Principal.

Teachers' College executive trainees are at present undergoing on-the-job training, specialist one year lecturers courses at the Canberra College of Advanced Education, full-time degree studies at the University of Papua New Guinea, one year full-time Diploma in Educational Administration at the University of Papua New Guinea and various other general education courses designed to raise the level of the executive trainee to at least matriculation equivalent.

The In-Service Teachers' College was founded in 1971. It is an institution without buildings, but with a staff of five. Its function is to co-ordinate and rationalise all the in-service training activities conducted by the Department of Education, by guiding the selection of participants and the curriculum for all professional development courses and by maintaining a register of in-service training results.

College Curricula

With the higher educational entry level of students, and with increased uncertainty about the future curriculum of primary and secondary schools, the curriculum of teachers' colleges continues to move to the right on the prescriptive - suggestive continuum. A climate is being encouraged in colleges which will induce students to make far more of their own decisions in their private and professional lives. Improved communication amongst staff of colleges, especially through curriculum workshops, is assisting the professional growth of the institutions.

S.P.A.T.E.

At meetings in Australia in 1971 and 1972, a large group of teacher educators founded the South Pacific Association for Teacher Education. The Association was given a regional orientation - rather than a national (Australian) one - largely in order to facilitate the exchange of professional information amongst Australia and its Pacific and South East Asian neighbours. Papua New Guinea has been actively associated with this endeavour from the beginning.

TEACHER EDUCATION IN SIERRA LEONE

INTRODUCTION

Teacher Education in Sierra Leone has a long history. Fourah Bay College which was founded in 1827 became affiliated to Durham University in 1876 and soon afterwards a Diploma in Education course was added to the curriculum, providing pre-service education for secondary school teachers. The course led to the post-graduate Diploma in Theory and Practice of Teaching (Dip Th. P.T.) of the University of Durham. Later, when the need for professional preparation of primary school teachers became pressing, Fourah Bay started a course for male primary school teachers in 1928. The Wesleyan Methodist Mission stepped in to correct the imbalance when a few years later the Women's Teacher Training College was established for the pre-service education of female primary school teachers. Since then, teacher education programmes have grown to embrace various levels of teaching and to meet some of the needs of the profession.

CURRENT POSITION

In 1970, Government published a White Paper setting out its policy for the development of education at all levels, with the following general aim:

> "To provide every child with an education which takes fully into account
>
> (a) character development
> (b) his interests, ability and apitude
> (c) the manpower needs of the country
> and (d) the economic resources of the State,
> so that the child's education can be of use to the country and at the same time provide opportunities for him to be successful in life."

The implications for teacher education are obvious and statistics under "Expenditure on Education" in the Appendix to this Paper eloquently speak to the importance Government places on teacher education, the sine qua non of educational development.

LEVELS OF TEACHER EDUCATION

Teacher preparation programme are offered at three levels, at University, Higher Teachers College and Primary Teachers College levels. The Institute of Education of the University and the Ministry of Education also collaborate in pre-service and in-service teachers education activities.

1. UNIVERSITY LEVEL

The two constituent colleges of the University of Sierra Leone, that is Fourah Bay College and Njala University College, provide facilities for pre-service and in-service education for secondary school teachers. The entry requirement is at least two "A" level passes in the General Certificate of Education Examinations.

(a) Fourah Bay College, through its Department of Education, offers consecutive post-graduate courses leading to the Diploma in Education as well as higher degrees like the Master in Education and the Ph. D. Further, it carries out research in educational problems and helps to improve the quality of education.

(b) Njala University College was specifically established to offer courses in agriculture and education as a result of Government's conviction of the need and urgency to relate agricultural and educational development to the needs of the country, particularly the rural sector. In August 1963, a contract was signed with USAID by which the University of Illinois provided personnel and equipment to enable the college to carry out these functions.

Njala runs concurrent courses for the following qualifications:

(i) B. A. in Education
(ii) B. Sc. in Education
(iii) B. Sc. in Agricultural Education
(iv) B. Sc. in Home Economics Education

In addition to these there is provision for Diploma and Higher Teacher Certificate Courses in Home Economics and Agriculture and the courses in the latter are heavily weighted towards crop culture and agronomy.

Units set up to give content and breadth to the teacher education programme include the following:-

(i) The Science Curriculum Development Centre which provides courses in science methodology for students and is also concerned with the introduction of modern approach to science teaching in primary and secondary schools.

(ii) The Audio-Visual Centre which provides courses and facilities for education students as well as various departments within the college.

(iii) The Department of Physical Education.

(iv) The Department of Teacher Education which co-ordinates courses in educational foundation subjects as well as measurement and evaluation, educational administration and methodology.

Njala University College has also been actively conducting research into all levels of education.

II. HIGHER TEACHERS CERTIFICATE LEVEL

The Milton Margai Teachers College at Goderich near Freetown offers three-year courses leading to the Higher Teachers Certificate which is of two kinds:

(a) General, qualifying the holder to teach in the lower forms in secondary schools and
(b) Special, qualifying the holder to teach special subjects in either primary or secondary school e.g. Art, Music and Rural Science.

The minimum qualification for entry is four G.C.E. '0' passes including English but an "A" level subject is an advantage.

III. TEACHERS CERTIFICATE LEVEL

Primary teacher education is provided in teachers colleges which run three-year courses leading to the Teachers Certificate. As a result of Government's policy of rationalisation and consolidation, three of the four administrative provincial areas now have one residential college each plus one college for women in the Northern Province. In the fourth administrative area, that is the Western area, there is a non-residential college in Freetown which provides a four-year programme for serving teachers who have had no professional preparation.

Minimum requirement for entry is completion of Form IV and a good performance in a qualifying examination in English Language, Mathematics and a General Paper.

The programmes offered in these colleges are diversified to include Home Economics, Nursery and Infant Education and Agricultural Education. Total enrolment in the five colleges in 1972/3 was 1,017. Wastage is reportedly low with drop-out rate of less than 5% and repeaters lower than 1% over the three-year course.

THE INSTITUTE OF EDUCATION

In a move to improve the quality of education, the Institute of Education came into being in 1968. It is governed by a Delegacy, the membership and powers of which are determined by the Court of the University. All professional matters are dealt with by an Academic Board. Among its major functions are the following:

(i) to co-ordinate the preparation of teachers at all levels;
(ii) to organise in-service courses for teachers;
(iii) to undertake curriculum revision and development;
(iv) to conduct research and provide facilities for research among the teachers colleges;

(a) The Institute approves courses of studies for pre-service education and is responsible for the proper conduct of examinations leading to the Higher Teachers Certificate and the Teachers Certificate.

(b) The Institute has turned its attention to the revision of certain priority subject areas in the secondary school programme. Under the newly formed National Curriculum Committee, Curriculum Sub-Committees in Mathematics, English, Social Studies and Science have been set up and their work is at various levels of progress. For example, trial teaching of the new science programme is currently being carried out in Form One in twelve selected secondary schools.

(c) Research work is gradually being undertaken and projects iniated so far include

(i) drop-out and wastage in schools;
(ii) supply and demand of primary school teachers; and
(iii) intellectual abilities of children.

(d) In-service education is one of the most important areas of operation for the Institute and as a result of a preliminary study areas of need have been identified. In the past, in-service education courses have been organised and run by many agencies and bodies virtually independently of one another. The Institute is now working towards facilitating the administration of such courses with the full co-operation of the Senior Inspectors of the Ministry of Education, the Sierra Leone Teachers Union, subject associations and bodies of voluntary overseas services. Proposals for in-service courses for the 1972/3 academic year have been collated and synthesized into a national programme and this is currently being implemented at both secondary and primary levels.

The Teaching Aids Unit of the Ministry of Education also provides enrichment programmes and aids to teaching for secondary and primary schools through its three sections, namely, School Broadcasting, the Publications Branch and the Audio-Visual Centre. There is undoubtedly much to be done in this wide area of teacher education, but there are clear indications that teachers, administrators and all concerned with education are aware of the country's need and are working severally and collectively towards innovative activities that will lead to continued professional growth.

TEACHER EDUCATION IN SINGAPORE

A major development in education in Singapore during the period of rapid political and socio-economic changes after World War II has been the immense expansion of educational facilities to meet the accelerated demand for education. At the same time that the quantitative needs were being met, policies directed at reforming education to suit more adequately the needs of a multi-ethnic and modernising society were adopted. Among the policies implemented were the policy of making the teaching of two languages in school more effective as part of the effort to build a cohesive nation, and the policy giving increased emphasis to the teaching of science, mathematics, and technical subjects to meet the requirements of the industrialisation programme. A more recent innovation is the new primary curriculum which provides for greater flexibility in the teaching-learning process and the more active involvement of pupils through taking into consideration their interests and developmental needs.

The changing demands of the educational system are reflected in the development of the Teachers' Training College, which is currently the only teacher education institution in the country. Established in 1950, the College trained only primary teachers for the English medium schools in its early years. Today it is responsible for the pre-service training of primary and secondary teachers in all the four official language media and for the in-service training of experienced qualified teachers at both the levels. It also prepares graduates for the Diploma in Education, M.Ed and Ph.D in education awarded by the University of Singapore.

In view of the problems of continuing social change and educational demands for the increased general and specialised knowledge and skills of teachers, the teacher education programme of the Teachers' Training College was reviewed and systematically restructured for the 1972/1973 academic session to enable teachers to fit more adequately into the changing society, respond more flexibly to changes taking place in the curriculum and other areas of the school environment, and generally play their part in the improvement of the qualitative aspects of education.

Recent innovations in teacher education: objectives

In the systematic reorganisation of the teacher education programme, the objectives of teacher education were reinterpreted to give stress to (a) providing students with the necessary knowledge and skills to meet the requirements of the changing educational environment, and (b) providing students with courses that would enable them to continue to develop emotionally, intellectually, and socially in order to respond effectively to changes in society. In relation to these objectives, great emphasis is currently placed on (a) fostering an inclination in the students to improve their insights through disciplined inquiry, (b) improving their ability to think creatively and critically, (c) increasing their awareness of community, national, regional, and international issues, and (d) their having competence in such classroom skills as organisation, management, communication, and meaningful use of educational technology. Two important outcomes expected are that the teachers will be willing to attempt to create teaching-learning situations centred on problem-solving, and that they will be able to plan, organise, and implement, either individually or in a team, learning situations embodied in a new curriculum.

Curriculum changes

The new curriculum for the Diploma in Education and the Certificate in Education courses comprises the following fields of study.

(a) Core Course in the Principles and Practice of Education. This course uses an interdisciplinary approach which brings together relevant theories and concepts in the psycho-social and educational disciplines in studies related to classroom teaching and practice. In terms of content, the innovations stress the interplay of theory and practice, which helps to give the course a purposeful relevance making abstractions meaningful; they also stress the interrelatedness of the disciplines in education, in which lecturers from different disciplines work closely together in planning, organising, and teaching in both lecture and tutorial sessions.

(b) Specialist Education Courses. The aim of these courses is to enable students to select two areas of interest for study in depth. Course offerings include Programmed Instruction, Communication in Education with special reference to ETV, Guidance and Counselling, Educational Measurement, the Language Arts, and Psychology of Deviant Behaviour.

(c) Specialist Academic/Professional Courses. (For the Certificate in Education course only). These courses aim either at increasing the knowledge and understanding of students in the academic subjects, such as Art, Geography, History, and Mathematics, in which they may specialise teaching in school, or at giving them competence in how to effectively implement new syllabuses in school. The specialist professional course on English, for example, is designed to get students to acquire knowledge and understanding of the new Primary Syllabus for English, and the skills to implement the instructional objectives contained in it.

(d) Methods Courses. These are related to the specialist academic courses.

(e) Co-curricular Subject Courses. The courses here are designed to develop competencies in the educational service and media fields to enhance the usefulness of the teacher in the school. Students learn to use such resources of educational technology as are available and to involve themselves in the preparation of adequate ways of using such resources. Examples of courses are: Audio Programme Planning Workshop, and Preparation, Selection, and Utilisation of Audio and Visual Instructional Media.

(f) Personal Growth Courses. These courses, which give expression to the objective stressing continuing personal development, aim at cultivating within the individual an appreciation for subjects of aesthetic interest and value, such as ceramics, painting, literature, music and dance.

(g) Language Courses. In line with the State policy of effectively promoting bilingualism, students in the Certificate in Education course have to study two languages: the language of instruction, and another official language other than the students' own language.

Organisation of Teaching Practice

Teaching practice, which is considered an integral part of the teacher education programme, provides opportunities to students to experiment

with teaching techniques and to gain insight into the problems of pupils and classroom management. An expectation here is that their school-based experience will help to provide the focal point for theoretical studies.

In the organisation of teaching practice, a notable innovation is having Diploma students attached to schools throughout their course for two hours per day on four days and one full school day each week. This practice is intended to give them, besides teaching practice, experience in other relevant activities in school.

Another innovation is that students are now attached to the same supervisors throughout their course of training. In this, supervisors are able to work more closely with their students in the planning, 'teaching', and evaluation of lessons and also to observe their progress more adequately.

A related innovation is that the supervisors are grouped in teams and are encouraged to draw on each other's expertise in consultation over problems relating to the teaching performance of their students.

Innovations in evaluation

Assessment of students' performance in the various courses takes on a greater diversity of forms. In a sense, there is less emphasis on the examination as a form of evaluation as all specialist education and methods courses require academic exercises in the form of projects or experiments instead of examinations, and all co-curricular subjects and personal growth courses are rated on the students' progress. The academic exercises, besides helping to minimise examination stress and anxiety, give students the opportunity to demonstrate their skills in data retrieval, the analysis and organisation of information, and its presentation in sustained and reasoned prose.

Admission and course requirements

In its implementation of the programme of improving the quality of teacher education, the College has been more selective in its admission of students for the two main courses, the Certificate in Education for non-graduates and the Diploma in Education for graduates. In addition to the requirement of 'good' academic and other qualifications, applicants have to do well in a language proficiency test which evaluates the ability to communicate orally and in written forms.

In the revised course requirements of the 1972/1973 academic session, the introduction of the 'credit' system and the great range in optional course offerings permits a greater flexibility in the teacher education programme. For the award of the Diploma in Education, a student is required to have obtained an equivalent of 8 credits, including teaching practice, in 1 academic year or 2 semesters (1 credit in course areas other than teaching practice is equivalent to 60 hours of course work). In the Diploma course, teaching practice is rated at 2½ credits and required 400 hours of work in school. In comparison, a student in the two-year full-time Certificate in Education course has to obtain 16 credits for the award of the Certificate. Teaching practice contributes 2 credits and requires 300 hours of work in school.

The continuing education of teachers

The continuing education of qualified teachers has become an increasingly important function of the College. What may be considered an innovation in the organisation of continuing education in the form of in-service courses is the more systematic appraisal of the educational demands in a changing society. For example, the Extra-Mural Studies Department, which is responsible for organising all in-service courses, is engaged in organising courses which aim at upgrading the language proficiency and language teaching skills of teachers in response to the increased stress on the importance of teaching two languages more effectively in school. Its role in the general improvement of the quality of education is further seen in the organisation of courses in which teachers learn how to plan and carry out teaching-learning activities based on the new syllabuses developed by the Ministry of Education.

The Institute of Education

A further development in teacher education in Singapore will occur when the Teachers' Training College is replaced by an Institute of Education some time this year. It is envisaged that the Institute will continue the efforts to improve (a) the quality of teacher education through the upgrading of staff and emphasis on research and the development of teacher education programmes, and (b) the quality of education in general through pre-service courses for intending teachers and in-service courses for qualified teachers.

Bibliography

Addendum to the Presidential Address delivered at the opening of Parliament, 1972.

Courses for '73, Teachers' Training College, Singapore, 1973.

'Education in Singapore', Bulletin of the UNESCO Regional Office for Education in Asia, Vol.VI, No.2, March 1972.

Papers on the reorganisation of teacher education at the Teachers' Training College, Singapore. Delivered by Dr. Ruth Wong, Principal of the College, at a staff seminar, 1972.

TEACHER EDUCATION IN SRI LANKA (CEYLON)

Organisation of Teacher Education

Professional preparation of teachers in Ceylon is organised at three levels which are as follows:

(a) General training for teachers who will be required to teach in Grades 1 - 5.

(b) Specialist training for teachers, who will be required to teach in Grades 6 - 9.

(c) Post-graduate training for graduate teachers who will teach mainly in Grades 9 - 11.

General Training

2. This is a two year programme of teacher education which is provided in 20 Teachers Colleges. The Primary objective of this programme is to produce a teacher who is capable of teaching all the subjects in Grades 1 to 5 (First segment) of the schools in Ceylon. This is really the primary school in the educational structure of Ceylon, and the teacher at this level should essentially be a general practitioner, who should possess the appropriate knowledge, skill and attitudes necessary for the variety of instructional and of non-instructional roles in the primary school. In this programme more emphasis is placed on the development of the personal qualities of the teachers, the methodology of teaching, child develooment, organisation of the teaching/ learning situations in the primary school, rather than on the subject matter content itself.

3. In addition to the training given to teach effectively the primary school subjects, certain disciplines like science and English and a main subject are also included in the curriculum of these Teachers' Colleges. Hence it will be noted that the curriculum of these Teachers' Colleges is designed not only for the professional preparation of the teacher to function effectively in the primary levels, but also for his personal development and growth.

Specialist Training

4. This is also a two year programme of teacher education provided in 8 Specialist Teachers' Colleges in subject areas such as Science, Mathematics, Teaching of English as a second Language, Aesthetics, Home Science, etc. In addition to the professional subjects and general subjects that they are taught, students also receive a training in their specialist subject field at depth so that they are capable of teaching these in grades 6 to 9. This programme is geared to the needs of the second segment (Junior Secondary) of our school system. The entry qualifications stipulated for these students are generally higher than in the case of those who enter General Teachers' Colleges.

Post-graduate Training

5. Professional training for graduates is available in three campuses of the University of Sri Lanka. B.Ed. courses are also available in the University for those who decide on a teaching career after their G.C.E.(A.L.) These teachers are trained chiefly to teach in the senior secondary segment of the schools in Sri Lanka.

Relationship between the Teachers' Colleges and the Centre for Curriculum Development and Research

6. Some years back the Teachers' College curriculum was dominated by subject disciplines, the content of which had little relevance to what they were expected to teach in the primary or secondary schools. The curricula of the Teachers' Colleges have now been revised and re-oriented to meet more adequately the needs of our schools. What is now taught in Teachers' Colleges is more useful, challenging, and relevant to the needs of the student teacher also. There is much co-ordination between the work done in the Curriculum Development Centre and the Teachers' Colleges. Experienced lecturers are assigned periodically for work in connection with curriculum development and research. Refresher courses are held for the teacher educators by the Curriculum Development Centre staff. There is a two way process between these two educational institutions. Curriculum material, teaching aids and innovations in respect of teaching methodology produced by the curriculum centre are passed on to the Teachers' Colleges. Teachers' Colleges in turn try them out in affiliated schools and provide the necessary feed-back to the Curriculum Centre, so that the latter is in a position to revise them before implementation in schools.

Techniques of Teaching in Teachers' Colleges

7. There was a time when the entire programme of teacher education was dominated by lecturers, when student teachers passively listened to lectures and prepared themselves intensively for a rigorous final examination at the end of two years. This was found to be very unsatisfactory, and a significant change was effected by the reduction of a number of lectures, and the introduction of a strategy of instruction which we have termed as the assignment tutorial method. Here what we do is to get small groups of trainees to undertake simple investigations into the design or nature of curricular material used in the elementary or secondary school. By this method we not only inculcate in them an experimental attitude, but also enable them to engage in independent study. These assignments are designed in order to impart certain competencies needed by the primary and secondary school teachers. The assignment system has generated a deep sense of involvement and active participation of not only a large majority of student teachers but also teacher educators.

8. Team teaching, peer group teaching, seminars, workshop techniques form the repertory of teaching methods in Teachers' Colleges. It must be mentioned specifically here that the 'assignment - tutorial method' has effectively bridged the gulf between theory and practice of teacher education in Sri Lanka.

School Practice in Affiliated Schools

9. Former "teaching practice" which meant exclusively the staging of pre-planned lessons has now been replaced with 'School Practice' which not only includes actual classroom teaching, but also functions such as the following:

(a) Observation of children both in and out of the class room;

(b) Functioning as aide or understudy to selected professionally qualified teachers in the affiliated schools;

(c) Micro-teaching experiences;

(d) Participation in the co-curricular activities of the affiliated schools to which trainees are assigned;

(e) Participation in the life of the community outside the Teachers' College.

10. The two year teacher education programme is school-based and steps have been taken to give complete training under live classroom conditions. In order to implement these changes 10 to 15 neighbouring schools have been affiliated to each of the Teachers' Colleges, and our students spend a minimum of 20 hours per month in these affiliated schools. Normally three weeks of college work is followed by one week of teaching practice in the affiliated schools. The curriculum and the time table of the affiliated schools are controlled and supervised by the Principal and staff of the Teachers' College. Our experience is that this process of practical training in 'off-campus affiliated schools' produces three types of very significant results.

(a) The concepts, skills and methodology that the student learns in the Teachers' College is put to the test in the "crucible" of the classroom situation. The experience so gained in the classroom is brought back to the tutorial situation in the college for discussion. This two way process is contributing significantly to the development of the correct professional attitudes, skills and competences in the teacher. The training that he receives becomes real, useful, and has greater transfer value.

(b) The curricular material prepared by the Curriculum Development Centre is tried out by the Training College staff and students in the affiliated schools, which function as pilot schools for this purpose. The experiences so gained are reported back to the Curriculum Development Centre. This kind of experience helps to develop in the student teacher an experimental attitude and also helps to produce in him certain creative and innovative tendencies.

(c) This system of affiliated schools also contributes in a large measure to the all-round improvement of the educational standards of the 10 or 15 schools affiliated to each Teachers' Colleges.

Training in Community Development Work

11. A very conscious effort is now being made to foster better college-community relations. Under the earlier system of training Teachers' Colleges adopted an "ivory tower" attitude and kept aloof from the community in which they were located. Today Teachers' Colleges are providing extension services, adult classes and also they organize community development projects. With the affiliation of a number of schools to each Teachers' College, the latter now belongs to the community of these schools, and also gives the necessary educational leadership and direction to them. Our schools are playing a vital role as agents of community development. Hence it has become imperative for Teachers' Colleges to prepare students for this role also.

Evaluation in Teachers' Colleges

12. A system of "continuous evaluation" exists in the Teachers' Colleges. Term tests, unit tests, assessment of assignments, school practice and personality traits are all considered in awarding the Trained Teacher's Certificate.

A final written examination is also held at the end of two years, which is partly external. Performance in this examination is also considered in deciding the passes. Certificates are awarded at two levels - First Class Certificate and Second Class Certificate. A First Class Certificate will entitle the candidates to two additional increments on their salary scale.

Correspondence-cum-on-the-Job Training Programme for Untrained Primary

13. In order to clear the backlog of untrained teachers, a correspondence-cum-on-the-job training programme was organised in January, 1972. This is an emergency measure taken to upgrade the quality of the large number of untrained teachers in schools. The significant features of the programme are as follows:

(a) This is a three year self-study programme for teachers who are at present teaching in schools without having received any form of pedagogical training.

(b) Lessons are despatched to them by post and there is feedback in the form of assignments. These lessons are self-explanatory. Necessary references are given at the end of each lesson, along with topics for assignments.

(c) The subjects offered by students following this course are identical with the subjects that student teachers follow in the institutional courses. They sit for the same final examination, but in three instalments.

(d) The correspondence training programme is geared to the institutional training programme. Nearly 200 student teachers are attached to each Teachers' College. The Teachers' College staff act as consultants to them. Teachers' Colleges function as centres of training for them. In-service courses during vacations, term tests, marking of assignments are done by Teachers' College staff.

(e) On-the-job training is supervised by a team of lecturers/master teachers who visit them in their schools.

(f) At the end of the three year programme they are entitled to the same certificate and same emoluments if they pass the final examinations.

(g) A postal training programme organized on the above lines is also available for the professional preparation of (i) Untrained graduate teachers and (ii) Headmasters of Primary Schools.

TEACHER EDUCATION IN TRINIDAD AND TOBAGO

General

Trinidad and Tobago are two islands forming one political state which gained political independence on 7th August 1962. Trinidad is the larger of the two and the more populous. Both islands are in the Caribbean area, and form part of the chain of islands commonly called the West Indies. Trinidad and Tobago are at the southern end of the chain and Jamaica at the northern end.

Trinidad and Tobago's nearest Commonwealth island to the north is Grenada; to the South, Trinidad is nearest to Venezuela (an independent non-Commonwealth country in South America).

Our nearest Commonwealth neighbour to the South is Guyana.

Size

Trinidad and Tobago make up a small country of less than 2,000 square miles (5180 sq. kilometres) with a population of about 1¼ million. It is difficult, it is said, to find another island as small as Trinidad with people so mixed in origin. The majority of the people are of African descent but there is a substantial number of Asian descent, Indians (from India), Chinese and Europeans from France, Britain and Spain.

Very limited traces remain of the original indigenous inhabitants of these islands, the Caribs and the Arawaks.

Language

English is the official language, the lingua franca and the medium of instruction in all educational institutions at all levels. Other languages used in Trinidad include Hindi and Sanskrit (for religous ceremonies among Hindus) and Arabic (for religous purposes among Muslims). Spanish is the main foreign language taught in secondary schools and French is next.

Schools and Education

More than 40% of the population is of school age (5-17). Legally, compulsory schooling should start at age 6 and end at age-14 plus. In practice, however, children begin school at age 5 and most children remain at school up to age 15. Many continue up to age 17 - 18 at secondary schools.

Types of Schools (Government and Assisted)

(a) All Age Schools - accepting pupils from age 5 and keeping some until age 15. At 11-plus all children in these schools take the Common Entrance Examination; selected students have free secondary school education.

(b) Secondary - Government, Assisted, and Independent or Private.

Over 60 Government and Assisted Secondary schools are working towards the G.C.E. O Level Examinations at the end of 4 - 5 years, some towards the A Level Examination after 6 - 7 years. All teachers in these schools are paid by government and by the Teaching Service Commission. There are many private secondary schools where students have to pay fees for their education. The quality of the teaching given in these schools varies considerably from school to school. Students also take the G.C.E. O Level Examinations.

(c) Teachers' Colleges, Technical Institutes and the University of the West Indies.

There are in Trinidad five Teachers' Colleges training student teachers for work in All Age Schools and one Teachers' Preparatory College which is part of a multi-purpose institution also preparing teachers for work in All Age Schools. The School of Education of the University of the West Indies at the St. Augustine Campus Trinidad, is not yet directly engaged in training student teachers for any type of school. The St. Augustine Branch of the University of the West Indies has Faculties of Arts, Science and Agriculture and is one part of the University of the West Indies which has other Branches at Cave Hill, Barbados, and Mona, Jamaica, to the overall conduct of which the Government of Trinidad and Tobago subscribes.

(d) Youth Camps and Vocational Schools

These are residential schools accepting students from age 15+.

Teacher Education is given at the following institutions on a consecutive basis:

(a) Six Teachers Colleges - 5 for in-service teachers only
1 for pre-service teachers only

"Pre-service" in the Trinidad and Tobago context means not confirmed by the Teaching Service Commission. It does not mean "not having taught in any school before initial training".

(b) The University of the West Indies Faculty of Education at Mona, Jamaica, provides consecutive training for new University graduates and further training for senior teachers in the service.

Short courses and in-service courses are given and organized by District Inspectors for beginning teachers and untrained teachers in all-age schools on an ad hoc basis in various school buildings.

(c) The School of Education, St. Augustine, Trinidad, which is part of the Trinidad branch of the University of the West Indies, runs short in-service courses for advanced teachers and teacher educators, engages in research in curriculum development and assists in the examination of student teachers in practical teaching.

Entry Qualifications for Pre-primary and Primary Teaching

A. Minimum qualifications for selection for teaching in any government or government-aided primary or all-age school is

(a) Five Ordinary Level Passes at the London G.C.E. Examination. Passes may be gained at one sitting or at many different sittings.

(b) Applicants usually have had eleven or twelve years of general education.

(c) All prospective teachers must register with the Ministry of Education and Culture and be given a Teachers' Registration Number.

(d) The minimum age for entry into teaching is the same as for the Public Service in general, that is, 17 years.

(e) The maximum age for recruitment to teaching on a permanent basis in government or government-aided schools is 45 years.

(f) Retirement Age - Optional - 55 years
Compulsory - 60 years

(g) After the age to 45, a new teacher can only be employed on a contract basis renewable at the end of every 3 years or so.

B. Minimum qualifications for working in nursery or pre-primary schools, which are all government-assisted or independent, are not rigidly stipulated or observed. Women and girls with fewer than five O-levels may be employed at this level.

C. Minimum qualifications for teaching at primary level in independent schools are the same as for government or government-aided schools. In practice, these requirements are often not met and a lower standard is often accepted. Professional training is not a pre-requisite.

Secondary Schools - Government and Government-Aided
Minimum qualifications for employment in

1. Junior Secondary Schools - ages 11-14+ (3 year schools)
   a) Five O-Level subjects or equivalent plus
   b) Initial Teachers Training plus
   c) Further in-service training - part-time or full-time, depending on the subject taught.

2. Other Secondary Schools (5 year schools)
   a) Five O-Levels or equivalent plus
   b) Two A-Levels
   No professional training is required.

3. Secondary Schools (Seven-year schools)

   As for category (2) above.
   Many teachers in these schools are University graduates.
   Professional training is not a pre-requisite.

Teachers' Colleges - Teacher Educators

a) Initial teacher training.
b) Some experience in classroom teaching at any level.
c) Five O-Levels or equivalent qualification, or specialist qualifications.
d) Many persons have university degrees - 1st degrees of 3-year duration and some have in addition 2nd degrees of 2-year duration.
e) Or General Impression and Teaching Record of the applicant and the necessary vacancy on the establishment.

SELECTION OF STUDENTS FOR TEACHERS COLLEGES

A Pre-Service

Minimum age - 17 years. Maximum age 25 years.
Resignation from Teaching Service effective on the date of entry into the Teachers College.

Academic - Five 'O' Levels necessary.
Other requirements - (i) Two recommendations or character testimonials from Principal of school last attended or from other prominent citizens.

(ii) A score of $66^2/3$% on a locally designed and administered aptitude test in Mathematics, English and Education Psychology and Practice. Plus

(iii) A face to face interview before a panel consisting of Teacher Educators and a representative of the Teaching Service Commission or an appropriate teachers' association.

(iv) Medical certificate of fitness.

B In-service Teachers' College

(a) Five or more years of classroom teaching are necessary before entry. This is not a principle but happens in fact as teachers have to wait their turn to get into the five in-service colleges.

(b) Academic qualifications are the same in theory as for the pre-service colleges. Some teachers entering in-service colleges have come through the pupil-teacher system and have gained the Teacher's Provisional Certificate or the Cambridge School Certificate. Both of these qualifications are becoming rarer among entrants as these exams are no longer taken in Trinidad and Tobago.

CURRICULUM

The duration of the course in all Teachers' Colleges in Trinidad and Tobago is 2 years, that is 6 terms of 13 weeks each.

CERTIFICATION is the responsibility of the Ministry of Education and Culture. The Ministry is advised by a Teacher Training Board consisting of all Principals of Teachers' Colleges, a representative of the Teachers' Associations, a Secondary School Principal, a member of the general public a Ministry official and two representatives of the School of Education of the University of the West Indies, St. Augustine Branch.

Programme of Study

All colleges, both in-service and pre-service, have to follow the same course in essence, as outlined in standard syllabus, but colleges have some freedom in adding to the course such programmes as may enrich their students and meet particular needs. This is often done in the first year. Such additional courses may not be examined or, if examined, are examined internally. For the final examination, students are examined in Language and Literature, General Science, Basic Mathematics, Education, Social Studies and are elective subject.

Every student must choose one elective subject only. The colleges offer such electives as the college staff can handle, as the syllabus permits and as facilities allow. Elective classes are usually smaller than other classes and students pursue their elective subject to a higher level than the other subjects.

Teaching Practice

All students are required to do a minimum of 12 weeks of Block Teaching Practice in a school during their 2-year course. Colleges may do more than 12 weeks and work out various arrangements for giving students more practice, including:

i) Demonstration lessons at the colleges in which teacher educators, class-teachers and senior student teachers operate;

ii) Microteaching;

iii) Releasing students for one half-day every week to work in selected practice schools.

List of Possible Electives

Agriculture
Art
Biology
Chemistry
French
Home Economics
Education

Industrial Arts (Wood)
Industrial Arts (Metals)
Psychology of Education
Spanish
Sociology of Education
Craft
Needlework

Mathematics
Literature
History
Geography
Drama
Physical Education

Examinations

All colleges conduct their own internal examinations. In addition all students must write the Final Examinations which are "external" to each college. Papers are set in consultation with Subject Committees in each subject by an External Examiner. Marking is undertaken by the Subject Committee together with the External Examiner, who moderates the results across all the colleges.

To be awarded a pass in a subject students must satisfy the minimum requirements of both the Final Examination and the course work. Course work includes assignments over the 2-year course together with internal examinations.

In addition, to be awarded a diploma, the student must have obtained an aggregate of at least 50% in the entire examination plus course work.

Failure to reach the required standard in 3 or more subjects is considered as an outright failure. In such a case the student is requested to rewrite the whole examination.

Resits are allowed up to 3 years after the first attempt. Colleges must certify that students re-sitting have kept in touch with the college and done assignments in the subject.

A supplementary examination is run in the term following the Final Examination.

Conditions of Service

In-service students are non-residential. They are paid their salary while in training, plus a book allowance. They are not required to contribute any money towards their training. On leaving college, employment is assured.

Pre-service students are given an allowance of $TT720 per year, together with free board and lodging and a book allowance. Medical attention may be secured free of charge but is not available on the Campus.

Students are required to deposit caution money on entry to the course. Transport to practising schools is provided by the college, free of charge to the students. Transport in connection with official assignments is also provided.

Salaries

On successful completion of the course plus certification, teachers are in range 28A with a beginning salary of $403 per month.

Direction of Trained Teachers

All colleges train teachers for Primary and All-age schools. Every student must be trained to teach pupils aged 7-11 years. Every student must elect in addition to learn to teach pupils younger than 7 (Infants, 5-7) or older than 11 (11-15). On graduation, most students are posted to all-age schools. Those with A level qualifications, especially in subjects like mathematics, can seek employment in the lower forms of secondary schools.

RECENT DEVELOPMENTS AND TRENDS

Inter-college Collaboration

a) 1973 March, there was the first inter-Teachers' College Sports Gala in which all colleges engaged on a non-competitive basis in a variety of sports and games. Participation at staff and student levels was high.

b) Annual Joint Inter-College and University Debating Series with the Ministry of Health Population Council and the Ministry of Education collaborating.

c) Short, periodic exchange of students, e.g. students from one college in a particular subject spend a given time at another college and follow that part of the course there as an inter-institutional arrangements.

d) Additional training for teachers destined for Junior Secondary Schools: Full-time courses are conducted in Home Economics, Industrial Arts and Agriculture. These teachers get 2 additional increments when employed in Junior Secondary Schools.

e) Junior Secondary Schools are run on a 2-shift basis.

f) Plans are under consideration for compulsory training for teachers for secondary schools, both those already in service and those who intend to teach in future. The School of Education is to be involved in this project.

g) A 440-strong non-residential teachers' college is under construction. Completion date is likely to be September 1973. The trend is to effect economy and efficiency by having larger colleges and in this way be able to have a fully trained teaching force at the Primary level.

h) A syllabus was introduced in 1970 in keeping with the demands of independent Trinidad and Tobago. The syllabus is experimental. Subject lecturers are free to modify it in joint consultations with one another and the external examiner.

i) Agricultural Science as an elective subject at Teachers' Colleges was introduced in 1970. Boys and girls pursue the subject for the entire course. On the whole the trend is for students to elect practical subjects like Art, Agriculture, Home Economics and Industrial Education in increasing numbers. Drama has recently been added to the list of electives.

j) Complementary electives may be organized on an institutional basis.

k) Production of teaching materials especially in Mathematics, Science and Language Arts by the Production Centre of the St. Augustine Campus under the UNESCO/UWI programme.

l) Appointment of Curriculum Supervisors for the Junior Secondary Schools in Mathematics, Science, Social Studies and Language Arts.

m) On the spot orientation courses for all teachers assigned to junior Secondary Schools in the vacation preceding the opening of the school year.

n) Vacation in-service residential training courses are planned for teachers and workers in special schools and child care institutions.

o) The Publications Branch of the Ministry of Education and Culture circulates material to which practising classroom teachers, school children, student teachers and Ministry officials contribute. Circulation is free to all primary schools and teachers' colleges.

p) A course in International Relations is conducted for student teachers-in-training colleges and students in secondary schools by trained teachers seconded to the Institute of International Relations located at the St. Augustine Campus, U.W.I.

q) In-service training of teachers for vocational schools.

r) Inter-college collaboration between a teachers' college and the Eastern Caribbean Institute of Agriculture and Forestry in the teaching of agriculture at elective level.

s) Short courses, both pre-service and in-service, for teachers in independent pre-primary schools. Workshops in the production of materials for local use with children at pre-primary level. Use of community centres for nursery school purposes.

Non-formal Education - Expressive Arts

t) Non-formal, cultural education and the steelband

Experiments proposed for teaching of the steelband to children at all levels - the use of skilled craftsmen as teachers, standardization of pans, Junior pan festival, methods of teaching suited to particular age groups and the inclusion of conventional instruments into the steel orchestra, were widely discussed at a National Consultation on the Steelband in January 1973. Participants included representatives from all steelbands, university professors, managers of steelbands, student teachers, teachers of music (conventional), arrangers for bands, composers, sponsors, politicians government officials and civil servants. A number of full-time classroom teachers are involved in the steelband movement as players, arrangers, composers and managers.

u) Junior Carnival Competition based on the primary schools with teachers and pupils collaborating in the design and execution of costumes, choice of bands, etc. This was effected for the first time in 1973 with the help of the Drama officer of the Division of Culture, Ministry of Education and Culture and a leading dance-school choreographer from The Little Carib Theatre of Trinidad.

v) National Youth Arts and Crafts Competition involving all schools at all levels primary, secondary and teachers colleges. Vocational schools and technical schools are encouraged and allowed to display their work but need not enter the competition for judging.

w) Junior Achievement - Education in Practical Business Projects is confined mainly to secondary schools and business houses.

TEACHER EDUCATION IN ZAMBIA

TRENDS IN CURRICULUM REFORM

During the period since Independence, the structure of the education system, both quantitatively and qualitatively, has been significantly changed. The difference between the two is of course a matter of degree and time.

The Zambia Primary Course, a post-Independence curriculum development, marks a complete departure from the traditional system of education which was essentially elitist and leading less than 20% of the Grade VII population to the secondary school. Even for those who were successful, the course was somewhat academic and bookish.

The New Course, whose syllabuses were finalised and approved in 1971, marks a great stride away from the old system of passive learning. It attemps to foster alert and informed young people at home, competent in communication skills, English and their own Zambian language, who have achieved a sound general education and have a keen understanding and appreciation of their own society and culture.

The Zambian spirit in curriculum change is dynamic. The post-Independence change is only partial and a beginning. It is a recognised fact that the uses to which education can be put in Zambia are very different now than they were in the pre-Independence days.

The annual output from schools at the various exit points in the system far exceeds the growth of new wage earning jobs. Our educational system has to ensure that increasing numbers of boys and girls are prepared in the best way possible for self-employment, hopefully in their own communities, whether these be rural or urban. It is hoped to reinforce and direct the Zambia Primary Course to enable it to provide initiative in the field of post-primary skills training, encourage the use of the school facilities to train those who are out of school, and strengthen the educational services which are specifically designed to enable men and women to make more use of the schooling they have already received.

Zambia, like any other developing country in Africa, realises that there should be constant change and review in the curriculum if it has to serve any useful purpose. The objectives of the curriculum, both primary and secondary, should be interpreted in the light of the fact that for a very long time most of our children will receive no more than seven years of full time schooling. Only a very small number of them will secure places in institutions of further training; fewer still will enter wage-earning jobs. The primary school, therefore, must help children to prepare themselves for a productive life in their own communities. The school must foster children's self-confidence and self-reliance by arousing vocational interests and teaching practical skills and by helping to make meaningful the social and economic changes which their communities are undergoing. The community itself should, in fact, become a major instrument of education.

In pursuing these aims the Curriculum Development Centre is paying particular attention in the tranformation of the primary school, especially, concentrating on social studies, environmental science, home-craft and manual craft training.

It must, however, be realised that the objectives of the Zambian Primary Course, in its present and projected form, can be achieved only by a careful and vigorous campaign to win over parents, administrators, professional supervisors and, most of all, the teachers.

PRE-SERVICE TEACHER TRAINING

The curriculum of the nine pre-service teacher training colleges in Zambia is progressively being re-assessed and adapted in line with the conceived role of the Zambian school to-day.

The teacher training programmes are primarily concerned with equipping the students of teacher training colleges with the knowledge and skills that they require to teach effectively the New Zambia Primary Course. It is hoped that by 1976 there will be more Form V leavers seeking entry into the colleges. This will be a welcome development which will necessitate the mounting of a specially designed course of training.

There is a possibility of instituting a third year of specialised training for selected groups of able students, following the normal two year certificate course. Such teachers would strengthen the system by improving the depth and quality of instruction in certain subjects.

The Ministry of Education, with the co-operation of the tutors in teacher training colleges, has recently undertaken to design and restructure a common syllabus in every field of study, to be followed by the colleges. Enough room has been left in the syllabuses for adapting to individual needs of colleges.

The most noticeable change in the instructional process in the colleges is the liveliness of the tutors in the use of new child-centred approaches in curriculum studies. The move is towards re-shaping the content of the Primary Teacher Training Course in the light of the objectives of the Zambia Primary Course and the heavy responsibility which rests on teachers under the new village development scheme.

Side by side with developing this performance requirement in the students, facilities exist in the colleges through the extra curricula programmes for creating opportunities for developing students' attitudes in the right direction. Through discussions on current issues in the Zambian educational system the students are trained to become effective thinkers about present day problems and procedures. They must think about alternatives to what is known and accepted. They must be willing and able to experiment and to try to acquaint themselves with the needs and requirements of the community they will be serving.

IN-SERVICE TRAINING

Various agents and institutions in Zambia have been concerned for some time with the in-service training of teachers. The Inspectorate, both at Ministry of Education Headquarters and in the provinces (Regions of Education) has achieved its full potential as a retraining force.

Three of the pre-service colleges operate one-term in-service courses for the Lower Primary School teachers, primarily for the development of the performance requirement in the New Zambia Primary Course.

The Institute of Education of the University of Zambia has been an active partner with the Ministry of Education in organising a number of short retraining courses and one course of a year's duration leading to the award of the Associate Certificate in Education. For some time, the Curriculum Development Centre conducted short courses for teachers on the use of its initial materials.

A recent addition to the agents of in-service training of teachers was the establishment of a specialist in-service training college, which is officially designated as the National In-Service Training College, which admitted its first in-service teachers in January, 1970. The National In-Service Training College had to be established because of two factors which, by 1969, had become apparent in the Zambian Primary Education. Firstly, the apparent success and projected expansion of the Zambia Primary Course had created a demand for teachers trained in its methods. Secondly, the quantitative expansion of education at both primary and secondary levels had been vast. The turnover of trained teachers was accelerated by the introduction of the emergency Teacher Training Programme. Teachers were trained for one year in residence and one year as student teachers in the field. The effect of such a scheme was such that the quality of teaching became somewhat diluted because of the inadequate preparation given.

The immediate role of the College was pre-determined by obvious priorities. First it had to play its part in re-training the lower primary teachers to use the Zambia Primary Course. Then, as the first wave of the new course (Zambia Primary Course) was carried up the schools, it had to extend this retraining to upper primary teachers.

Afterwards, with its courses organised and a student body recruited, its facilities enlarged by building programmes financed under the World Bank Education Project, a specialist staff assembled and a body of expertise accumulated from experience, the College became increasingly free to search for an individual role and create its own demand in the in-service training of teachers, inspectors, Heads and educational administrators.

The College is currently offering three types of courses: the Advanced Primary Certificate Course, a one year up-grading course, the Zambia Primary Course (Upper Primary) and the Zambia Primary Course (Lower Primary). Plans are under way for the College to organise and run the following courses once the extensions to the buildings have been completed:

(i) Courses to upgrade the professional qualifications of Primary school teachers.

(ii) Courses to raise the teachers' level of personal education.

(iii) Courses to improve the teachers' knowledge and professional skills, so as to create in them a desired performance requirement.

(iv) Courses to improve the quality of the administration and professional supervision of teachers.

(v) Courses to orientate the teachers to new responsibilities when appointed to posts which carry such responsibilities.

(vi) Courses to implement curriculum innovation and change.

It is also the intention to regard the College as a base for workshops on curriculum for teachers, inspectors and administrators. Close liaison between the Curriculum Development Centre and the National In-Service Training College is being established. The College will assume responsibility for interpreting some of the curriculum material as it is developed to a stream of teachers passing through the College at the rate of one thousand every year.

DIPLOMA IN TEACHER EDUCATION OF THE UNIVERSITY OF ZAMBIA

A new course for primary teacher education has been approved. This course will be organised and run by the Institute of Education of the University of Zambia. Each year about twenty highly experienced and successful primary school teachers who meet the University's entry requirements for the course will be selected and trained for two years. Teachers who complete the course satisfactorily will be awarded the Diploma in Teacher Education (Dip. T.E.) of the University of Zambia.

There has been for some time a recognised need for the Institute of Education to be concerned with the entire question of curriculum change by involving itself in the education of staff of the primary pre-service colleges. The staff of the Institute of Education are currently, in conjunction with the Ministry of Education, the Curriculum Development Centre and the teacher training colleges busy designing and structuring a course programme which will reflect the current thought on the purpose of all curricula in the Zambian Education System.

The establishment of this course in June 1973 is a welcome innovation in the education of teachers in Zambia.

In addition to this two year Diploma course, the Institute is contemplating the conduct of short in-service courses for staff already in teacher training colleges.

CONCLUSION

Zambia may not have registered what might be considered, on an international plane, surprising innovations in its teacher education. The innovations which have taken place, however, are close to our hearts, for it is a beginning in what we believe is the right direction. We believe that the ability of an education system to innovate depends in large measure upon the ability of its teacher to innovate and to bring about the acceptance and pursuance of the new educational objectives within the system. Now that the role of education in Zambia is agreed, we are in a much better position to describe the roles of our teachers and teacher educators and provide the opportunities which will enable them to carry out these roles effectively.

APPENDIX I

AIMS OF PRIMARY EDUCATION IN THE ZAMBIA PRIMARY COURSE

a) Through healthy mental, physical and spiritual growth to develop in the child a sense of his personal worth.

b) To create situations involving the child in the life of the community through which he can acquire a balanced awareness of his environment and of his place as a citizen of Zambia and the world.

c) To identify and foster talent and initiative; to assist the child to overcome any handicap.

d) To give permanent literacy in a Zambian language and English; to develop a spirit of enjoyment in reading and communicating in the spoken and written word.

e) To assist the child to acquire an understanding of the arithmetic and scientific skills he is likely to need in ordinary life: to encourage a spirit of inquiry and, by practice in observation and experiment, to build up in the child a knowledge of basic mathematical and scientific concepts, and of their relationship to his surroundings.

f) To give practical training in simple environmental science and homecraft; to develop in the child a wholesome attitude to physical labour and an appreciation of the dignity of any occupation which provides a service to the community.

g) To give opportunity for individual creative expression through art, craft, song, dance and drama; to encourage in the child an appreciation and love of his heritage and changing culture.

h) To inculcate in the child sound moral values and standards of personal conduct based on self discipline, personal integrity, respect and consideration for others.

Extract from

COMMONWEALTH DIRECTORY OF PERIODICALS

published by

The Commonwealth Secretariat

314 ANNUAL DIGEST OF EDUCATION STATISTICS - WESTERN STATE OF NIGERIA. Ministry of Economic Planning & Reconstruction, Statistics Division, Ibadan. 1. 17½p.

"Based mainly on information collected from the various educational institutions operating in the Western State of Nigeria. Its primary aim is to provide numerical information which would assist in evaluating the progress of educational development in the State."

315 BUILDING FOR EDUCATION. Asian Regional Institute for School Building Research, Box 1368, Colombo 7, Sri Lanka. 4. n.a.

Review, technical notes, educational building abstracts.

316 CENBOSEC NEWS AND VIEWS. Central Board of Secondary Education, 17 - B, Indraprastha Estate, New Delhi - 1, India. 4. Free.

Educational news, reports and comment, particularly on the subject of curriculum development and examinations. Book reviews.

317 EDUCATION IN EASTERN AFRICA. East African Publishing House, PO Box 30571, Nairobi, Kenya. 2. Annual Sh 12.

"The aims and objectives of this new regional education journal are to provide a forum for discussion aimed at the improvement of education in Eastern Africa - and to encourage co-operation in the exchange of educational materials and experience both within the region and outside of it by giving publicity to developments and advances in specialised areas of interest."

318 EDUCATION IN INDIA. Manager of Publications, Delhi 6. Ministry of Education and Youth Services, Government of India. n.a. n.a.

Tables and statistics.

319 EDUCATION IN THE STATES. Manager of Publications, Government of India, Civil Lines, Delhi 6. Ministry of Education. 1. Single issue £1.76.

"Contains the salient statistics of educational institutions in the States and the Union Territories of India."

320 THE EDUCATION QUARTERLY. Manager of Publications, Government of India, Civil Lines, Delhi 6. Ministry of Education and Youth Services. 4. Annual £1.20.

"Seeks to state educational problems, to formulate educational questions of topical interest, to provide well-documented information on educational and youth welfare activities in India and abroad."

321 EDUCATIONAL INDIA. The Managing Editor, "Educational India" Office, Masulipatam, S. India. 12. Annual 75p.

"The magazine serves as a professional guide to all teachers and educational administrators. News from different states of the Indian Union; informative material from Unesco and other progressive countries of the world; public opinion on different aspects of education; experiments and other organisational matters etc; form different special features of the Journal."

322 THE EDUCATIONAL REVIEW. 16, Sunkuwar Street, Triplicane, Madras 5. 12. Annual Rs 12.

Articles on all aspects of education. Book reviews.

323 GHANA JOURNAL OF EDUCATION. Ministry of Education, PO Box M45, Accra, Ghana. 4. Annual 50p.

"An Educational Quarterly." Articles, features, reports.

324 INDIAN EDUCATION ABSTRACTS. Manager of Publications, Government of India, Civil Lines, Delhi 6. Central Secretariat Library, Government of India. 4. Annual £1.54.

"I.E.A. is intended to communicate briefly the contents of selected literature on education published in India and help readers refer to original articles and publications when necessary. It is primarily for the use of educationists, educational administrators, teachers and research workers in education."

325 INDIAN EDUCATIONAL REVIEW. Business Manager, Publication Unit, NIE Campus, Sri Aurobindo Marg, New Delhi - 16, India. National Council of Educational Research & Training. 2. Annual 60p.

"To provide a medium for dissemination of educational research and exchange of experience among research workers, scholars, teachers and others interested in educational research and related fields and professions." Book reviews.

326 INDIAN JOURNAL OF ADULT EDUCATION. Indian Adult Education Association, 17 - B, Indraprastha Marg, New Delhi - 1, India. 12. Annual $3.50.

Articles on all aspects of adult education within India and internationally.

327 THE JOURNAL: Kementerian Pelajaran (Ministry of Education) Malaysia. Journal of the Ministry of Education, c/o Federal Inspectorate of Schools, Maxwell Road, Kuala Lumpur, Malaysia. 3. Single issue M $2.50.

"A forum for the free and independent expression of thought concerned with education and the teacing profession. Its aim is to encourage such professional independence of thought among all concerned in education in Malaysia." Articles in English and Malay on varied educational topics.

328 JOURNAL OF EDUCATION. The Editor, Journal of Education, Department of Education, University of Hong Kong, Hong Kong. 1. n.a.

Each issue contains articles written round a common educational theme relevant to Hong Kong and South East Asia.

329 THE JOURNAL OF ENGLISH LANGUAGE TEACHING. The Society for the Promotion of Education in India, 3, Thiruvengadam Street, Madras 28, India. 6. Annual 75p.

"To help classroom teacher to effective teaching of the English language."

330 THE JOURNAL OF THE LANGUAGE ASSOCIATION OF EASTERN AFRICA. East African Publishing House, PO Box 30571, Nairobi, Kenya. 2. Single copy Sh 7.50 - Annual Sh 15.

"Contains articles on language use and language teaching, and on certain aspects of language description, with particular reference to the situation in Eastern Africa."

331 THE JOURNAL OF THE SCIENCE TEACHERS ASSOCIATION OF NIGERIA. National Treasurer, NBC Schools Unit, Oxford House, Ibadan. 2. Single issue 25p.

For science and mathematics teachers in primary and secondary schools, and for colleges of education.

332 JOURNAL OF UNIVERISITY EDUCATION. Dr. Amrik Singh, Faculty of Arts, University of Delhi, Delhi 7. The Federation of Central Universities Teachers' Associations, Aligarh. 3. Annual 90p.

Paper on all aspects of university education.

333 KENYA JOURNAL OF ADULT EDUCATION: Official Journal of the Board of Adult Education. c/o Ministry of Education, Nairobi, Kenya. 3. Single issue Sh 4.

"The journal is essentially a forum for information research findings, differential news, etc, on the whole range of the field of adult education."

334 MALAYSIAN JOURNAL OF EDUCATION: Majallah Pelajaran Malaysia. Union Book Co. Ltd, 303, North Bridge Road, Singapore 7. School of Education, University of Singapore. 2. Annual US $2.

Articles contributed by professional educationists on all aspects of education and educational developments on a world wide basis. Book reviews. Printed in English and Chinese.

335 NIE JOURNAL. Publication Unit, NCERT, NIE Campus, Sri Aurobindo Marg, New Delhi - 16, India. National Institute of Education. 6. Annual 75p.

"To provide a forum for teachers, teacher educators, educational administrators and research workers, to encourage original and critical thinking in education through the discussion of current educational reviews, and to promote the development and improvement of educational practice. The contents include articles by distinguished educationists, challenging discussions, critical analyses of educational problems, book reviews and other features."

336 PAPUA AND NEW GUINEA JOURNAL OF EDUCATION. PO Box 2150, Konedobu, Papua New Guinea. Papua and New Guinea Department of Education. 3. Annual A $3.

"To convey information, facilitate discussion and stimulate interest concerning education in the Territory of Papua and New Guinea, other South Pacific countries and developing countries generally." Book reviews.

337 PAPUA NEW GUINEA EDUCATION GAZETTE. Education Department, Port Moresby, Territory of Papua and New Guinea. 10. Gratis.

"The official medium for the Department's notices to the education service and a journal for the publication of comments of general and professional interest in education."

338 QUEST IN EDUCATION. Quest in Education, Gandhi Shikshan Bhavan, Indian Council of Basic Education, Gandhi Chowk, Vile Parle (West), Bombay - 56, India. Indian Council of Basic Education. 4. Annual £1.

"The Journal publishes studies in education; projects in education; research programmes in education."

339 REVIEW OF EDUCATION. Institute of Education, University of Nigeria. Nsukka, Nigeria. 2. Ghana, Sierra Leone, The Gambia - 50p; elsewhere - 75p.

"To serve as a medium for the dissemination of educational information and innovation..... to the practising teachers in schools and colleges, student teachers in colleges and universities, Education Officers in the Ministries and Boards of Education and School Administrators." Book reviews.

340 SCHOOL BUILDING DIGEST. Asian Regional Institute for School Building Research, PO Box 1368, Colombo, Sri Lanka. Unesco. n.a. n.a.

Digest in the form of loose pamphlets dealing with design of schools.

341 SCHOOL SCIENCE. Publication Unit, NCERT, NIE Campus, Sri Aurobindo Marg, New Delhi - 16, India. National Council of Educational Research and Training. 4. Annual Rs 8.

"To serve teachers and students in schools with the most recent developments in science and science methodology. It aims to serve as a forum for exchange of experience in science education and science projects."

342 SIERRA LEONE JOURNAL OF EDUCATION. Ministry of Education, New England, Freetown, Sierra Leone. 2. Annual 90c.

Provides a forum for articles on all aspects of education in Sierra Leone in particular contributed by professional personnel not necessarily expressing the views of the Ministry of Education. Book reviews.

343 SWAZILAND TEACHERS JOURNAL. Ministry of Education, PO Box 39, Mbabane, Swaziland. 2. Single issue 25 cents.

Educational news from the region, together with general articles and features on a wide variety of subjects including drama, careers, science teaching, literature, etc, for practising teachers and students.

344 THE TEACHER: Current Ideas for Uganda Primary and Secondary Schools. National Institute of Education, Makerere University, PO Box 7062, Kampala, Uganda. Central Inspectorate, Ministry of Education. 3. Single issue Sh 2.

"A journal of interest to teachers at every level."

345 TEACHER TODAY. Department of Education, Government of Rajasthan, Bikaner (Raj), India. 4. Annual 50p.

For primary and secondary teachers. General articles. Book reviews. In English and Hindi.

346 TEACHING METHODS AND MATERIALS BULLETIN. Director, Teaching Methods and Materials Centre, University of Papua and New Guinea, PO Box 1144, Boroko, Papua New Guinea. 5. Gratis.

Four-page pamphlets, each dealing with a specific teaching topic. Often includes book lists and reviews.

347 TORCH: Journal of the Ministry of Education, Jamaica. Ministry of Education, Publications Branch, PO Box 498, Kingston, Jamaica. 3. Gratis.

Articles on education at all levels with specific reference to Jamaica.

348 UNIVERSITY NEWS: Chronicle of Higher Education and Research in India. Inter-University Board of India and Ceylon, Rouse Avenue, New Delhi 1. 12. Annual Rs 9.

News from Indian universities.

349 WEST AFRICAN JOURNAL OF EDUCATION. West African Journal of Education, c/o Institute of Education, University of Ibadan, Nigeria. 3. Annual - West Africa 81p; elsewhere £1.15.

Articles on all aspects of education in Africa generally and West Africa in particular. Book reviews.

THE ROLE OF TEACHERS ORGANISATIONS IN NATIONAL DEVELOPMENT

INTRODUCTION

The presence in London of a large number of representatives from Commonwealth teachers' associations attending the XXIst World Assembly of the World Confederation of Organisations of the Teaching Profession enabled the Commonwealth Secretariat to bring together some 60 delegates and observers from 34 teachers' organisations in 22 Commonwealth countries to discuss the role of teachers' organisations in national development.

The meeting took place from 9 to 12 August 1972 at Fitzwilliam College, Cambridge. The conference was made possible by a generous grant from the Commonwealth Foundation and its success owed much to the friendly co-operation of the Master, Fellows and staff of the College.

Mr. A.D.C. Peterson, Director of the Oxford University Department of Educational Studies, was Conference Chairman and Dr. S.J. Cookey, Acting Director of the Education Division of the Commonwealth Secretariat, was Conference Secretary. The Chairmen of the two working groups, in which much of the discussion took place, were Mr. M. Carson of New Zealand and Mr. W. Senteza Kajubi of Uganda; the group rapporteurs were Mr. A. Weeks of the Oxford University Department of Educational Studies and Mr. M.C. Grayshon, School of Education, University of Nottingham. Mr. J.H. Eedle and Mr. A. Kamm of the Commonwealth Secretariat acted as report editors.

While it was hoped that the conference would be of direct and immediate value to Commonwealth teachers' organisations and their countries through the exchange of experience and the emergence of new opportunities for co-operation on a regional and pan-Commonwealth basis, the meeting was also devised in order to provide a contribution to the forthcoming Commonwealth Specialist Conference on Teacher Education planned for May 1973, the theme for which will be The Role of the Teacher in a Changing Society. For this reason the agenda for the Cambridge conference concentrated on three major issues: the role of teachers' organisations in policy-making, in educational reform and in the professional development of their members. Lead papers on these three topics were prepared by Mr. Peterson, Professor K.G. Desai, President of the Indian Association of Teacher Educators and Director of the University School of Psychology, Education and Philosophy, Gujarat University, Ahmedabad, and Mr. N.A. Brathwaite, Chief Education Officer of Grenada. A paper on the work of the Commonwealth Secretariat's Education Division was presented by Dr. Cookey.

Although the meeting was originally conceived as a single occasion designed for a specific purpose, the response from members was such that the desirability of further Commonwealth meetings of representatives of teachers' associations seems undoubted.

1. THE ROLE OF TEACHERS' ORGANISATIONS IN POLICY MAKING

Three principal aspects of decision-making were considered in detail: those relating to teaching conditions (referred to as "the trade union side" of teachers' associations' activities); the rationale for teachers' associations being involved in decisions affecting national development; and the relationship between teachers' associations and the controlling authorities of education.

Teachers' associations and teaching conditions

Teachers' organisations differ from other trades unions and professional bodies in that the working conditions of their members also affect directly the quality of the pupils and students in whom the future of society resides. An oversimplified approach to the educational system based on short-term economic considerations leads not infrequently to the provision of inadequate buildings and equipment for effective education to be possible. While industrial workers rarely have to bargain over the supply of appropriate tools for their job because employers recognise the clear link between these and their workers' output, teachers, on the other hand, are often criticised for shortcomings which are due essentially to the inadequacy of the facilities available to them. A valuable role for teachers' organisations, therefore, lies in the convincing of administrators and economists about the realities of the educational process. While the voices of individual teachers may not be heeded, the rationally presented case of a professional association can have more effect. Teaching is a labour-intensive operation, by far the largest percentage of total educational costs being taken up by salaries; it seems shortsighted, therefore, if controlling authorities seek to pare expenditure on equipment and buildings - a relatively small proportion of the total costs - in an endeavour to reduce the costs of education.

Among the principal items of equipment are books. Costs may be reduced by the purchase of books which are cheap because they have been produced in very large quantities, but these are less likely to be relevant to specific local situations and often remain in print long after they are obsolete. Unsuitable buildings, too, prejudice the work of all teachers, however well trained and dedicated. Teachers' associations can serve the interests of their pupils and the community at large by offering advice and exerting pressure in order to ensure the provision of suitable facilities to enable their members to work effectively. In some case, associations themselves might promote the writing of some needed texts. In all cases, associations should expect to be consulted on matters pertaining to educational buildings and equipment. Having provided these conditions, employers should then have sufficient confidence in the teachers to give them that freedom to work which alone ensures that learning can take place in an atmosphere of purpose and commitment.

Teachers' associations and national development planning

Teachers' associations, especially those in the developing countries, must establish their priorities. It may well be necessary for them in their early years to concentrate on the issues relating to conditions of service and tenure of their members and the provision of buildings and equipment before shifting their emphasis to wider professional matters. This said, the role of education in national development is so important that teachers' associations cannot avoid

involvement and should seek consultation and participation at all levels. It was agreed that this participation should extend beyond the narrower concepts and that Governments should be requested to consider the inclusion of representatives of teachers' associations in official delegations to Commonwealth and international meetings on educational matters.

Too many educational plans and national development plans originate from economists and other specialists with inadequate knowledge of the realities and possibilities of educational systems. The optimism of the early 1960's which saw education as an "investment in human capital" has been succeeded by the realisation, recently articulated by the World Bank, that the return on this investment cannot in fact be measured as neatly and conveniently as the economists believed a decade ago. Some costly errors have resulted from plans based too heavily on manpower projections and cost-benefit predictions.

Teachers' associations can assist both their members and their countries by grasping opportunities for the exercise of initiative, offering advice and seeking full consultation in the development process. That initiative can be rewarded is illustrated by the success of the International Baccalaureat, a two-year upper secondary course devised by teachers to be acceptable as an entrance qualification to universities in a large number of countries. Some form of Commonwealth teaching qualification, designed to facilitate the interchange of teachers, would be increasingly desirable in view of the growing mobility of professional people.

Participation in some countries does not go beyond a degree of tokenism. Teachers' associations may be invited to take part in the policy-making process but exert little real influence. Consultation may not be between parties of equal standing. Overcoming this may take time, as associations' representatives are recognised as competent to proffer advice and backed by a consensus of their members. If this acceptance is to be gained, the sole criterion for the selection of associations' representatives must be their ability to contribute to the deliberations and not the need to reward long-service or loyalty.

Teachers' associations and controlling authorities

The partnership so clearly desirable between teachers, their professional bodies and the authorities controlling education has been hardly won in some countries and not achieved to any measurable extent in others. The employer-employee relationship governs the mutual attitudes and limits confidence. A prime role for teachers' associations is to promote and encourage the professional competence of their members so that their work is recognized, their prestige enhanced and their participation on equal terms sought. Self-confidence based on a realistic appreciation by teachers of their technical ability and professional approach may well lead to the conviction of others of the value of their opinions and the soundness of their judgment. At this stage teachers may achieve that freedom of action which characterises the acceptance of a genuine partnership between them and the authorities who employ them.

The dimensions of this freedom will be established by trial and error. Education is often declared to be an agent of social change by the same voices which deplore "subversive" teaching, and teachers are branded as essentially conservative by a public which exerts strong implicit pressure against change. Within the educational sphere, it must be admitted, impediments to change may be encountered at many points - university entrance qualifications,

traditionally-minded teachers' college staffs, inspectors, advisers and head teachers. Conservative teachers, too, undoubtedly exist and teachers' associations not infrequently discover themselves to be in the van of progress, expounding innovative ideas ahead of many of their individual members. Teachers' organisations have proved effective instruments for the dissemination of new ideas by maintaining close and continuing contact with their members, often making use of teachers' centres and workshops, in-service courses and publications, and in some countries acting in co-operation with local and central educational authorities. It was agreed that regional groupings of associations could usefully contribute to the exchange of ideas through publications, meetings and workshops.

Complacency and undue sensitivity to criticism are likely to be self-defeating. If teachers' associations are to be recognised by educational authorities as capable of acting as full partners in the planning and implementation of educational activities they must be prepared to make a continuous appraisal of their motives, structures and functions. Teachers' organisations, for example, should seek to improve the expertise of their members by assembling and disseminating information about relevant research projects; in some cases it might be appropriate for research to be sponsored by the associations, and for research projects to be undertaken on occasion by teachers themselves. As one contribution to this area, it was suggested that the Commonwealth Secretariat might survey recent research findings of particular interest to teachers' organisations and publicise the register of research which it produces every two years.

Such a development of teachers' organisations into genuinely professional bodies representative of the generality of teachers and the guardians of standards should be reflected in a growing acceptance of teachers' representatives as equals by the controlling authorities and a growing conviction that teachers should have discretion to teach in the way which they see most appropriate to their circumstances. The need seems to be established for the formulation of a code of ethics by which teachers would conduct themselves, although the question of enforcing effective sanctions against those who offended against the code raised extremely difficult problems. Nevertheless, the existance of such a code would give some guidance to teachers regarding the means by which those in their charge might be encouraged to adopt attitudes of constructive criticism towards their society. Such encouragement to discuss contemporary issues in a positive manner might help to overcome some of the current disillusion of young people with "irrelevant" educational content. Teachers' organisations might seek to enter into a continuing dialogue with their government in order to agree on the direction of anticipated social change, so enabling teachers to gear their teaching appropriately and to ensure that decisions represent a consensus of opinion and attract support and co-operation which might be less enthusiastic were teachers' representatives not party to them.

Teachers' organisations and political commitment

Individual teachers have their own political commitment but it was generally agreed that teachers' organisations could probably function most effectively by remaining apart from formal association with any particular political grouping. This detachment would make it possible for members to be recruited from the whole political spectrum and for the association to exert continuous pressures in support of declared principles and objectives on whichever political grouping happened to be in power at the time. Although

teachers' organisations might avoid a formal linking to a political group it cannot be expected that they can avoid a political involvement. Changes in educational policies and educational structures are essentially the results of political decisions, sometimes arrived at for reasons other than strictly educational. The "power base" lies in the controlling political group, and if the teaching profession is to exert influence at the point of maximum impact it must seek to make its case at the power base.

2. THE ROLE OF TEACHERS' ORGANISATIONS IN EDUCATIONAL REFORM

As the debate continues on the forms of education appropriate to contemporary conditions and the provision which is possible in terms of political and economic realities, it becomes evident that teachers' organisations have a potentially crucial role to play in areas such as policy-making and planning, curricula and materials, examinations, standards and educational provision for special groups. At the same time associations must reappraise their own aims, structures and functions to ensure that they are fitted for their changing role and able to represent their members adequately in the evolving situation. Associations should consider, for example, how far they can move from their established positions and extend their coverage to include those engaged in educational activities hitherto beyond their catchment area, in specialised and higher forms of education and educational activities regarded until now as on the fringe of formal, institutionalised schooling for children and young people. Articulation of the educational system implies the desirability of articulation of the organisations representing those working in the widest range of educational activities. In this connection it was suggested that the Commonwealth Secretariat might undertake a survey, in association with the WCOTP, Unesco and other international organisations where appropriate, of existing teachers' organisations in Commonwealth countries to establish the coverage of the organisations and the relationships which they have succeeded in developing with the controlling authorities of education, noting particularly the means by which satisfactory systems of partnership have evolved.

Educational policy and planning

It was agreed that in considering this topic planning should be interpreted as the means by which policy is put into effect.

Teachers' associations, it was emphasised, should endeavour to establish their right to be fully consulted at all levels of the policy-making and planning stages of educational change because once policy is decided and made public it is usually too late to put forward suggestions for alterations and amendment. Teachers' associations can influence policy-making in several ways, directly and indirectly. They can, for example, be highly effective in influencing public opinion by making known the associations' views on particular topics and publishing information relative to current issues. Associations, too, can work through their members, bearing in mind that teachers play multiple roles in their communities - they are not only teachers but also parents, taxpayers, electors and members of societies and interest-groups. (Sometimes, it may be noted, these roles are in conflict; what the individual demands as a teacher may not be what he wishes to pay for as a taxpayer!)

While teachers' associations may operate most effectively as non-political, non-sectarian organisations they cannot avoid involvement in political issues and should recognise as major functions the presentation of considered views to politicians concerned with educational matters and ensuring that all their members are fully informed about these views. To be effective in this way, teachers' associations must be recognised as being sufficiently responsible, professional and expert to merit consultation and consideration. Once this stage begins to be reached, the teaching profession can reasonably expect to start on an upward spiral of mutually reinforcing consequences: because they are recognised as meriting consultation the status of teachers should rise; because of their enhanced status their views will be increasingly sought and valued. Little purpose can be served by a claim to higher status before it becomes apparent to the authorities and public that the contribution of teachers and their associations to the well-being of their societies is such as to merit an increased regard.

The meeting deplored the perpetuation of some generalised myths concerning teachers - their assumed lack of enterprise, lack of wider experience of the world, lack of response to the need for change, their being "men among boys but boys among men" - and noted that when educational matters are considered, it was both to the credit of the profession and something of a disadvantage that a high proportion of politicians (and in the developing countries, senior administrators) have had experience as teachers. A major concern for teachers' organisations should be making it clear to the controlling authorities that teachers are emerging from the stage at which paternalism sufficed and are now seeking full partnership in the development of policies which affect their lives and work. As a corollary, teachers' organisations should also seek to speed up the process by which paternal authoritarianism evolved into recognised partnership, for it was abundantly clear that the new generations of teachers entering the profession would not be satisfied with less than a comprehensive tripartite partnership of controlling authority, teachers and community, devoted to the best interests of the whole community.

In the context of educational planning it was considered that teachers' organisations could usefully play a much more effective role than had been accorded to them thus far, especially by relating the proposals of economists and administrators to the practical considerations of the educational process. Such advice would by no means necessarily be obstructive or negative but could on the contrary help to ensure that the maximum effective use was made of the available resources. Teachers' organisations had a particular duty to support the educational needs of specially deprived groups of which their members had first-hand knowledge: such groups would vary from country to country but might include girls, social, ethnic and immigrant minorities and the physically and mentally handicapped.

Curriculum change

In a number of Commonwealth countries teachers' organisations are already closely associated with curriculum development and syllabus construction and it was agreed that such involvement was an essential component of an organisation's activities. In those countries where curriculum development is the responsibility of the controlling authority, teachers' associations should attempt to convince that authority of the invaluable contribution to this work which can be made by representatives of those who will eventually be required to carry any reforms into effect.

Fears were expressed of the undesirable indoctrination of young people exposed to partisan textbooks, yet it was acknowledged that this sort of influence could not be entirely avoided. One activity of the teacher continues to be the transmission of accepted standards and values from the older to the younger generations and the dividing line between this and undesirable indoctrination is not always clear. Obvious bias can be easily recognised - in the choice of adjectives in history texts, in the distribution of space among selected topics, and so on - but underlying assumptions, bias which no longer stands out as such, unbalanced presentation by omission, are much more difficult to identify and teachers' associations have a valuable role to play here. Considered views on unsatisfactory prescribed texts (preferably when they are still in draft form) may be put to the controlling authorities: on occasions it may be appropriate for teachers' organisations themselves to commission the production of specimen texts which meet the agreed criteria of their members. Teachers' associations should also seek membership of and close liaison with National Book Development Councils.

As part of curriculum change, teachers' organisations should seek representation on curriculum and syllabus committees, co-operating where necessary with subject associations. (It was noted that the perpetuation of subject associations with unduly narrow terms of reference could in some measure affect movements towards integrated curricula without firm subject divisions. Where subject panels are constituted within general teachers' organisations a redistribution of panels to meet the changing need is that much easier to accomplish).

Concern was expressed at the continuing constraints on curriculum change imposed by traditional examining systems. It was generally agreed that the ultimate control of school examinations should be with teachers and that teachers' organisations were an obvious point of reference in this control. This said, however, a wide variety of consequential problems arise. Alternatives to large-scale systems of external examining are not without their disadvantages. Continuous assessment, cumulative records, student profiles, dissertations, and other possibilities, have shown in recent years that teacher-controlled assessment has some undesirable side-effects, including effects on the student-teacher relationship and the exposure of the teacher to accusations of unjustified subjective decisions. The desire to maintain overall standards, too, may call into being extremely complicated, costly and time-consuming systems of cross-moderation. And at the end of the line stand the next higher level institutions, potential employers and others who demand measurements of attainment and predictions of future performance presented in a form which they can understand and which they can use for competitive selection. The function which the teacher has assumed of grading the output from his schools and colleges probably exercises more constraints on his freedom to experiment and his desire to innovate than any other single factor. Teachers' organisations seem to have three major roles to play in this connection: to seek full participation in existing examination systems in order to ensure that they are the best possible of their kind; to encourage research and experiment into a wide range of possible alternatives; and to educate public opinion to the recognition that the grading, selection and predictive processes could profitably pass from the schools and colleges out of which the students come, to the institutions and employers who seek to choose an intake suitable for their specific purposes.

Teachers' organisations and the mass media

The meeting agreed that the mass media exerted an increasing influence on the attitudes, knowledge and awareness of people of all ages; in the case of many children television was already the dominant influence. This being so, teachers should devise means by which to exert pressure on the controllers of the mass media and relate the media more closely to the purposes of education. It was essential that young people should be guided into attitudes of critical assessment of the message relayed by the media and should be helped to erect a defence against gullibility in the form of the capacity to analyse a situation and form a rational judgement based on common sense, experience and an enquiring mind. Teachers' organisations can usefully play their part in this area as in others by seeking to educate public opinion and so encourage the providers of radio, television, the cinema, newspapers, magazines and other media to raise the quality of their output to satisfy the needs of a more discriminating audience. While the attempts of individuals to bring about change might have little success in the face of powerful interests in the media, teachers' associations could expect more return for their efforts, for in many countries their members form the group who are in the closest contact with that section of the population which has the greatest uncommitted purchasing power - the young.

General

The consensus of the meeting was that, while Professor Desai's lead paper on Teachers' Organisations and Educational Reform had succeeded in its intention of provoking discussion and comment, its overall picture of the teacher and teachers' organisations was unduly pessimistic. Despite the very real problems and shortcomings of the teaching profession in many countries, much had been achieved and much more was possible. The honest recognition of past failings should direct teachers' attention to the potential role of strong, united and representative professional associations in the development of improved educational structures and content, continuously responding to the changing needs of a dynamic society.

3. THE ROLE OF TEACHERS' ORGANISATIONS IN THE PROFESSIONAL DEVELOPMENT OF THEIR MEMBERS

The major problem facing teachers' organisations in many member countries of the Commonwealth centres on the presence within the profession of teachers with inadequate education and little or no professional training. While this situation exists, the credibility of teachers' organisations as representatives of a professional force worthy of respect and consideration will be extremely difficult to establish. In some countries, too, often for understandable historical reasons, teachers' organisations have directed their interests heavily towards the "trade union" aspects (terms and conditions of service, rights and duties of teachers, working conditions) rather than towards the professional aspects - promoting and developing the highest levels of competence among their members to the ultimate benefit of the young people entrusted to their care and of the society at large. The reasons for the present situation are easily understood: the dilution of the teaching profession with poorly qualified staff during periods of rapid expansion, inadequate official provision of training facilities and the minimal funds available to teachers' organisations precluding them from assuming themselves the responsibility for providing in-service training and upgrading courses.

Status of teachers

As has been indicated earlier, status may be more easily improved by participation than by protest. Increased participation should attract improved status which will itself encourage fuller participation. Nevertheless, in many countries status for most occupations is linked closely to the material rewards of their members and teachers' associations cannot overlook this aspect; they should accept as part of their function that of facilitating the improvement of their members' professional competence in order to merit higher rewards. Status is awarded by public opinion: it must be won, it cannot be claimed.

The search for status has proved a divisive factor in the teaching profession, particular groups tending to dissociate themselves from the general body of the profession in an attempt to make apparent their special claim to higher public recognition. The lack of success of such moves implies that teachers' organisations should rather seek to unify all branches of the profession, vertically and horizontally (i.e. those working at different levels and in different branches of education) and implement programmes for the achievement of realistic status levels through a demonstration of professional skills and public service. The sheer size of the teaching force makes it extremely unlikely that teachers can ever be regarded in the same way as those much smaller numbers practising in other professional areas - of medicine or law, for example - but the size of the teaching profession should also mean that its representative organisations should have a considerable influence on matters of public concern, so achieving an alternative but equally valid form of status in the community and nation.

There are, however, certain recognised criteria of a profession which are not always met in the teaching profession: one, that of being primarily a body of self-employed individuals taking fees for services, is largely impossible for teachers and is probably decreasingly true for doctors, lawyers or others. Two major criteria, however, could be considered as primary aims of teachers' organisations: participation in the control of entry to the profession and in the determination of acceptable systems of training

The teacher and the community

Over the years the teacher's special role in his community as the only educated member identified with the ordinary people has been eroded as mass education has spread, as specialisms have developed and as the distinction between the traditional leaders and led has become less clear. Even in the rural areas of poorer countries the teacher now shares his mystique with agricultural and health extension workers, literacy campaigners and the transistor radio. Teachers in rural areas, too, tend to be the younger or less well qualified, so that although they are in a more favourable position than those in towns to assume a leading role, they are often the least able to do so. Not infrequently these teachers have to spend considerable time in the preparation of their school work and have little spare time for outside pursuits. While salaries and status within the profession are linked to the ranking and size of the school rather than the merits of the teacher and the real demands of his assignment this situation is likely to persist. In the urban areas the teacher cannot rely on his occupation alone to bring him recognition as a community leader. Contemporary disillusion with the results of formal education, on the contrary, tends to be reflected in a lack of public respect and interest in the work of the school and in the teacher as its agent. The teacher can help to generate confidence in his professional

work if he makes it clear through his activities within the community that he is alive to major issues, concerned as an individual for the well-being of his charges in their environment, and competent to play a responsible role himself in areas of public concern. For this reason the current trend of teachers to decline to participate in community activities may prove deleterious to their professional work, however much more time it gives them to prepare for it. An involvement in community work, too, can provide that feedback which is essential for effective future planning. Long-range educational outcomes can be evaluated only after students have left school for some years. A first-hand knowledge of what takes place in the lives of his ex-pupils provides the only true basis for an assessment of the quality of the teacher's performance.

The contribution of teachers' organisations might be in the support of teachers working in difficult areas and the establishment of realistic rewards which take into account the total contribution expected of the teacher by the community. Associations, too, might help to identify and make known possibilities for schools to play a community role. As a corollary to this, teachers' organisations should point the need for teachers to be prepared suitably for their community role and trained accordingly.

The paradox of the teacher in his relation to the community among which he works is that he complains often that he is expected to do too much when he is regarded as a natural leader yet regrets his loss of status when the demands slacken. The solution may lie in the teacher establishing a new role for himself as a catalyst, making possible community activities without himself necessarily being identified as a declared leader. Leadership thus becomes dispersed through the community.

Teachers' organisations and professional training

As an essential part of their professional function, teachers' organisations should influence and participate in training for their members and potential members, whether this training is initial or in-service, institutional or informal, statutory or voluntary. In order to avoid subsequent problems of recognition for attendance at these courses the co-operation of employing authorities should be sought. Useful courses may in many cases be organised on a modest scale by teachers themselves supported by the association's personnel, especially where they are not working in large towns or cities. As a concomitant to this, organisations should expect in the long-term to control entry to the profession (see page 13 and Recommendation 25).

a) Initial training

The effectiveness of existing forms of pre-service training gives rise to serious concern in many countries. The traditional type of course is often an ill-assorted amalgam of academic upgrading and professional introduction. While subscribing to the general needs of teacher training to include the developement of academic attitudes, a knowledge of child development, a sound knowledge of the subject area to be taught and practical experience under observation and supervision, prospective teachers should also be helped to develop an awareness of social problems likely to affect their lives and work. It was suggested that the Commonwealth Secretariat might usefully collect and disseminate information on this aspect of teacher

training. Consideration should be given to the co-ordination of initial training programmes for both primary and secondary school teachers, using a common core curriculum before specialisation. This would help to break down long established barriers in the profession which originate very often at the stage of initial training. Special attention, too, should be paid to the need to ensure that teachers beginning their professional careers are adequately orientated to their teaching duties by supervision and advice.

Considerable discussion took place as to whether all teachers must be trained to the same level. In many countries the recruitment of a fully trained teaching force would cause considerably financial embarrassment to the providers of education and could affect very seriously the expansion of education facilities. The role of the para-professional and the place of the untrained teacher were agreed to be matters to be established by teachers' organisations in consultation with the controlling authorities in the light of prevailing local conditions.

It was, however, generally agreed that in areas where there has to be reliance on untrained teachers, associations should accept these untrained teachers on condition that they are subject to an organised and finite course of training. Associations should, with governments and other interested parties, involve themselves in this training. This appeared to be a field in which overseas assistance and finance might well be channelled, and in which associations in particular should offer mutual assistance to each other.

b) <u>In-service training</u>

In-service training may be designed to improve teachers' qualifications, to give experience in new methods and techniques, to provide specialism in particular fields (such as the education of minorities or the handicapped) and may sometimes best be given in the form of attachments rather than structured courses. Consideration should be given, too, to the use of the mass media for in-service training programmes and the promulgation of matters of educational interest to both teachers and public at large. Because of the problems mentioned above (page 15) relating to the financial implications of highly qualified teachers, teachers' organisations may have to concentrate particularly on the retraining and specialising functions of in-service training. Courses should as far as possible form part of an overall programme and not be <u>ad hoc</u> occasions. A matter of much concern is the likely response of teachers to attendance at courses which bring no financial reward; while personal satisfaction and professional pride might be evoked, additional increments would be a powerful incentive. On the other hand, employing authorities must be convinced that such courses provide increased efficiency.

Further consideration might be given to the possibility of accumulating "credits" towards eventual recognition for incremental purposes through attendance at a number of short

courses and attachments in more than one country. The means by which to assess the cumulative value of such courses and attachments is a matter of increasing concern in many developing countries whose teachers are invited to participate under short-term award schemes such as the new British Study Fellowship Scheme. The reluctance of teachers to undertake such courses and attachments might be modified by the establishment of a recognised award, perhaps a Commonwealth Diploma in Educational Studies, obtained by means of a series of approved "credits".

As teaching standards and qualifications rise, so teachers' associations should insist on provision being made for the retraining of teachers, rather than allow effective but lower-qualified members to be lost to the profession. Associations should participate as far as practicable in providing upgrading courses despite the financial problems already mentioned relating to increased salary costs of a fully-trained profession. The whole area of in-service training provision for untrained teachers was considered to be of considerable importance and it was agreed to recommend that the Commonwealth Secretariat be asked to collect and circulate information regarding current in-service programmes for untrained teachers organised by teachers' associations, governments and other agencies. It was further recommended that the Commonwealth Secretariat, where requested, should assist teachers' associations in organising in-service training courses for developing countries, where possible on a regional basis.

c) Teachers' organisations and the new teacher

Teachers' organisations, in consultation with the institutions which train and educate teachers, should make provision for programmes designed to acquaint future teachers with the organisation and function of teacher associations.

d) Teacher-trainers

The meeting was unanimous in stressing that teacher trainers must be specifically prepared for this role and should undergo periodical in-service training to keep them abreast of developing practices.

e) Promotion of innovation

It was considered that teachers' organisations could lend much encouragement to teachers involved in innovative practices by publicising their efforts in the associations' newsletters and journals. Associations might also sponsor local or regional competitions similar to the Guiness Awards Scheme for Science and Mathematics in order to stimulate interest, reward endeavour and publicise results. The establishment of Teachers' Centres was seen as another means by which teachers' associations might help their members professionally.

The professional objectives of teachers organisations

The final paragraphs of the paper presented by Mr.Brathwaite were considered to summarise admirably the aims of teachers' associations in this vital area of the professional development of their members:

> " As true professionals we must strive to attain the highest standards which should be reflected in the quality of the products of the educational system and in behaviour patterns indicative of attitudes of commitment, pride and an awareness of a changing role.
>
> " In the final analysis, the success that we achieve and the level of professional status which we enjoy might be determined to a greater extent by factors which are not necessarily external to the profession."

4. INFORMATION EXCHANGE WITH THE COMMONWEALTH SECRETARIAT

It was noted that the Commonwealth Secretariat, an intergovernmental organisation, existed to serve the interests equally of all Commonwealth member countries. In order to carry out its clearing house function, the Secretariat's Education Division relied on the co-operation of both official and non-official bodies to supply information about educational development and innovation which could then be widely disseminated among those to whom it might be of interest and benefit. In order to bring teachers' associations into the orbit of the Education Division's information activities, it was agreed to request that the addresses of all Commonwealth national teachers' organisations should be included in the Education Division's mailing list.

SUMMARY OF MAIN POINTS AND RECOMMENDATIONS

Believing that teachers' organisations should play a greater part i· the determination of educational policy and in the preparation and certificat· of teachers because, as representing practising teachers,

(i) they are deeply concerned for the quality of education·

(ii) they have, more than any other body, direct experience of the current day to day situation in the schools and colleges;

(iii) no educational reform is likely to be effective without the full co-operation of the teachers whom they represent,

the Conference agreed to the following main conclusions and recommendatioı

Teaching conditions

1. Teachers' associations should offer advice and exert pressure in order to ensure the provision of suitable facilities to enable their members to work effectively

2. Teachers' associations should establish clear priorities, determining at every stage in their development how far their efforts should be concentrated on securing improved conditions for their members and how far they can concentrate on issues primarily concerned with the educational process

Participation

3. Governments should be requested to consider the inclusion in their delegations to Commonwealth conferences on educational matters of representatives appointed by teachers' organisations

4. If teachers' associations are to win and retain confidence as full partners in the policy-making process, the sole criterion for the selection of representatives should be their potential ability to make a full contribution to the bodies to which they are nominated

5. A prime role for teachers' associations is to promote and encourage the professional competence of their members so that their worth is recognised, their prestige enhanced and their participation on equal terms sought

6. Teachers' associations should seek to enter into a continuing dialogue with their governments to agree on the direction of anticipated social change

Information exchange

7. Regional groupings of associations could usefully contribute to the exchange of ideas through publications, meetings and workshops

8. Teachers' associations should seek to improve the expertise of their members by assembling and disseminating information about relevant research projects: some research might be sponsored by associations and some undertaken by teachers

9. The Commonwealth Secretariat should survey recent research findings of particular interest to teachers' organisations and publicise more widely its existing Register of Educational Research

Educational reform

10. Associations should reappraise their own aims, structures and functions to ensure that they can respond fully to evolving situations

11. Associations should consider whether they should extend their membership and enter into co-operative arrangements with other organisations in order to bring together all those engaged in educational activities at all levels

Relations with controlling authorities

12. The Commonwealth Secretariat, in consultation with WCOTP, UNESCO and other international organisations where appropriate, should sponsor a survey of the ways in which teachers' organisations in the Commonwealth have achieved partnership, the difficulties they have encountered, the help they would welcome from other organisations, and the help they themselves could give

Policy-making and planning

13. Teachers' associations should endeavour to establish their right to be fully consulted at all levels of the policy-making and planning stages of educational change

14. Teachers' associations have a particular role to play in relating the proposals of economists and administrators to the practical considerations of the education process

15. Associations should support the educational needs of specially deprived groups; these groups will vary among countries but might include girls, social, ethnic and immigrant minorities and the handicapped

Curriculum change

16. Teachers' associations should be closely associated with curriculum development and syllabus construction

17. Teachers' associations should appraise textbooks and where appropriate sponsor the production of suitable texts. Associations should establish close links with National Book Development Councils

18. Where subject panels are part of the overall teachers' organisation, adaptation to meet the needs of changing subject boundaries is facilitated

Examinations

19. The ultimate control of school examinations should lie with teachers

20. Teachers' associations have three major roles to play in connection with examinations: to ensure through full participation that existing examination systems are the best possible of their kind; to encourage research and development of techniques of selection, testing, measurement and prediction; and to educate public opinion to a more enlightened view of the grading process

The mass media

21. Teachers should devise means by which to exert pressure on the controllers of the mass media and relate the media more closely to educational purposes

22. Teachers' associations can contribute to this pressure by educating public opinion to the realities and possibilities of the mass media

Status of teachers

23. Status may be more easily won by participation than by protest

24. Teachers' organisations should seek to unify the profession vertically and horizontally

25. Teachers' organisations should aim for full participation in the control of the entry to the profession and the determination of acceptable systems of training

The teacher and community

26. Teachers' organisations should consider how best support might be given to teachers working in difficult areas and how appropriate rewards might be calculated

27. Involvement in community work enables a teacher to evaluate the results of his work with his ex-pupils and provides valuable data for effective future planning

28. Associations might help to identify and make known possibilities for schools to play a community role

29. Associations should emphasise the need for teachers to be prepared suitably for their work as community members. This may be best achieved by teachers acting as catalysts rather than leaders

Teachers' organisations and professional training

30. Teacher's organisations should influence and participate in all forms of training for their members and potential members, wherever possible following consultation with the employing authorities

31. The effectiveness of existing forms of pre-service training occasions much concern. Whilst subscribing to the general needs of teacher training, outlined as:
a) the development of academic attitudes;
b) knowledge of child development;
c) sound knowledge of the subject area;
d) observation and supervised teaching practice,
developing an awareness of the social problems of the community should form an important part of the initial training of teachers. The Commonwealth Secretariat should disseminate information on this aspect of teacher-training

32. Consideration should be given to the provision of a basic common training for both primary and secondary teachers. This would help to break down long established barriers in the profession which originate very often at the stage of initial training

33. Special attention should be paid to the need to ensure that teachers beginning their professional careers should be adequately oriented to their teaching duties by supervision and advice

34. The role of the para-professional and the place of the untrained teacher should be established by teachers' organisations in consultation with the controlling authorities in the light of prevailing local conditions

35. In areas where there has to be reliance on untrained teachers, associations should accept these untrained teachers on condition that they are subject to an organised and finite course of training. Associations should, with governments and other interested parties, involve themselves in this training

36. Consideration should be given to the use of the mass media for in-service training programmes and the promulgation of matters of educational interest to both teachers and the public at large

37. Further consideration should be given to the concept of recognition for incremental purposes of attendance at a number of short courses in more than one country

38. As teaching standards and qualifications rise, teachers' associations should insist on provision being made for the retraining of less qualified teachers, rather than allow them to be lost to the profession. Associations should participate as far as practicable in providing upgrading courses

39. The Commonwealth Secretariat should assemble and circulate information regarding current in-service programmes for untrained teachers organised by teachers' associations, governments and other agencies

40. The Commonwealth Secretariat, where requested, should assist teachers' associations in organising in-service training courses for developing countries, where possible on a regional basis

41. Teachers' organisations, in consultation with the institutions which train and educate teachers, should make provision for programmes designed to acquaint future teachers with the organisation and function of teacher associations

42. Teacher trainers must be specifically prepared for their role and should undergo periodical in-service training to keep them abreast of developing practices

43. Teachers' associations could encourage their members involved in innovative practices through publicity (including the associations' own newsletters and journals), the organisation of competitions and the establishment of Teachers' Centres

44. In order to bring teachers' associations into the orbit of the Commonwealth Secretariat Education Division's information activities it was agreed to request that the addresses of all Commonwealth national teachers' organisations should be included in the Education Division's mailing list